॥ ॐ श्री अर्हंन् ॥

श्री तिलोक शताब्दी अभिनंदन ग्रंथ



पंडितरत्न उपाध्याय मुनि श्री आनद ऋषिजी महाराज के

— तत्त्वावधान में —

—० संपादक ०—

पं. श्री महेन्द्रकुमार जैन, वल्लभनगर (राज)

प्रकाशक

सेठ श्री. चन्द्रभान रुपचंद डाकलिया, श्रीरामपूर

—: तथा —

श्री रत्न जैन पुस्तकालय, पाथर्डी, जि. अहमदनगर

जयति तिलोक

ये सब जीव तिलोक के, कहते जयति तिलोक।
जय ऋषिवर, कविवर त्रिविध हरे हमारे शोक ॥
सिद्धि-साध्य की ओर थी, काव्य-कला की झोक ।
जीवन-चर्या में रही, पंचास्रव की रोक ॥

पचास्रव की रोक, साधु का मार्ग सुहाया ।
पंच पदो के वंदन का सगीत सुनाया ॥
प्रति-दिन रात समस्त सघ में यश फैलाया ।
रत्नत्रयमय शिष्य रत्नऋषि का वर पाया ।

उपाध्याय आनंद है, निजानंद-आलोक ।
ये सब जीव तिलोक के, कहते जयति तिलोक ।,

--सूरजचन्द डाँगी
बडी सादडी, राजस्थान.

पार्श्व जयती २४८७

— मुद्रक :—
पं. बद्रीनारायण शुक्ल, श्री सुधर्मा मुद्रणालय
पा थ र्डी, जि अ ह म द न ग र

वीर सवत् २४८७ विक्रम स. २०१७ माघ कृष्ण प्रतिपदा

प्रति २०००

卐 समर्पण 卐



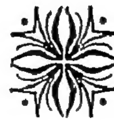
प्रात. स्मरणीय कविकुलभूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज
की दीक्षा-शताब्दी के सुअवसर पर तैयार किया गया प्रस्तुत
अभिनन्दन ग्रन्थ उन्ही ऋषिवर के प्रशिष्य शान्तमूर्ति,
शिक्षाप्रेमी प्रसिद्धवक्ता पंडितरत्न उपाध्याय मुनि श्री आनन्द
ऋषिजी महाराज के पवित्र कर-कमलो मे उनकी
। कल्पना के अनुरूप यह ग्रन्थ सादर समर्पित

विनयावनत
चन्द्रभान रूपचन्द डाकलिया
श्रीरामपुर



प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रमुख विषय








परिशिष्ट

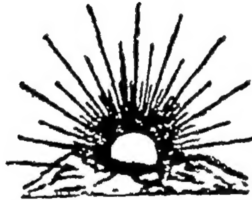


दिवंगत महाराज श्री के दिव्य स्मारक



१:-श्री तिलोक जैन विद्यालय व छात्रालय (पाथर्डी)

२:-श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड (पाथर्डी)



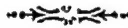
॥ श्री ॥

अनुक्रमणिका

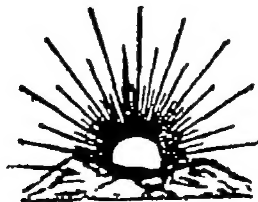




श्रद्धांजली प्रकरण



परिशिष्ट



प्रकाशक की ओर से—

कृतज्ञता सब गुणो का मूल है, यही समझकर पूज्यपाद उपाध्याय श्री आनदऋषिजी म के हृदय मे महाराष्ट्र के परम उपकारी प्रात स्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की दीक्षाशताब्दी के अवसर पर अभिनदन समर्पण करने की भावना जागृत हुई और उसी निमित्त से उनकी लोकोत्तर सेवाओ का परिचय सर्वसाधारण को विस्तृत रूप मे हो जायगा यह विचार कर अपने सहृदय अतेवासी मुनि श्री मोतीऋषिजी महाराज को सूचित किया कि सारी सामग्री व्यवस्थित करना आवश्यक है। प. मुनि श्री मोतीऋषिजी महाराज साहब ने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करके परिश्रमपूर्वक कविवर्य ऋषिप्रवर की कलाकृतियो को एकत्र किया। दानवीर श्रीमान् चद्रभानजी डाकलिया (श्रीरामपुर) ने जब यह मंगल जानकारी प्राप्त की तब तुरंत प्रकाशित करने का भार वहन कर लिया और एक हजार प्रतियो का सारा खर्च संस्था को समर्पण करने का वचन दिया। इसी तरह अभिनदन ग्रंथ के प्रकाशन में अनेक धर्मप्रेमी बधु भगिनियो ने सहायता पहुँचाई है, अतः संस्था उनका आभार मानती है।

दीक्षा शताब्दी समारोह के लिये पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि महाराज की पुण्य स्मृति में स्थापित अनेक लोकोपकारक सस्थाओ के केन्द्र पाथर्डी का स्थान सर्वप्रथम ध्यान में आया। दूसरे स्वर्गारोहण की भूमि अहमदनगर के श्रावको की भी इच्छा थी कि यह समारोह अपने प्रागण में किया जाय परंतु आखिर विदुषी महासती श्री सुमति कुवरजी महाराज की सुमति मुख्यतया सफल हुई और घोडनदी श्रीसंघ को यह गौरव प्राप्त हुआ। क्यो कि पूज्यपाद श्री तिलोक–ऋषिजी महाराज ने इसी नगरी मे सर्वप्रथम पदार्पण के पश्चात् चार भागवती दीक्षा से अपना तीर्थ-सेवा का लोकोत्तर कार्य प्रारभ किया था।

आज श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी गौरव का अनुभव कर रहा है कि यह अनुपम ग्रथ प्रकाशित करने का उसे श्रेय प्राप्त हुआ है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के प्रति वर्तमान आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज, उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज, उपाध्याय मडल, मंत्री मुनि मडल आदि अनेक सत सतियो और विद्वान् लेखको ने श्रद्धाजलियां तथा अपनी विचार विभूतियां समर्पित की है। साहित्य तथा दर्शन शास्त्रके उत्कृष्ट विद्वान् प श्री महेन्द्रकुमारजी जैन न्यायाचार्य वल्लभनगरने परिश्रम पूर्वक इस ग्रंथ का प्रशसनीय सपादन किया है। पडितजी का प्रस्तुत अभिनंदन ग्रंथ के सपादन के अतिरिक्त इसके अधिकतर भाग के लेखन तथा प्रूफ आदि देखने में बहुत बडा हाथ रहा है। जिनके लिये हम सब आभारी हैं।

अंत में हम धार्मिक परीक्षा बोर्ड के परीक्षा-मंत्री और सुधर्मा मुद्रणालय के मैनेजर प. बदरीनारायणजी शुक्ल तथा प्रेस के अन्य सभी कर्मचारियो के परिश्रम को भी कैसे भूल सकते है जिन्होने अत्यन्त अल्प समय में इतने बडे ग्रथ को मुद्रित करके ठीक अवसर पर उपस्थित कर दिया। शीघ्रता के कारण जो त्रुटियाँ रह गई हो उनके लिए हम क्षमाप्रार्थी है।

पाठक वृंद से नम्र निवेदन है कि इस ग्रंथ में कोई त्रुटि दृष्टि गोचर होवे तो हमे सूचित करनेपर उनका दूसरी आवृत्ति में संशोधन हो सकेगा।

यह ग्रंथ हमे शासन के प्रति सब प्रकार के कर्तव्यो की प्रेरणा देने मे यत्किंचित् भी सहायक सिद्ध हुआ तो हम अपना परिश्रम सार्थक समझेंगे।

नम्र
हीरालाल गाँधी
अध्यक्ष—श्री रत्न जैन पुस्तकालय
पाथर्डी, अहमदनगर



प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशक



दानवीर सेठ

श्री. चंद्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया

श्रीरामपुर

श्री चंद्रभानजी रूपचंदजी डाकलिया का अल्प परिचय

श्रीरामपुरनिवासी श्री चन्द्रभानजी का जन्म इसवीसन् १८९६ में पूना जिला के वोपगाव में हुआ। इनके माताजी का नाम भागीरथीजी और पिताजी का नाम रूपचदजी था, उन्होने केडगावनिवासी महासत गुरु नारायण महाराज से शिक्षण प्राप्त किया। सन १९०७ में जब स्वर्गस्थ मुनि श्री रत्नऋपिजी महाराज पूना में अपना चातुर्मास समाप्त करने के पश्चात् अनेक छोटे-छोटे देहातो में विहार करते हुये भिवरी पधारे तब पूरे एक मास तक आपश्रीद्वारा आस-पास के अनेक श्रावको को जैनधर्म का सच्चा वोध प्राप्त हुआ। गुरुदेव श्री रत्नऋपिजी महाराज के इन महान् उपकारो से उपकृत हो उन्होने आपश्री को अपना गुरु मान लिया। पूज्य गुरु महाराज ने इन्हे धार्मिक शिक्षा देते समय जो प्रेमभाव दिखाया उसकी स्मृति इन्हे वार-वार आया करती है। श्री रत्नऋषिजी महाराज के पट्टशिष्य उपाध्याय मुनि श्री आनंदऋपिजी महाराज आज महाराष्ट्र में जैन तत्त्वज्ञान का प्रचार करके श्रावक सघ के ऊपर जो महान् उपकार कर रहे है, उन्हे श्री डाकलियाजी धार्मिक-दृष्टि मे अपने धर्मवधु मानते है।

श्री डाकलियाजी अपने ग्राम में मन् १९१८ तक पितृव्यवसाय वाणिज्य-व्यापार करते रहे। इसी वर्ष जव महाराष्ट्र में वहुत वडा अकाल पडा तव करमाळा, इंदापुर आदि वाजार में केवल चार आने में कसाई लोग गौओकी खरेदी कर आस-पास के नाले मे उनकी कत्तल करके उनकी चमडी उस वक्त तीन रुपये में वेचते थे। यह मानवी क्रूरता देखकर उन्होने उन वाजारों में से करीव ७००-८०० गौओकी खरेदी की उनमे से उन्होने कुछ गौयें पढरपुर पाजरापोळ में पहुँचाई और शेष गौओ का स्वस्थान पर ही पोषण किया। वर्षा-ऋतु का चारा पैदा होने के वक्त कुछ गौयें किसान लोगो को मुफ्त में दे दी और कुछ गौओ का वश विस्तार अभीतक उनके पास मौजूद है। उसी समय आपके परमस्नेही वम्वईनिवासी श्री भीमजी रणजी सॉलिसिटरने यह दु खद कहानी अवलोकन करके अपनी तरफ से करीब ढाई-तीन हजार गौओ को उस स्थल से छुडवाकर वम्वई के पास पवईस्टेट के पहाड में उनकी व्यवस्था की।

मनुष्यनिर्मित वगाल के भयकर अकाल के समय अनेक मनुष्यो को मरते देख ये स्वय वहाँ गये और वहाँ पर स्वर्गस्थ श्यामाप्रसाद मुकर्जी और मारवाडी रिलिफ सोसायटी के सहकार से मिदिनापुर जिले में छात्रालय के पाँच केन्द्र खोले। छात्रा-लय का वह कार्य स्वर्गस्थ ठक्करवापा के नेतृत्व में कई दिनो तक चलता रहा।

सन् १९२१ में अहमदनगर जिले के वेलापुर को जब प्रवरा कॅनॉल से खेती के लिए पानी मिलने की सुभीता हुई तब से वेलापुर में ही आकर आप वस गये। और उसी स्थान को अपना कर खेती का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

शिक्षण के क्षेत्र में भी आप महाराष्ट्र में चलनेवाली अनेक जैन शिक्षण संस्थाओ की तन-मन-धन से सेवा करते रहे है। महाराष्ट्र मे श्रावकसघद्वारा जो अनेक जगह शिक्षण सस्थायें खोलने का कार्य चल रहा है उसमें उनकी यह वृत्ति रहती है, कि ये शिक्षण संस्थाएँ अपने परिश्रम द्वारा स्वावलवी बने। सस्था के लिए चन्दा एकत्रित करने के लिए विद्यार्थियो को पर्यूषणपर्व में याचक रूप से जगह–जगह भेजना उन्हे वीरता के बदले याचक बनाया जाना यह उन्हे पसद नही। इसलिए किसी ऐसी सस्था का होना आवश्यक है जहाँ विद्यार्थी एवं शिक्षक स्वय परिश्रम कर सस्था को स्वावलवी बना सके और विद्यार्थियो को चंदेके लिए जगह–जगह जाकर याचक नही बनना पडे।

इसी दृष्टि से उन्होने एक स्कीम बनाकर चिचवड के श्री फत्तेचंद जैन विद्यालय को चिचवड के नजदीक नदी किनारे ६५ एकर जमीन खरेदी कर उनमें जमीन ठीक बनाने को कुछ खर्चा करके पानी आदि का बन्दोबस्त करके विद्यार्थियो का कुछ समय खेती शिक्षण में लेकर उनके द्वारा पैदा होनेवाले उत्पादन से ३०० विद्यार्थियो का शिक्षण और १०० विद्यार्थियो का भरण–पोषण तीन वर्ष में योजनापूर्वक बने और विद्यार्थी तथा संस्था स्वावलंबी बने इस हेतु से आपने इस कार्य में बहुत बडा भाग लिया और इसका ही रूपातर खेती के महा विद्यालय में बने यह उनको मनीषा थी। लेकिन सहयोग के अभाव से वे आगे बढ न सके।

श्री डाकलियाजी लगभग ४० वर्ष से खेती का कार्य अच्छी तरह से कर रहे है। इसलिये ये महाराष्ट्र के खेती व्यवसाय से अच्छी तरह परिचित है। सन् १९५६ मे आपने देशविदेश के १२५ इक्षुतज्ज्ञो के साथ भारत के सभी इक्षु क्षेत्रो में परिभ्रमण करके बहुत ज्ञान प्राप्त किया है। आप इंटर नॅशनल शुगर केन टेक्नॉलॉजिकल के सदस्य तथा ऑल इडिया केन ग्रोअर फेडरेशन के बबई प्रात के अध्यक्ष रह चुके है।

श्री डाकलियाजीने अपनी खती में यहां के भूमि योग्य बैलो की शक्ति से चलनेवाले ढग ढग के अनेक ओजारोको अपने स्वानुभव से बनवा कर उनके द्वारा अपार सपत्ति खेती से पैदा की है इसलिए वे हमेशा कहते है। उत्तम खेती, मध्यम व्यापार, कनिष्ट नौकरी। यह बात उन्होने प्रयोगसिद्ध करके बताई है। शुगर इंडस्ट्रीज में भी आप दक्ष है। इसलिये कुछ समयतक आप श्री शिवाजी सहकारी साखर कारखाना राहुरी के डायरेक्टर पद पर भी रहे थे।

जैन धार्मिक संस्थाओ की आप सदैव सहायता करते रहे है। पाथर्डी आदिमें चलनेवाली अनेक धार्मिक संस्थाओ को भी आपने बहुत आर्थिक सहायता पहुँचाई है। ऐसी परिस्थिति में इन्होने प्रस्तुत अभिनंदन ग्रथ के प्रथम एक हजार प्रतियो के प्रकाशन का कार्य अपने जिम्मे लेकर समाजकी थोडी बहुत सेवा करनें की सधि प्राप्त की है। इस कार्य को डाकलियाजी अपना अहोभाग्य समझते है।

सम्पादकीय–

अपने ग्राम वल्लभनगर में मेरे मकान के निकट ही जैन धर्म स्थानक होने से मेरा यह सौभाग्य रहा है कि मेरे कर्ण-कुहरो को शैशवावस्था से ही सायंकालीन प्रतिक्रमण के समय पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज की श्रुतिमधुर गेयप्रधान पाँच पदो की वंदना पवित्र करती रही है। उनकी इस वदना से आकर्षित हो मैंने आठ नौ वर्ष की अवस्था में ही स्वयं प्रेरणा से सामायिक प्रतिक्रमण आदि आवश्यक सूत्र कठस्थ किये। कुछ अधिक समझ मे आने पर बाल्यावस्था मे ही मेरे मन मे यह जिज्ञासा हुई कि इस भाव-वदना में सबको आकर्षित करनेवाले यह 'तिलोख रिख' कौन है? अध्ययनानन्तर समाज से दूर विशाल क्षेत्र में विविध विद्याविषयक प्रवृत्तिओ में रत रहने के कारण अपनी वह जिज्ञासा मस्तिष्क में सस्कार रूप से स्थित थी। अत में इस वर्ष जुलाई महीने के मध्य मे उपाध्याय मुनि श्री आनंदऋषिजी महाराज के दर्शन होनेपर उन्होंने मेरे सामने श्री तिलोक ऋषिजी महाराज का जीवन-चरित्र लिखने का प्रस्ताव रखा। उस समय आपने प्रस्तुत अभिनदन ग्रथ की चर्चा नही की थी। इस महा मुनि के प्रति मेरी बचपन से श्रद्धा थी। तत्काल आपके इस प्रस्तावानुसार कार्य करना प्रारंभ कर दिया। मै अपनी योजनानुसार स्व० रत्नऋषिजी महाराज के परिशिष्टवर्ती जीवन चरित्र की तरह इन 'ऋषि वरेण्य' का आधुनिक शैली में जीवन चरित्र लिखना चाहता था, किंतु बहुत ऊहापोह के पश्चात् अभिनंदन ग्रन्थ वर्ती रूप ही निश्चित किया गया। इसे भी मै एक विधि का सकेत ही समझता हूँ, क्योकि आज से दस साल पहले मैंसूरी मे महापडित श्री राहुल साकृत्यायन के साथ कार्य करते समय उनकी प्रेरणा से 'बुद्धचर्या' की तरह 'महावीर चर्या' लिखने का मैंने निश्चय किया था। वह कार्य कुछ प्रारभ भी कर दिया था, पर आवश्यक आगम ग्रथो के अभाव के कारण उस आरब्ध कार्य को वही स्थगित करना पडा। न मालूम वह कार्य कब सपन्न होगा, पर उन श्रमण भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट पवित्र सयम मार्ग को ग्रहण कर अपने जीवन को पवित्र बनानेवाले इस 'ऋषि पुगव' की चर्या लिखकर धन्यता का अनुभव करता हूँ। पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज का यह जीवन-चरित्र, जीवन चरित्र नही वरन् 'श्री तिलोक चर्या' है। आपकी इस चर्या में उनकी दैनदिनी के अनुसार प्रत्येक वर्ष का विशिष्ट कार्यविवरण है। मालव प्रात से विहार कर विन्ध्य एव सातपुडा पर्वत के बीहड घाटो को पार करते हुए जब आप महाराष्ट्र में पधारे उस समय रास्ते में पडनेवाली नर्मदा और ताप्ती नदियो का इसमें हूबहू वर्णन है। नर्मदा नदी के पुल पर लगी हुई

पार्टियो की सख्या का उल्लेख भी इसमें किया गया है । रास्ते में पड़नेवाले और भी अनेक छोटे मोटे नदी-नालो के प्राकृतिक सौंदर्य का भी इसमे दर्शन होगा। अपने विहार-काल मे रास्ते मे आपने किस ग्राम से किस ग्राम की ओर पदार्पण किया, प्रत्येक गाँव के बीच मे कितनी दूरी थी, सावत्सरिक और फाल्गुनी चातुर्मासी के समय आपका कौनसा लोच हुआ, किस स्थान पर रहकर आपने किस ग्रथ की रचना या प्रतिलिपि की आदि जीवन से सबध रखने वाली छोटी-छोटी बातो का इसमे वर्णन किया गया है । इस 'तिलोक चर्या' के आधार से कोई भी जिज्ञासु अपने जीवन में अप्रमत्त वृत्ति से कार्य करता हुआ स्पृहणीय कार्य कर सकता है । चरित्र में दिये हुए नदी-नालो एवं ग्रामो के आधार से उनकी पद-यात्रा का अच्छा नक़शा तैयार कर जनता तक पहुँचाया जा सकता है, जिससे उनकी यह धर्म-यात्रा उनकी कृतियो के साथ सदैव अमर रहेगी ।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के इस जीवन-चरित्र को मैंने केवल अपनी भाषा एवं विचारो द्वारा अलकृत किया है परन्तु इसकी सामग्री-संकलन का सारा श्रेय ऋषि-सप्रदाय के कर्मठ मुनि श्री मोतीऋषिजी महाराज को है । श्री मोतीऋषिजी म० द्वारा अनेक वर्षों के परिश्रम के फलस्वरूप एकत्रित की हुई सामग्री के आधार से मै एक महीने से कम समय मे ही यह जीवन-चरित्र तैयार कर सका हूँ ।

पहले मैने उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज को केवल एक महीने तक ही कार्य करने का वचन दिया था, पर इस एक महीने की अल्प अवधि मे ही मै आपके गुणो से अत्यत मुग्ध हुआ । आपका भी मुझ पर विश्वास बढता गया । अतएव आपश्री के आग्रह से आपके ही तत्त्वावधान मे प्रस्तुत अभिनदन ग्रथ के संपादन का गुरुतर भार अपने सिर पर लिया । कार्य का सचालन उपा० श्री के कुशल नेतृत्व में ही होता रहा, श्री उपाध्यायजी महाराज के प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व एवं सद्गत पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के प्रति श्रद्धा से प्रेरित होकर समस्त श्रीसंघ ने विपुल परिमाण में इस स्व० ऋषि के प्रति प्रस्तुत अभिनदन ग्रथ के लिए अपनी श्रद्धाजलियाँ भेजी । हर्ष है कि हमे चतुर्विध श्रीसंघ से ५५ श्रद्धाजलियाँ प्राप्त हुई है । श्रद्धाजलियो के रूप में आचार्य श्री से लेकर अनेक श्रद्धाशील व्यक्तियो ने उन दिवगत ऋषिवर के प्रति अपने श्रद्धा के फूल चढाये है । इन विखरी हुई श्रद्धाजलियो में महाराजश्री के सपूर्ण जीवन-प्रवाह के उज्ज्वल रूप का दर्शन होता है । भावप्रवणता से लिखी होने के कारण ये सब श्रद्धाजलियाँ हृदय को छूती है

श्रद्धाजलियाँ हमे श्रद्धाजली—प्रकरण समाप्त होने के अंतिम क्षण तक प्राप्त होती रही, इसलिए हम उनमें से कई श्रद्धाजलियो को उचित स्थान पर नही रख पाये है। दूसरी अनेक श्रद्धांजलियो को समुचित स्थान पर नही रखने का मुझे उतना दुख नही जितना कि प मुनि श्री फूलचंदजी श्रमण, (पजाब) की 'ऋषि तिलोक' का। आपकी यह श्रद्धाजली हमें २७–१२–६० को प्राप्त हुई। इसके पहले १५२ पृष्ठ तक का मेटर छप चुका था।

प्रस्तुत ग्रथ का बहुत कुछ मुद्रण होने के बाद हमें शताब्दी-उत्सव के समय और तीन श्रद्धाजलियाँ प्राप्त हुई है। वे अत्यन्त उपयोगी होने से उन्हे हम पूज्यपादश्रीकी प्राकृतिक प्रतिभा के बाद दे रहे है।

श्रद्धाजली प्रकरण के वाद पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० की कलात्मक कृतियो का एक क्रमिक इतिहास है। पूज्यपाद श्री के स्वर्गवास के समय परमोपकारी स्व० श्री रत्नऋषिजी म० की अवस्था केवल १६ साल की थी। उन्हे दीक्षा लिये केवल चार वर्ष ही हुए थे। अतएव अपने गुरुदेव की सब कृतियाँ उनके पास नही रहना सहज है पर शिक्षा के क्षेत्र मे नवीन उत्क्राति करने वाले स्व० रत्नऋषिजी महाराज को शास्त्राभ्यास की प्रेरणा देकर मालव आदि प्रान्त का राह दिखाने वाली पूज्यपाद श्री की सहोदरा धर्मभगिनी महासतीजी श्री हीराकुँवरजी महाराज ने उन सब कृतिओ को अपने पास सुरक्षित रखा। उनके पश्चात् अपने उज्ज्वल सयमी जीवन से अनेक बहनो को इस मार्ग की ओर प्रवृत्त करने वाली इन्ही महासतीजी की शिष्याएँ महासती श्री रामकुवरजी म० विदुषी महासती श्री शान्तिकुवरजी महाराज तथा महासती श्री भूराजी महाराज की विदुषी शिष्या श्री राजकुवरजी म० पडिता महासतीजी श्री उज्ज्वलकुंवरजी महाराज श्री फूलकुवरजी महाराज तथा तपस्विनी महासती श्री नन्दूजी की शिष्या श्री सिरेकुंवरजी महाराज आदि अनेक महासतियो से ऐतिहासिक दृष्टि से सदैव अमर रहने वाली ये कृतियाँ पूज्यपाद उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज को प्राप्त हुई है। इनमें से कुछ कृतियाँ तो ऐसी है जो कि पूज्यपाद श्री के सान्निध्य में रहने वाले सत मुनियो के शिष्य परिवार से परंपरया प्राप्त हुई है। विवेचित कृतियाँ किस सन् मे किस स्थान पर किस दिन लिखी गई, इसका पूज्यपाद श्री ने अपनी कृतियो में उल्लेख किया है।

उदाहरणार्थ—

समुद्रबध एवं नागपाशबध काव्य संवत् १९२४ वैशाख वदि ३० लि० तिलोक। यह कृति आपश्री ने अपनी २० वर्ष की अवस्था में लिखी थी।

दशवैकालिक सूत्र, पुच्छिस्सुणं और २५६ ढगला का थोकडा—संवत् १९२८ वर्षे चैत्र शुक्ल ४ शनिवार। चित्रालंकार काव्य-सवत् १९२८ भाद्रपद शुक्ल पचमी। ज्योतिष चक्र-सवत् १९२८ आश्विन कृष्ण ६ भृगुवासरे लिपिकृत तिलोकरिख सहर साहजापुरे। पन्नवणा पद ११—संवत् १९२८ पौष सुद २ शुक्रवासरे लिपिकृत तिलोकरिख सहर साहजापुर।

उपर्युक्त इन चारो कृतियो की रचना के समय पूज्यपाद श्री की केवल २४ वर्ष की अवस्था थी।

इस प्रकार पूज्यपाद श्री के वय क्रम से समस्त कलाकृतियाँ दी गई है। जब आपश्री की अवस्था केवल २० साल की थी। दीक्षा लिए केवल दशवर्ष ही हुए थे। उस समय से आपने पद्य साहित्य तथा कलात्मक कृतियों के निर्माण की ओर ध्यान दिया। इस के पूर्व भी आप अनेक इस प्रकार की रचनाएँ कर चुके होगे। पर मालूम होता है, वे प्रारम्भिक होने से आपने उन्हे ऐसे ही रख दी होगी। निरतर अभ्यास करते करते इस प्रकार की रचना करने में जब आप सिद्धहस्त हो गये, उस समय भी केवल आप की बीस साल की अवस्था थी। प्रस्तुत ग्रंथ में जिन १९ कलात्मक कृतियो का विवेचन दिया गया है उनसे आप के निरंतर विकासशील जीवन का पता चलता है। अशोकवृक्ष, ज्ञानकुजर एवं शीलरथ के निर्माण काल में तो आप श्री पूर्ण सिद्ध हस्त हो गये थे। अपने जीवन काल के अतिम वर्षों मे आपश्री ने क्रमश अहमदनगर, घोडनदी और वाबोरी में सवत् १९३६, ३७ और ३८ में अपनी बत्तीस, तेंतीस और चौतीस वर्ष की आयु में इन तीनो कृतियो की रचना की। ये रचनाएँ कितनी नयनाभिराम, आकर्षक एवं ज्ञान से परिपूर्ण हे ? यह तो इन के दर्शन मात्र से सहज ही अनुभव हो सकता है।

कलाकृतियो के विवेचन के बाद पूज्यपाद श्री की चित्रकारी के हमें प्राप्त कुछ उत्कृष्ट नमूने दिये गये है। वे है —

(१) नृत्याकार मयूर की आकृति, जंगल में दस प्राणी, लेखन एव चित्रात्मक शैली का उत्कृष्ट नमूना-नमिपवज्जा और अष्टमगल। इन सबके द्वारा पूज्यपाद श्री के जैन परपरा के अनुसार निरतर गुणश्रेणी की ओर ऊपर प्रयाण करनेवाले साधक जीवन का अच्छी तरह पता चल सकता है।

कलाकृतियो के विवेचन के बाद निबन्ध विभाग प्रारंभ होता है। इस विभाग में भी उपाध्यायश्रीजी के महान् व्यक्तित्व से हमे आचार्यश्री से लेकर अनेक संत सतियो एवं विद्वानो के उत्कृष्ट निबन्ध प्राप्त हुए है। सब लेख विद्वत्ता से परिपूर्ण है। वाङ्मय की दृष्टि से उनमें से अनेक का शाश्वत कोटिके साहित्य में

नवर आता है, उनके कारण प्रस्तुत ग्रथ की बहुत अधिक शोभा बढ गई है। साधना के उपासक पूज्य श्री आत्मारामजी म० ने अपनी अस्वस्थावस्था में भी प्रस्तुत ग्रन्थ के लिए ध्यान और योग सबन्धी अपना अध्यात्मप्रधान लेख भेजकर इस दिशा में आगे बढ़नेवाले प्राणियो के लिए पाथेय प्रदान किया है।

सबके अंत मे परिशिष्ट रूप से श्री रत्नऋषिजी म० का सक्षिप्त जीवन-वृत्त, श्री तिलोक जैन विद्यालय पाथर्डी और श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी का इतिवृत्त दिया गया है। पूज्यपाद श्री के स्वर्गवास के पश्चात् उनके महान् उपकारो से कृतज्ञ होकर श्रावकसघ ने ये सब संस्थाएँ स्थापित की है। इसके पीछे परमोपकारी श्री रत्नऋषिजी म० तथा उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी म० की सतत प्रेरणा तो है ही, इसलिए प्रारभ मे उचित समझ-कर पूज्यपादश्री के पट्टशिष्य स्व. श्री रत्नऋषिजी म० की भी सक्षिप्त जीवनी दे दी गई है।

दिनाक २-१-६१ माघ कृष्ण प्रतिपद को घोडनदी में इन्ही ऋषिवर्य का जो दीक्षा शताब्दी उत्सव मनाया गया उस समय सारे देश की जनता ने इस महापुरुष के ज्ञान से आलोकित होकर साप्रदायिक आदि भेद से परे श्री तिलोक जैन पारमार्थिक सस्था की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य व्यापक एव महान् है, इसके द्वारा भविष्य में शिक्षा एव आजीविका की दृष्टि से अनेक बालक-बालि-काओ एव गृहस्थो की सहायता करना, अध्ययनशील होने पर भी केवल द्रव्य के अभाव के कारण आगे नही बढ़नेवाले छात्र-छात्राओ को छात्रवृत्ति देना, इसी प्रकार अपनी हीन स्थिति के कारण अत्यन्त कष्टप्रद जीवन व्यतीत करनेवाले सद्गृहस्थो के लिए भी योग्य मार्ग निकालना। इत्यादि प्रकार से शैक्षणिक, धार्मिक एव सामाजिक आदि सब दृष्टिओ से समाज को उन्नत बनाने का प्रयत्न करना है। इसके लिए सारे देश की ओर आशा की दृष्टि से देखना सहज है। यह संस्था अकेली घोडनदी की नही वरन् सारे देश की है। जिस पवित्र पुरुष के नाम से उपरिनिर्दिष्ट महान उद्देश्यो से परिपूर्ण इस सस्था की स्थापना की गई, उन उद्देश्यो की पूर्ति करने में संचालक वर्ग सदैव प्रयन्नशील एवं जागरूक रहेगे ऐसी हम आशा रखते है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के संबध में 'तिलोक चर्या' एवं 'विवेचन भाग' में जगह-जगह मैने अपने विचार व्यक्त किये है। वे स्थानकवासी समाज में अपने समय के एक युग-प्रवर्तक महामुनि थे। उस समय सारा राष्ट्र एक अद्भुत सक्रमण युग मे गुजर रहा था। अनेक महान् विभूतियाँ अपने अध्या-त्मपरक युगजीवन द्वारा राष्ट्र को आध्यात्मिकता का सदेश देकर भारतीय जनता

को कर्म–योग की ओर प्रवृत्ति कर रही थी। आपके जन्म लेने के कुछ पूर्व ही श्री रामकृष्ण परमहंस अपनी जाज्वल्यमान सब धर्मों की जीवित साधना द्वारा भारतीय समन्वयात्मक साधना का उत्कृष्ट रूप जनता के सामने रख चुके थे। राजयोगी विवेकानन्द ने भी अपने अपूर्व व्यक्तित्व से भारत की प्रतिष्ठा बढाई थी। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ एव राष्ट्रपिता म गाधी तो पूज्यपाद श्री की जीवितावस्था में पैदा हुए। स्थानकवासी समाज में भी उस सयय पूज्य श्री रेखराज जी, ज्ञानचन्द्रजी, उदयचन्द्रजी महाराज आदि अनेक विख्यात पूज्यगण धर्म का प्रचार कर रहे थे। प्रतीत होता है,–पूर्वकालीन अपनी अधूरी साधना के पूर्ण करने के लिएही आप इस धर्मभूमि आर्यावर्त में अवतीर्ण हुए। इसी लिए शैश–वावस्था मे ही आप भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट साधना पथ के पथिक बने। जीवन पर्यन्त आपने अप्रमत्त वृत्ति से रह सातत्य योग की साधना की। जैन परंपरा के अनुसार आप सतत विकास करनेवाले अप्रमत्त सयत मुनि थे। तीर्थ स्वरूप समस्त श्री सघ से क्षमा माँग कर इस स्व० अप्रमत्त मुनि के बारे में नम्र शब्दो में यही कहना चाहता हूँ कि वे सत या मुनि प्रथम है, कवि बाद में। संत के उत्कृष्ट स्वरूप ने ही उन्हे कवित्व प्रदान किया है, कवि भी वे ऐसे वैसे नही, स्वयंभू हैं। उनका काव्य अयत्न–साध्य है। सत के उच्च विरुद से अलंकृत होने के कारण उनका काव्य आज स्था० समाज की जन-जन की जिह्वा पर शोभित है, कोरे कवि होते तो उनके पद केवल ग्रथो की ही शोभा बढ़ाते, कविकुलभूषण, कविकुलकमल दिवाकर, कविवर्य आदि की अपेक्षा उनका महामहिम सत पद ही अपनी महत्ता के लिए पर्याप्त है। कवित्व पद तो उन्हे अपनी निर्मल साधना के कारण घलुए मे प्राप्त हुआ है। भारतीय परपरा में किसी भी महान् सन्त, आचार्य, उपाध्याय या मुनि के पहले आज तक सर्व साधारण की जिह्वापर अप्रचलित विशेषणो का प्रयोग कर उन्हे जन-समाज से पृथक् नही किया गया है। वे अपने छोटे-से सीधे-साधे नाम से जितने निकट पहुँच सकते है, उतने अलकारो से आच्छादित अपने भारी-भरकम रूप में नही। उनके नाम के साथ जुडा हुआ ऋषि शब्द ही उनकी महत्ता का उच्च मापदड है, ऋषि आचार्य उपाध्याय एवं मुनि से भी महान् होते हैं। कवि, पडित आदि की तो उनके सामने कोई गणना नही। 'ऋषिर्दर्शनात्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार ऋषि अन्तर्मुख होकर अन्य व्यक्तिओ (कवि) की पहुंच के बाहर नवीन ज्ञान का दर्शन करते है, वे द्रप्टा होते है। हमारे श्री तिलोक ऋषिजी महाराज ऐसे ही ऋषि थे। उन्होने अपने मानस सागर में छिपे हुए अनेक ज्ञान रूपी रत्नो का अपनी अन्तर्दृष्टि से दर्शन कर मुक्त हस्त से साहित्य के रूप में समाज के सामने रखे है।

अध्यात्ममूलक इस जीवन-स्रोत के कारण ही आपकी स्वतंत्र सृजन, लेखन चित्रकला, विहार सर्वत्र समान दृष्टि रही है। कही पर भी आपका वह मूल ध्येय खडित या धूमिल नही हुआ है। कलाकृतियो में तो जगह–जगह आपके इस सत-रूप का दर्शन होता है। काव्य-सृजन में भी आप की यह दृष्टि ओझल नही हुई है। लोक त्योहारो मे प्रसिद्ध दशहरा आदि का आपश्री ने आध्यात्मिक दशहरे के रूप मे वर्णन किया है। विहार करते हुए रास्ते में जो गाँव मिलते, उन के नामो पर आपने अध्यात्मप्रधान अनेक कविताओ की रचना की है। एक सच्चे योगी की तरह सातत्य योग के कारण ही आपने साधना एव कला के विविध क्षेत्रो में आश्चर्यजनक विकास किया है। अप्रमत्त मुनि होने के कारण ही आपने अपने जीवन के मध्यम काल में वह कार्य कर दिखाया, जो लबी आयु प्राप्त करने पर भी अनेक व्यक्तियो द्वारा अशक्य है। दिवगत महाराजश्री की इस अलौकिक प्रतिभा कीं परिचायक उनकी जन्म एवं दीक्षा कुडलियाँ है, जिनके द्वारा पहले ही आभास हो गया था कि वे भविष्य में समाज को नव चेतना देने-वाले मुनि-श्रेष्ठ होगे। उन्हे हम सपादकीय के बाद पूज्यपादश्री की प्राकृतिक प्रतिभा, शीर्षक से दे रहे हैं।

सतहत्तर वर्ष पूर्व उस श्रेष्ठ आत्मा के स्वर्गवास होने पर भी वे अपने स्वरूप में अमर है। जो विचार उनके हृदय में थे, जिनका प्रचार देह के बधन के कारण मर्यादित था, वे आज उनके देहविहीन होने के कारण हमसब के हृदय मे प्रवेश कर रहे है। उस ऋषि-वरेण्य के प्रति हम सब की सच्ची श्रद्धाजली यही है कि हम उच्च और नीच के दुष्ट भेद को दूर कर अभेद की ओर प्रयाण करे। सत्य और अहिंसा रूपी मूल व्रतो का जीवन में चितनपूर्वक निरंतर विकास करे। साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाएँ अपने श्रेष्ठ पद के अनुसार जीवन मे प्रत्येक दृष्टि से शुद्धि की ओर प्रयाण करे।

इस अभिनदन ग्रंथ के मूल प्रेरक उपाध्याय मुनि श्री आनदऋषिजी महा-राज है। आपके मार्गदर्शन में ही लेखन, सपादन आदि सब कार्य हुआ है। अभिनदन ग्रथ के लिए आई हुई श्रद्धाजलियो एव लेखो में कोई ऐसा नही, जो आपकी दृष्टि से नही गुजरा हो। इतना ही नही इस स्थविरावस्था मे भी आपने अभिनदन ग्रथ के बहुत बडे भाग की अपने सुदर अक्षरो मे प्रेसकापी की है। प्रारंभ से अत तक आपश्री इस ग्रंथ के लिए इतने अधिक उलझे रहे कि इच्छा होने पर भी प्रस्तुत अभिनंदन ग्रंथ के लिए श्रद्धाजली तक नही दे पाये है। दीक्षा शताब्दी के इस पवित्र आयोजन के समय उपाध्याय श्री ही सघ के बीच अपने दादा गुरु के प्रतीक के रूप में उपस्थित है। समस्त श्रीसघ द्वारा अर्पित

इस अभिनदन ग्रथ का दर्शन कर आपको जितनी प्रसन्नता हो रही होगी, उसकी कल्पना तक नही की जा सकती। साथ ही उसके निर्माण में मेरा भी बहुत योगदान होने से समाज के ऋण से कुछ उऋण होने की संधि से अपने चित्त का कुछ समाधान होना सहज है।

इस अवसर पर अपने स्व पिता श्री का पुण्य-स्मरण करना सहज है। मेरे जीवन का बचपन से अधिकतर भाग घर से बहुत दूर विद्या-संबधी प्रवृत्तियो में व्यतीत हुआ है। इस बार अपने पिता श्री की लंबी बीमारी के कारण बाहर के कार्य से निवृत्त होकर केवल उनके साथ रहने की इच्छा से घर आया था। इसी बीच अपने बालसाथी श्री देवेन्द्रकुमारजी हिंदी अध्यापक, श्री ति जैन विद्यालय, पाथर्डी द्वारा उपाध्याय श्री को मेरा नाम सुझाने पर मुझे इस कार्य मे प्रवृत्त होना पडा। कार्य करते हुए भी उनकी भयंकर बीमारी के कारण बीच में तीन बार उनके दर्शनार्थ विवश होकर जाना पडा। अतिम समय मे जब उनसे बिदा ली तब अपने जीवन मे उन्होने पहली बार अश्रुपूर्ण नयनों से अवरुद्ध कठ हो ये शब्द कहे- तुम अब मेरे पास ही रहो, अब मेरी मृत्यु सन्निकट है। तुम्हे सामने देखकर मुझे शान्ति होती है। मेरी ठीक तरह से गति कर के अब नही बाहर जाना, अपने स्व पिताजी के सामने मेरी वाचा अवरुद्ध हो गई। इधर उपाध्यायश्री को दिये हुए वचन की रक्षा भी करना था। अत में अपने वचन की रक्षा करने के लिए सिर पर लिए हुए इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उपाध्यायश्री के पास ठीक समय पर पहुँच गया। बाद में सारे कुटुब के लिए सिरच्छत्र रूप पूज्य पिताश्री मेरी अनुपस्थिति मे सथारा कर, आलोयणा करने के साथ नवकार मत्र का स्मरण करते हुए स्वर्ग सिधार गये। अपने जीवन मे यह पहली बार मैंने उनकी अतिम आज्ञा की अवहेलना की है।

सकट के इन घडियो मे उपाध्यायश्री का मुझ पर बराबर सौहार्दभाव रहा। उन्होंने आत्मीय-भाव से मेरी सुविधा-असुविधा का बराबर ध्यान रखा। आपने इस कार्य में गुरु पद के अधिकारी नही रहकर मेरे वात्सल्य-मूर्ति पिता का व्यवहार किया। आपश्री के इस औदार्यपूर्ण बर्ताव से ही ग्रन्थ को इस रूप मे तैयार करने मे समर्थ हो सका हूँ।

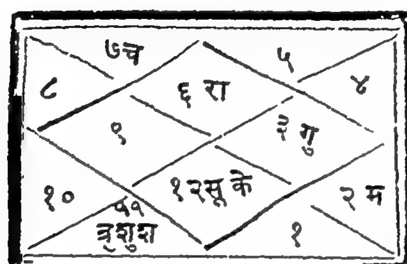
महेन्द्रकुमार जैन

पूज्यपाद श्री की प्राकृतिक प्रतिभा

पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज का जन्मांग एव दीक्षा चक्र

विक्रम संवत् १९०४ शके १७६९ उत्तरायणे रवौ वसंततौ चैत्र मासे कृष्ण पक्षे तृतीयाया तिथौ घट्या ६०।० चित्रा नक्षत्रे ६।. घट्यादय: १०—३७ व्याघ्यात योगे ३९—० सूर्योदयादिष्ट घटी ३३—५० सूर्यमीनसंक्रांतेर्गतांश: १२—६० समये जन्म ।

जन्मांग चक्रम्



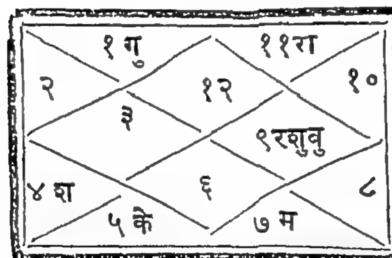
पहले स्थान में राहु अपने घर का स्वामी होने से ससार मे त्यागवृत्ति का निर्माण करता है । लग्नस्थान का स्वामी वुध और उसके साथ शुक्र शनि इन तीनो ग्रहो का एक स्थान में सम्मिलन होने से यह योग वैराग्य भाव का उत्पादक है । इस योग में जन्म लेनेवाले पुरुप महापुरुप होते है । गृहस्थ-जीवन में रहने पर भी उनका जीवन वैराग्यमय एवं विशिष्ट होता है । ऐसे पुरुष का शरीर वहुत गौरवर्ण वाला नही होने पर भी तेजस्वी एवं कातियुक्त होता है । दूसरे स्थान में चन्द्र का योग भी चारित्र लक्ष्मी की वृद्धि का सूचक है ।

तृतीय स्थान में वृश्चिक राशि है । उसका स्वामी मगल है, पर नववें भाग्य स्थान में रहने पर भी उसकी दृष्टि अपने घर पर संपूर्ण रूप से पड रही है । यह योग सहज प्रेरणा से कवित्व शक्ति को उत्पन्न करने का सूचक है । चतुर्थ स्थान की धन राशि है और उसका स्वामी शुक्र दशम स्थान में मिथुन राशि पर पडा हुआ है । यह वडा भारी पुण्य-योग है । इससे प्राणी पुण्यानुवंधी पुण्य सपादन करता है तथा शास्त्रो का अध्ययन कर उनका तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करता है । उसकी औत्पातिकी वुद्धि होती है । पंचम स्थान की मकर राशि है और उसका स्वामी छट्ठे स्थान में अपने घर में मालिक वन कर पडा हुआ है । इसलिए शुक्र शनि और वुध ये तीनो ग्रह यद्यपि वुद्धि की तेजस्विता के लिए

अत्यंत सूचक है, फिर भी छट्ठे स्थान में शनि होने से वह सस्कृत के प्रखर पाण्डित्य के लिए अंतरायरूप है। पर वह चित्रकला तथा कवित्व शक्ति के विकास मे अत्यंत सहायता पहुँचाता है। सप्तम स्थान में रवि और केतु होने से वह सयमपूर्वक जीवन व्यतीत करता है, आजीवन ब्रह्मचारी रहता है और उपसर्ग के समय वह सिंह के समान विजयी होता है। अष्टम स्थान में मेष राशि है और उसका स्वामी मगल भाग्य स्थान में पडा हुआ है, पर चद्र की दृष्टि आठवे स्थान पर पड रही है। इसलिए ऐसे व्यक्ति का आयुष्य मध्यम होने पर भी उसकी कीर्ति बहुत फैलती है। नवम स्थान मे मगल होने से पूर्वकृत शुभ पुण्य के उदय से उसके चारित्र मे उत्तरोत्तर निर्मलता की वृद्धि होती है। दशम स्थान में गुरु होने से भव-भ्रमण घटाता है, वह पुण्यानुबधी पुण्य का अधिकारी होता है तथा गुरु चंद्र का नवम-पचम योग होने से वह शीघ्र मोक्षगामी होता है। ऐसा योग कर्म-निर्जरा करने में अत्यंत सहायक है। इससे त्याग, वैराग्य, तप, संयम आदि का संचय होता है एकादश एव द्वादश दोनो स्थान शुद्ध एव निर्मल होने से स्वर्ग तथा अपवर्ग के अधिकारी बनाते है। वह ऊँचे देवलोक में महाऋद्धि का स्वामी होकर देवत्व की ओर प्रयाण करता है।

॥ इति शुभम् ॥

दीक्षा कुण्डली



सवत् १९१४ माघमासे कृष्ण पक्षे प्रतिपत् तिथौ शुक्र वासरे मध्याह्न समये इष्टघटी ११।५२ रवि ८।३७ लग्न ११।८

फलादेश

मीन राशि मे लग्न होने के साथ उसका स्वामी गुरु होने से ये प्रखर चारित्रवान् बनेंगे। दीक्षा लेने के बाद इनके शरीर में सात्विक तेजस्विता आ जाती है। गुरु दूसरे स्थान में होने के साथ लग्न का स्वामी होने के कारण चारित्र को सपूर्ण रूप से ग्रहण करते हुए अपने चारित्र की उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहेगे एव लोगो के हृदय में विना पद के ही सम्राट् की तरह स्थान प्राप्त करेगे, अभि-षेक के विना संघ के नायक बनेगे। तीसरे स्थान का स्वामी शुक्र दशम स्थान मे पडा हुआ है। यहाँ शुक्र तथा गुरु का नव-पंचम योग है। अतएव यह योग

कवित्व शक्ति को बढाता है। पंचम स्थान के स्वामी का चतुर्थ स्थान में निवास होने से अलौकिक बुद्धि की प्राप्ति होती है और उस पर नवम स्थान मे स्थित रवि, शुक्र और बुध की सपूर्ण दृष्टि होने से बुद्धि के विविध पहलू विकसित होते है। जिससे लेखन-कला, चित्रकला आदि अनेक विषयो में निपुणता प्राप्त करेगे। पचम स्थान में शनि कर्क का होने से स्वय उसकी अपने स्थान पर दृष्टि पड रही है। जिससे वह अनेक कवित्वसूचक कल्पनाएँ करने के साथ औत्पातिकी बुद्धि के धनी बनेंगे। छट्ठे स्थान में केतु होने के कारण आचार्य पद से विभूषित न हो सके। सातवे स्थान मे कन्या राशि है और उसका स्वामी बुध दशम स्थान में पडने से ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहेगे। अष्टम स्थान में मगल है और उस पर किसी अन्य ग्रह की दृष्टि नही पड रही है। इसलिए इनका मध्यमायु योग है, नववे स्थान में वृश्चिक होने से उसका मगल गुरु समसप्तक योग करता है। यह योग दिन-प्रतिदिन प्रत्येक प्रकार की पुण्यवानी बढाता है। दसवे स्थान का स्वामी गुरु अन्य घर में होने से उनका यश चारो ओर व्याप्त होगा। ग्यारहवे स्थान में मकर की राशि होने के साथ उसके स्वामी शनि की सपूर्ण दृष्टि पडने से ये निकट भविष्य मे एक दो भव में ही मोक्ष प्राप्त कर सकते है। भगवान् महावीर की कुडली में भी राहू था।

॥ शुभं भवतु ॥

श्रद्धा के दो कुसुम

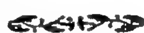
बालब्रह्मचारिणी जैनशासन प्रभाविका पंडिता महासतीजी
श्री रतनकुंवरजी महाराज शाजापुर

पूज्यपाद चारित्रचूडामणि, कविसम्राट्, विद्वद्वर्य महाराष्ट्रउद्धारक ऋषिवर्य श्री श्री १००८ श्री तिलोकऋषिजी महाराज साहब जैन जगत् में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप में उदित हुए। अपनी ज्ञान-गरिमा एवं चारित्रनिष्ठा से उन्होने समाज को नव चेतना प्रदान की। उनके साहित्य-सृजन से हमारे साहित्य-भडार मे अनेकानेक ग्रन्थ रत्न आये जो हिन्दी जैन साहित्य की अमूल्य कृतियाँ है। उनके ग्रन्थो के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जन्म-जात कवि थे। उनके ग्रन्थो में शब्द-चमत्कार एवं भावसौन्दर्य का अद्भुत सम्मिश्रण है--जो उनके काव्यत्व गुण का परिचायक है।

आपश्री कविहृदय होने के साथ ही श्रेष्ठ लिपिकार एवं चित्रकार भी थे। आपके ज्ञान शक्ति का परिचय तो इससे लगता है कि वे दोनो हाथ पैर मे लिखते हुए भी अपनी पीठ पर लिखे हुए प्रश्न का उत्तर भी दे देते थे।

ज्ञान के साथ त्यागनिष्ठा एव चारित्रबल का संयोग विरले सत पुरुषो में ही होता है, लेकिन आपश्री ज्ञानमूर्ति एवं तपमूर्ति दोनो ही थे । गुण व गरिमा दोनो ही आपको प्राप्त थे । ऐसे महान् संतो का आविर्भाव समष्टि एव व्यष्टि दोनो के लिए कल्याणकारक होता है । आपश्री को भी तिन्नाण तारयाण का पद सार्थक था ।

ऐसे महान् संत के प्रति जिसने अल्प लेकर अधिक दिया ! जो भिक्षु होते हुए भी ज्ञान का दाता था और दाता होने पर भी भिक्षु (मोक्षका) था, हम क्या अर्पण करे ? श्रद्धा के दो कुसुम !!



श्रद्धा के सुमन

परमविदुषी महासतीजी श्री **वल्लभकुंवरजी महाराज साहब**

शाजापुर

जन्म और मृत्यु दो पहलू है जिन पर यह ससार अपना स्वरूप बताता है । साधारणतया समष्टि के लिए व्यक्तिका जन्म और मृत्यु दोनो ही अर्थहीन है, किसे चिन्ता है कि नदी के प्रवाह में कौन-कौन से जलकण आते है और चले जाते है । चिन्ता होती है केवल प्रवाह को प्रवाहमान बने रहने की । यही बात मानवीय सृष्टि के लिए भी है । लेकिन वही जलकण सार्थक होता है जो किसी प्यासे की तृष्णा को परितोष देता है, यही बात व्यक्ति के लिए भी उतनी ही सत्य है । जो दूसरो की रक्षा में स्व की बलि देता है, वही अपना जीवन सार्थक करता है । जन्म लेना उसका सार्थक है जो पर की रक्षा में व्यतीत हो, हिंसा में नही, और मरण उसका सार्थक है जिसे अंतिम समय पर स्व और पर में कोई भेद दृष्टिगोचर नहीं होता ।

जिनके जन्म और मृत्यु दोनो सार्थक होगये, ऐसे थे पूज्यपाद श्री तिलोक-ऋषिजी म० सा० । वे कवि थे, वक्ता थे, लेखक थे, चित्रकार थे, आत्मचिकित्सक थे, निरीक्षक थे और एक शब्द में कहा जाय तो सब कुछ थे । इन सबसे अधिक वे संत थे और सच्चे श्रमण थे । बस यही उनकी महानता थी ।

ऐसे महान् व्यक्तित्व के लिये यह श्रद्धा के सुमन भी निर्मूल्य है जिसे मान और अपमान दोनो में समानता परिलक्षित हो उसे इनसे प्रयोजन ही क्या ? लेकिन, हे ज्योतिर्धर ! हम अपने मन के परितोष के लिए यह श्रद्धा के सुमन तेरे चरणो मे समर्पित करते है । हे प्रकाश–पुज ! तेरा यह प्रकाशमय जीवन अनंतकाल तक जन-जन के हृदय को आलोकित करता रहे ।



श्री तिलोकऋषि पूज्यपादानां दीक्षा शताब्दी महोत्सवे श्रद्धांजली

ले.–पं. दिगंबर महादेव कुलकर्णी वी ० शिक्षक, सातारा

कालिदासादध्यसंख्यात कविरत्नै सुशोभिता ।
भोजभर्तृहरीत्यादि-कविराजैश्च शासिता ॥ १ ॥
मालवा जन्मभूर्यस्य, स त्रिलोकोऽभवत् कवि ।
नाश्चर्यलेशस्तत्रास्ति, 'तथा मृत्स्ना यथा खनि ' ॥ २ ॥

भावार्थ––कालिदास आदि असख्य कविरत्नो से सुशोभित तथा राजा भोज और भर्तृहरि जैसे कवि और राजाओ के शासन मे स्थित मालवा देश जिनकी जन्मभूमि थी, वे श्री तिलोकऋषिजी म० यदि कवि हुए है तो इसमे कोई आश्चर्य नही क्योकि 'जैसी खान वैसी मिट्टी'

हठादाकृष्टाना कतिपयपदाना रचयिता,
नर: कोऽपि क्षुद्रो भवति कुकविर्हन्त भवने ।
सहस्राणा षष्ठे: सरसकविताना कवयिता
त्रिलोकस्त्रैलोक्येऽपि कथमिव न स्यात् कविवर ॥३॥

भावार्थ––अरेरे ! जबर्दस्ती से खीचतान कर क्रमश. शब्दो की रचना करके कोई क्षुद्रमनुष्य भी इस ससार में कवि होता हो तो ६० हजार श्रेष्ठश्लोक निर्माण करनेवाले श्री **तिलोकऋषिजी म०** त्रैलोक्य मे उत्कृष्ट कवि क्यो नही होगे ?

काव्यवैराग्यभूषाभ्या भूपो भर्तृहरि कवि ।
त्रिलोकर्षिस्त्रिलोक्या स्यात्तथैव च कविर्यति ॥ ४ ॥

भावार्थ––काव्य और वैराग्य इन गुणो से युक्त भर्तृहरि कवि और भूपति थे । इसी प्रकार श्री तिलोकऋषिजी म० कवि और यति थे ।

रत्नलासपुरीं मन्ये, साक्षाद्रत्नखर्नि भुवि ।
यत्रोद्भूत त्रिलोकर्षि-रत्न त्रैलोक्यभासुरम् ॥ ५ ॥

भावार्थ––रतलाम नगरी यह ससार में प्रत्यक्ष रत्नो की खान है, ऐसा मुझे लगता है, क्यो कि त्रैलोक्य को प्रकाशित करनेवाले **श्री** तिलोकऋषिरूप **रत्न** जहां उत्पन्न हुए है ।

गोकर्णमात्रविस्तीर्णे पत्रे सूत्रे लिखन्नयम् ।
भालपट्टाक्षर सूक्ष्म विविन्यस्त पठेन्नृणाम् ॥ ६ ॥

भावार्थ––गाय के कान जितने विस्तृत कागद पर दो सूत्रो को लिखनेवाले यह मनुष्यो के कपाल पर विधाता से लिखे गये सूक्ष्म अक्षरो को पढेगा ।

'दशवैकालिक' पूर्णं, मूलं पुच्छीसुणस्य च ।
सूक्ष्मस्पष्टाक्षरै रम्यै, पत्रे स्वल्पे लिखन् कविः ॥ ७ ॥
भालपट्टसहस्रेषु दुर्वाच्या अक्षरावली ।
लिखितश्चित्रगुप्तस्य, स्पर्धायामहरद्यश ॥ ८ ॥ युग्मम् ॥

भावार्थ––छोटे से कागज पर श्री **दशवैकालिकसूत्र सपूर्ण** और **पुच्छी-सुण** (वीरस्तुति) स्पष्ट और रम्य सूक्ष्म अक्षरो को लिखनेवाले इस मुनि ने हजारो कपालो पर पढने मे कठिन ऐसे अक्षरो की पक्तिओ को लिखनेवाले चित्र-गुप्त के यश को हस्ताक्षर की स्पर्धा में हरण किया ।

हस्त्यश्वरथबन्धाना, स्तुतिपाठावलेस्तथा ।
प्रभोः प्रसादप्राप्तस्य योगो राज्ञेऽस्ति वा कवे ॥ ९ ॥

भावार्थ––प्रभु की कृपा को प्राप्त करनेवाले राजा अथवा कवि के हिस्से में ही हस्तिबध, अश्वबंध, रथबध और स्तुतिपाठ का योग आता है । राजा को चतुरंग दल और भाट होते हैं । कवि चित्र काव्य–रचना और स्तुति पर काव्य करते है ।

ससारासख्यदुःखैर्ये, वैराग्य यान्ति पीडिता ।
तेऽपि लोके प्रशस्यन्ते सादर देववत् सदा ॥ १० ॥

भावार्थ––संसार के असख्य दुःखो से पीडित लोगो को यदि वैराग्य प्राप्त हुआ है, उनकी भी लोग आदर से देवतुल्य स्तुति करते हैं ।

स्वप्नेऽप्यदृष्टदुःखाशो दशवर्षात्मक शिशु ।
वव्रे यो तीव्रवैराग्य स ययौ देववन्द्यताम् ॥ ११ ॥

भावार्थ––परन्तु स्वप्न मे भी जिसने दु.ख का लवलेश नहीं देखा और जो केवल १० वर्ष के थे ऐसे त्रिलोक मुनि ने प्रापचिक सुख की तरफ न देखते हुए तीव्र वैराग्य देवता को माला अर्पण की, ऐसे श्री त्रिलोकर्षि अर्थात् श्री **तिलोक-ऋषिजी म०** देवो के लिए वन्दनीय है ।

त्रिलोकर्षेः पदस्पर्शात् पूना घोडनदीपुरी ।
दिष्ट्याऽद्य वर्धते भूयस्तच्छिष्याणा महोत्सवैः ॥ १२ ॥

भावार्थ––पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० के पदस्पर्श से घोडनदी क्षेत्र पहले पवित्र हुआ है । वर्तमान में यहां उन्ही के श्रावक शिष्यो द्वारा किया हुआ दीक्षा शताब्दी महोत्सव के निमित्त पुन हम उसका अभिनन्दन करते हैं ।

समुल्लंघ्य महारण्य गिरिनद्यादि दुर्गमम्
त्रिलोकर्षि· समायातो यम्या दिशमगस्त्यवत् ।। १३ ।।

भावार्थ——कविकुलभूषण श्री तिलोकऋषिजी म० पर्वत, नदियाँ, मार्गाभाव वगैरह असुविधाओ के कारण संचार करने के लिए अनेक कठिनाइयों को पार कर दक्षिण देश को अगस्त्यऋषि के समान आये ।

सर्वहिंसाप्यगस्त्येन, निषिद्धा मुनिना स्फुटम ।
श्री त्रिलोकोऽप्यहिंसाया प्रचारं सर्वथाऽकरोत् ।। १४ ।।

भावार्थ——अगस्त्यमुनि ने सर्व हिंसा का भी स्पष्ट रूप से निषेध किया। इसी तरह पूज्यपाद श्री त्रिलोकऋषिजी म० ने भी अहिंसा का प्रचार सब तरह से किया ।

रत्नानन्दादिशिष्याणा प्रयत्नैर्जैनधर्मिणाम् ।
ऐहिकामुष्मिकश्रेयो-वृद्धिः स्याद्भुवि सर्वथा ।। १५ ।।

भावार्थ——श्री रत्नऋषिजी म० श्री आनन्दऋषिजी म० आदि शिष्य प्रशिष्यो के उपदेशरूप प्रयत्नो से केवल जैनो का ही कल्याण नही हुआ किन्तु समस्त ससार में सर्वदा ऐहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण की वृद्धि होवे ऐसी शुभ कामना है ।



श्रमणशिरोमणि पूज्य पाद श्री तिलोक ऋषिजी म०

ले. मोतीलाल सुराणा

वदन प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचा वाच. ।
करण परोपकरणं येषा केषा न ते वद्याः ।।

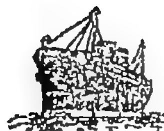
जिन आत्माओ का मुख प्रसन्नता का घर है, हृदय दया से परिपूर्ण है, वचन अमृतमय एव कार्य परोपकार की भावना से ओतप्रोत है वे किसके वन्दना योग्य नही होते ! वे सभी के आदरणीय विश्वबंधु होते है ।

इसी प्रकारकी एक महान् आत्मा सवत् १९०४ में रतलाम शहर में श्रीपति सेठ दुलीचन्दजी सुराणा के घर रत्नगर्भा नानूवाई के गर्भ से तिलोकचन्दजी के रूपमें अवतरित हुई ।——

केवल १० वर्ष की आयु मे ही संसार की अनित्यता को समझ श्रीसम्पन्न होते हुए भी माता, बहन, भाई के साथ चरित्र नायक ने भागवती दीक्षा अगीकार की। आपके गुरुवर बाल ब्रह्मचारी श्री अयवन्ताऋषिजी महाराज साहब परम विद्वान् एवं असरकारक व्याख्यानी थे। आपके बडे भाई भी बडे तपस्वी थे। उन्होंने सयम के बाद आजीवन एकान्तर तप किया संयम धारण करने के बाद तिलोकऋषिजी महाराज गुरु सेवा व ज्ञान ध्यान में अपना सारा समय व्यतीत करने लगे। अपनी विलक्षणता के कारण कुछही समय मे महान् कवि और शास्त्र-विशारद हो गए। संवत् १९२२ मे आपके गुरुमहाराज का निधन भेसरोज में हुआ और सारा कार्यभार आपके ऊपर आगया। आप एक प्रतिष्ठित सन्त थे।

एक बार अहमदनगर में जब आपके पदार्पण की खबर पहुँची तो एक भक्त बाईने हर्षातिरेक में अपने हाथ का स्वर्णकगण उतार कर खबर देने वाले को भेंट कर दिया। इससे सहज जाना जा सकता है कि जनता मे आपके प्रति कितनी श्रद्धा थी।

श्रमण-शिरोमणि तिलोकऋषिजी म० ने अपनी कुल ३६ वर्ष की अल्प-आयु सत्य अहिसा दान, तप और भली भावना का ग्राम नगरो में विहारकर धर्मोपदेश दिया। अनेको ग्रन्थो की पद्यमय बेजोड रचना की। धर्म का बहुत उद्योत हुआ किन्तु १९४० की श्रावण वदि २ को जैनजगत् का सूर्य अस्त होगया। जैन भारती निरास्पद होगई।



॥ ॐ अर्हन् ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। श्रीसद्‌गुरवे नमः॥



ऐतिहासिक दृष्टिसे जैनधर्म अत्यंत प्राचीन है। जैन शास्त्रों के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों में भी इसकी प्राचीनता के प्रमाण उपलब्ध हैं। इस अवसर्पिणी काल में जैन-धर्म के आद्य तीर्थङ्कर भगवान् श्री ऋषभदेव हुए। भागवतपुराण में भी वडे आदर के साथ भगवान् ऋषभदेव की गणना अवतारों में की गई है। ऋषभदेवके वाद और तेईस तीर्थंकर हुए। उनमें चरम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी चौवीसवें थे। उन चरम तीर्थंकर भगवान महावीर का आजसे २४८७ वर्ष पूर्व निर्वाण हुआ। उनकी उपस्थिति कालमें ही उनके ग्यारह गणधरोंमें से नौ गणधर केवलज्ञान प्राप्त कर चुके थे। केवल श्री इंद्रभूति (गौतमस्वामी) और सुधर्मास्वामी को केवलज्ञान प्राप्त नही हुआ था। भगवान् के निर्वाण के थोडे समय बाद गौतमस्वामीने भी मोह का सर्वथा उच्छेद कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। केवलज्ञान के द्वारा आत्मा की सर्वोच्च अवस्था उपार्जन करने के कारण श्री गौतम गणधर भगवान् महावीरस्वामी के पाटपर अधिष्ठित नहीं हुए, परन्तु सुधर्मा स्वामी उस समय छद्मस्थ होनेसे उसपर अधिष्ठित हुए। अर्थात् वे भगवान् महावीर के सारे श्रमणसघ के नायक हुए। भगवान् महावीर के पश्चात् परंपरासे जो पट्टावली उपलब्ध है। उसकी नामावली इस प्रकार है :—

१ श्री सुधर्मा स्वामी	१४ श्री शांडिल्य स्वामी
२ ” जम्बू स्वामी	१५ ,, समुद्र स्वामी
३ ,, प्रभव स्वामी	१६ ,, मगु स्वामी
४ ,, शय्यंभव स्वामी	१७ ,, नन्दिल स्वामी
५ ,, यशोभद्र स्वामी	१८ ,, नागहस्ती स्वामी
६ ,, संभूतिविजय स्वामी	१९ ,, रेवती स्वामी
७ ,, भद्रवाहु स्वामी	२० ,, ब्रह्मद्वीपिकसिंह स्वामी
८ ,, स्थूलिभद्र स्वामी	२१ ,, स्कंदिलाचार्य स्वामी
९ ,, महागिरिजी	२२ ,, हिमवंत स्वामी
१० ,, आर्यसुहस्तिजी	२३ ,, नागार्जुन स्वामी
११ ,, वलिस्सह स्वामी	२४ ,, भूतदिन्न स्वामी
१२ ,, श्यामार्य स्वामी	२५ ,, लोहित्त स्वामी
१३ ,, स्वाति स्वामी	२६ ,, दूष्यगणि स्वामी

२७ श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण स्वामी

'इस सत्ताईस पाट परंपरामे भगवान् महावीर के निर्वाण प्राप्त करने के बाद केवल ६४ वर्षों तक केवलज्ञान रहा। श्रीसुधर्मास्वामी के सुशिष्य चरमकेवली श्रीजम्बू स्वामी के निर्वाण प्राप्त करने के बाद भरतक्षेत्र से इन बोलों का विच्छेद हो गया। उनमें केवलज्ञान, केवलदर्शन का भी समावेश है।

पं. मुनि श्री 'अमीऋषिजी महाराज ने 'अपने 'अमृत काव्यसंग्रहमें उन दश बोलों का उल्लेख इस प्रकार किया है:—

जम्बू स्वामी मोक्षमें बिराज्या पीछे भरतमें
गये हैं विच्छेद दस बोल ये जहारी है।
परम अवधि मन पर्यव केवलज्ञान,
चारित्र सूक्ष्मसम्पराय गुणभारी है ॥
यथाख्यात जघा विद्याचारण लब्धिमुनि,
पडिमा द्वादशमी पुलाक अणगारी है।
उपशम श्रेणि और क्षपक श्रेणि ये दोय
कहे अमीरिख जैनग्रन्थ में उच्चारी है ॥ १ ॥

ऊपर के छंद में परिगणित परमावधि, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान, सूक्ष्मसम्पराय, यथाख्यातचारित्र, जंघाचारण-विद्याचारण-लब्धि, मुनिकी बारहवी प्रतिमा, पुलाक-लब्धि, उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि इन दश बोलो का उच्छेद हो गया। वीर निर्वाण के बाद १७० वर्षों तक भद्रबाहुस्वामी पर्यंत चतुर्दश पूर्वों का ज्ञान था। तब तक यह सारा ज्ञान कठस्थ था। पर भद्रबाहु के पश्चात् यह ज्ञान उत्तरोत्तर क्षीण होने लगा। उसका ह्रास होते-होते अन्त में भगवान् महावीर के पाटपर विराजित सत्ताईसवें पट्टधर श्री देवर्द्धिक्षमाश्रमण तक यह केवल एक पूर्व का ही रह गया। तब तक भगवान् महावीर को निर्वाण हुए ६८० वर्ष हो चुके थे। चार मूलसूत्रोंमें से नंदीसूत्र में भगवान् महावीर के शासनपर अधिष्ठित सत्ताईस पट्टधर आचार्यों का उल्लेख है। पर इस पट्टावली में परिगणित आचार्यों के संबंधमे कुछ मतभेद हैं। यह विद्वानों तथा संशोधन की चर्चा का विषय होनेसे इसके संबंधमें हम विशेष ऊहापोह नहीं करना चाहते।

श्रीभद्रबाहु अंतिम श्रुतकेवली थे। उन्हें चौदह पूर्वोंका सम्पूर्ण ज्ञान था, जम्बूस्वामी से भद्रबाहुस्वामी तक जो पट्टपरंपरा है उस परंपरा में दिगंबर और श्वेतांबरों में कुछ मत-भेद है। भद्रबाहुस्वामी अपने समय के महान् ज्योतिर्धर थे। वे तत्कालीन सम्राट् चंद्र-गुप्त के धर्मगुरु थे। चंद्रगुप्त को उस समय भविष्यसूचक जो सोलह स्वप्न आये, उनका स्पष्टीकरण भी आचार्य भद्रबाहुने किया था। श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहुने दस-आगमो पर निर्युक्ति की रचना की है। उस समय की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना बारह सालका अकाल है। द्वादश वर्ष के भीषण दुर्भिक्ष के कारण जैन साधुओं को शुद्ध आहार पानी आदि मिलना कठिन हो गया। इसलिए वे जैन धर्मके शुद्ध रूपकी रक्षा करने के लिए सुदूर दक्षिण की ओर चले गये।

आचार्य श्री भद्रबाहु के दक्षिण की ओर विहार करने के बाद इस प्राणहरण भीषण दुर्भिक्ष का सबपर बहुत गहरा तथा स्थायी प्रभाव पड़ा। व्यवस्थित सब छिन्न-भिन्न हो गया। श्रुति-परंपरासे प्रवाहित अखंड श्रुतज्ञान का बहुत-सा भाग विच्छिन्न हो गया। अनेक श्रुतधर आत्मार्थी श्रेष्ठ मुनिगण काल-कवलित होकर दिवगत हो गये।

इस प्रकार उत्तरोत्तर ज्ञान के क्षीण होनेसे सत्ताईसवें पट्टधर श्री देवर्द्धिगणि क्षमा-श्रमणको यह आशंका हुई कि श्रुतिपरंपरा से कंठस्थ रखनेसे कहीं यह बचा-खुचा ज्ञान ही लुप्त न हो जाय। इसलिए थोडी बहुत बची इस ज्ञानज्योति को अखंड प्रज्व-लित रखनेके लिये उन्होंने वल्लभी तथा मथुरामें अनेक विद्वान् आचार्यों को एकत्रित कर उन्हें जितना ज्ञान कंठस्थ था, उसे लिपिबद्ध कराकर ग्रन्थारूढ किया। इसे ग्रन्था-रूढ करते समय उन्होंने वर्षों तक विद्वान् आचार्यों के साथ बहुत कुछ विचार विमर्श किया। अंतमें उन्हें जो शुद्ध स्वरूप दिखाई दिया उसे ही शास्त्र में स्थान दिया। जहाँ कही उन्हें कुछ मतभेद प्रतीत हुआ, वहां उसका उन्होंने पाठांतर दिया।

भगवान् महावीर का निर्वाण होने के पश्चात् जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे वैसे साधु परंपरा में भी बहुत कुछ मतभेद होता गया। इसी मतभेद के कारण उनके निर्वाण के ९८० वर्ष बाद अनेक गच्छ स्थापित हो गये। गच्छों की अनेकता के कारण उनकी परम्पराएँ भी विभिन्न होनेसे अनेक प्रकार की हो गई हैं। गच्छों का विविध जाल फैल जाने पर भी उनमें प्रकांड दार्शनिक सिद्धांतवेत्ता प्रभावशाली और विविध विषयोंके ज्ञाता अनेक आचार्य हुए हैं। जिन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण कृतियों से जैन-वाङ्मय की समृद्धि में संस्मरणीय योगदान दिया है। भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान तथा आचारशास्त्र ऐसी ठोस भूमिपर स्थित था कि उसे लेकर इतने वर्षों बाद भी कोई खास उल्लेखनीय मतभेद नही हुआ, जैसा कि वैदिकदर्शन या ब्राह्मण परंपरामें दृष्टिगोचर होता है या बौद्ध परंपरा में भी दिखाई देता है। परन्तु निष्प्राण बाह्य क्रियाकांडों को ही धर्मके अंग मानकर समय-समय पर अनेक गच्छ उत्पन्न होते गये। क्रियाकांड धर्मके अंग बन जाने से धीरे धीरे सबमें शिथिलता आने लगी। फलस्वरूप वह अनेक विकृतिओं का आगार हो गया। कठोरसंयमका पालन करनेवाले साधुप्रायः चैत्यवासी हो गये। यहाँ तक कि यह वाद अपनी पराकाष्ठा तक जा पहुँचा। जो साधु समुदाय पहले जंगल, अरण्य, वन, उद्यान, स्मशान, धर्मशाला आदि जहा कहीं स्थान मिल जाता, वहा सुखपूर्वक निवास करता था, वह अब मठों की तरह उपाश्रय बनाकर रहने लगा।

इस पतनके पीछे यह कारण है, भगवान महावीर का जब निर्वाण हुआ, उस समय राशि पर भस्मग्रह था। उसके प्रभाव के कारण दो हजार वर्षोंतक शासन में हानि-वृद्धि होती रही। यद्यपि किसी समय खद्योत के स्वल्प प्रकाशके समान इसमें भी उन्नति के कुछ लक्षण दृष्टिगोचर होते रहे। पर ऊपरसे दिखाई देनेवाली वह उन्नति आभास मात्र थी।

उसमें पतन के लक्षण ही अधिक थे। भस्मग्रह का यह प्रत्यक्ष प्रभाव हम सब अनेक शताब्दियों से देख रहे है। बीचमें साधु समाज यति रूपमें परिवर्तित हो गया। यह यति समाज अनेक प्रकारके आरंभ का सेवन करने लगा। बहुतसे यति गृहस्थो की तरह आवास बनाकर रहने लगे। सदैव पाद विहार कर प्रकृति के साथ सबध रखनेवाले पवित्र साधुगण यतिरूप में परिवर्तित होकर पालखी पर आरूढ होकर विचरने लगे। मूर्तिपूजा ही एक मात्र धर्मका अंग बन गया। भगवान् का लोकाभ्युदयकारी पवित्र उपदेश विस्मृत-सा कर दिया गया।

ऐसी परिस्थिति में जब कि धर्म का शुद्ध स्वरूप सर्वथा लुप्त-सा हो गया था। सब अंधेरे में भटक रहे थे। आचार में अहिसाके साधकों द्वारा सब नियमों का विस्मरण कर दिया गया था। तब एक महान् क्रांतिकारी श्रेष्ठ पुरुष का जन्म हुआ। यह विलक्षण पुरुष श्री लोंकाशाहके नामसे सारे स्थानकवासी समाज में विख्यात है। उनका जन्म गुजरात प्रात में स्थित सिरोही राज्यातर्गत "अरहटवाडा" नामक ग्राममें विक्रम सवत् १४८२ की कार्तिक पूर्णिमा को हुआ। उनके पिता का नाम हेमाभाई और माताका नाम गंगाबाई था। पंद्रह वर्ष की अल्पायु में ही आपका विवाह हो गया था। विवाह के तीन वर्ष बाद आपको पुत्र की प्राप्ति हुई। श्रीमान् लोंकाशाह अपने समय में धार्मिक सस्कारोंसे सपन्न एक असाधारण पुरुष थें। आपकी बुद्धि अत्यंत निर्मल तथा ग्रहण-शक्ति अद्भुत थी। अक्षर भी मोती की तरह सुन्दर लिखते थे। कुछ बडे होनेपर वे अरहटवाडा छोडकर अहमदाबाद आकर रहने लगे। कार्यकुशलता के साथ अपनी अद्भुत सूझ के कारण राजदरबार में भी उनकी बहुत प्रतिष्ठा थी। यह सब होने पर भी आपकी धर्ममय जीवन के प्रति विशेष अभिरूचि थी। अपने जीवन को धर्ममय बनाने के लिये उन्होंने उच्च धार्मिक ज्ञान प्राप्त किया। इसमें आगमो के अध्ययन का योग मिलने से उनके ज्ञानमें परिपक्वता आई। अक्षर सुन्दर होने से उस समय के यति समु-दाय ने इन्हें जीर्ण आगमों की प्रतिलिपि, करने का कार्य सोंपा। जैसे जैसे ये प्रतिलिपि करते गये वैसे वैसे वे आगमों की अर्थ की गहराईमें उतरने लगे। इस परिशीलन से उन्होंने देखा कि आगम प्रतिपादित साधुओं के आचार तथा वर्तमान यति समाज के आचार में कही समानता नही है। दोनों में धरती-आकाश का अतर है। यह विषमता उन्हे बहुत खटकने लगी। फिर तो वे अपनी बुलद आवाज से शास्त्रोक्त आचार का प्रतिपादन करने लगे। उनके शुद्ध आचारका दर्शन कर धीरे धीरे उनके अनुयायिओं की सख्या भी बढने लगी।

यद्यपि लोंकाशाह सब आश्रमों के साधक गृहस्थ जीवन यापन कर रहे थे। फिर भी वे सपूर्ण रूप से शासन की अभिवृद्धि करने में रत रहते थे। आपने प्रबल वेग से शुद्ध सयम मार्ग का प्रचार किया। उस समय यतियों द्वारा उन्हें पथभ्रष्ट करने के लिये अनेक षड्यन्त्र रचे गये, उन्हें अनेक यातनाएँ पहुंचाई गईं। पर वे अपने मार्ग से किंचि-न्मात्र भी विचलित नही हुए। उन्होंने अपने दृढ संकल्प और अद्भुत आत्मबल से उन

सब संकटो पर विजय प्राप्त की। आपके प्रेरणादायी पवित्र उपदेशसे प्रेरित होकर एक साथ ४५ मुमुक्षु साधकों ने जैन दीक्षा अगीकार करने की भावना व्यक्त की। उस समय आचार विचार में श्री ज्ञानऋषिजी की बहुत ख्याति थी, उनके समीप उन पैंतालीस मुमुक्षु साधकों ने सवत् १५३१ में जैन दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा अगीकार करने के बाद उन महापुरुषो ने अपने उपकारी पुरुष के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिये अपने गच्छ का नाम "लोंकागच्छ" रखा। सवत् १५४१ में धर्मप्राण लोंकाशाह का स्वर्गवास हुवा।

इन ४५ महापुरुषों द्वारा आरब्ध "लोकागच्छ" उत्तरोत्तर प्रगति पथ की ओर प्रयाण करने लगा। इनके शुद्ध आचार और विचार से प्रभावित होकर अनुयायी वर्ग में केवल श्रावक-श्राविकाओं की सख्या ही नही बढ़ी, वरन् साधुओ की सख्या भी उत्तरोत्तर बढने लगी। देखते देखते ७०-७५ वर्ष के अल्प काल में यह सख्या ११०० तक जा पहुंची।

इधर नवदीक्षित साधुओ के शुद्ध आचार से लोकागच्छ की जितने प्रबल वेग से उन्नति हुई, उतने ही वेग से कालांतरमें पुन साधुओं के शिथिल आचार के कारण उस में ऱ्हास के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। सबसे अधिक फूट ने इस ऱ्हास में अपना योगदान दिया।

लोकागच्छ के पट्टधर श्री श्रीभाणजी ऋषिजी म दूसरे श्री रूपऋषिजी म और श्री जीवाजी ऋषिजी महाराज थे। श्रीजीवाजी म के तीन मुख्य शिष्य हुए। १ श्रीकुवरजी ऋषिजी, २ श्रीवृद्धवरसिहजी म और ३ श्री श्रीमल्लजी महाराज। श्री जीवाजीऋषिजी म के स्वर्गवास के पश्चात् गच्छ के तीन विभाग हो गए। १ गुजराती लोकागच्छ, २ नागोरी लोंकागच्छ, और ३ उत्तरार्द्ध लोकागच्छ।

श्री वृद्धवरसिहजी म. के पाट पर श्री लघुवरसिहजी म. और उनके पाट पर अधिष्ठित श्री जसवंतसिहजी महाराज प्रसिद्ध विद्वान् साधु हुए। इनके समय में एक वज्रांगजी मुनिश्री हुए। ये भी शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। सर्वसाधारण पर आपका पर्याप्त प्रभाव था। आद्य क्रियोद्धारक पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज ने इन्हीके सान्निध्य में यतिदीक्षा ग्रहण की थी। इनके समय तक सघ पुन अधोगति को प्राप्त कर चुका था। संयम में शैथिल्य, गच्छभेद, एवं पारस्परिक वैमनस्य के कारण धर्म धर्मरूप में नहीं रह-कर केवल क्रियाकांड रूप बन गया था। देढ सौ वर्ष ही पूर्ण नही होने पाये, इतने अतर में ही वह फिर अपनी पूर्वावस्था प्राप्त कर चुका था।

ऐसी परिस्थिति में एक किसी ऐसे महापुरुषकी आवश्यकता थी, जो अपने शुद्ध आचरण द्वारा इन सब परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर सारे सघमें शुद्धि का प्रचार कर सके। ऐसे ही समय में श्री लवजी ऋषिजी महाराज धार्मिक क्षेत्रमें अवतीर्ण हुए। उन्होने अनेक घोर एव विषम परीषहों तथा विपत्तियों का सामना कर सयम मार्ग और ज्ञान मार्ग का उद्धार किया है।

परम पुरुष आद्य क्रियोद्धारक

पूज्य श्री लवजी ऋषि जी महाराज



श्री लवजी की माता का नाम फूलाबाई था। वह सूरत निवासी श्री वीरजी वोराजी की सुपुत्री थी। लवजी की शैशवावस्थामें ही उनके पिताका देहावसान हो गया। लवजी अत्यत पुण्यशाली थे। पुण्य के प्रभाव से उनका चेहरा वचपन से ही कांतियुक्त था। गौर वर्ण, प्रशस्त ललाट, एव मधुर वाणीद्वारा वे सबके प्रियभाजन थे। इनकी माता भी धर्मपरायणा थी। उनकी धार्मिक वृत्ति का वालक लवजी पर अच्छा सस्कार पडा। क्योंकि माता पिता के अच्छे बुरे जो संस्कार होते है, उन सस्कारों का प्रभाव गर्भावस्था से ही बालक के मानस पर पडने लगता है। और वे ही सस्कार, कालांतर में उसे गति-प्रदान कर अच्छे बुरे मार्ग की ओर ले जाते है। धर्म-परायणा माता की धार्मिक वृत्ति देख कर बालक लवजी भी धार्मिक क्रियाओं में रुचि लेने लगे। माता प्रतिदिन सामायिक प्रतिक्रमण करती थी। सामायिक प्रतिक्रमण के समय माता के द्वारा उच्चरित सामायिक प्रतिक्रमण के पाठ को ग्रहण कर विना सिखाए ही सुनते सुनते सारा प्रतिक्रमण कठस्थ कर लिया।

एक दिन फूलाबाई अपने इस प्रिय पुत्र को ले कर श्री वज्रांगस्वामी के दर्शन करने गई। उन्हें वदन कर फूलाबाई ने अपने शिशु पुत्र को दिखा कर कहा। महाराज! यह मेरा एकाकी पुत्र है, इसकी धार्मिक क्रियाओं में रुचि है। मेरे साथ वह भी, सामायिक के समय वैठता है। कृपा कर इसकी इस धार्मिक वृत्ति को पुष्ट करने के लिए आप इसे सामायिक प्रतिक्रमण आदि जीवनोपयोगी आवश्यक शास्त्र सिखाइये। गुरुदेव से यह निवेदन कर उसने वालक की ओर मुड कर कहा "पुत्र, तू प्रतिदिन महाराज सा के दर्शन करने आया कर। आपके पास कुछ देर रह कर सामायिक प्रतिक्रमण आदि सीखा कर"। यह सुन कर बालक लवजी ने कहा- "माँ! मुझे ये दोनों ही कठस्थ हैं"।

श्री वज्रांगजी स्वामी वालक के शरीर पर के शुभ लक्षणों और चिन्होंको देख कर पहले ही उसकी ओर आकर्षित हो चुके थे। अब उसकी अद्भुत स्मरण शक्ति और प्रतिभा का दर्शन कर के तो वे फूले नही समाये। बालक की ओर अपनी इस प्रमोद वृत्ति तथा उसकी माता के आग्रह से वे उसे जैनागमों का अभ्यास कराने लगे। जिन में कि साधुओं की आचारविनयक क्रियाओं का विशेष रूप से-प्रतिपादन है, ऐसे ही शास्त्रों का पहले वालक को अध्ययन कराया गया। उनमें मुख्य है-दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचाराग आदि।

अहर्निश मनोयोग-पूर्वक शास्त्रीय अभ्यास करने और निर्मल बुद्धि से उनपर चिंतन करने से बालक के मानस पर धीरे धीरे संयम मार्ग की श्रेष्ठता का प्रभाव पड़ने लगा। उन्हें यह समझते देर नही लगी कि शास्त्रों मे भगवान् द्वारा प्रसारित सयम मार्ग (आत्मकल्याण का मार्ग) कितना सरल और सीधा है? धीरे धीरे शास्त्रो का परिशीलन करते २ बालक लवजी की आत्मा वैराग्य रंग में रँग गई। उन्हें सांसारिक पदार्थ अनित्य एवं असार भासित होने लगे अंततः उन्हें इस संसार का वातावरण असह्य प्रतीत होने लगा, वे इसे छोड कर सयम मार्ग की ओर प्रवृत्त होने के लिये लालायित होने लगे। जब उनसे नही रहा गया, तब उन्होंने अपने नानाजी वीरजी वोरा और अपनी माताके सामने दीक्षा विषयक हार्दिक भावना व्यक्त की। बालक की संयम मार्ग की ओर प्रवृत्त होने की उत्कट लालसा देखकर दोनों ने कहा-"यदि वज्रागजी स्वामी के पास दीक्षा लेना अगीकार करते हो तो हम दीक्षा लेने की अनुमति दे सकते है।" यह सुनकर मुमुक्षु लवजी ने सोचा, समय ही ऐसा है, अत एव इस समय इनके पास दीक्षा ग्रहण करने म कोई आपत्ति नहीं। फिर प्रगट रूप से अपनी माता की ओर मुड-कर कहा-"मुझे आपकी बात मंजूर है, मैं शीघ्र ही वज्रांग स्वामी के पास अपने विचार प्रकट कर उसके पास ही दीक्षा अगीकार करूंगा"।

वज्रांगजी स्वामी तो उन्हें बचपन से ही जानते थे। आचाराग आदि शास्त्रों का अभ्यास भी उन्होंने ही कराया था। अतएव उन्हें दीक्षा देने में क्या आपत्ति हो सकती थी? उन्होंने लवजी की प्रार्थना तुरंत स्वीकार कर ली। बादमें स्वामी वज्रागजी से दो वर्ष की लिखित स्वीकृति प्राप्त होने पर संवत् १६९२ में सूरत निवासी श्रीमान् वीरजी वोरा ने बडे समारोह पूर्वक लवजी को दीक्षा दिलाई।

श्री लवजी दो वर्ष तक अपने गुरु के पास रहे, पर इतने अल्प काल में ही तत्कालीन साधु—सस्था में शिथिलाचार देख कर उनका हृदय काप उठा। वे साधु समुदाय में सयम का उत्कृष्ट रूप देखना चाहते थे, पर वह वहा उन्हें नही दिखाई दिया। अंत में उन्होने शिथिलाचार से क्षुब्ध होकर अपने गुरुदेव से निवेदन कर दशवैकालिक सूत्र की लिखित गाथा कही।

दस अट्ठ य ठाणाइ, जाइं बालो वरज्झइ।
तत्थ अन्नयरे ठाणे, निग्गंथत्ताओ भस्सई॥ दस०॥ अ ६ गाथा ७॥

शास्त्रों में तो साधुओं के आचार विचार के विषय में इस प्रकार कहा गया है, पर आज कल उससे बहुत भिन्न प्रतीत होता है, इसका क्या कारण है,? ऐसा सुनकर भी गुरुदेव ने इस ओर कुछ लक्ष्य नहीं दिया। अत में बहुत कुछ कहने पर गुरुदेव वज्रागजी स्वामीने कहा "मैं अब वृद्ध हो चुका हूँ, शरीर शिथिल हो गया है, मेरे द्वारा संयम-मार्गके कष्ट सहन कर इस फैले हुए शिथिलाचार को मिटाना शक्य नहीं"

तब श्री लवजी ने पुन उनसे निवेदन किया "यदि आप अब यह कष्ट नही उठा सकते, तो क्या मैं आपकी अनुमति लेकर इस दिशा में कुछ कार्य कर सकता हूँ ? मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके शुभाशीर्वाद से मैं अपने शुद्ध जीवन, शुद्ध क्रिया और सतत ज्ञान साधना द्वारा अवश्य साधु संस्था को पुन शुद्ध सयम मार्ग की ओर प्रवृत्त कर सकूंगा। इस पर श्री वज्रागजी स्वामी ने उन्हे सहर्ष साधुओं में फैले हुए शिथिलाचार को मिटाने की अनुमति दे दी।

अपने गुरु से अनुमति प्राप्त कर श्री लवजी ऋषिजी महाराज श्री थोभण ऋषिजी म० और श्री भानु ऋषिजी म० ऐसे तीन ठाणे उनसे पृथक् होकर विहार कर दिये। सर्व प्रथम ये ३ ठाणे सूरत से प्रस्थान कर खभात गये। वहा नगर के बाहर उद्यान में ठहर कर अरिहंत सिद्ध भगवान् की साक्षी से पुन आपने पाच महाव्रतो का उच्चारण कर शुद्ध सयम धारण किया और कमर कस कर क्रियोद्धार के लिये तत्पर हो गये। सवत् १६९४ में आपने क्रियोद्धार का कार्य प्रारभ किया।

क्रियोद्धार के विषम कार्य में प्रवृत्त होने पर आपको अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड़ा। पहले पहल खभात के नवाब ने आपकी इस प्रवृत्ति को आपत्तिजनक ठहरा कर नजर कैद किया। वदी बनाने में आप के नानाजी का हाथ था। अहमदाबाद में आपके एक साथी को अपने जीवन से हाथ धोना पडा। अन्तिम अवस्था में आपको जिस मारणान्तिक परीषह का सामना करना पडा, वह अत्यत रोमाचक है। इस बात का हम पहले ही उल्लेख कर चुके है कि पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज ने अपने ज्ञान तथा तपोमय जीवन द्वारा चारों ओर कीर्ति प्राप्त कर ली थी। सर्व साधारण लोग आपके शुद्ध क्रियामय जीवन से आकर्षित थे। त्याग ही आपश्री का जीवन था। और इस देश की जनता त्याग से ही आकर्षित होती है। आपकी इस कीर्ति को उस समय का यति समाज सहन नही कर सका। यति वर्ग आचार में शिथिल तो पहले ही था। साधना द्वारा वह आपका-सा उत्कृष्ट जीवन व्यतीत करने में असमर्थ था।

उस वर्ग ने आपको अनेक कष्ट पहुंचाये, पर जब वह समाज अपने प्रयत्नो में सफल नही हो सका, तब अत में जब आप बरहानपुर के अंतर्गत इदलपुर पधारे, उस समय वहा के यतियों ने विचार किया कि "जबतक श्री लवजी ऋषि बने रहेंगे हमारी किसी प्रकार प्रतिष्ठा नही हो सकती। इसलिये यथा शक्य शीघ्र से शीघ्र इनके प्राणो का अपहरण करनेमें ही हमारा कल्याण है,,। ऐसा निश्चय कर एक यतिने दो विष-मिश्रित लड्डू तैयार किये। मोदक तैयार कर उसने उन्हें एक रगारिनबाई (सौराष्ट्रदेश प्रसिद्ध भावसार जातिकी बाई) को देकर कहा " जब तपस्वी मुनि श्री गोचरी के लिये पधारें, तब उन्हें वहरा देना, मैं स्वय उन्हें वहराने वाला था, पर वे हमारे यहाँ नही आने से तुम्हें दे रहा हूँ।

बेले (दो दिन की तपस्या) के पारणे के निमित्त जब पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज गोचरी के लिये पधारे, तब रास्ते में उस रगारिन बाई का घर मिलने पर उसने महाराजश्री से निवेदन किया। गुरुदेव! मेरा घर भी पवित्र कीजिये। महाराज श्री जब उसके घर पधारे, तब उसने विषमिश्रित लड्डुओं में से एक आपको वहरा दिया। इस विष-मिश्रित मोदक का तत्काल आप पर प्रभाव हुआ। आपने समझ लिया कि अब मेरी जीवन—संध्या निकट है। ऐसा सोचकर तत्काल संथारा (अनशन) ग्रहण कर लिया। और समभावपूर्वक अपना भौतिक देह छोडने के पूर्व अपने शिष्य, श्री सोमजी ऋषिजी महाराज को कहा। यह अत्यत निर्दय प्रदेश है, अत इस प्रदेश में नही विचरते हुए यहां से विहार कर गुजरात की ओर चले जाओ। इस प्रकार वह सब प्राणियों से क्षमा-याचना कर नमोक्कार मत्र का स्मरण करते हुए आपश्री स्वर्ग सिधार गये।

अत में पाप कहांतक छिपा रह सकता है? पता लगानेपर उस विषमिश्रित मोदक को वहराने की घटना प्रकट हो गई। इससे यति-समाज का गर्हित रूप जनता के सामने आ गया। लोग पूज्यश्री के स्वर्गवास से बहुत दु खी थे। इधर इस घटना ने लोगों के सामने धर्मका सच्चा स्वरूप प्रकट कर दिया। अब लोगों के मनमें यति-समाज के प्रति जो थोडी-बहुत श्रद्धा थी, वह भी कम होने लगी, जीवितावस्था में वे अपने संचरणशील भौतिक देह द्वारा उपदेश देकर जिस शुद्ध धर्म—मार्ग की पुन स्थापना करना चाहते थे, उनके त्यागी जीवन द्वारा आपश्री के स्वर्गवास के बाद भी उसी प्रकारसे शुद्धिकरण की वह भावना निरवच्छिन्न रूप से प्रवाहित रही। अपने जीवन के उत्सर्ग द्वारा मुनिवृंद के सामने आपश्री ने वह श्रेष्ठ उदाहरण रखा, जिसका पदानुसरण कर हमारा त्यागी साधुवृंद उसी कार्य में सतत सलग्न रहे और आपके द्वारा शुद्धिकरण की प्रज्वलित की हुई ज्योति को जलाये रखे।



पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी महाराज

पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज की सेवा में अहर्निश साथ रहनेवाले श्री सोमजी ऋषिजी म आपके पट्ट शिष्य थे। उन्होंने भी आपके कार्य में पर्याप्त हाथ बटाया। यही नही पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म के दिवंगत होने के बाद आपने अपने गुरु द्वारा प्रचलित कार्य को सतत रूपसे जारी रखा और अहमदाबाद गुजरात आदि की ओर विहार कर धर्म की प्रभावना की। पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज जिस प्रकार बेले बेले की अखड तपस्या करते थे, उसी प्रकार आपने भी तपश्चर्या को जीवनशुद्धि का मुख्य अग मान कर जीवनपर्यंत तपस्वी जीवन व्यतीत किया। शास्त्रों के

ज्ञाता तो आप थे ही। संयम और तपश्चर्या के साथ आप स्वभावतः अत्यंत सरल थे। अत एव आप के इन उत्कृष्ट गुणों से मुग्ध होकर आपको शिष्यों का भी अच्छा सुयोग प्राप्त हुआ।

उपाध्याय मुनि श्री हस्तिमलजी महाराज द्वारा प्राप्त विस्तृत पट्टावली, लोंकागच्छ पट्टावली, प्रांतीय मंत्री मुनिश्री पन्नालालजी महाराज द्वारा प्राप्त पद्यमय पट्टावली तथा अन्य प्राचीन पट्टावलियों में जिन श्रेष्ठ मुनिवृंद का नाम है, उनमें अधिकतर आपके ही शिष्य एवं आज्ञानुवर्ती थे। पट्टावली से ज्ञात होता है कि आपके इक्कीस शिष्य थे। उत्तरार्द्ध लोंकागच्छ में एक यति श्री हरदासजी थे, वे आपके संयमपूर्ण जीवन से बहुत प्रभावित होकर एक बार अहमदाबाद आकर आपकी सेवा में उपस्थित हुए और साधुजीवन विषयक अनेक प्रकार की चर्चा करने के बाद आपने पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी महाराज के पास पुनः शुद्ध संयम धारण कर शिष्यत्व ग्रहण किया। उनके द्वारा प्रचलित शाखा भी ऋषिसम्प्रदाय की शाखा है जो कि आज कल पंजाब सम्प्रदाय के नामसे प्रख्यात है।

अहमदाबाद में पूज्य श्री धर्मसिंहजी महाराज के साथ आपकी छह कोटि आठ कोटि आदि संबंध में चर्चा हुई। पर पूज्य श्री धर्मसिंहजी महाराज द्वारा अपनी परंपरा नहीं छोडने के कारण आपको इसमें पर्याप्त यश नहीं मिला। फलतः दोनों दिग्गज विद्वान् अपने समय में पृथक् पृथक् सम्प्रदाय के महारथी बने। पूज्यश्री ने अपनी विद्वत्ता, संयम, त्यागपूर्ण जीवन एवं सरलता द्वारा चारों ओर कीर्ति फैलाई थी। गुजरात, काठियावाड, आदि प्रान्तों में सतत विहार कर धर्म का व्यापक प्रसार किया। तेईस वर्ष की अवस्था में आपने दीक्षा ग्रहण की। चौवीस वर्ष तक शुद्ध संयम का पालन किया और चारों ओर धर्म प्रचार के लिए अपने साधु-साध्वियों को भेज कर धर्म की रक्षा की।

पूज्य श्री कहानजी ऋषि जी महाराज

पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी महाराज के सुशिष्य कहानजी ऋषिजी महाराज थे। आपने पू० सोमजी ऋषिजी म० के समीप ही दीक्षा ग्रहण की थी। आप विद्वत्ता में अपने गुरु से भी बढकर थे। उनकी साधारण शक्ति अद्भुत थी। आपको चालीस हजार गाथाएँ कंठस्थ थीं। इतनी गाथाओं का कंठस्थ करना प्रत्येक व्यक्ति द्वारा संभव नहीं। अपने गुरु की तरह पूज्य श्री कहान जी ऋषिजी म० ने भी मालवप्रांत में जैन धर्म का बहुत प्रचार किया। उन्हें हुए इतने वर्ष हो जाने पर भी लोग आज तक आपके नामका स्मरण करते हैं। आपने अनेक भव्य प्राणियों को सत्पथ दिखाकर

कल्याण मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। शास्त्रों में अभिरुचि, संयमपूर्ण उत्कृष्ट जीवन, शान्त स्वभाव, सरल और गभीर प्रकृति होने से आपके सान्निध्य का लाभ उठाने के लिये अनेक मुमुक्षु व्यक्तियों ने आपके पास दीक्षा ग्रहण की; परन्तु उपलब्ध नामों में केवल पाँच का ही उल्लेख है। आपने भी अपने गुरु की तरह तेईस वर्ष की अवस्था में दीक्षा अंगीकार की, आपश्री के मुखारविंद से शास्त्रों के गहन अर्थ को सुनकर पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज को वैराग्य प्राप्त हुआ और उन्होंने संवत् १७१६ में स्वयं दीक्षा ग्रहण की। श्री धर्मदासजी महाराज के संप्रदाय की जो पट्टावली प्रकाशित है। उनमें ऐसा उल्लेख है। आपका स्वर्गवास अपनी प्रचार-भूमि मालव प्रांत में हुआ।



पूज्य श्री रणछोडऋषि जी महाराज

आप पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी म. के समीप दीक्षित हुए। अपने गुरु की तरह आपका भी शास्त्रीय ज्ञान अच्छा था। आचार-विचार के साथ शुद्ध संयम मार्ग की ओर प्रवृत्ति होनेसे पूज्य श्री के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके पाट पर आप ही पूज्य पदवी से अलंकृत कर अधिष्ठित किये गये। आपका शिष्य-परिवार भी पर्याप्त था। लगभग चौदह भव्य मुमुक्षु साधकों ने आपके पास दीक्षा ग्रहण कर अपना आत्म-कल्याण किया।



पूज्य श्री ताराऋषिजी महाराज

आपश्री की दीक्षा पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के समीप हुई। दीक्षा लेने के बाद थोडे समय में ही आप आगमों का गंभीर अध्ययन कर आगमों के ज्ञाता हुए। आप प्रकृति से गंभीर सेवाभावी सरल हृदय एवं अध्ययनपरायण संत थे। पूज्य श्री रणछोड ऋषिजी म. का स्वर्गारोहण होनेपर श्रीसंघने आपश्री के कंधोंपर सारे संघ का भार-डाला, अर्थात् आपको पूज्य पदवी से अलंकृत किया। संवत् १८१० में पचेवर में चार सम्प्रदायों का सम्मेलन हुआ। उनमें प्रथम सम्प्रदायाधीश पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म. के तृतीय पाटपर अधिष्ठित पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज (मालव शाखा) की ओरसे आप ही प्रतिनिधि रूपसे पधारे। उसमें आपका स्थान अग्रगण्य था। साथ में श्री तिलोक ऋषिजी म., श्री मीठाऋषिजी म. और सतियों में सतीशिरोमणि राधाजी म. आदि थे। वहां जाकर आपने महत्त्वपूर्ण भाग लिया। आपके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सम्मेलन में कुछ नियम बनाये गये।

आपश्री के करीब बाईस शिष्य हुए। उनमें से श्री काला ऋषिजी म. ने मालव प्रान्त में विचरण किया। श्री मंगल ऋषिजी म. ने आपश्री के साथ खंभात की ओर

विहार किया और धर्मकी प्रभावना की । मालव प्रान्त में श्री काला ऋषिजी म. ने भी धर्म का बहुत प्रचार किया ।



मालव प्रांतीय पूज्य श्री कालाऋषिजी महाराज

पूज्य श्री तारा ऋषिजी महाराज की शिष्य-परपरा का केवल भिन्न प्रान्तो में विचरण करने से परस्पर भेंट नही होने के कारण दो शाखाओं में विभाजन हुआ। उसमें एक है खभात शाखा और दूसरी मालवप्रांतीय शाखा। मालवप्रातीय शाखा के पूज्य श्री कालाऋषिजी म थे। पूज्य श्री तारा ऋषिजी म. के पाट पर आपश्री को श्रीसघ द्वारा पूज्य पदवी से अलंकृत किया गया। रतलाम, जावरा, मदसौर, शुजालपुर, शाजापुर, आगर, भोपाल, आदि क्षेत्रों में आपने उग्र विहार कर धर्म की बहुत प्रभावना की। आपका स्वभाव अत्यत शीतल था। आपने अपने गुरु पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी म के शुभ नाम को अपने उज्वल एवं उच्च चरित्र तथा विशुद्ध ज्ञान से बहुत प्रकाशित किया। आपके पास भी अनेक मुमुक्षु प्राणियों ने दीक्षा ग्रहण की। परन्तु उपलब्ध नाम केवल चार ही है। १ बडेलालजी ऋषिजी म २ श्री बच्छुऋषिजी म., ३ श्री दौलत ऋषिजी म. और ४ श्री छोटे लालजी ऋषिजी म.। प. मुनि श्रीबच्छु ऋषिजी म उच्चकोटि के विद्वान् एवं शास्त्रज्ञ थे। और बडे लालजी ऋषिजी महाराज तपस्वी थे।



पूज्य श्री बच्छुऋषिजी महाराज

पूज्य श्री कालाऋषिजी महाराज के सदुपदेश से आपको वैराग्य प्राप्त हुआ। आपका गार्हस्थ्य जीवन वैभव पूर्ण था। फिर भी उत्कट वैराग्य भाव से ससार के समस्त विलासी पदार्थों का त्याग कर आपने भागवती दीक्षा ग्रहण की। तदनंतर पूज्य श्री के समीप रहकर शास्त्रों का तलस्पर्शी अध्ययन आपने किया और अपने गुरुकी साधनाभूमि मालव प्रांतमें विचरण कर जिनशाशन को बहुत गौरवान्वित किया। आपके सद्गुणों से अत्यंत प्रभावित होकर चतुर्विध श्रीसघने पूज्य श्री कालाऋषि जी महाराज के पश्चात् आप श्री को आचार्य-पद प्रदान किया। आपने पूर्वपरंपरागत आचार्य पदको अत्यत दक्षता के साथ सभाला। आपश्री के भी अनेक शिष्य हुए उनमें दो की अत्यंत प्रसिद्धि हुई। जिनके नाम है (१) श्री पृथ्वीऋषिजी महाराज और (२) पूज्य श्री धनजीऋषिजी महाराज। आपके समय में मालवप्रातके संत-सतियों की विशेष प्रतिष्ठा तथा ख्याति थी। आप केवल शास्त्रज्ञ पंडित ही नही थे। शास्त्रीय ज्ञान के साथ तपस्वी तथा शुद्धक्रियारत थे। आपके इन अलौकिक गुणों के कारण जनसाधारण पर आपका पर्याप्त प्रभाव था।

पूज्य श्री धनजी ऋषिजी महाराज

आपश्री की दीक्षा मालवप्रान्त में पूज्य श्री वज्रऋषिजी महाराज के समीप हुई। दीक्षा के पहले वचपन से ही आपका जीवन-वैराग्य भावना से परिपूर्ण था। आपने भी अपने अन्य पूर्व गुरुजनो की तरह गुरुचरण कमलो में रहकर विनम्र भावसे आगमो का गभीर अभ्यास किया। आपके गुरुवंधु पडितमुनि श्री पृथ्वीऋषिजी म० भी आगमो के प्रकाड विद्वान थे। आपकी शात एव सौम्य प्रकृति से सर्व साधारण आप से वहुत प्रभावित थे। उन्ही गुणो-से मुग्ध होकर आपश्री को चतुर्विध श्री संघ ने ऋषिसम्प्रदाय में (मालव प्रांतीय शाखा) आचार्य पद पर अधिष्ठित किया। ऐसा प्रवाद है कि आप की आचार्य-पदवी मालवप्रांतांतर्गत शुजालपुर क्षेत्र में हुई। उस समय प० रत्न मुनि श्री पृथ्वीऋषिजी म० अपने शिष्य-परिवारसहित शाजापुर में विराजमान थे। मुनि-वृन्द तथा श्रावको द्वारा सुना गया है कि आपश्री के समय में संतो की संख्या १२५ और सतियो की संख्या लगभग १५० थी।

ऋषिसम्प्रदाय के साधु-साध्वियो ने अनेक कष्ट तथा परीषह सहन कर वहुत से क्षेत्रो में धर्म का प्रकाश फैलाया है। प्रतापगढ, मंदसौर, रतलाम, जावरा, भोपाल, शुजालपुर, सिहोर, शाजापुर, सारगपुर, आष्टा, मगरदा, उज्जैन, इदौर, आदि क्षेत्रों में उन्हो ने अपने प्रचार द्वारा धर्मका वीज वोया। वे सदैव अपने उद्देश धर्म प्रचार को सफल करने के लिये प्रयत्नशील रहे। इन सव मुनियो और साध्वियो के अथक परिश्रम से ऋषिसप्रदाय उन्नति के शिखर तक पहुँच गया।

कालका स्वभाव परिवर्तनशील है। अव उन्नति के चक्र ने विपरीत दिशा में चक्कर लगाना प्रारंभ किया। पूज्य श्री धनजीऋषिजी महाराज के समय में परिस्थिति वदलने लगी। उन्नति के वाद अवनति होना यह सांसारिक नियम है। उत्थान के वाद पतन होता है। कलिकाल के प्रभाव से कुछ मतभेद के कारण संप्रदाय में दो विभाग हुए। एक पक्ष पं रत्न श्री पृथ्वीऋषिजी महाराज का और दूसरा पक्ष पूज्य श्री धनजीऋषिजी महाराज का था। इन दोनो प्रभावशाली दिग्गज विद्वानो के अद्‌भुत प्रभाव के कारण साधु-साध्वियॉ भी दो पक्षो में विभाजित हो गई। यह पक्ष-भेद ही कलह का कारण हुआ। कलह चाहे जितना सूक्ष्म हो, फिर वह समाज, प्रात, देश तथा राष्ट्र. कही पर क्यों न हो, सवका नाश कर डालता है। इतिहास इसका साक्षी है।

यद्यपि पक्षभेद के कारण ऋषि सप्रदाय के सघ में मतभेद हुआ, तथापि ये दोनो महापुरुष इतने अधिक विवेकसपन्न, वुद्धिमान् एवं समय-सूचक थे, कि इनके इन गुणों से सघ में संघर्ष नही हुआ। आपस में मतभेद होने के कारण ये दोनों पृथक्

पृथक् विचरे, पर इस बात का पूर्ण ध्यान रखा कि यह मतभेद कही पृथक्ता की दीवाल नही बन जाय, जिस से कालांतर में पुन. एक होना सर्वथा अशक्य हो जाय। दोनो महापुरुषों ने अत्यंत योग्य तथा समर्थ होने पर भी अपने अलग अलग पूज्य स्थापित नही किये। यही इन दोनों की दीर्घदर्शिता थी। आपश्री के पाँच शिष्य हुए। उनमें प्रभावशाली और शास्त्रज्ञ श्रीअयवंता ऋषिजी महाराज थे।

पूज्यपाद श्री अयवंता ऋषिजी महाराज

आपकी दीक्षा भी बाल्यावस्था में पूज्य श्री धनजी ऋषिजी म०के समीप हुई। बचपन से ही आपकी स्वाध्याय की ओर रुचि थी। अतएव दीक्षा अगीकार करते ही आप दत्तचित्त होकर शास्त्रों के अध्ययन में लग गये। फलत.आप शास्त्रों के भी अच्छे ज्ञाता हुए। आप का प्रवचन रोचक, मधुर और प्रभावशाली होता था। आप में एक खास विशेषता यह थी कि आपकी दृष्टि वडे बडे शहरों की ओर नही रहकर छोटे छोटे ग्रामों की ओर रहती थी। अतएव आपने शहरों की ओर विहार नही कर अधिकतर ग्रामों की ओर ही विहार किया। एक बार आप विहार करते हुए संवत् १६१४ में रतलाम पधारे। वहां आपके प्रभावशाली व्याख्यान का स्थायी प्रभाव पड़ा। अध्यात्म-मार्ग पर इतना अच्छा प्रकाश डाला कि उससे प्रभावित होकर एक साथ एक ही दिन चार मुमुक्षु साधकों ने आपके पास रतलाम में ही भागवती दीक्षा ग्रहण की। उनके नाम क्रमश. ये है। —१ उग्रतपस्वी श्रीकुवर ऋषिजी महाराज, २ श्री तिलोक ऋषिजी म०, ३ श्री नानूबाई और ४ श्री हीराबाई। इन दोनो भाइयोंने क्रमश तपश्चर्या और ज्ञान योग की साधना कर अपना जीवन सार्थक तथा सफल बनाया है।

संवत् १६१४ के बाद जहां कही चातुर्मास हुए, वे सब ऋषि सम्प्रदाय के इतिहास में व्योरे वार प्रकाशित है। अत में आपश्री मालवप्रांत में सिहोर, शुजालपुर आदि क्षेत्रों को स्पर्शकर भेंसरोज-नामक गाम में पधारे। यहॉ अपनी शारीरिक स्थिति का विचार कर आपने अनशन व्रत अगीकार कर लिया और अंतिम समय में सलेखना कर के सवत् १६२२ आषाढ शुक्ल नवमी के रोज समभावपूर्वक अपना यह पाचभौतिक देह छोडकर स्वर्ग सिधारे। आपके कुल सात शिष्य हुए। उनमें प्रभावशाली दो थे। (१) श्रीलालऋषिजी महाराज और (२) कविकुलभूषण पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज।

पूज्यपाद कविवर श्री १००८ श्री तिलोकऋषिजी महाराज

का

जीवन वृत्त

जन्मभूमि तथा पूर्वचरित

मध्यप्रदेश (मालवा) प्राचीन काल से बहुत प्रसिद्ध है। विक्रमादित्य, भोज जैसे प्रसिद्ध सम्राट् मालव प्रात में ही हुए। कविकुल गुरु कालिदास तथा माघ जैसे श्रेष्ठ कवियो ने इसी भूमि को अलकृत किया। इसी इतिहास प्रसिद्ध प्रात में बहुत प्राचीन काल से रतलाम (रत्नपुरी) नामक नगर स्थित है। वहा ओसवाल जाति के सुराणा कुल मे उत्पन्न ऐश्वर्य सपन्न एव प्रतिष्ठित श्री दुलीचदजी नामक सेठ रहते थे। बचपन से ही सन्तो के सहवास में रहने के कारण आपकी अपने धर्म की ओर विशेष रुचि थी। लक्ष्मीदेवी की भी आप पर कृपा थी। इहलौकिक सुख सुविधा तथा भोगोपभोग का पूर्ण साधन होने पर भी आप उससे "पद्मपत्रमिवाम्भसा" पानी में अलिप्त रहने वाले कमलपत्र की तरह निर्लिप्त रहते थे। किसी ने यथार्थ कहा है—

वसन् विषयमध्येऽपि, न वसत्येव बुद्धिमान् ।
संवसत्येव दुर्बुद्धि–रसत्सु विषयेष्वपि ॥ १ ॥

बुद्धिमान् व्यक्ति सासारिक विषय वासना के मध्य रहकर भी उससे उदासीन रहते है, पर दुर्बुद्धि लोग अनित्य विषयो में कुछ भी सासारिक सुखोपभोगो का साधन नही होने पर भी सदैव उनमें लीन रहते है। असत् विषयो मे भी वास्तविक विषय रस का आस्वादन करते है।

सेठजी को बाह्य दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता था कि इनकी व्यापारादि बाह्य–प्रवृत्तियाँ इतनी अधिक तथा इतने विपुल परिमाण मे फैली हुई है। इससे इनका अधिकतर समय इन सब की व्यवस्था में ही व्यतीत होता होगा, पर वस्तुत उनके निकट रहने पर उनके मानस तथा दिनचर्या का सही सही पता चलता था। वे अपना विशेष समय सत मुनियो के सहवास मे व्यतीत करते थे। सत समागम के कारण शास्त्रो का श्रवण मनन तो अनायास ही चलता रहता था। निरंतर सत्संगति तथा सच्छास्त्रो के श्रवण मे अपना अधिकतर समय व्यतीत करने से आपकी वृत्ति बाह्य ओर से हटकर धर्म की ओर हो गई थी। धर्म के लिए वे अपना तन-मन और धन न्योछावर करने के लिए सदैव कटिबद्ध रहते थे।

सेठ दुलीचंदजी की धर्मपत्नी का नाम नानूबाई था। वह भी अपने पति के अनुरूप धर्म परायणा थी। पवित्र आचार–विचार तथा पातिव्रत्य धर्म की वह मंगल मूर्ति थी। दोनो समय सदैव सामायिक–पतिक्रमणादि आवश्यक कर्तव्य करती थी। सत्पात्रो को दान देना, तथा सत्कार्यो की ओर प्रवृत्ति ये उसके जीवन के विशेष अंग थे। उनका जीवन केवल एकागी नही था। धार्मिक ज्ञान तथा चारित्र के विकास मे यह जितनी ऊँची उठी थी, उतनी ही सासारिक व्यवहार को निबाहने मे रुचि लेती थी। यहाँ तक कि वह अनेक बार अपने पति की सासारिक कठिन समस्याओ को अपनी राय देकर सुलझा देती थी। इस प्रकार अपने पति के अतर्मुख और बाह्य जीवन के साथ पूर्ण रूप से एकाकार होकर नानूबाई ने अर्द्धांगिनी शब्द को सार्थक किया था।

इस प्रकार सासारिक और पारमार्थिक जीवन व्यतीत करते हुए सेठ दुलीचंदजी के चार संततियाँ हुई। उनमे प्रथम धनराजजी, दूसरे कुवरमलजी और तीसरी हीराबाई नामक सुपुत्री थी। चतुर्थ सतति थी हमारे चरित्र नायक श्री तिलोकऋषिजी महाराज। आपका जन्म सवत् १९०४ चैत्र कृष्ण तृतीया बुधवार को हुआ। जन्म के समय आपका शरीर सस्थान शास्त्रो मे वर्णित श्रेष्ट पुरुषो के समान था। आकृति भव्य थी, प्रशस्त ललाट और जनाह्लादकारी आकर्षक सुवर्ण वर्ण था। शिशु स्वभावत सबके प्रिय होते है, पर आपकी यह भव्याकृति बरबस सबको अपनी ओर आकर्षित करती थी। माता ने अपने पुत्र के रूप–गुण के अनुसार उसका यथार्थ नाम तिलोकचंद रखा। जो तीनो लोक मे चंद्रमा के समान शीतल प्रकाश करने वाला हो। श्री तिलोकचद के जन्म ग्रहण करने के चार माह पहले ही उनके पिता का देहावसान हो गया। इसलिए आप सदैव पितृ–सुख से वंचित रहे।

पिता के अभाव मे बालक तिलोकचंद के सवर्द्धन का भार उसकी धर्म परायणा माता पर पड़ा। माता की वृत्ति पहले ही अंतर्मुख थी। अपने पति के वियोग के बाद तो वह और भी उत्कट रूप से धर्ममय जीवन व्यतीत करने लगी। शैशवावस्था से ही बालक तिलोक पर माता के ये धार्मिक संस्कार पडे। फलत छोटी अवस्था मे ही व्यावहारिक लिपी ज्ञान के साथ आपने बहुत कुछ धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर ली। अपनी माता की भावना के अनुरूप बचपन से ही आपकी साधु संत तथा महासतियो के प्रति अप्रतिम सद्भावना थी। आपका अधिकतर समय उन्ही के सान्निध्य मे व्यतीत होता था।

वैराग्य - प्राप्ति

वालक तिलोक अपनी धर्म-परायणा एवं मुमुक्षु माता के पास इस प्रकार स्पृहणीय जीवन व्यतीत कर रहे थे। दोनो प्रकार की शिक्षा प्राप्त करते करते आप नौ वर्ष के हो चुके थे। उसी समय आपके जीवन को दूसरी दिशा की ओर मोडनेवाली एक घटना हुई। विक्रम संवत् १९१४ के साल में श्रीमज्जैनाचार्य क्रियोद्धारक परमपूज्य श्री १००८ श्री लवजीऋषिजी महाराज के तृतीय पाट पर विराजित, गच्छाधिपति श्री श्री १००८ श्री कहानजीऋषिजी महाराज की संप्रदाय के वालब्रह्मचारी पडित प्रवर श्री अयवंताऋषिजी म० अपने शिष्य-परिवार-सहित रतलाम नगरी मे पधारे।

वे जन—मानस अच्छी तरह जानते थे। छोटे से लगाकर वडे तक सव उनके व्याख्यान को रुचिपूर्वक सुनते थे। उनके व्याख्यान से किसी को भी अरुचि नही होती थी। रतलाम में भी उनके व्यख्यान मे जैन-अजैन सव एकत्रित होते थे। रतलामनिवासिनी गंगास्वरूपा माता नानुवाई तो कोई व्याख्यान नही छोडती थी। उनके साथ उनके छोटे वच्चे भी आते थे। महाराजश्री के व्याख्यान मे यह विशेषता थी कि एक वडा व्यक्ति उनके व्याख्यान को जितनी अच्छी तरह समझ सकता था, उतनी ही सरलता से वालक भी उनके व्याख्यान में रस लेता था।

कुछ दिन के वाद एक रोज महाराजश्री का व्याख्यान "न वैराग्यात्परो वधुर्न ससारात् परो रिपु" वैराग्य से वढकर अपना कोई वधु नही और सासारिक विपयो से वढ़कर अपना कोई शत्रु नही, इस विपय पर हुआ। उस रोज आपने उस विपय पर इतना अच्छा प्रकाश डाला कि सारी परिपद् वैराग्य रग में रंग गई। लोग अपना स्वत्व भूलकर आत्म-विभोर हो उठे। किसी को अपना कुछ ध्यान न रहा। व्याख्यान क्या था? स्वयं मुनि श्री का वैराग्यमय जीवन ही वाणी का रूप धारण कर सामने आया था। उनका जीवन वोल रहा था। हृदय को हिलानेवाले उनके इस अमृतमय पवित्र व्याख्यान को सुनकर सवसे अधिक सच्चरित्रा, पतिवियोगिनी, पुत्रवत्सला, माता नानूवाई प्रभावित हुई। वह वही अपनी सुध-वुध भूलकर वैराग्य के प्रवाह में वह गई। उसे अपना, अपनी पुत्री तथा छोटे वच्चोका कुछ भी ध्यान न रहा और वहाँ पर ही पितृविहीन अपनी चारो सततियो को भाग्य के भरोसे छोड़कर दीक्षा ग्रहण करने का अपना दृढ निश्चय प्रकट किया। शास्त्रो में दीक्षाविपयक एक वर्णन है। वह निम्न प्रकार है।—

"तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता तं, जहा–उवायपव्वज्जा, अक्खाय पव्वज्जा, संगार पव्वज्जा" स्थानांग सूत्र तृतीय ठाणा,।

इन तीन प्रकारकी प्रव्रज्याओ मे जो द्वितीय प्रकार कहा है, उसके अनुसार ही नानूबाई की प्रव्रज्या की ओर प्रवृत्ति हुई, अर्थात् पूज्यपाद श्री अयवंता-ऋषि जी महाराज का वैराग्य से परिपूर्ण व्याख्यान सुनकर उन्हे सद्बोध प्राप्त हुआ। तदनतर नानूबाई ने भी अपने कुटुबीजनो के हृदय को हिलाने वाली उसी वैराग्य-परिपूर्ण वाणी-द्वारा आकर्षित कर अपनी दीक्षा लेने की भावना प्रदर्शित की।

नानूबाई के साथ उनकी पुत्री हीराबाई भी सतत साथ रहती थी। अपनी माताकी यह दशा देखकर कुमारी हीराबाई के मन पर भी वैराग्य का रग चढा। अवस्था भी उसकी बहुत छोटी थी। तव तक उसका सम्बन्ध (सगाई) अबावाले श्री लछमनदासजी नवयुवक के साथ हो चुका था। लछमनदासजी स्वयं संपन्नकुलोत्पन्न सुशील किशोर थे,। कुमारी हीराबाई अभी तक सासारिक व्यवहार को कुछ भी नही जानती थी। लोगो ने बालिका को दीक्षामार्ग की कठिनाइयाँ बताकर अनेक सासारिक प्रलोभन बताये। अनेक प्रकार की आकर्षक वस्तुएँ तथा वस्त्राभूषण देकर ससार मे रहने के लिये ललचाया, पर इन सबका उस बालिका पर कुछ भी प्रभाव नही पडा। वह अपनी माताकी अनुगामिनी बनी रही। विनश्वर सासारिक भोगोपभोगो का आस्वादन किये विना ही अर्थात् कुमारी अवस्था में ही उसने सच्चा वैराग्य धारण कर लिया। लोग उसे अपने निर्णय से विचलित करते करते थक गये, पर वह अपने ध्येय से तिलमात्र भी विचलित नही हुई।

उस समय बालक तिलोकचद्र की अवस्था केवल नौ वर्ष आठमास की थी। ये सपन्न कुल में पैदा होने से इनकी सगाई बचपन में ही सैलानानिवासिनी श्रीमती चुन्नीबाई की सुपुत्री गुलाबकुँवर के साथ हो चुकी थी। उपदेश सुनने के बाद अपनी माता तथा अग्रजा भगिनी के वैराग्य से परिपूर्ण जीवन को देखकर आपकी मोह निद्रा भी एकदम भग हो गई। हृदय मे अलौकिक प्रकाश हुआ। सच्चे ज्ञान से इस शिशु का भव्य ललाट और अधिक चमकने लगा। अल्पावस्था में ही उन्हे संसारकी अनित्यता का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगा, क्यो कि जिस कन्या के साथ आपका वाग्दान सस्कार हुआ था, वह अल्प काल मे ही–शैशवावस्था में ही काल–कवलित हो गई। इस छोटी-सी घटना का शिशु-मानस पर बहुत प्रभाव पडा। उसने सोचा, यदि सासारिक सुख का योग होता, तो मेरी वाग्दत्ता विवाह के पूर्व ही इस संसार को छोडकर क्यो चली जाती? कही मेरी भी अल्पायु न हो, अत एव अब ससार में रहकर उस विवाह तथा व्यापारादि के प्रपच में ग्रस्त होना बेकार है।

शिशु-मानस के इन विचारो से बुद्धिमान् सोच सकते है कि भविष्य मे अभ्युदय करनेवाले महान् आत्माओ के अध्यवसाय भी उच्च कोटि के और प्रशस्त होते है । इस शिशु के अध्यवसाय भी अनित्य सुख छोडकर शाश्वत सुख प्राप्ति की ओर दौडे और अपनी माता तथा अग्रजा भगिनी के पहले ही वे संयम ग्रहण करने के लिये उत्सुक हो उठे। सयम की ओर आपकी ऐसी उत्कट प्रवृत्ति देख आपके मध्यम भ्राता श्री कुँवरमलजी भी आपके साथ साथ सयम अगीकार करने के लिये कटिवद्ध हो गये।

अपने पूर्वसंचित शुभ कर्मों के कारण आपश्री में जन्मजात वैराग्य भावना थी। वाल्मीकि रामायण में राम-वनवास के समय श्री वसिष्ठ ऋषिने इसी-प्रकार के भाव व्यक्त किये है।

वे महा बुद्धिमान् महात्मागण धन्यवादार्ह है, जिनके निर्मल अंतःकरण मे कारण के विना ही वैराग्य उत्पन्न होता है। बालक तिलोकचद्र पर भी यही नियम लागू हुआ। उनके जीवन में हजारो वर्ष पहले वाल्मीकि द्वारा कथित यह सत्य घटित हुआ। अनेक जन्मो के किये हुये पुण्यो के सस्कारो का उदय हुआ। चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से चारित्र ग्रहण करने का समय उदय में आया। पूरे दस वर्ष होने के पहले ही तलवार की धार पर चलने के समान कठिन संयममार्ग को स्वय की अत प्रेरणा से धारण करने के लिये तैयार हो गये। इसके लिए किसी को विशेष उद्बोध करने की आवश्यकता नही हुई। क्योंकि वे पूर्व काल के पूर्ण सयम को धारण करनेवाले महायोगी और वडे भारी साधक थे।

आपको इस वैराग्यपद से आपकी माता श्री नानूबाई कुछ विचलित कर सकती थी। सब से छोटे पुत्र होने से माँ की ममता भी इन्ही पर अधिक थी। शिशु भी माँ के वात्सल्य के सामने सब कुछ छोडने को तत्पर हो जाता है। पर माँ के पास अब अपने पुत्र को समझाकर पुनः ससार में बने रहने देने का अवसर नही रहा। माँ ने पुत्र के पहले ही वैराग्य धारण कर लिया था। वह स्वयं दीक्षा लेने के लिए उतावल कर रही थी। जिस पथ की ओर स्वय वह प्रयाण कर रही थी, उस पथ से अपने पुत्र को कैसे विमुख कर सकती थी? उसका तो एक मात्र यही कर्तव्य था कि वह इन सब से तटस्थ रहती। उसने भी अपने वैराग्यमय जीवन के अनुकूल तटस्थता का मार्ग अगीकार किया।

दीक्षा महोत्सव काल

एक ही कुल मे माता, पुत्री तथा दो पुत्रो की दीक्षा लेने के समाचार से सारे रतलाम शहर में सन-सनी फैल गई। जिस किसी ने सुना उसका हृदय

भक्ति के आवेग से उनकी ओर आकर्षित होने लगा। पहले सबने इन्हे मनाने का बहुत प्रयत्न किया, परंतु इनके वैराग्य रंग के सामने सबको झुकना पड़ा। अंत मे दीक्षा-काल नियत हुआ। पंडितवर्य १००८ श्री अयवताऋषिजी म० श्री खूबाऋषिजी म०, श्री विजयऋषिजी म० और श्री चुन्नीलालजी महाराज आदि ठाणे ४ वहा पर ही विराजमान थे। इनके अतिरिक्त ऋषिसंप्रदायी सती शिरोमणि श्री दयाजी, श्री सरदाराजी म० आदि ठाणे विराजमान थी। इस समाचार से आस-पास के और भी अनेक सत-सतियो का शुभागमन हुआ। धीरे-धीरे दीक्षा-काल भी समीप आ पहुँचा, जिसकी कि कुछ समय मे प्रखर प्रतीक्षा की जा रही थी, उस वीर संवत् २३८८ विक्रम सवत् १९१४ माघ कृष्ण प्रतिपद् गुरुवार का शुभ दिन उदय हुआ। उस दिन रतलाम शहर में दूर-दूर के प्रदेशों से अनेक सार्धमिक वधु इस अपूर्व अवसर को देखने के लिए एकत्रित हुए। रतलाम चतुर्विध सघ के समक्ष बडे समारोह के साथ दीक्षा—महोत्सव का यह पवित्र आयोजन सपन्न हुआ। दीक्षा के समय रतलाम मे जो सघ एकत्रित हुआ वह दर्शनीय था। वृद्धोके मुंह से सुना जाता है कि ऐसा सघ पहले कभी यहाँ एकत्रित नही हुआ था।

श्री कुवरमलजी तथा श्री तिलोकचदजी विद्वच्छिरोमणि प० मुनि श्री १००८ श्री अयवंताऋषिजी महाराज के शिष्य हुये और नानूबाई तथा हीराबाई सती-शिरोमणि श्री दयाजी सरदाराजी महाराजश्री की शिष्याएँ हुई। इस प्रकार एक ही नगर मे एक ही दिन एक ही घर की चार महान् आत्माओ ने दीक्षा ली। अब केवल श्री घनराजजी अकेले बचे रहे और वे ही अपने पैतृक संपत्ति के अधिकारी हुए।

श्री कुंवरऋषिजी म० और श्री तिलोकऋषिजी म० इन दोनो भाइयो की अपनी अलग-अलग विशेषता थी। श्री तिलोकऋषिजी महाराज ज्ञान मार्ग के पथिक थे, तो श्री कुंवरजी महाराज तपोमार्ग के। दोनो एक दूसरे के पूरक थे। दीक्षा लेने के बाद श्री कुंवरऋषिजी म ने कुछ समय पश्चात् ही तपश्चर्या करना शुरु कर दिया। फिर तो धीरे-धीरे वे इस मार्ग मे इतने अधिक बढे कि आजीवन एकातर उपवास करते रहे। तेले, पचोले, अठाई और मासखमण तो उन्होने कितने ही किये है। उनकी गिनती नही। शरीर पर उनकी बिलकुल ममता नही थी। सदैव अतर की ओर ध्यान रहता था। साधु अवस्था मे, शरीर को ढकने के लिये आवश्यक वस्त्रो का व्यवहार भी बहुत कम करते थे। केवल एक चोलपट्टा एवं एक चादर से अपना निर्वाह कर लेते थे। पाठक समझ सकते है, अति तपश्चर्या के कारण वे अत्यत कृशकाय हो गये थे। शरीर की पसलियाँ दिखाई

देती थी। विशेष शीत के दिनो में भी केवल एक चादर से उस कडी ठंड का मुकावला करना कितना कठिन काम है ? पर वे अंदर और वाहर से पूर्ण रूप से निष्परिग्रही रहकर निरतर अपना विकास करते रहे।

उन्ही तपस्वी मुनि की उत्कट तपश्चर्या और पवित्र आचरण से प्रभावित होकर भोपाल मे अनेक मदिरमार्गी साधुमार्गी हुये। तपश्चर्या के साथ उनकी वाणी में अद्भुत शक्ति थी। जो कोई इनके संपर्क में आता, वह लोहचुवक की तरह इनकी ओर आकर्षित हो जाता था। आपके सदुपदेशो की चर्चा सुनकर शास्त्रोद्धारक पडितवर्य पूज्य श्री अमोलकऋषिजी म के ससार पक्ष के पिता श्री केवलचंदजी आपके व्याख्यान में श्रीमान् फूलचंदजी घाडीवाल के साथ आये थे। उस समय व्याख्यान में निम्नलिखित गाथा पर विवेचन चल रहा था। —

एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं।
अहिंसा समयं चेव, एयावतं वियाणिया ॥१॥

मुनि श्री के मुखारविंद से इस गाथा का व्यापक और विशद अर्थ सुनकर आपश्री के हृदय पर गहरा प्रभाव पडा। ज्ञान प्राप्त करने का एक मात्र सार अहिंसा है। अहिंसा का पालन करने से अपने आप सव गुणो की प्राप्ति हो जाती है। परतु ससार में रहते हुए अहिंसा का पालन करना सर्वथा अशक्य है। सासारिक अवस्था मे छोटे-वडे ऐसे अनेक कार्य स्वयमेव हो जाते है, जिनमे हिंसा अनिवार्य होती है। इसलिये पूर्ण अहिंसा का पालन करना हो तो इस असार ससार को छोडकर अनगार व्रत धारण कर निराकुल भाव से अहिंसा का पालन करना चाहिये। ऐसी अवस्था में ही प्राणी तीन करण तीन योग से अहिंसा का पालन कर सकता है। यह श्री वीतराग प्रभु की देशना है। भगवान् की यह वाणी सुनने का वार वार सुअवसर प्राप्त नही हो सकता। अनेक जन्मो की तपश्चर्या के वाद हमें यह मानव जीवन प्राप्त हुआ है। उस पर भी अहिंसा का पालन करने के लिये सर्वथा उपादेय जैन श्रावक के कुल में जन्म लिया है। आप समय समय पर भगवान् के द्वारा प्ररूपित सूत्र और सूक्तियाँ सुनते रहते है। ऐसा अमृतोपम उपदेश सुनने का अवसर भाग्यशाली व्यक्तियो को ही मिलता है। इसलिये आप सवको क्षण मात्र का प्रमाद किये विना अपने जीवन को शुद्ध वनाने के लिये अहिंसा धर्म का पालन करने में लग जाना चाहिये। भगवान् ने तो समय मात्र का भी प्रमाद न करने की चेतावनी दी है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र के दसवे अध्ययन की प्रत्येक गाथा के अन्त में यह वाक्य आता है कि "समयं गोयम ! मा पमायए"

इस व्याख्यान का आप पर अद्भुत प्रभाव पडा। बैठे बैठे ही मन अनगार व्रत की ओर दौडने लगा। इस साधु-जीवन को अगीकार करने की इतनी बलवती इच्छा हुई कि किसी को कुछ कहे विना, किसीकी आज्ञा लिये विना, स्वयं प्रेरणा से साधुका वेष धारण कर आप स्थानक मे आकर बैठ गये। पर उस समय तक आपकी सयम की काललब्धि परिपूर्ण नही हुई थी। अभी तक आप उस अवस्था तक नही पहुँचे थे कि उस चर्या में अत तक टिके रहते। जब आपके घरवालो को इस बात का पता चला तो वे एकदम दौडे दौडे आपके पास चले आये और विविध प्रकार के प्रलोभन देकर समझाने लगे। भावुक हृदय होने से आप उन लोगो की वातो में आकर पुनः अपने घर चले आये। आपका विवाह हुआ। श्री अमोलकचदजी और अमीचंदजी नामक आपके दो पुत्र हुए। कुछ समय बाद आपकी पत्नी का देहात हो गया और दूसरी सगाई भी हो गई। आप होशगाबाद से मारवाडकी तरफ जा रहे थे कि बीच मे रतलाम उतर गये। वहाँ पूज्य श्री उदयसागरजी म० विराजमान थे। पूज्यश्रीजी से प्रतिबोध पाकर आपने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत अगीकार कर लिया। विवाह के लिये जा रहे थे, मगर ब्रह्मचर्य व्रत लेकर वापिस लौट गये। इस प्रकार आपका कुछ काल ससार में व्यतीत हुआ। इसके बाद पुन एक बार ऐसा समय आया कि आपकी पूर्व की वह भावना सफलीभूत हुई। कुछ समय बाद ऋषि-सम्प्रदाय के शास्त्रज्ञ पडित श्री पूनमऋषि जी महाराज ठाणा २ से भोपाल पधारे। आप उस दिन भी सदैव की तरह प्रवचन सुनने गये। व्याख्यान में राजा दशार्णभद्र के जीवन पर विवेचन चल रहा था। मुनि श्री के वैराग्यमय उपदेश से आपका दबा हुआ वैराग्य दूने वेग से उद्भूत हुआ। दीक्षा लेने के लिये अभीतक बीच मे जो व्यवधान थे, सब दूर हो गये। आत्मबल ने मोह पर विजय प्राप्त की और संवत् १९४३ में चैत्र शुक्ल पचमी के दिन श्री पूनमऋषिजी महाराज के मुखारविन्द से दीक्षा ग्रहण की, शुजालपुर मे विराजित स्थविर मुनि श्री खूबाऋषिजी म० के नेश्राय मे शिष्य हुये। आप भी उग्र तपस्वी थें। दीक्षा अगीकार के बाद आपका शुभ नाम श्री केवलऋषिजी म० रखा गया।

दीक्षा अंगीकार करने के समय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० की अवस्था केवल नौ वर्ष दस माह की थी। अभी वे पूरे दस वर्ष के ही नही हुए थे। दूध के दात गिरने के बाद नये दात आये थे। इसे शैशवावस्था ही कहा जाता है। किशोरावस्था तक को प्राप्त नही किया था। फिर भी सब कुछ छोड़कर उत्कट भाव से सयम धर्म को अगीकार करने के पीछे इनके पूर्व जीवन के पुण्य ही प्रेरक बल थे। इस उपदेशप्रद घटना से पाठक स्वयं समझ सकते है, कि

मानव का क्या कर्तव्य है ? उसके जीवन का क्या उद्देश्य है ? मनुष्य योनि मे जन्म लेना कुछ साधरण बात नही। इस योनि मे जन्म लेने के लिये देवगण भी लालायित होते रहते है। मानव–जीवन मे सार क्या है ? असार क्या है ? धर्म का स्वरूप क्या है ? अधर्म किसे कहते है ? इत्यादि बातो का अच्छी तरह विचार कर आत्मा कर्मों के समस्त बधनो से निर्मुक्त होकर शाश्वत सुख और शाति प्राप्त कर सकती है। अतएव ऐसे अमूल्य मानव–जीवनरूपी चितामणि रत्न को पाकर इसका किंचिन्मात्र भी दुरुपयोग नही करना चाहिये। कभी ऐसा नही सोचना चाहिये कि अभी जीवन बहुत अवशिष्ट है। धीरे–धीरे सब कुछ कर लूंगा। धर्म–कार्य करने के लिये सतत सुभाषित के इस उत्तरार्द्ध की ओर ध्यान रखना चाहिये।

"गृहीत इव केशेषु, मृत्युना धर्ममाचरेत्॥"

मृत्युने आकर मेरे बाल पकड रखे है, वह खीचकर मुझे ले जा रही है। ऐसा समझकर शुद्ध भाव से धर्माचरण करना चाहिये। संसार में फँसने के लिये चारो ओर अनेक मोहक पदार्थ है। पद-पद पर फिसलने का मार्ग है। हमारी आत्मा अज्ञानरूपी अधकार से ढकी हुई है। इसलिये हमे सतत ऐसे ही पुण्य-शाली आत्माओ के जीवन-चरित का अध्ययन करना चाहिए, जिससे हम सुग-मतापूर्वक इस ससाररूपी समुद्र को तिर सके।

गुरु के सान्निध्य मे शास्त्राभ्यास

दीक्षामहोत्सव सानद सम्पन्न होने के पश्चात् पूज्यपाद श्री अयवंता-ऋषि जी महाराज आदि ठाणे ६ ने रतलाम क्षेत्र से विहार किया। वहाँ से जावरा क्षेत्र वीस मील की दूरीपर है। अच्छीतरह शाततापूर्वक विहार करते २ आपश्री ने जावरा में पदार्पण किया। वहाँ साधु-मुनिराजो के लिये मर्यादित समय तक ठहर कर पूनाखेडी पधारे। दीक्षा ग्रहण करने के बाद ही श्री तिलोक ऋषिजी म० का अध्ययन भी प्रारभ हो गया। सेवाभावी बालमुनिश्री पर गुरुदेव की पूर्ण कृपा थी। इसके अतिरिक्त पूर्व–संचित पुण्यो के कारण आपके ज्ञाना-वरणीय कर्मोका ऐसा क्षयोपशम हुआ था कि जिस शास्त्र को आप पढना प्रारभ करते, वह प्रारभ करने पर ऐसा प्रतीत होता, मानो उस शास्त्र को आपने पहले ही पढ रखा था। गुरु के बतलाते समय आप के मुँहसे भी उसी प्रकार स्पष्ट अर्थोंका उच्चारण होता रहता था। अनेक जन्मो के अभ्यास के बाद मनुष्य विद्वान् होता है। "बहूना जन्मनामते, विवेकी जायते पुमान्" इस प्रकार अनेक जन्मो तक निरंतर विद्याभ्यास करने के पश्चात् आपने ऐसी निर्मल बुद्धि प्राप्त की थी।

फलस्वरुप आपने थोडे ही समय मे दशवैकालिक सूत्र को कठस्थ कर लिया। पूनाखेडी से विहार कर रायपुर का स्पर्श किया। वहाँ कुछ दिन विराजमान रहकर पीपलोदा क्षेत्र को पावन किया। इन क्षेत्रो पर ऋपिसंप्रदायी मुनिराजो की महती कृपा दृष्टि रही है। आगामी चातुर्मास पहले ही जावरा का निश्चित हो चुका था। अनेक ग्रामानुग्रामो को विचरण करते हुए पूज्यपाद श्री अयवंताऋषिजी म० आदि ठाणे ६ चातुर्मास के निमित्त जावरा पधारे। यह संवत् १९१५ का वर्ष था। इस साल चातुर्मास में श्री दशवैकालिक सूत्रका वाचन हुआ। बालमुनि श्री तिलोकऋषिजी म० का यह प्रथम चातुर्मास और द्वितीय लोच था। इस क्षेत्र में वर्षाकाल अत्यंत शातिपूर्ण व्यतीत हुआ। महाराजश्री की प्रसिद्धि पहले से ही थी, पर रतलाम मे एक साथ चार दीक्षा होनेपर आपकी कीर्ति-पताका सर्वत्र फैल गई थी।

सवत् १९१६ का द्वितीय चातुर्मास शुजालपुर में।

जावरा क्षेत्र में चातुर्मास संपन्न होने के बाद आपका सैलाना की ओर विहार हुआ। सैलाना से रतलाम पधारे। रतलाम में अपने स्वधर्मी बधुओ का बहुत आग्रह होने से कुछ दिन वहाँ स्थिरवास किया। वहाँ इदौर के भाइयो की आग्रहपूर्ण प्रार्थना होनेसे रतलाम से इंदौर की ओर विहार किया। बीच मे स्थित छोटे-बडे अनेक क्षेत्रो को पार कर आपने साठ मील की दूरी पर अवस्थित इंदौर नगर मे पदार्पण किया। वहाँ पर आपके प्रभावशाली व्याख्यानो से जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा। इदौर से सीमरोड आदि क्षेत्रो को पावन कर आप पुन इंदौर पधारे। यहाँ से आपका विहार देवास की ओर हुआ। इंदोर से देवास बीस मिल की दूरीपर स्थित है। देवास क्षेत्र सास्थानिक है और यहाँ पोरवाड आदि बधुओ की धार्मिक भावना प्रशंसनीय है। उस पर फिर गुरुदेव ने अपने धर्ममय प्रवचनो द्वारा जनता को ज्ञानामृत से सिंचित किया, जिससे वहाँ के निवासियो की धार्मिक भावना की वृद्धि के साथ श्रद्धा और अधिक उज्ज्वल हुई। देवास से विहार कर ३४ मील की दूरीपर अवस्थित शाजापुर क्षेत्र की ओर पदार्पण किया। चक्रमण के समय भी नवदीक्षित मुनि श्री तिलोकऋषिजी म० का अध्ययन अखड रूप से चल रहा था। इस समय आप अपने गुरुदेव से उत्तराध्ययन सूत्रका अध्ययन कर कंठस्थ कर रहे थे। इस प्रकार छोटे २ ग्रामो की जनता में धार्मिक प्रचार करने के साथ उनको धर्म मे दृढ बनाते हुए आप शाजापुर क्षेत्र में पधार कर कसेरवाडी धर्म-स्थानक मे विराजमान हुए।

इस क्षेत्र में पोरवाड, ओसवाल, मोड जाति में धार्मिक प्रेम अच्छा है। ऋपिसम्प्रदाय के महापुरुष संत-सतियाँ आदि का इस क्षेत्र पर महान् उपकार है। अनेक दीक्षा आदि कार्य भी इन क्षेत्रो मे उल्लासपूर्वक हुए हैं। रास्ते में सारंगपुर क्षेत्र आता है। पुराने सत-सतियो के लिखे हुए पन्नो परसे ज्ञात होता है कि यह क्षेत्र भी पहले ऋपिसंप्रदाय का महान् केद्र था। शाजापुर से सारगपुर सोलह मील दूर हैं। यहाँ पर आपश्री शातिपूर्वक पधारे। यहाँ पहुँचने तक फाल्गुन मास भी आगया था। अत फाल्गुनी चातुर्मास यही पर हुआ।

बालमुनि श्रीतिलोकऋषिजी म० का. तृतीय लोच भी यही पर हुआ। फिर आकोदिया होते हुए ठाणा ६ का शुजालपुर मे पदार्पण हुआ। शुजालपुर के निवासी अत्यत धर्मनिष्ठ है। उनकी आग्रहपूर्ण विनति से पूज्यपाद श्री अयवता. ऋपिजी म० ने अपने अग्रिम चातुर्मास करने की स्वीकृति शुजालपुर श्रीसंघ को दी। शुजालपुर से सिहोर की ओर विहार हुआ। वहाँ से भोपाल पधारे और मोड जाति के विशाल धर्मस्थानक में ठहरे। आपश्री के पूर्वज पूज्य श्री धनजी-ऋषिजी म० द्वारा यह क्षेत्र खोला गया था, ऐसा यहा के वृद्धो-द्वारा सुना गया है। पुन भोपाल से सिहोर पधारे। भोपाल से सिहोर वीस मील की दूरी पर स्थित है। सिहोर से शुजालपुर करीब चोवीस मील के फासले पर है। यहाँ वर्षाकाल के निमित्त पूज्यपाद श्री अयवता ऋषिजी म०, श्री सूखा ऋपिजी म० श्री विजयऋषिजी म०, श्री चुन्नाऋपिजी म०, तपस्वी श्री कुंवरऋषिजी म० और श्री तिलोक ऋषिजी महाराज आदि ठाणा ६ शुजालपुर पधारे और पोला-यावालो के निकट स्थानक में विराजे। इस चातुर्मास मे श्री तिलोकऋषिजी म० ने श्री उत्तराध्ययन सूत्र छत्तीसवे अध्ययन तक संपूर्ण कंठस्थ कर लिया। बाल-मुनि श्री का यहाँ पर सवत्सरी के पूर्व चतुर्थ लोच हुआ। चातुर्मास के दिनो में व्याख्यान के समय श्री उत्तराध्ययन सूत्र का वाचन हुआ। भाइयो तथा बहिनो की धर्म की ओर विशेष रुचि हुई। सबने व्रत और तपश्चर्यादि मे स्पर्द्धापूर्वक आगे बढकर अपने अतर की श्रद्धा को प्रदर्शित किया। चातुर्मास का समय भी शाति-पूर्वक पूर्ण हुआ।

विक्रम सवत् १९१७ का चातुर्मास—प्रतापगढ में

पूज्यपाद गुरुदेव श्री १००८ श्री अयवताऋषिजी म० ने छह ठाणा के साथ शुजालपुर का चातुर्मास अत्यंत शाति और उल्लासपूर्वक व्यतीत किया। चातुर्मास के पश्चात् आप अपने विहार के समय अनेक क्षेत्रोका स्पर्श करते हुए शाजापुर की पवित्र भूमि में पधारे। शाजापुर में आपके आगमन से धर्मादि-

कार्यो मे दूने वेग से वृद्धि हुई। अत्यत निष्ठा-पूर्वक पहले की अपेक्षा धर्म मे लोग अधिक रुचि लेने लगे। यहाँ से फिर मध्यवर्ती क्षेत्रो में विचरण करते हुए उज्जैन क्षेत्रको पावन किया। उज्जैन से फिर पहले की तरह बीच के छोटे २ स्थानो में अपने थोडे समय के निवास मे धर्म की ज्योति जगाते हुए खाचरोद पधारे। यहाँ से जावरा करीब १६ मील दूर है। यहाँ दूरी पार कर आपश्री ने जावरा मे पदार्पण किया। यहाँ से सुखेडा, रायपुर, मुगडो, तेजपुर, तलवाडो, परतापोर, डढुगो, गडी, गनोडा, सगवाडा, सरोदा, सावरा, पारोदा, मेनवाला, घनोडा, घाटोल आदि ग्रामो मे पधारे। घाटोल पहुँचते पहुँचते फाल्गुनी चातुर्मासी का समय हो चुका था। अतएव यह चातुर्मासी घाटोल हुई। यही पर श्री तिलोकऋषिजी म० का पचम लोच हुआ। यहा से पुनः खमीरा, पीपलखुटा आदि अनेक क्षेत्रो का स्पर्श करते हुए आपश्री मदसौर पधारे।

मदसौर भी अत्यत प्राचीन नगर है। यहाँ पर ठेठ सन् ईसवी के पूर्व के शिलालेख उपलब्ध है। मंदसौर से वर्षा-काल-निमित्त पूज्यपाद श्री अयवताऋषिजी म० का ठाणा ६ के साथ मालव प्रान्त की पवित्र भूमि प्रतापगढ मे सुख-शाति-पूर्वक पधारना हुआ। चातुर्मास के दिनो मे व्याख्यान के समय श्री आचाराग सूत्र का वाचन हुआ। ग्यारह अगो मे आचाराग सबसे प्राचीन और प्रथम है। भगवान् महावीर के साधना-काल का जीवन जैसा आचाराग सूत्र में चित्रित किया गया है वैसा अन्य सूत्रो मे नही। इस सूत्र के वाचन से श्रावकगण अपने शासननायक चरम तीर्थकर श्री महावीर स्वामी के चरित्र और साधुओ के आचार आदि के बारे मे अनेक बाते जान सकेगे। यहा पर श्री तिलोक-ऋषिजी म० का छट्ठा लोच सवत्सरी के पूर्व हुआ।

प्रतापगढ के क्षेत्र को ऋषिसंप्रदाय के मुनिवृदो ने अपने आगमन-द्वारा अनेक वार पवित्र किया है। इस क्षेत्र में दीक्षा, संथारा आदि अनेक धार्मिक कार्य यशस्वीरूप से सपन्न हुए। इस स्थान मे मुख्य रूप से उल्लेखनीय विशेष बात यह हुई कि ऋषि--सप्रदायी सतोने दिगम्बर आम्नाय के हुबड लोगो को अपने पवित्र उपदेश-द्वारा प्रतिबोधित कर साधुमार्गी बनाये। स्थानकवासी धर्म अगीकार कर ये हुबड-बधु अपने धर्म के लिए इतने दृढ हुए कि इन्होने अपने बने-बनाये दो धर्मस्थानक संघ को धर्म-ध्यान के लिए अर्पण किए। उनमें एकमें मुनिराज ठहरते है तथा दूसरे में महासतियाँजी ठहरती है। पहला घोडा टेकचंदजीने और दूसरा स्थानक मलाशाह श्री जीवनजी कोधर जीने दिया है। यहाँ के स्थानकवासी समाज में ओसवाल, पोरवाड, हुंबड आदि समाज के कुल मिलाकर लगभग ७०-८० घर है। दिगम्बर समाज के घरो की सख्या लगभग पाँच सौ है और श्वेताम्बर मदिरमार्गी समाज के घर करीब दो सौ है। विभिन्न संप्रदायो के ऐसे विशाल क्षेत्रों

में जहाँ कि अपने सप्रदाय के लोगो की संख्या दूसरो की अपेक्षा कम हो, अपने धर्म का प्रचार करना साधारण बात नही है। ऐसा करते समय विरोधीपक्ष वालो के हृदय में विरोध तथा प्रतिकार की भावना और प्रबल वेग से उठती है। वे अनेक प्रकार का दूषित वातावरण पैदा करते हैं। पर इन सतो ने किसी प्रकार का कटु वातावरण पैदा किए बिना अनेक कष्ट सहन करके अपने मार्ग को प्रशस्त बनाया और अपने क्षमाशील स्वभाव तथा उदार चरित्र द्वारा सबको अपनी ओर आकर्षित किया। इस सफलता के मूल में इस सप्रदाय के ज्ञानी और तपस्वी मुनियो का महत्त्वपूर्ण हाथ है। ऐसे महापुरुषो द्वारा दुष्कर कार्य भी अत्यत सरल ढंग से संपन्न हो जाते हैं।

संवत् १९१८ का चातुर्मास शाजापुर में

प्रतापगढ का चातुर्मास-काल सानंद शाति-पूर्वक व्यतीत कर ठाणा ६ का विहार देवळे की ओर हुआ। वहाँ से पुन. प्रतापगढ के लोगो की विशेष विनति से प्रतापगढ़ पधारे। यहाँ से विहार कर मदसौर की ओर प्रस्थान किया। मंदसौर से छोटे २ क्षेत्रो का स्पर्श करते हुए जावरा की भूमि को अलकृत किया। यहाँ से बरडावदा लगभग आठ मील है। वहाँ आपश्री का आगमन हुआ। बरडावदा से खाचरोद पधारकर उज्जैन की ओर विहार किया। उज्जैन को पावन करके शाजापुर क्षेत्र में पधारे। शाजापुर का उल्लेख पहले हो चुका है। यहाँ कसेरवाडी में एक भव्य स्थानक है। इसी स्थानक मे आपश्री का मुनि वृन्दो के साथ आवास हुआ। यहा श्री तिलोकऋषिजी म० का सातवाँ लोच हुआ। शुजालपुर क्षेत्र भी ऋषिसप्रदाय का एक मुख्य केद्र है। इस क्षेत्र में स्थानीय श्री संघ के अत्याग्रह से आपका ठहरना स्वाभाविक था। शुजालपुर में ठहरते समय चातुर्मास का समय निकट आगया था। इसलिये यहाँ से मारगपुर होते हुए चातुर्मास के समय को शाजापुर मे व्यतीत करने के लिये गुरुदेव पूज्यपाद श्री अयवंताऋषि जी म० आदि ठाणे ४ से अपने इष्ट स्थान पर पधारे।

चातुर्मास में उपासक-दशागसूत्र, अतगड-दशासूत्र, निरयावलिकादि पंच-सूत्र का वाचन हुआ। ये सब सूत्र गृहस्थ तथा साधु धर्म की दृष्टि से अत्यत उपयोगी है। गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए श्रावक धर्म का किस प्रकार पालन करना चाहिये। ? प्रत्येक वस्तु की मर्यादा करने से क्या लाभ होता है ? अह-र्निश अनासक्तिपूर्वक कार्य करने से क्या फायदा है। ? इन सब का विस्तृत वर्णन होने से श्रावक-वर्ग को अपने कर्तव्य का भान हुआ और दूसरी ओर अनगार धर्म की श्रेष्ठता एव उत्कृष्टता का वर्णन किया गया। अनगार होने के बाद साधनावस्था में घोर से घोर परीषह आने पर भी सयमी साधु किस प्रकार

अटल रहते है ? अपने विरोधी को सब उपसर्गों के लिये क्षमावृत्ति धारण कर कितने उत्कट भाव से उसकी कल्याण कामना करते रहते है । इस प्रकार की क्षमावृत्ति धारण करना प्रत्येक के लिये सहज नही । इन सब सूत्रो का भावपूर्ण विशद वाचन होने से शाजापुर की जनता पर इस चातुर्मास का स्थायी प्रभाव पडा ।

यहाँ चातुर्मास-काल मे श्री तिलोकऋषि जी म० का आठवाँ लोच हुआ । तपस्वी मुनि के प्रभाव से धर्म-ध्यान तपश्चर्यादि पवित्र कार्य भी प्रचुर परिमाण में हुए । स्थानीय व्यक्तियो के अतिरिक्त आस-पास तथा दूर के अनेक ग्रामो के श्रावक-श्राविकाओ ने व्याख्यान आदि से प्रचुर मात्रा मे लाभ उठाया । समय समय की जानेवाली धार्मिक प्रभावना से इतर समाज के व्यक्तियो पर जैन धर्म का स्थायी प्रभाव पड़ा । यहाँ तक कि कुछ लोगो ने तो विशुद्ध श्री जैनधर्म को स्वीकार किया । इस प्रकार इस चातुर्मास में धार्मिक प्रचार के साथ स्थानीय जनता को विशेष संतोष हुआ । उन्होने महाराजश्री के सान्निध्य में रह कर एक प्रकार की पावनता का अनुभव किया । उन्हे ऐसा भान हुआ कि हम चातुर्मास कराकर कृतकृत्य हो गये ।

सवत् १९१९ का चातुर्मास भोपाल में

पूज्यपाद श्री अयवताऋषिजी म० ने ठाणा ४ के साथ शाजापुर के चातुर्मास का वर्षाकाल शातिपूर्वक व्यतीत कर वहाँ से विहार किया। पहले आप छोटे २ ग्रामो मे विचरण कर मोना पधारे। यहाँ से पुन आपका शाजापुर में आगमन हुआ । शाजापुर से मध्यवर्ती क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपश्री ठाणे ४ से शुजालपुर पधारे। यहां के ओसवाल और पोरवाड समाज के बधु अपने धर्म के प्रति अत्यंत श्रद्धाशील है, तथा उनकी धार्मिक वृत्ति अत्यत विमल-विशुद्ध एवं दृढ है। इस समाज मे सोने में सुगध जैसी बात यह है कि श्रद्धाशीलता के साथ वे शिक्षित भी है । इस प्रकार यहाँ के लोगो में ज्ञान और श्रद्धा दोनो का अच्छा समन्वय है। शुजालपुर से सिहोर होतेहुए आप श्री का भोपाल क्षेत्र मे पदार्पण हुआ । ऋषिसप्रदाय के संतो ने मालव प्रात में विहारादि के समय अनेक कठिनाइयो तथा परीषहोको सहनकर जैन धर्म की मर्यादा के अनुकूल बहुत से क्षेत्र खोले है । जहाँ जैन साधुओ का पहले विहार के समय अचित्त ओर निर्दोष आहार आदि तक नही मिलता था, वहा अब आपके विहार से लोग साधुओ के आचार विचार से थोडे बहुत परिचित होने लगे । बहुत से लोगोने आपश्री के उत्कृष्ट चारित्र और जीवन से प्रभावित होकर जैन धर्म अगीकार किया । इस प्रकार विहार के समय आपने जैन श्रमणो के लिये एक आदर्श उपस्थित किया । पर साथ साथ इस बात का अवश्य

स्मरण रखना चाहिये कि इन महापुरुषो ने अपने प्रतिबोध से धार्मिक क्षेत्र अवश्य खोले, पर कही राग द्वेष का वीज नही पनपने दिया। सब के साथ सौजन्य, सहृदयता और निजत्व का व्यवहार रखते हुए धर्म के प्रति रुचि जागृत की। इस धार्मिक प्रचार में उन्होने अपने पक्ष को भी विशेष महत्व नही दिया। पक्ष-पात की भावना से दूर रह सदैव तटस्थ वृत्ति से काम करते रहे। इसीलिये आपके निर्मल स्वभाव और शुद्ध विचार धारा का सब पर अच्छा प्रभाव पडा।

भोपाल में कुछ दिन ठहरकर पुन सिहोर की भूमि को अलकृत किया। यहा से इच्छावर लगभग चौदह मील की दूरी पर है। इसी स्थान पर आपश्री का आगमन हुआ। यहा पर यद्यपि समाज के घर बहुत कम है, पर लोगो की धर्म के प्रति विशेष रुचि है, वे श्रद्धाशील है। यहा तक पहुचते पहुंचते फाल्गुनी चातुर्मास भी आ गया। इसलिए फाल्गुनी चातुर्मासी यही सपन्न की गई, तथा इस चातुर्मासी के समय श्री तिलोकऋषिजी म० का नववा लोच हुआ, फिर इच्छावर से सिहोर होते हुए शुजालपुर पदार्पण किया। यहा से आपका विहार सारंगपुर क्षेत्र की ओर हुआ। कुछदिन यहा ठहर कर पुन शुजालपुर क्षेत्र का स्पर्श करते हुए आप सिहोर पधारे। सिहोर पहुचते २ चातुर्मास का काल निकट आ गया था, अतएव सिहोर क्षेत्र से चातुर्मास के लिए विहार कर पूज्यपाद शास्त्रज्ञ श्री अयवताऋषिजी म० आदि ठाणे ४ का भोपाल क्षेत्र में सुख-शाति पूर्वक पधारना हुआ। यहा पहुच कर मोड जाति के विशाल स्थानक में आप विराजमान हुए। ऋषिसप्रदाय का वर्णन करते समय पहले पूज्य श्री धनजी-ऋषिजी म०का उल्लेख हो चुका है। उन्ही स्वनाम धन्य पूज्य श्री १००८ श्री धनजी-ऋषिजी म० ने जैन धर्म का उद्धार करने के लिये यहा अनेक परीषहो और कष्टो का सामना किया, और सतत कष्ट झेलने के बाद अंतमें आप वैष्णव धर्म का पालन करनेवाले मोड जातिके वणिको को वैष्णव धर्म से जैन धर्म की ओर मोड सके। यह सब कार्य आपने अत्यंत शातिपूर्वक किसी प्रकार की कटुता तथा राग-द्वेष के वीज वोये विना किये।

यहां के नवाव साहब के हृदय पर भी पूज्यश्री का व्यापक और अमिट प्रभाव पडा था। आप सब प्रकार से इतने अधिक पवित्र थे कि उनके जीवन और वचन की एक रूपता देखकर नवाब साहब ने यह फरमान निकाला कि मेरे नगर मे जैन सेवडो को किसी प्रकार का कष्ट न हो, उन्हे कोई कष्ट पहुँचाने की धृष्टता नही करे। उन्हे किसी के द्वारा कोई तकलीफ दी जाने पर वे तुरत दरवार मे उसकी शिकायत कर दे। जिससे उचित कार्रवाई कर उन्हे

सजा दी जायगी। ऊर्दू लिपि में निकाले हुए इस फरमान की प्रति लिपि अब भी राज्य में मौजूद है। इससे पाठक इन महापुरुषो के बारे में जान सकते है कि वे कितने परीषहो को सहन कर अपने धर्म का प्रचार करते थे। अपने निश्चित संकल्प पर दृढ रहकर अगीकृत कार्य को सफल बनाने के बाद ही विश्राति लेते थे।

भोपाल चातुर्मास के समय स्थानाग सूत्र का वाचन हुआ। व्याख्यान के समय महाराज साहब की दृष्टि केवल सूत्रो के अर्थोपर ही सीमित नही रहती थी। उसके साथ साथ अनेक प्रकार के हेतु, दृष्टात, कहानी, ढाल और उपदेशप्रद सुभाषितो के द्वारा श्रोताओ के हृदय पर सूत्र मे वर्णित गभीर आशय को अमिट रूप से अकित करते थे। इस चातुर्मास में संवत्सरी से प्रथम दिनोमे श्री तिलोक-ऋषिजी म० का दसवा लोच हुआ। चातुर्मास काल में धर्म-ध्यान, तपश्चर्या, व्रत-प्रत्याख्यान आदि बहुत अधिक परिमाण मे हुए।

भोपाल के लिए इसी प्रकरण में उल्लेख हो चुका है। यहा नवाव रहते है। इसलिए यह क्षेत्र इसलामी धर्म की राजधानी है। यहा के निवासियो में वहु सख्यक लोग मुसलमान ही है। रियासतो के विलीनी करण के पहले यहा उन्ही का बोल–बाला था। अब राजा तथा नबाबो की सत्ता नही रहने के कारण पहले जैसी हालत नही रही। भारत के इस धर्म–निरपेक्ष राज्य में सब समान रूप से हिलमिल कर रहते है। किसी पर किसी प्रकार का पक्षपात नही। अब सब को समान रूप से आगे बढने का अवसर दिया जाता है।

मध्यप्रदेश की राजधानी पहले इन्दौर थी,। पर अब भोपाल में राजधानी है। धीरे धीरे यहा व्यापारादि की अधिक सुविधा होने के कारण जैनो की संख्या भी बढती जा रही है। मुसलमानी प्रदेश होने पर भी यहा श्री अयवताऋषिजी म० का चातुर्मास काल बहुत अच्छी तरह सपन्न हुआ। आपके व्यक्तित्व से वे लोग बहुत ही प्रभावित हुए।

संवत् १९२० का चातुर्मास बरडावदा में.

भोपाल में चातुर्मास काल सानद व्यतीत कर पूज्यपाद शास्त्रविशारद श्री अयवताऋषिजी म० का ठाणा चार सहित विहार हुआ। रास्ते मे जिस प्रकार सूर्य की सब पर समान दृष्टि रहती है, उसी प्रकार छोटे–बडे सब क्षेत्रो का आपने समान रूप से स्पर्श किया और स्थानकवासी जैन धर्म की प्रभावना करते हुए आपश्री ने शुजालपुर क्षेत्र को स्पर्श कर पुनः शाजापुर क्षेत्र को पवित्र किया। यहाँ से आपश्री का विहार महेद्रपुर की ओर हुआ। महेद्रपुर जाते हुए रास्ते में

जितने मध्यवर्ती गाव पडे, वहाँ के निवासियो को आपने अपने धार्मिक प्रवचन तथा सत्संगति का लाभ देकर उन्हे सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। महेद्रपुर के निवासियो की धार्मिक भावना देखकर आपने कुछ दिन वहाँ निवास किया। अपने अनुकरणीय जीवन द्वारा वहाँ की भूमि को पावन कर आप जावरा पधारे।

जावरा मालव प्रान्त में स्थानकवासी जैन समाज का एक श्रेष्ठ क्षेत्र माना जाता है। इन सब क्षेत्रो में पहले ऋषिसंप्रदाय के अनेक धर्मस्थानक भी थे, पर अब नही के समान रह गये है।

प्राणी का स्वभाव स्वभावत ऊर्ध्वगामी है, पर राग–द्वेष के चश्मे का प्रभाव बडा विचित्र होता है। सदैव ईर्ष्या करनेवाली आत्मा दूसरो की आदर प्रतिष्ठा तथा सन्मानो को समभाव पूर्वक नही देख सकती। वह अपने ईर्ष्या –द्वेष तथा मत्सर बुद्धि से सदैव सामनेवाले पक्ष को गिराने के दाव–पेंच खेलती रहती है। इससे अनायास उसमें अहंकार भाव जागृत होता है। समाज में जब किसीकी अहंकार वृत्ति के कारण यह पक्षपात का बीज व्यापक रूप से फैल जाता है, तब अच्छी चीज को मिटाते समय वह जरा-सा भी सोच विचार नही करती। वह अपना यह दुष्प्रयत्न इतनी हद तक करती है कि उसका नामोनिशान तक नही रहने देती। ठीक यही बात राग-द्वेष तथा पक्षपात के कारण इन क्षेत्रों में हुई है। यहाँ ऋषि-सप्रदायी स्थानक का नामोनिशान भी न रहा।

जावरा क्षेत्र मे कुछ समय तक विराजमान रहकर आपने प्रतापगढ की ओर विहार किया। यहाँ से प्रतापगढ लगभग ३६ मील की दूरी पर स्थित है। प्रतापगढ तक विहार करते समय आपने अपने स्वभावानुसार रास्ते में छोटे–बडे सब क्षेत्रो का स्पर्श किया। प्रतापगढ से झासडी, अरणोद स्पर्शकर पुन झासडी होकर प्रतापगढ पधारे। प्रतापगढ श्री सघ के अत्याग्रह से कुछ समय वहाँ ठहरकर आपश्री बोरी नामक ग्राम मे पधारे। यहाँ श्री तिलोकऋषि जी म० का ग्यारहवाँ लोच हुआ।

बोरी से आपका विहार धमोत्तर की ओर हुआ। धमोत्तर के बाद पुन. बोरी, रठाजणा, कणोरा, कणकेटी, नारायणगढ, पुनः कनकेटी, कनोरा, अमरावद, वसाढ, नंदावता, वणी, भावगढ, मावता, कालुखेडा, इन क्षेत्रो को स्पर्श कर आपका पुन. जावरा पधारना हुआ। इतना विहार करते २ चातुर्मास का काल भी नजदीक आ पहुँचा था। इस लिये चातुर्मास के दिनो में स्थिरवास करने के लिये पहले से निश्चित बरडावदा में श्री अयवंताऋषि जी म० का आगमन हुआ। और वहाँ श्री संघ के स्थानक में पदार्पण कर उसे अलकृत किया। यद्यपि यह छोटासा क्षेत्र था। जैन श्रावको की सख्या यहाँ बहुत कम थी। अन्य जाति के लोग अधिक

परिमाण मे थे। फिर भी यहाँ चातुर्मास काल मे धर्मध्यान, दान, शील, तप आदि की प्रभावना बहुत अच्छी हुई। व्याख्यान में सूयगडागसूत्र का वाचन हुआ। यहा पर श्री तिलोकऋषि जी म० का बारहवाँ लोच हुआ। इस छोटे से क्षेत्र मे चातुर्मास सरीखा दीर्घकाल भी अत्यत शाति-पूर्वक व्यतीत हुआ। यहाँ चातुर्मास होने से लोगो की धर्मश्रद्धा दृढतर हुई। अनेक लोगो ने महाराजश्री के निकट रहकर नवीन रूप से सामायिक प्रतिक्रमण सीखे, लोगो की शास्त्र श्रवण के प्रति रुचि जागृत हुई। पच्चीस बोल आदि जिनमे कि सक्षेप मे धर्म के बहुत गहन तत्त्वो का सकलन किया गया है, सीखकर लोगो ने अपने धार्मिक ज्ञान को बढाया।

विक्रम सवत् १९२१ का चातुर्मास शुजालपुर में

बरडावदा मे चातुर्मास काल सुख-शाति पूर्वक व्यतीत कर पूज्यपाद श्री १००८ श्री अयवताऋषिजी म० ने ठाणा ४ चार से समीपस्थ प्रसिद्ध नगर जावरा मे पदार्पण किया। जावरा से आस-पास इंगनोद, कलालिया, आकोदडा नदावता, वणी, भावगढ, मावता, कालूखेडा, मम्मटखेडा आदि क्षेत्रो को आपश्री ने पावन किये। इन सब स्थानो में अपने स्वधर्मी बंधुओ को प्रतिबोध देकर अपने धर्म मे दृढ बनाये। अनेक मुमुक्षु व्यक्तियो को अंतर्मुख बनाया। इन छोटे २ क्षेत्रो में धर्म के प्रति उत्साह की लहर पैदाकर आपश्री पुन जावरा पधारे। यहा से सवत् १९२० का चातुर्मास जहा व्यतीत किया था, उस बरडावदा क्षेत्र में पदार्पण किया। यहा से खाचरौद पधारे। खाचरौद भी जैनो का एक महत्व पूर्ण क्षेत्र है। खाचरोद से उन्हेल का स्पर्श करते हुए आपश्री ने बहुत प्राचीन नगरी उज्जैन मे पदार्पण किया। यहा से तारपुर, कारथा, कणासा, नेटावद बबूरी होते हुए आपका शुजालपुर शहर मे शुभागमन हुआ। शुजालपुर पहुँचते २ फाल्गुन मास आया, अतएव फाल्गुनी चातुर्मासी यही की गई और यहा पर मुनि श्री तिलोक ऋषिजी म० का तेरहवाँ लोच हुआ।

शुजालपुर से सारगपुर स्पर्श कर मोना होते हुए आपश्री का शाजापुर क्षेत्र मे पदार्पण हुआ। कुछ समय यहा विराजकर पुन सारंगपुर होते हुए चातुर्माम के निमित्त शुजालपुर नगरमे पूज्यपाद १००८ श्री अयवताऋषिजी म अपने अन्य मुनिवृन्द के साथ पधारे। चातुर्मास-काल में यहाँ श्री उववाईसूत्र तथा राजप्रश्नीय, सूत्र का वाचन हुआ। यहाँ बालमुनि श्री तिलोकऋषिजी म० का चौदहवाँ लोच हुआ।

श्री तिलोक ऋषि जी म० की दीक्षा हुई, तब से आप अपने गुरुदेव के साथ ही विहार कर रहे थे। एक दिन के लिये भी आपने उनका साथ नही

छोडा था। विहार या स्थिरवास प्रत्येक समय गुरुदेव के निकट आपका अध्ययन, स्वाध्याय, तथा वाचन चलता रहता था। श्री तिलोकऋषि जी म० की धारणा तथा प्रज्ञाशक्ति भी इतनी प्रवल तथा तीक्ष्ण थी कि जहा कही जिस शास्त्र का वाचन होता, उसे आप कंठस्थ कर लेते थे। दीक्षा लेने के बाद अभीतक चातुर्मास काल मे जितने शास्त्रो का वाचन हुआ, उन सब को आपने किसी के विना सिखाये ही कंठस्थ कर लिया था। केवल एक वार सुनकर आप उस चीज को ग्रहण कर लेते थे। ऐसी ग्रहण-शक्ति बहुत कम व्यक्तियो की होती है। आपके गुरुदेव श्री अयवंताऋषि जी म०भी नम्रता की प्रतिमूर्ति थे। वे अत्यत धैर्य तथा नम्रतापूर्वक शास्त्रो का वाचन तथा अध्यापन करते थे। गुरु और शिष्य में नम्रता—मूलक एकवाक्यता थी। इसलिये शिष्य को शास्त्रो को सीखते समय ऐसा आभास नही हुआ कि मै शास्त्रो को सीख रहा हूँ, वरन् भूले हुए शास्त्रो को गुरु से श्रवण कर अपने पुराने ज्ञान को परिपक्व कर रहा हूँ, ऐसा मालूम होता था। ग्रहण-शक्ति की तीव्रता के कारण श्री तिलोकऋषि जी म० की शास्त्रो के स्वाध्याय की ओर विशेष रुचि हुई। आप त्रिकाल में प्रति दिन एक घटे तक ध्यान करते थे। उस समय केवल शास्त्रो का स्वाध्याय आप करते थे। स्वाध्याय के कारण आत्मा पर अज्ञान का जो आवरण था उसका क्षयोपशम होता गया।

श्री उत्तराध्ययनसूत्र के २९ वे अध्ययन मे सम्यक्त्व पराक्रम के जो तिहत्तर बोल है, तद्वर्ती अठारहवे बोल में सूत्रकार कहते है:——

"सज्झाएणं भंते जीवे किं जणयइ?
सज्झाएणं जीवे णाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ"

प्रश्न——हे भगवन्! स्वाध्याय के द्वारा यह जीव क्या अर्जन करता है?

उत्तर:——स्वाध्याय के द्वारा जीवात्मा ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है। अपने आवश्यकीय नैमित्तिक कर्मो को छोडकर आप दिन रात में क्षणमात्र का भी दुरुपयोग नही करते थे। आलस्य या प्रमाद को कभी अपने पास फटकने नही देते थे। सतत जागृतावस्था में रहते थे। प्रमाद को वे अपना परम शत्रु समझते थे। इस प्रकार अप्रमत्त वृत्ति से जीवन व्यतीत करने के कारण आपने स्वल्प काल में ही कवित्व-शक्ति को भी प्राप्त कर लिया। किसी भी विद्या को हासिल करने मे एकाग्रता की आवश्यकता होती है। एकाग्रता आपके जीवन के साथ जुडी हुई थी। वह आप मे ओतप्रोत हो गई थी। एकाग्रता-पूर्वक अप्रमादी वृत्ति से निरंतर स्वाध्याय करने के कारण आप शास्त्रो के भी पारगामी हो गये। छोटी-सी अवस्था में इस प्रकार आगमो का वेत्ता होना, कोई साधारण बात नही है। कवित्व-शक्ति द्वारा आपने थोडे में बहुत कुछ कह दिया है। एक प्रकार से

आपने गागर में सागर भरने का कार्य किया है। यह सब निरंतर साधना एवं परिश्रम का परिणाम था। परिश्रम के बिना कोई भी कठिन कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। किसीने ठीक कहा है:—

आलस्य यदि न भवेज्जगत्यनर्थः,
को न स्याद् बहुधनको बहुश्रुतश्च ।।
आलस्यादियमवनि ससागरान्ता,
संपूर्णा नरपशुभिश्च निर्धनैश्च ।। १ ।।

अनर्थकारी आलस्य इस संसार में यदि नही होता, तो (यहा) धनाढ्य और प्रखर विद्वान् कौन नही होता ? परन्तु आलस्य के कारण समुद्रपर्यंत यह पृथ्वी पशुतुल्य मनुष्यो और निर्धनो से भरी हुई है। इसी प्रकार का एक अन्य भी सुभाषित है।

प्रमाद :परमो द्वेषः प्रमादःपरमं विषम् ।।
प्रमादो मुक्तिपुर्दस्यु , प्रमादो नरकायनम् ।।१।।

कायोत्सर्ग में शास्त्रो का स्वाध्याय करते समय कनिष्ठ गुरुबधु सेवाभावी श्री विजयऋषिजी म० आपको डास मशक आदि छोटे २ जीवो के परीषह तथा त्रास से बचाने के लिये प्रमार्जन करते रहते थे। यह बात वृद्ध परपरा से सुनी जाती है।

इस प्रकार अपने गुरुदेव श्री अयवंताऋषिजी म० के समीप रहकर थोडे ही समय में आपने चतुर्मुखी ज्ञान प्राप्तकर लिया था। आगमो का निरंतर स्वाध्याय करने के कारण आप आगमो के प्रकाड वेत्ता हो गये थे। दार्शनिक ज्ञान में भी बहुत प्रगति कर ली थी। ज्योतिष का भी अद्भुत ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आगम तथा दर्शन की तरह आपने ज्योतिष का भी श्रद्धा—पूर्वक ज्ञान संपा—दन किया। कवित्व-रचना का सामर्थ्य भी निरतर अभ्यास से प्राप्त कर लिया था। काव्य-कला में तो आपने इतनी शक्ति हासिल की कि उस समय सारे स्थानक-वासी समाज मे आपके कवित्व, सवैया आदि की धूम थी। श्रावको तथा साधुओं को आपकी रचनाएँ इतनी अच्छी लगी, कि सबके मुँह से आपकी रचनाएँ सुनाई देने लगी। इस दिशा में इतना विकास करने पर भी पूर्व परपरागत मान्यतानुसार काव्य-रचना करने में आपके सामने बाधाएँ उपस्थित हुईं। पर आप अपने ध्येय से विचलित नही होते हुए गुरुजनो की आज्ञा की ओर लक्ष रखकर शास्त्रानुसार कवित्व हो, उसमे उदात्त भाव हो, उसे पढने से प्राणी अपना विकास कर सके, ऐसी काव्य-रचना करने में आपकी सतत दृष्टि रहती थी। आपने अपने जीवन—

काल में ऐसी अनेक कविताएँ निर्माण की है, जिनमें शास्त्रो मे वर्णित विषयो का सरल ढगसे समावेश किया गया है।

इस प्रकार अध्ययन-विषयक शुभ प्रवृत्तियो मे काल-यापन करते हुए अपने गुरुदेव के सान्निध्य मे शुजालपुर का चातुर्मास शातिपूर्वक समाप्त किया। श्री तिलोक-ऋषिजी म० का अपने गुरुदेव के साथ यही अतिम चातुर्मास था। इस अवधि में आपने अपनी नम्रता, सेवावृत्ति अध्ययन-परायणता आदि सद्गुणो द्वारा अपने गुरुदेव का पूर्ण स्नेह प्राप्त कर लिया था। उनके पास जो कुछ था, वह अपने योग्य शिष्य को प्रदान कर गुरुदेव ने भी संतोष की सास ली।

पूज्यपाद कविकुल–भूषण श्री तिलोक ऋषिजी म. का शुजालपुर क्षेत्र में सं. १९२२ का चातुर्मास

सवत् १९२२ का शुजालपुर क्षेत्र में सानद चातुर्मास समाप्त कर पूज्यपाद श्री अयवंताऋषिजी म० आदि ठाणे ४ ने सारगपुर की ओर विहार किया। सारगपुर से शाजापुर होते हुए देवास पधारे। पुन. देवास से शाजापुर क्षेत्र की ओर आपका शुभागमन हुआ, कुछ दिन यहाँ विराजमान रहकर आपने पुनः अपने शिष्य समुदाय के साथ देवास की ओर पदार्पण किया। देवास से मालव-प्रान्त के प्रसिद्ध नगर और वहाँ की राजधानी इदौर क्षेत्र मे आपका विहार हुआ। वहा से वापिस देवास क्षेत्र का स्पर्श किया। तत्पश्चात् नेवरी, पीपलिया, मगरदा, आष्टा, सिहोर होते हुए, भोपाल क्षेत्र को पावन किया। यहा पहुँचते २ फाल्गुन मास आ गया था। अत फाल्गुनी चातुर्मासी यही की गई और श्री तिलोकऋषिजी म० का पंद्रहवाँ लोच हुआ।

भोपाल में कुछ दिन विराजकर आपने सिहोर की ओर विहार किया। सिहोर से मध्यवर्ती क्षेत्रो को पावन करते हुए पूज्यपाद शास्त्रज्ञ प० मुनि श्री अयवताऋ-षिजी म० ठाणे ४ का शुजालपुर क्षेत्र में आगमन हुआ। आपश्री ने कुछ समय-पर्यंत यहाँ स्थिरवास किया। शुजालपुर से दस मील की दूरी पर भेसरोज ग्राम है। वहाँ पर आपश्री ने पदार्पण किया।

गुरुदेव श्री का स्वर्गवास

भेसरोज पहुँचते २ पूज्यपाद श्री अयवताऋषिजी म० का शरीर निरतर धर्म-प्रचार के लिए श्रम करने के कारण कुछ शिथिल-सा हो गया था। आपकी अवस्था भी पर्याप्त हो चुकी थी। यहाँ अपनी शारीरिक स्थितिका विचार करके समाधियुक्त समभाव से अतिम समय में नमोक्कार मत्र का स्मरण करते हुए पूज्यपाद गुरुवर्य श्री १००८ श्री अयवताऋषिजी म० का संवत् १९२२ आषाढ़ शुक्ल ९ रविवार के दिन स्वर्गवास हो गया।

उस समय श्री तिलोकऋषिजी म० की अवस्था केवल सत्तरह वर्ष तीन महीने की थी। अपने सयमी जीवन मे पूज्यपाद श्री अयवंताऋषिजी म० के सात शिष्य हुए। उसमें कोई उग्र तपस्वी, कोई प्रकाड वक्ता और पडित, तथा कोई कविरत्न एव व्याख्याता हुये, जिन्होने अपने सत्प्रवृत्तिमय जीवन द्वारा जैन धर्म की सुगधी को प्रसारित किया है। आपके शिष्य-समुदाय के नाम इस प्रकार है ——

श्री लालजीऋषिजी म०, श्री चुन्नाऋषिजी म०, श्री विजयऋषिजी म०, श्री अभयऋषिजी म०, श्री बालऋषिजी म०, उग्रतपस्वी श्री कुँवरऋषिजी म०, और कविकुलभूषण पं० श्री तिलोकऋषिजी महाराज,। पूज्यपाद श्री अयवता-ऋषिजी म० का श्री तिलोकऋषिजी म० पर कितना अनुग्रह था, इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। वे आपके लिये गुरु, पिता तथा माता सब कुछ थे। अपने सान्निध्य मे उन्होने अपने इस योग्यतम शिष्य को किसी प्रकार के अभाव का अनुभव नही होने दिया। वे उनके लिये शिरच्छत्र थे। इतनी छोटी अवस्था में अपने योग्यतम गुरु के उठ जाने से पहले तो श्री तिलोकऋषिजी म० को वियोग-जन्य अत्यंत दुःख हुआ, वे किंकर्तव्यमूढ हो गये, उन्हे किसी का कुछ ध्यान नही रहा, एकमात्र यही ध्यान था, जिस पथ का अनुसरण श्री गुरुदेव ने किया, उसी पथ का मैं भी पथिक बनूं, पर आपकी यह शोकावस्था कुछ समय-पर्यत रही। अपने समर्थ गुरु के निकट रहकर ससार की अनित्यता का अनुभव कर लिया था। मोह की भयंकरता के बारे मे सच्चा ज्ञान प्राप्तकर चुके थे। इसलिये अपनी मोह-जन्य आसक्ति को विचार-धारा से आपने शीघ्र सम्यग्ज्ञान की ओर मोडा और गुरु की देह की ओर आसक्ति नही रखकर मन ही मन अपने गुरु के अधूरे छोडे हुए कार्य को पूर्ण करने का सकल्प किया। संस्कृत के एक सुभाषित में कहा गया है कि ——

'काव्य-शास्त्रविनोदेन, कालो गच्छति धीमताम्"

बुद्धिमानो का समय काव्य तथा शास्त्रों के साथ विनोद करते हुए व्यतीत होता है। वे अपनी सारी शक्ति सद्ग्रन्थो के अध्ययन—अध्यापन और निर्माण में लगा देते है। अहर्निश अपने शुभ अध्यवसायो द्वारा केवल लोक-कल्याण की भावना करते रहते है। श्री तिलोकऋषि जी महाराज नित्य, नैमित्तिक कर्मों के बाद जो समय मिलता था उसे आप इसी प्रकार काव्य-रचना आदि शुभ-प्रवृत्ति में लगा देते थे।

कविकुलभूषण श्री तिलोकऋषि जी म० ने अपने गुरुदेव का वियोग होने पर पुन शुजालपुर क्षेत्र की ओर विहार किया। इधर चातुर्मास-काल भी निकट आ गया था और श्री शुजालपुर नगर के श्रीसंघ ने भी आपसे अपने यहाँ पर चातुर्मास करने के लिये बहुत विनति की। श्री संघ का विशेष आग्रह होने से आपने ठाणे ३ से वहाँ पर चातुर्मास करने की स्वीकृति दे दी और यहाँ पर ही वर्षाकाल व्यतीत किया। पवित्र पुरुष अपने चरण-कमल द्वारा जिस स्थान को पवित्र करते है, वही तीर्थ बन जाता है। उनके पवित्र जीवन से आकर्षित हो कर आस-पास के सब लोग उनके पास मडराते रहते है।

पूज्यपाद महाराजश्री ने गुरुदेव के पश्चात् अपनी स्वतत्रता मे ज्येष्ठ गुरु-बंधुओ के साथ प्रथम चातुर्मास सवत् १९२२ में शुजालपुर में किया। यह चातुर्मास अत्यंत उत्साह-पूर्ण वातावरण के साथ व्यतीत हुआ। आपकी वाणी तथा चारित्र की लोगो पर इतनी गहरी छाप पडती थी कि व्याख्यान के समय अनेक श्रावक—श्राविकाओ ने बारह व्रत अगीकार किये। दूर २ के बहुत से लोग आपके दर्शनार्थ आये। श्री तिलोकऋषि जी म० यद्यपि अवस्था में छोटे थे, फिर भी आपका व्याख्यान सुनकर सब लोग बहुत संतुष्ट होते थे। आपकी वाणी गभीर, स्पष्ट एवं बुलंद थी। सीधे हृदय पर असर करती थी। उसे सुनकर श्रोता किसी न किसी प्रकार का त्याग किये बिना न रहता था। अब यहाँ से आपकी कीर्तिरूपी भेरी का निनाद चारो दिशाओ में होने लगा। चारो ओर आपके ज्ञानरूपी कमल की सुगधी फैलने लगी।

चातुर्मास के दिनो में व्याख्यान के समय श्री ज्ञाताधर्म कथासूत्र तथा श्री अतगडसूत्र का वाचन होता रहा। श्रोतागण आपकी मधुर तथा अमृतमयी वाणी सुनकर प्रफुल्लित होते थे। वे आपके व्याख्यान का लाभ लेकर कृतकृत्यता तथा धन्यता का अनुभव करते थे। यहाँ पर आपका सोलहवाँ लोच हुआ। इस बात का पहले ही उल्लेख हो चुका है कि आप अपने समय का निरतर सदुपयोग करते

थे । एक क्षण भी व्यर्थ नही जाने देते थे । इस चातुर्मास में आपश्री ने आवश्यक-सूत्र (श्रमणसूत्रसहित) सार्थ पत्र ३१, सवत् १९२२ कार्तिक वदि ४ रविवार के दिन पूर्ण किया है । आपकी यह हस्तलिखित प्रति मालव प्रान्त में बडोद क्षेत्र के श्री संघ के पास थी । जब उपाध्यायजी श्री आनदऋषि जी म० अपना प्रतापगढ का चातुर्मास समाप्त कर अपने लघु गुरुबधु महात्माजी श्री उत्तमऋपिजी म० से समागम करने के लिए शाजापुर पधारते हुए संवत् २०१३ मे बडोद पधारे, तब आपने अपने दादागुरु पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० द्वारा लिखित वह प्रति देखी । प्रति को देखते ही आप अत्यत उल्लसित हो उठे । उनकी आँखो के सामने स्वर्गीय पूज्यपाद म० का अलौकिक प्रत्यक्ष-भासित होने लगा । आपकी भावना देख श्री सघ ने आवश्यकसूत्र की वह प्रति उपाध्यायजी म० की सेवा मे समर्पित कर दी । वह प्रति श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी (अहमदनगर) के हस्तलिखित शास्त्र-भडार मे रखी गई है । इस प्रकार कविकुलभूषण पं० मुनि श्री तिलोकऋषि जी म० का प्रथम चातुर्मास शुजालपुर में सानद शातिपूर्वक सपन्न हुआ ।

विक्रम संवत् १९२३ का चातुर्मास मदसौर में

शुजालपुर मे चातुर्मास सानद सपन्न होने के पश्चात् महाराज श्री ठाणे ३ ने साधुओ की मर्यादा-अनुसार अन्य क्षेत्रो की ओर विहार किया । चातुर्मास के बाद सर्वप्रथम आपका सारगपुर मे पदार्पण हुआ । सारगपुर से छोटे २ क्षेत्रो का स्पर्श करते हुए शाजापुर को अपने शुभागमन से अलकृत किया । वहाँ से उज्जैन पधारकर छह दिन का स्थिरवास किया । तब तक फाल्गुनी पौर्णिमा भी निकट आ गई थी । खाचरोद श्रीसघ का अत्यत आग्रह होने से फाल्गुनी चातुर्मास यही पर किया । यहा ही आपश्री का सतरहवाँ लोच हुआ । वहाँ से बरडावदा होते हुए अपनी जन्मभूमि रतलामनगर में आपश्री पधारे । रतलाम से विहार कर शिवगढ, सैलाना, पूनाखेडी, पीपलोदा आदि क्षेत्रो का स्पर्श किया । पीपलोदा से सुखेडा होते हुए पुन पीपलोदा पधारे । यहा से जावरा की ओर प्रयाण किया । जावरा से नगरी होते हुए आप श्री वर्षावास के निमित्त ठाणा तीन से मदसौर शहर मे पधारे ।

चातुर्मास-काल में व्याख्यान के समय श्री पन्नवणासूत्र, श्री समवायागसूत्र, श्री ज्ञाताधमकथा सूत्र तथा श्री उत्तराध्ययनसूत्र के छत्तीसवे अध्ययन का वाचन हुआ । सूत्रो में प्ररूपित विषयो का महाराज श्री अपनी मनोहर शैली में इतने रोचक ढग से विवेचन करते थे कि वे सब के मानस पर अंकित हो जाते थे । उस समय

मदसौर में इतने अच्छअनेक शास्त्रज्ञ श्रावक थे, जिन्होने संतो के सहवास में रहकर शास्त्रो का अभ्याम कर रखा था। वहुतो के दशवैकालिकसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, उपासकदशागसूत्र आदि कठस्थ थे। इस प्रकार प्रतिदिन शास्त्रो का पारायण करने वाले श्रावक आपके मुँह से शास्त्रो की विशद व्याख्याएँ सुनकर अत्यंत सतोप का अनुभव करते थे। कई दिनो से उनके मानस मे जो गुत्थियाँ उलझी हुई थी, वे सुलझ गई। शास्त्र–श्रवण के साथ चातुर्मास के दिनो में अनेक प्रकार के व्रत प्रत्याख्यानादि हुए। महाराज श्री के अपूर्व वोधामृत का जैसे जैसे पान करते जाते थे वैसे वैसे उनकी इच्छा अधिक अधिक बढती जाती थी। वे सदैव अतृप्तता का अनुभव करते थे। शास्त्र तथा उपदेश श्रवण की इच्छा निरंतर वनी रहती थी। यहाँ आपश्री का १८ वाँ लोच हुवा।

जव आप चातुर्मास सानंद सपन्न कर वहाँ से विहार करने लगे, तव वहाँ के श्रद्धालु श्रावक लोग हर्षावेग से यही उद्‌गार निकालते रहे कि आगामी चातुर्मास यही पर किया जाय, जिससे हम अपनी शास्त्र–श्रवण की अधूरी इच्छा पूरी कर सके। आपके समान पवित्र संत के सहवास से हम अपने जीवन को उचित मार्ग की ओर मोड मकेगे।

इस वर्ष आपके द्वारा लिखे हुए कुछ पन्ने प्राप्त हुए है, वे इस प्रकार है।

१	समकितकी आलोयणा पाना	१,	वैशाख शुक्ल	१४	मसदलगढ मे
२	पच्चक्खाण के नाम पन्ना	१,	ज्येष्ठ वदि	४	जावरा क्षेत्र मे
३	श्री कर्म-प्रकृति विचार पन्ने	४	ज्येष्ठ शुक्ल	३	,, ,,
४	श्री नवतत्त्व का थोकडा पन्ने	५	ज्येष्ठ शुक्ल	७	,, ,,

विक्रम संवत् १९२४ का चातुर्मास मदसौर––जीवागजमे,

मदसौर शहर मे चातुर्मास का काल सानद व्यतीत कर श्री तिलोकऋषिजी म० ने ठाणे तीन से प्रतापगढ़ की ओर विहार किया। विहार मे मध्यवर्ती क्षेत्रो का स्पर्श होना स्वाभाविक था। वहाँ से देवलिया होकर आपने धरियावद क्षेत्र को पावन किया। इन क्षेत्रो पर ऋषिसप्रदायी सतो का वहुत उपकार है। वागड प्रान्त का यह मुख्य केन्द्र है। यहाँ पर अधिकतर भील, मीणे, आदि लोगो की वसति है। पर ऋषिसप्रदाय के सत–सतियो ने घोर परीषहो और कष्टो को सहन कर इन आदिवासी लोगो मे सस्कार के बीज वोये। अनेक लोगो से मद्य मास छुडाये। बहुतो को व्रत–प्रत्याख्यान देकर धर्म–मार्ग मे प्रविष्ट करवाये। अन्य संप्रदाय में इस प्रकार विना किसी प्रकार की कटुता के वीज वोये धर्म का प्रचार करने मे उन्हे जो दिक्कते उठानी पडी, उनका अनुभव केवल वे ही करते है। धरियावद की ओर के वृद्धो द्वारा अभी तक सुना जाता है कि इन क्षेत्रो के

श्रावको की धर्म की ओर रुचि पैदा करने मे ऋषिसप्रदायी संत—सतियो का महत्त्व—पूर्ण हाथ है। श्री तिलोकऋषिजी म० ने अपने पूर्व-पुरुषो द्वारा उद्घाटित क्षेत्र मे पदार्पण कर अपने बोधामृत से उनकी श्रद्धा को दृढतर बनाया। धर्म की और भी कई अनेक बाते नयी सिखायी। यहाँ से विहार कर आपने अनेक छोटे २ नये क्षेत्रो में विचरण कर धर्म का बीज बोया। उनके नाम क्रमश ये है — खुतो, परसोला, गामडी, सावरा, मुगाणा, भादली, भन्नरागो, सेपुर, सलुमर, पुन सेपुर, भन्नराणो, नादली घाटडो, पादेडी, मेतवालो, मोर, गडी, बोरी, आजणो, अरथुणो, डडुको पुनः बोरी, भीलाडो, सगवाडो, सरोदो, इस प्रकार लगभग २३ क्षेत्रो को आपश्री ने अपनी चरण—रजसे पावन किया।

इस सब क्षेत्रो मे आपश्री ने उपदेश देकर अनेक लोगो को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। इन क्षेत्रो मे जगह २ थोडी सख्या मे हुबड लोग भी बसे हुए है। ये लोग दिगम्बर आम्नाय को मानते है। इधर बहुत वर्षों से न तो स्थानकवासी साधुओ का सचार हुआ था। और न दिगम्बर साधु ही इधर आते थे। दिगम्बर साधु तो ऐसे भी संख्या मे बहुत कम है। इसलिए इन लोगो की धार्मिक भावना मंद हो रही थी। महाराजश्री के आगमन से उनकी जैन धर्म के प्रति जो श्रद्धा थी, वह अधिक बलवती हुई और उनमे से कइयोने जैन स्थानकवासी धर्म को स्वीकार लिया। वे लोग आज तक उन पुण्यश्लोक श्री तिलोकऋषिजी महाराज का स्मरण करते है।

सरोदा पहुँचते २ फाल्गुनी पौर्णिमा निकट आने से फाल्गुनी चातुर्मासी यही बिताई गई और इस स्थान पर पूज्यपाद श्री का उन्नीसवाँ लोच हुआ। सरोदा से आपश्री ने ठाणा तीन से पुन मेतवालो होकर गनोडो, घाटोल, तरवारी, मुगाणो, खुतो आदि ग्रामो को स्पर्शते हुये घरियावद में पदार्पण किया। यहाँ से देवलिया होते हुए प्रतापगढ की पुण्यभूमि की ओर विहार किया, सत तथा भक्त साहित्य मे भक्ति के माहात्म्य का वर्णन करते हुए बार २ कहा गया है कि श्रद्धालु भक्त की उत्कट भक्ति देखकर भगवान् भी उसके वश होते है। ठीक यही बात आपश्री पर घटित होती है। पहले मंदसौर के श्रद्धालु भावुक व्यक्तियो की असीम भक्ति से आकर्षित होकर आपश्री वहाँ पधारे। मद्सौरनिवासी जनता आपको पाकर चितामणि रत्न को प्राप्त करने जैसा अनुभव करने लगी। आपके संपर्क मे रहकर लोगो ने शास्त्रीय शकाओ का समाधान किया। चातुर्मास के निमित्त प्रतापगढ से मंदसौर पधार कर आपश्री ने जनकुपुरा मे स्थित जीवागज के विशाल धर्म स्थानक में आसन जमाया।

चातुर्मास–काल में आपश्री ने छब्बीसवे श्री नदीसूत्र का वाचन किया। सब शास्त्रो में ज्ञान को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। आत्मा का मुख्य लक्षण ज्ञान ही है। उसी ज्ञान के सब अंगो की नंदीसूत्र मे चर्चा है। व्याख्यान मे श्रोतागण अनायास ही अपनी रुचि के अनुकूल विषय का श्रवण कर आनद का अनुभव करते थे।

चातुर्मास–काल में धर्मध्यान व्रत, प्रत्याख्यान इत्यादि शुभकार्य अच्छे हुए। मंदसौर शहर में इसके पहले एक चातुर्मास हो चुका था। शहर के समीप ही यहाँ (जनकपुरा–जीवागज में) यह आपका द्वितीय चातुर्मास था। प्रथम चातुर्मास के बाद तुरत द्वितीय चातुर्मास होने से लोगो की धर्म–भावना मे विशेष वृद्धि हुई। सवत्सरी के पूर्व आपश्री का बीसवां लोच यहाँ पर हुआ।

विक्रम संवत् १९२५ का चातुर्मास कोटा शहर में

मदसौर जीवागजवर्ती स्थानक में विराजकर चातुर्मास–काल मे प० मुनि श्री तिलोकऋषिजी म० ने अपने मृदु स्वभाव, उपदेश तथा पवित्र जीवन द्वारा वहाँ के निवासियो को किस प्रकार सतुष्ट किया, लोगो की धार्मिक श्रद्धा को दृढतर बनाने में उनका सान्निध्य किस प्रकार फलदायी रहा, तथा शास्त्रज्ञ श्रावको की शकाओ का आपने किस प्रकार समाधान किया, इन सब का वर्णन ऊपर हो चुका है। इस तरह चातुर्मास काल में वहाँ सबको सतुष्ट करके आपश्री ठाणा तीन के साथ विहार कर, रास्ते में जैन धर्म की ध्वजा को फहराते हुए जावरा पधारे। यहाँ से मालवप्रान्त के मुख्य केद्र रतलाम में आपका शुभागमन हुआ। वहाँ आपका प्रतिदिन सारगर्भित भाषण होता था। कुछ दिन ठहरकर रतलाम से आपने सैलाना की ओर विहार किया। सैलाना से पुन्याखेडी होते हुए पीप–लोदा पधारे। यहाँ पर आपश्री द्वारा लिखित कुछ पन्ने प्राप्त हुए है।

संवत् १९२४ माघ वदि अष्टमी को प्रचूर्णक पन्नोमे से आठवे पन्ने पर आपने निम्नाकित सूत्रो की प्रतिलिपि की। भगवतीसूत्र शतक १८ उद्देश १ कडजुम्मे के बोल संख्या-विषयक, पच्चीस क्रिया की गाथा अर्थसहित लिखी। श्री उववाईसूत्र से चार शरणो के विषय में लिखा। पन्ना ९ पर श्री दलपतरायजी के नवतत्त्वो से बासठ बोल लिखे। आठ बोलो की विसेसाहिया भी लिखी। श्री ठाणागसूत्र प्रथम ठाणा के सब १४८५ बोल लिखे। उपासकदशासूत्र में वर्णित दस श्रावको के संबंध मे जो वर्णन है, उसे आपश्री ने यंत्ररूप में अकित किया है। वह इस प्रकार है–

अनुक्रम संख्या, श्रावक-नाम, नगर-नाम, राजा-नाम, गुरु-नाम, जाति-नाम, स्त्रीनाम, धन–संख्या के तीन कोठे, गोकुल–संख्या, श्रावकपना कितने वर्ष तक पालन किया, किस श्रावक को क्या उपसर्ग हुआ कितने दिन का अनशन आया, किस देवलोक में गये, विमान-नाम, स्थिति-मर्यादा, कितने भव करके मोक्ष में जायेंगे, किस क्षेत्र में मोक्ष जायेंगे, अंतिम मोक्षगति, किस श्रावक का वर्णन किस अध्ययन में है, सूत्र-नाम आदि का उल्लेख किया है। इन सब बातो को आपने नकशे के द्वारा अच्छी तरह समझाया है।

विहार वर्णन करते २ हमने बीच में महाराजश्रीद्वारा लिखित पन्नो का उल्लेख प्रासंगिक कर दिया। अब पीपलोदा से सुखेडा, कोटडी, भावगढ, भालोट, आदि क्षेत्रो को स्पर्श कर मंदसौर-निवासियो के अत्याग्रह से पुन मदसौर शहर में पधारे। मदसौर से नारायणगढ, मल्हारगढ, नीमच, जावद, और केरी होते हुए आपश्री ने मेवाड की प्रसिद्ध और पवित्रभूमि चित्तोडगढ मे प्रवेश किया,। भारत वर्ष के इतिहास मे इस स्थानक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यही पर पद्मिनी, राणा कुंभा, राणा सागा, मीराबाई आदि वीर–शिरोमणि तथा भक्ति–परायणा बहनें हुई। इस दुर्ग पर देशकी प्राय सब भाषाओ में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये है। देश और विदेश के समस्त लोग इस स्थान की यात्रा कर धन्यता का अनुभव करते है।

चित्तोडगढ में विराजकर आपने जिस प्रकार लेखनकार्य, किया, वह आपश्री के शब्दो मे इस प्रकार है "श्री जबूद्वीप प्रज्ञप्ति का माडलिया-विचार का पन्ना इक्कीस तक परिपूर्ण हुआ। सवत १९२४ मिति फाल्गुण शुक्ल ७ रविवार चित्तोड तलेटी मध्ये" इसी पन्ने मे आनुपूर्वी के वीस कोठे सपूर्ण लिखे है। इन्हे अकित करने मे इतनी कम जगह घेरी है कि उसे देखकर आश्चर्य होता है। सवा दो इंच लबी और दो इंच चौडी जगह में आपने सारी आनुपूर्वी लिखकर उसे चिरकाल तक म्यूजियम में रखने योग्य वस्तु बना दिया है। उसके साथ दोहे भी लिखे है। एवं फुटकर प्रश्नोत्तर के ४४ बोलो में से ४० वोल नववे पन्ने में लिखे है। एक छोटे से पन्ने में इतनी सब चीजे लिखना अत्यंत साधना का काम है।

चित्तौडगढ से हमीरगढ को स्पर्श कर आप भीलवाडा पधारे। यहाँ आपश्री का फाल्गुनी चातुर्मासी पर इक्कीसवाँ लोच हुआ। भीलवाडा भी एक अच्छा क्षेत्र है। जैन धर्मानुयायी यहाँ ठीक परिमाण मे रहते है। स्थानीय व्यक्तियो के अत्याग्रह से आपश्री ने यहाँ कुछ दिन विराजकर धर्म का उद्योत किया। भील-वाडा से आपने वनेडा की ओर विहार किया। बनेडा से भिणाय, हुरडो, बरडी, पुन भिणाय को स्पर्शकर आपश्री ठाणा दो अजमेर पधारे।

चारो ओर देशी रियासतो के जाल से घिरा हुआ यह नगर मेरवाडा की राजधानी है। यहाँ अंग्रेजो का शासन था। देशी रियासतो की अपेक्षा यहाँ के लोगो में अधिक जागृति है। अजमेर भी एक ऐतिहासिक स्थल है। अन्य स्थानों की अपेक्षा यहाँ मुसलमान अधिक संख्या में रहते है। अजमेर की ख्वाजासाहब की दरगाह बहुत प्रसिद्ध है। प्रति वर्ष यहाँ मुसलमानो का एक बडा मेला लगता है। जिसमें सम्मिलित होने के लिये दूर दूर के लोग आते है। मेले के समय दस पद्रह दिन तक इतनी भीड रहती है कि आस पास के स्थानो मे जाना-आना कठिन हो जाता है।

देश के स्वतन्त्र होने के बाद अब अजमेर की पहले की तरह स्वतन्त्र सत्ता नहीं रही। अब मेरवाडा विशाल राजस्थान में सम्मिलित कर दिया गया है और अजमेर भी मेरवाडा की राजधानी नही रहकर राजस्थान का एक मुख्य नगर रह गया है।

अजमेर में पं० मुनिश्री तिलोकऋषि जी म० द्वारा लिखित काव्य 'चर्चा' वादी मुनि श्री जेठमलजी कृत है। यह चर्चा श्वेतावर मदिर में हुई। सवत् १८७८ का वर्ष था। उस समय अहमदावाद में लगभग २७००, मदिरमार्गी यतियो और ... हजार सवेगी साधुओ का मेला हुआ था। अंग्रेज सरकार के सामने यह ... दोनो की चर्चा के निर्णय का भार अंग्रेज गवर्नमेट को सौपा गया ... हुई चर्चा पर से दूसरी नकल की गई। सवत् १९२४ मिति वैशाख ... वार अजमेर शहर मध्ये।

चर्चा लिखते समय महाराजश्री ने २५ वे पन्नेसे प्रारंभ की है, ... का छब्बीसवा पन्ना भी है। उसमें भी यही विषय है, परन्तु छब्बी... सत्तावीस, अट्ठाईस और उनतीस ये तीन पन्ने प्राप्त नही हुए, ती... लिखा है, शहर अजमेरमध्ये। तीसवे और इकतीसवे पन्ने पर सवत् ... अग्रेजो से चर्चा हुई। मुनि श्री जेठमलजी द्वारा। इसमें अनेक मत-मान्यता का उल्लेख किया गया है। उनके मत को समझाने के लिये ... का भी प्रचुर मात्रा में उपयोग किया गया है। यह चर्चा पुस्तिका अ... अजमेर में लिखी गई। सवत् १९२४ वैशाख वदि १० गुरुवासरे अज... लिखित श्री तिलोकरिख।

इसी समय आपश्री द्वारा लिखा हुआ एक पन्ना मिला है। वह आप... -कुशलता, लाघवता और चित्रांकन शैली का आदर्श उदाहरण है। उसे अंग्रे... को मन में रखकर पढने से एक ओर एम् और दूसरी ओर से देखने पर ... आकृति प्रतीत होती है। यह सारा पन्ना काव्यमय है। उस पन्ने के

अनुक्रम संख्या, श्रावक-नाम, नगर-नाम, राजा-नाम, गुरु-नाम, जाति-नाम, स्त्रीनाम, धन-संख्या के तीन कोठे, गोकुल-संख्या, श्रावकपना कितने वर्ष तक पालन किया, किस श्रावक को क्या उपसर्ग हुआ कितने दिन का अनशन आया, किस देवलोक में गये, विमान-नाम, स्थिति-मर्यादा, कितने भव करके मोक्ष में जायेंगे, किस क्षेत्र में मोक्ष जायेंगे, अंतिम मोक्षगति, किस श्रावक का वर्णन किस आगम में है, सूत्र-नाम आदि का उल्लेख किया है। इन सब बातों को आपने नक्शे के द्वारा अच्छी तरह समझाया है।

विहार वर्णन करते २ हमने बीच में महाराजश्रीद्वारा लिखित पत्रों का उल्लेख प्रासंगिक कर दिया। अब पीपलोदा से सुखेड़ा, कोटड़ी, भावगढ़, मालोट, आदि क्षेत्रों को स्पर्श कर मंदसौर-निवासियों के अत्याग्रह से पुनः मंदसौर शहर में पधारे। मंदसौर से नारायणगढ़, मल्हारगढ़, नीमच, जावद, और केरी होते हुए आपश्री ने मेवाड़ की प्रसिद्ध और पवित्र भूमि चित्तौड़गढ़ में प्रवेश किया। भारत वर्ष के इतिहास में इस स्थान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहीं पर पद्मिनी, राणा कुंभा, राणा सांगा, मीराबाई आदि वीर-शिरोमणि तथा भक्ति-परायणा पैदा हुईं। इस दुर्ग पर देश की प्रायः सब भाषाओं में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गये हैं। देश और विदेश के समस्त लोग इस स्थान की यात्रा कर धन्यता का अनुभव करते हैं।

चारो ओर देशी रियासतो के जाल से घिरा हुआ यह नगर मेरवाडा की राजधानी है। यहाँ अंग्रेजो का शासन था। देशी रियासतो की अपेक्षा यहाँ के लोगो में अधिक जागृति है। अजमेर भी एक ऐतिहासिक स्थल है। अन्य स्थानों की अपेक्षा यहाँ मुसलमान अधिक संख्या में रहते है। अजमेर की ख्वाजासाहब की दरगाह बहुत प्रसिद्ध है। प्रति वर्ष यहाँ मुसलमानो का एक बडा मेला लगता है। जिसमें सम्मिलित होने के लिये दूर दूर के लोग आते है। मेले के समय दस पद्रह दिन तक इतनी भीड रहती है कि आस पास के स्थानो मे जाना-आना कठिन हो जाता है।

देश के स्वतन्त्र होने के बाद अब अजमेर की पहले की तरह स्वतन्त्र सत्ता नही रही। अब मेरवाडा विशाल राजस्थान में सम्मिलित कर दिया गया है और अजमेर भी मेरवाडा की राजधानी नही रहकर राजस्थान का एक मुख्य नगर रह गया है।

अजमेर में पं० मुनिश्री तिलोकऋषि जी म० द्वारा लिखित काव्य 'चर्चा' वादी मुनि श्री जेठमलजो कृत है। यह चर्चा श्वेतावर मदिर में हुई। सवत् १८७८ का वर्ष था। उस समय अहमदाबाद में लगभग २७००, मदिरमार्गी यतियो और दो हजार सवेगी साधुओ का मेला हुआ था। अंग्रेज सरकार के सामने यह चर्चा हुई। दोनो की चर्चा के निर्णय का भार अंग्रेज गवर्नमेट को सौंपा गया। इस लिखी हुई चर्चा पर से दूसरी नकल की गई। सवत् १९२८ मिति वैशाख वदि ७ बुधवार अजमेर शहर मध्ये।

चर्चा लिखते समय महाराजश्री ने २५ वे पन्नेसे प्रारंभ की है, उसके आगे का छब्बीसवा पन्ना भी है। उसमें भी यही विषय है, परन्तु छब्बीसवे के बाद सत्तावीस, अट्ठाईस और उनतीस ये तीन पन्ने प्राप्त नही हुए, तीसवे पन्ने में लिखा है, शहर अजमेरमध्ये। तीसवे और इकतीसवे पन्ने पर सवत् १८७८ में अंग्रेजो से चर्चा हुई। मुनि श्री जेठमलजी द्वारा। इसमें अनेक मत-मतातरो की मान्यता का उल्लेख किया गया है। उनके मत को समझाने के लिये उदाहरणो का भी प्रचुर मात्रा में उपयोग किया गया है। यह चर्चा पुस्तिका आपश्री द्वारा अजमेर में लिखी गई। सवत् १९२४ वैशाख वदि १० शुक्रवासरे अजमेर मे लिखितं श्री तिलोकरिख।

इसी समय आपश्री द्वारा लिखा हुआ एक पन्ना मिला है। वह आप की हस्त-कुशलता, लाघवता और चित्राकन शैली का आदर्श उदाहरण है। उसे अंग्रेजी लिपि को मन में रखकर पढने से एक ओर एम् और दूसरी ओर से देखने पर डब्लू की आकृति प्रतीत होती है। यह सारा पन्ना काव्यमय है। उस पन्ने के

अदर के चारो कोने में स्थित एक रुपये जितनी जगह मे पूज्यपाद महाराजश्री ने अपनी चित्रकारिता का जो नमूना पेश किया, उसे देख दातो तले अगुली दवानी पडती है। एक ओर एक कोनें मे एक रुपये जितनी जगह मे १५२ हाथी चित्रित करने पर भी कुछ जगह खाली रह गई है। दूसरी ओर इतनी ही जगह (एक रुपये जितनी जगह) मे १३६ हाथिओ को चित्रित किये है। तीसरे कोने मे लवण समुद्र सहित जम्बूद्वीप का नकशा खीचा है। पन्ने का चौथा कोना खाली है। पन्ने के प्रथम पृष्ठ के आधे भाग में काव्य को नागपाश मे चित्रित किया है, अर्थात् नागपाश काव्यमय लिखा है। सवत् १९२४ वैशाख वदि ३० लिखि तिलोररिख।

पन्ने के दूसरे पृष्ठ मे एक लघु अक्षरमय काव्य है। सब लघु अक्षर है, एक भी दीर्घ नही। साथ में एकतीसा छंद भी लिखा है। ऐसा अनुमान है कि यह कृति आपश्री ने अजमेर में ही लिखी होगी।

अजमेर से आपका ठाणा २ से किसनगढ में पदार्पण हुआ। यहाँ से फते-गढ, सरवाड, अजगरा आदि क्षेत्रो को स्पर्श कर आपने केकडी क्षेत्र को पवित्र किया। केकडी से पनवाड आऊ होते हुए बूदी को अलकृत किया। बूदी से कोटा क्षेत्र, लगभग चौवीस मील की दूरी पर स्थित है। बूदी क्षेत्र से विहार कर आपश्री ने मध्यवर्ती क्षेत्रो को स्पर्श कर ठाणा दो से कोटा में पधारकर वहाँ के निवासियो को कृतकृत्य किया। कोटा क्षेत्र के रामपुरा मे मनोहरदासजी के नोहरे मे आप विराजमान हुए।

संत–समागम और गुण-ग्राहकता

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि जी म० के समय में स्थानकवासी समाज की शोभा को बढाने वाले जो चारित्रशील, क्रियावादी, विद्वान् संत थे, उनसे जब कभी आपकी भेट होती तब आपको बहुत प्रसन्नता होती। वे अपने समय का अधिकतर भाग उन्ही के साथ व्यतीत करते। परस्पर अनेक विषयो पर विविध ज्ञानचर्चा होती। अपने से उत्कृष्ट सतो मे जो कुछ ग्रहण करने योग्य वस्तु होती, उसे शिष्य-भाव से ग्रहण करते। गुणो की कदर करते। गुणी सन्तो को देखकर उन्हे बहुत प्रमोद होता था। "सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम्" को अपने जीवन में ताने-बाने की तरह अपना लिया था। सदैव दूसरो के गुणो का ही दर्शन करते, दोषो की ओर प्रायः उनकी दृष्टि नही जाती थी। गुणो को ग्रहण करते समय उन्हे कभी सन्तोष नही होता था।

वाल्मीकि-रामायण मे श्री वसिष्ठ जी रामचन्द्र जी से कहते है, हे रामचद्र !

येषां गुणेष्वसंतोषो, येषां रागः श्रुतं प्रति ।
सत्यव्यसनिनो ये च, ते नराः पशवोऽपरे ॥

गुण ग्रहण करने के विषय में असंतोष रखते है, शास्त्र का श्रवण या अध्ययन करने मे रुचि रखते है, और सत्यमय जीवन व्यतीत करना ही जिनका व्यसन है, वे ही इस संसार में मनुष्य है, अन्य और सब पशु है, । इन तीनो बातो के आप मूर्तिमान् स्वरूप थे ।

पूज्यपाद महाराजश्री का पूज्य श्री रेखराजजी म०, पूज्य श्री धर्मदासजी म० के सप्रदाय के प० श्री ज्ञानचंद्रजी म०, श्री मोघजी स्वामीजी म०, कोटा संप्रदाय के सुप्रसिद्ध विद्वान् पूज्य श्री छगनलालजी म० पंडितवर्य श्री फकीरचदजी म०, पूज्य श्री उदयसागरजी म० इत्यादि महापुरुषो के साथ समागम हुआ । आपमें गंभीरता, सरलता, शातता, गुण-ग्राहकता आदि गुण प्रचुर मात्रा में होने से आपश्री सब के प्रेम-पात्र बन गये । जो कोई संत आपके परिचय में आते, वे जीवन—पर्यंत आपको स्मरण करते रहते । उनकी चर्चा चल जाने पर गुणो की प्रशसा करने मे सतोष मानते थे ।

ऊपर हमने जिन सतो का उल्लेख किया, उनके अतिरिक्त आपका अन्य अनेक संतो से मिलाप हुआ । पर वह कब और किस स्थान पर, इन सब का स्पष्ट उल्लेख नही होने से हमने उनका यहाँ नाम-निर्देश नही किया ।

पाली क्षेत्र मे शास्त्रज्ञ वयोवृद्ध स्थविर मुनि श्री पूरणमलजी म० (बावाजी म०) विराजते थे । उस समय श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रमण सघ के प्रधान मत्री पं० रत्न श्री आनदऋषि जी म० आदि ठाणे ४ का सवत् २०१० मे वहाँ पधारना हुआ । श्री बाबाजी महाराज अत्यंत गुणग्राही थे । वयोवृद्ध होते हुए भी आपको गायन का बहुत शौक था । आपकी आवाज गभीर और बुलंद थी । कंठ मधुर था और वाणी में मृदुता थी । इसलिये श्रोतृवृन्द मे जो कोई आपके भाषण मे उपस्थित होता, वह बर-बस आपकी ओर आकर्षित हो जाता था । शास्त्रो के सतत अध्ययन, स्वाध्याय तथा थोकडे आदि बोलचाल की ओर आपकी बहुत अभिरुचि थी । बिलकुल निर्भीक वक्ता थे । अपने अंतर की बात सदैव किसी की राय में आये बिना निर्भीक होकर कह देते थे । आप अपने मुखारविंद से किसी को भी उच्च स्वर से यदि कोई बात कहते, तो वह उसका विपरीत अर्थ नहीं लेता था । महाराज साहब के वचनो मे श्रद्धा रखकर उनके कथनानुसार चलने का प्रयत्न करता था । आपके वचनो का अद्भुत प्रभाव पडता था । उनके मुंह से निकले हुए वचन व्यर्थ नही जाते थे । एक प्रकार से आप

अमोघ वक्ता थे। प्रधानमन्त्रीजी म को बुलाते समय आप उनके नामका उच्चारण नही करके बडे प्रेम और आदर से "ऋषि मुनि" ऐसा सबोधन कर बुलाते थे। आपश्री से प्रासंगिक बातचीत करते हुए आपके मुखारविंद से यह बात सुनने मे आई।

एक बार चितौडगढ क्षेत्र मे यथार्थनामधेय श्री ज्ञानचंद्रजी महाराज तथा पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज का समागम हुआ। परस्पर ज्ञानचर्चा करते हुए इतना अधिक समय हो गया कि दोनो को समय का कुछ भी ध्यान नही रहा। संध्याकाल समीप आ चुका था। इसलिये पूज्यपाद महाराजश्री अपने स्थान पर पहुचने के लिये श्री ज्ञानचद्रजी म० साहब से अनुमति लेकर शीघ्रता-पूर्वक निकले। जल्दी जल्दी मे आप अपना रजोहरण भूल कर दूसरे का रजोहरण लेकर चल पडे। यह बात जब श्री ज्ञानचंद्रजी म० को ज्ञात हुई, तब आपने अपने एक शिष्य को पूज्यपाद म० श्री का रजोहरण देकर उसी समय तुरत भेजा। इधर रास्ते में चलते २ म० श्री को भी पता चला कि अरे ! मैं अपना रजोहरण तो वही छोड आया हूँ। अपने रजोहरण के स्थान पर यह किसी दूसरे का रजो-हरण उठा लाया हूँ। अतः उसे लौटाकर अपना रजोहरण लानेके लिये आपश्री उलटे पैर लौटे। रास्ते में दोनो का संगम हुआ और परस्पर एक दूसरे के परिवर्तित रजोहरण को देकर अपने २ स्थान पर गये। इस घटना से पाठक समझ सकते है कि इन दोनो संप्रदायो के पूर्वजो में परस्पर कितना स्नेह, आदर और घनिष्ठ सबध था।

चातुर्मास के निमित्त कोटा क्षेत्र में पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० का ठाणे २ से पधारना हुआ। उस समय असातावेदनीय कर्म के उदय से एकाएक आपके शरीर में व्याधि उत्पन्न हुई। इससे आपका शरीर बहुत अशक्त एवं क्षीण हो गया। उस समय पूज्यपाद मुनि श्री ज्ञानचद्रजी म० कोटा मे ही विराजमान थे। आपश्री की शारीरिक व्याधि के समाचार ज्ञात होते ही श्री ज्ञानचंद्रजी म० एकदम शीघ्रता से आपके पास आये। सुख-साता पूछकर आपने महाराजश्री को सान्त्वना देते हुए कहा--"आप घबराइए मत, हम सब प्रत्येक समय आपकी सेवा के लिये प्रस्तुत है। आपको किसी प्रकार के कष्ट तथा अभाव का अनुभव नही होने देगे। यदि यहाँ पर आपकी परिचर्या ठीक तरह नही हुई तो मै आपको अपने यहां पर ले चल सकता हूँ। ऐसा न समझे कि हम परस्पर भिन्न २ सप्र-दाय के है। बाह्य दृष्टि से अलग २ संप्रदायवाले होने पर भी वस्तुत: एक ही है। पूज्यपाद मुनि श्री ज्ञानचद्रजी म० साहब के सान्त्वनापूर्ण इन प्रेमल शब्दो को

सुनकर महाराजश्री की आधी वीमारी उसी समय नष्ट हो गई। आपको वहुत धैर्य का अनुभव होने लगा। पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० के पास पूज्यपाद श्री ज्ञानचद्रजी म० के निरंतर आते रहने के कारण जो थोडी वहुत व्याधि वच रही थी, वह भी थोडे ही दिनो में शात हो गई और शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया।

संवत् २०१० में वावाजी म० और प्रधान मत्रीजी म० का पाली में समागम हुआ। यहाँ पर आप शेपकाल तक विराजे। जव आप दोनो एक ही साथ पाली मे कालयापन कर रहे थे, तव वावाजी म० ने प्रधानमत्रीजी म० के सामने अपने ये उद्‌गार प्रगट किये "पू० श्री ज्ञानचद्रजी म० और पू० श्री तिलोकऋषिजी म० इन दोनो में परस्पर इतना अधिक घनिष्ठ सम्वन्ध था कि सम्प्रदाय अलग होने पर भी ऐसा प्रतिभास होता था कि ये दोनो महापुरुष मानो एक ही सप्रदाय के है और दोनो गुरुभाई है। दोनो परस्पर एक दूसरे का कार्य कर प्रसन्नता का अनुभव करते थे। इस प्रकार ये दोनो महापुरुप अपनी दीर्घ-दर्शिता और गुण—ग्राहकता के कारण इतने निकट आ गये थे।

तत्पश्चात् वावाजी म० ने प्रधान मंत्रीजी म० से कहा कि, हे ऋपि मुनि! आप इस ओर ही क्यो विहार कर रहे है? आपके तथा हमारे पूर्वजो ने कितने कष्ट और परीपह सहनकर मालव प्रान्त में जैनधर्म के उद्धारार्थ जो क्षेत्र खोले, अव उधर वहुत समय से मुनिराज नही विचरने के कारण वे नष्ट हो रहे है। आपका कर्तव्य है, उस ओर विहार कर आप उन क्षेत्रो की सुधि लें। आपके पूर्वजो की चरण—रज से पवित्र उन क्षेत्रो का स्पर्श करना आवश्यक है। मेरी वलवती इच्छा है कि मै स्वयं उधर जाकर उन क्षेत्रो मे नवीन प्राण का संचार करूँ, पर अव यह शरीर वहुत वृद्ध हो गया है। चलने की शक्ति नहीं रहने से स्थिरतापूर्वक थोडा २ विहार होता है। इच्छा होने पर भी केवल शारीरिक क्षीणता के कारण मै उसकी पूर्ति नही कर सकता। आपकी तो ऐसी वात नही। आप पूर्णरूप से समर्थ है। शरीर और मन से दृढ है। वुद्धि भी प्रखर है। इसलिए सुदूर दक्षिण से इधर आकर अव एक वार मालव प्रान्त मे आपका विहार करना परम कर्तव्य है। श्री वावाजी म० ने अपने मुखारविंद से प्रधान मंत्रीजी म० साहव के सामने ऐसे उद्‌गार अनेक वार प्रगट किये।

वावाजी म० के ये वचन सुनकर प्रधान मत्रीजी म० ने फरमाया कि मेरी भी भावना है कि जिन क्षेत्रो पर अपने पूर्वजो का उपकार है, उन क्षेत्रो की ओर विहार कर उन्हे सभालना अपना कर्तव्य है। परतु अभी तक उसके लिये समय परिपक्व

नही हुआ है। फिर भी आपश्री के हार्दिक उद्‌गारो से प्रेरित होकर आपके सामने वचन वद्ध होता हूं कि समय आने पर आपके वचनो को सफल करने के लिये उन क्षेत्रो को स्पर्शने की सुखे-समाधे भावना रखता हूँ। संयोगवश उसके बाद थोडे ही समय मे उन क्षेत्रो को स्पर्शने का योग प्राप्त हो गया।

भीनासर का साधु–सम्मेलन होने के पश्चात् सवत् २०१३ में श्रमण-संघीय उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी म० ठाणा ४ ने प्रतापगढ क्षेत्र में चातुर्मास किया था। उस समय लघु गुरुबधु महात्माजी श्री उत्तमऋषिजी म० का शाजापुर मे चातुर्मास था। चातुर्मास काल मे ही एकाएक आपका शरीर लकवे से ग्रस्त हो गया। उस लकवे के कारण शारीरिक शक्ति एकाएक नष्ट हो गई। महात्माजी म० के लकवे के समाचार से उपाध्यायजी म० को बहुत आघात लगा। औषधोपचार के लिये शाजापुर श्री सघ की सम्मति से श्री मगनलाल भाई ने एवं डॉ. वसतलालजी जैन ने सहयोगपूर्वक सेवा की। इसी तरह महात्माजी की सेवा मे स्थित मुनि श्री शातिऋषिजी म० ने अत करणपूर्वक सेवा–वैयावृत्य का लाभ लिया।

चातुर्मास समाप्त होते ही उपाध्यायजी म० ने शाजापुर में विराजित महात्माजी महाराज से मिलने के लिये प्रतापगढ से विहार कर मंदसौर, सीतामऊ, सुवासरामडी, चौमेला, गगधार, वडोद, डग, जयसिंगपुर वडोदिया, आदि क्षेत्रो का स्पर्श करते हुए शाजापुर में पदार्पण किया। शाजापुर पहुँचते ही सीधे महात्माजी म० के पास जाकर उनकी सुख-साता पूछी। वहाँ कुछ दिन ठहरकर महात्माजी की शारीरिक स्थिति ठीक देखकर उनके साथ सारंगपुर, आकोदिया आदि ग्रामो को विचरते हुए शुजालपुर क्षेत्र को पावन किया। यहाँ माहात्माजी को ठाणा २ से रखकर उपाध्यायजी म० ठाणे ४ से विहार कर सीहोर छावनी होते हुए भोपाल पधारे। भोपाल से चलकर सिहोर, इच्छावर और आष्टा आदि स्थानों को अलंकृत किया। आष्टा से पुन शुजालपुर पधारकर सवत् २०१४ का चातुर्मास स्थविरा महासतीजी श्री उमरावकुँवरजी म० की शारीरिक अवस्था के कारण जिन-शासन-प्रभाविका पंडिता महासतीजी श्री रतनकुवजी म० विदुषीसतीजी श्री वल्लभकुवरजी म० आदि ठाणे १० और उपाध्यायजी म० आदि ठाणे ६ ने साथ ही वहाँ पर व्यतीत किया। चातुर्मास शातिपूर्वक संपन्न होने पर विहार करने के भाव थे, परतु भवितव्यता बलवती है। अकस्मात् महात्माजी श्री उत्तमऋषिजी म० का स्वास्थ्य अशात होने से मार्गशीर्ष कृष्णा ८ गुरुवार के रोज समाधिपूर्वक सायकाल के ६॥ बजे करीब उनका आयुष्य पुर्ण हुआ। इस

प्रसंग पर सती-शिरोमणि यथार्थनामधेया श्री रत्नकुवरजी म० की उपस्थिति रहने से उपाध्यायजी म० को विशेष समाधान मिला। शुजालपुर श्रीसंघ ने उत्साहपूर्वक अंतिम क्रिया-संबधी सेवा का लाभ लिया था।

शुजालपुर से विहार कर उपाध्यायजी म० ने शाजापुर, मोना, नलखेडा, महेद्रपुर, नागदा, खाचरोद, उन्हेल आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए उज्जैन में पदार्पण किया। यहाँ से देवास क्षेत्र स्पर्शते हुए इदौर आदि क्षेत्रो की ओर विहार किया। इस प्रकार वयोवृद्ध स्थविरपदविभूषित श्री पूरणमलजी म० (बावाजी म०) के सद्भावना-युक्त हृदयोद्गारो का परिपालन हुआ।

फिर दक्षिण प्रान्तस्थ पाथर्डी क्षेत्र में चातुर्मास की विनति स्वीकृत होने से उपाध्यायजी म० ने ठाणा पाँच से इदौर से विहार कर सेधवा, चोपडा, अमलनेर, धुलिया, मालेगाव, मनमाड, येवला, कोपरगाव, श्रीरामपुर, बेलापुर, देवलाली, राहुरी, वाम्बोरी, पिपलगाव, अहमदनगर, चिचोडी (सिराल) लोहसर, करंजी, तीसगाव, निवडुगे आदि क्षेत्रो में होते हुए सवत् २०१५ के चातुर्मास-निमित्त पाथर्डी मे पदार्पण किया।

हम ऊपर उल्लेख कर चुके है कि पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० जब कोटा पहुँचे, तब एकाएक उन्हे शारीरिक व्याधि हो गई थी। पर पूज्यपाद मुनि श्री ज्ञानचंद्रजी म० के सहवास से थोडे ही समय मे उसका परिहार हो गया। कोटा चातुर्मास के समय आपश्री ने श्री आचारागसूत्र का वाचन विशद व्याख्यापूर्वक किया। आप प्रथम से ही कुशल वक्ता थे। उसके साथ वाणी का माधुर्य तथा शास्त्रो का तलस्पर्शी ज्ञान इतना अच्छा था कि व्याख्यान के समय श्रोतृवृन्द बरबस आपकी ओर आकर्षित हो जाता था। व्याख्यान के समय उनका हृदय-कमल विकसित होकर वह सूर्य की किरणो की तरह आपके उपदेशरूपी ज्ञान के प्रकाश को सर्वात्मभाव से ग्रहण कर अधिकाधिक आनद का अनुभव करता था। श्रोतागण आपके अमृतोपम उपदेश को सुनने के लिये भ्रमर की तरह सदैव लालायित रहते थे। किंबहुना आपके विहार से मालव आदि प्रान्तो में जैनधर्म की प्रभावना तथा उसके प्रचार की ध्वजा सदैव लहराती रही। कोटा में आपके विराजाने से धर्म-ध्यान और तपश्चर्या आदि विपुल परिमाण में हुए। सवत्सरी के पूर्व पूज्यपाद महाराजश्री का २२ वाँ लोच हुआ। इस प्रकार यहाँ का चातुर्मास प्रारंभ मे थोडीसी व्याधि के बाद अत्यत सुख-शाति और आनदपूर्वक व्यतीत हुआ।

विक्रम संवत् १९२६ का चातुर्मास पुण्य-भूमि शुजालपुर में

पूज्यपाद महाराजश्री ठाणे २ ने कोटा क्षेत्र में चातुर्मास-काल पूर्ण करके विहार किया। छोटे २ क्षेत्रो को स्पर्शते हुए ४४ मील की दूरी पर स्थित छावनी पधारे।

यहाँ से झालरा पाटण की ओर पदार्पण किया। कुछ दिन वहाँ विराजकर पुन विहार के लिये कटिबद्ध होकर रायपुर, अमरकोट, मोएत होते हुए बल्गेटा क्षेत्र में पधारे। फिर बडागाम होते हुए आपश्री ने मोनो क्षेत्र मे पदार्पण किया। यहाँ पर आपश्री द्वारा ज्योतिप सबधी एक अद्भुत पत्र लिखा हुआ प्राप्त हुआ है। उसमें नवग्रहादि यत्र ज्योतिपचक्र जाप-विधिसहित तथा नवग्रहो के चित्र भी अकित किये है। सवत् १९२५ फाल्गुन शुक्ल १५ शुक्रवासरे लिखित तिलोकरिख मोना मध्ये। यह कृति इतने सुन्दर ढग से लिखी गई है कि इसे देखते हुए जी नही अघाता। वह अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। यह कृति श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी के अतर्गत हस्तलिखित शास्त्र भडार मे सुरक्षित रीति मे सस्थापित है।

मोना मे सारगपुर होते हुए शुजालपुर पधारना हुआ। महाराजश्री के पदार्पण से यहाँ के विज्ञ श्रावको के हर्ष की सीमा नही रही। आपश्री को वे लोग चितामणि रत्न के समान समझते थे। इसलिये हाथ मे आये हुए इस अमूल्य रत्न को बिना कुछ आत्मिक लाभ प्राप्त किये हाथ से बाहर नही जाने देना चाहिये। ऐसा विचार कर वहाँ के श्रावको द्वारा चातुर्मास की विनति की गई। श्रावको का पहले से ही धर्म के प्रति उत्कट अनुराग तथा प्रेम था। फिर भी सब श्रावको का इस प्रकार का उत्कृष्ट प्रेम और श्रद्धा देखकर श्रीसघ की विनति स्वीकृत की गई। यहाँ पर आपका तेईसवाँ लोच हुआ। शुजालपुर से विहार कर छोटे बडे क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपश्री ने शाजापुर में पदार्पण किया और वहाँ के प्रसिद्ध कसेरवाडी स्थानक मे विराजे। वह स्थानक विशाल है। यहाँ से अनेक क्षेत्रो को पावन करते हुए छत्तीस मील की दूरी पर स्थित देवास क्षेत्र में पधारे। यह क्षेत्र भी ऋषि-संप्रदायी सतो द्वारा ही खोला गया है। देवास से आपश्री का ठाणा २ से इदौर मे पदार्पण हुआ। वहाँ पर कुछ समय तक विराज-कर पुनः देवास शाजापुर, सारगपुर होते हुए सवत् १९२६ का चातुर्मास करने के लिये आपश्री ठाणा २ से शुजालपुर में पधारे।

यहाँ पर आपश्री द्वारा श्री सूयगडागसूत्र प्रथम श्रुतस्कध के पन्ने ४० स्वार्थ सुदर लिपि मे लिखे गये। सवत् १९२६ आषाढ शुक्ल ४ लि० तिलोकरिख शुजालपुर मध्ये।

चातुर्मास-काल अत्यंत उत्साहपूर्वक सपन्न हुआ। धर्मोन्नति भी अधिक हुई। व्याख्यान में श्री अनुत्तरोववाई सूत्र तथा श्रीसूत्रकृताग सूत्र का वाचन हुआ। आपश्री का चौवीसवाँ लोच सवत्सरी के पूर्व में हुआ इस चातुर्मास मे आपश्री

के विराजने से धर्मध्यान, तपस्या और व्रत प्रत्याख्यानादि विशेष हुए। धर्म की प्रभावना भी प्रचुर परिमाण में हुई। इस प्रकार गुजालपुर का चातुर्मास-काल शांतिमय और उत्साहपूर्ण वातावरण में व्यतीत हुआ।

विक्रम संवत् १९२७ का चातुर्मास मालवप्रांतीय मुख्य नगर रतलाम में।

गुजालपुर का चातुर्मास सानंद पूर्ण कर के आपश्री ने पुन सिहोर छावनी की ओर विहार कर भोपाल को पावन किया। यहापर आपने कुछ दिन तक स्थिरवास किया। यहा से पुनः सिहोर होते हुए गुजालपुर पधारे। तदनतर छोटे २ क्षेत्रो को स्पर्शते हुए शाजापुर मे आपका शुभागमन हुआ। शाजापुर क्षेत्र से देवास स्पर्शकर आपने इंदोर में पदार्पण किया। इदोर से रतलाम की ओर विहार किया। बागडदा, हातोद, पालडी, अढाएदा, गौतमपुरा, बडनगर, रुणीचा, बोरा, धराड, आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए धर्मका प्रचार किया। रतलाम पहुचने पर वहा के श्री संघ ने आपसे विनति की कि यह नगर मालव प्रात का केद्रस्थान है। यहा समय समय पर श्रेष्ठ सतो का आवागमन होता रहता है। निरतर संतो की चरण-रज-से पवित्र होने के कारण यहा के लोगो की धर्म की ओर विशेष रुचि है। यहा के श्रावक शास्त्रज्ञ एव धर्मज्ञ है। इस रतलाम भूमि ने ही आपश्री सरीखे नर-रत्न को जन्म दिया। और आपने शैशवावस्था मे वैराग्य धारण कर के इस ससार को छोडकर प्राणीमात्र के सामने एक आदर्श उदाहरण उपस्थित किया है। दीक्षा लेने के बाद आपने धर्म का जो प्रचार किया, वह किसी मे छिपा नही है। इस भूमि मे पैदा होने पर भी आपके सदुपदेशो का लाभ अन्य स्थानो की जनता उठा रही है। पर हम उससे वचित है, अतएव हम पर दया करके आगामी चातुर्मास की हमारी विनति स्वीकृत कर रतलाम नगर में ही वर्षाकाल व्यतीत कीजिए। रतलाम पर ऐसे ही पूज्यपाद महाराजश्री का आकर्षण था। फिर भला वे वहाके निवासियो के आग्रह को कैसे टाल सकते थे? आपने श्री सघ की प्रार्थना को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और विशेष कारण खुला रखकर चातुर्मास करने की स्वीकृति दी।

आपका पच्चीसवा लोच रतलाम मे हुआ। आपका व्याख्यान सुनकर वहा की जनता अत्यंत प्रसन्न होती थी। यहा तक कि उनकी यही इच्छा बनी रहती थी कि व्याख्यान चलता ही रहे। आपकी वाणी इतनी मृदु और मधुर थी कि श्रावक-गण उसे श्रद्धापूर्वक सुनकर गद्गद हो जाते थे। वे व्याख्यान के बाद आपश्री की मुक्तकंठ से भूरि भूरि प्रशंसा करते थे।

रतलाम से विहार कर आपने पाडल्या होते हुए जावरा में पदार्पण किया। तत्पश्चात् मम्मटखेडा, कचनारा, फत्तेगड, खलचीपुरा, जनकुपुरा, धुन्‌डका, नगरी, रणाएरा, इंगनोद, पीपलिया, वरडिया, खजूरिया और ब्ररडावदा से पुनः जावरा, पीपलोदा पुन्याखेडी, पीपलोदा, सैलाना धामणोद, आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपने चातुर्मास के निमित्त रतलाम शहर में पदार्पण किया। वहा आकर रतलाम के मुख्य स्थानक माणक चौक मे विराजमान हुए। वह स्थानक अत्यंत विशाल है।

चातुर्मास-काल मे व्याख्यान के समय भगवती सूत्रका वाचन होता था। धर्मप्रेमी और शास्त्रज्ञ श्रावक-वृद प्रतिदिन नियत समय पर व्याख्यान मे उपस्थित होते थे। चातुर्मास-काल मे धर्मध्यान, व्याख्यान वाणी, तपश्चर्या, व्रत प्रत्याख्यानादि विशेष रूप से हुए। श्रीसंघ ने जिस उत्साह से महाराजश्री की सेवा मे चातुर्मास के लिये विनति की, उसी उत्साहपूर्ण भाव से सेवाभक्ति करके और शास्त्र श्रवण का लाभ लेकर चातुर्मास को पूर्ण सफल बनाया। धर्म की भी बहुत प्रभावना हुई। इस चौमासे में आपश्री ठाणा ५ पाच से विराजे थे। आपश्री का यहा संवत्सरी के पूर्व छव्वीसवा लोच हुआ। इस प्रकार यहा का चातुर्मास विशेष सुखशाति तथा बहुत उत्साह और हर्षपूर्ण वातावरण में सपन्न हुआ।

इस चातुर्मास में आपके द्वारा निर्मित श्री नदमाणिकार का चरित्र है। सवत् १९२७ मिति श्रावण शुक्ल २ शनिवार को पूर्ण किया है।

श्री शाजापुर क्षेत्र में संवत् १९२८ का चातुर्मास

श्री रतलाम क्षेत्र मे चातुर्मास पूर्ण कर के आपश्री ने ठाणा ३ के साथ विहार किया। रतलाम से पुन्याखेडी, साकतरी, रायपुर, सालमगढ, नागदी, वडी, साकतरी, अरणोद, खेरोद, आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुये आप प्रतापगढ पधारे। यहाँ से अब आपश्री का विहार मेवाड प्रान्त की ओर हुआ। प्रतापगढ से सिद्धपुरा, रंठाजणा, वरडीया, जीरण, चिताखेडी आदि छोटे २ क्षेत्रो को पावन करते हुये छोटो सादडी में पदार्पण किया। यहाँ से बिल्या होकर आपश्री वडो सादडी पधारे। कुछ दिन यहाँ स्थिरता कर के बोहेडा, पराणा कानोड, भीडर, कुथवा, खेरोदा, खराण, दरोली, डवोक देवारी, आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए मेवाड प्रात की राजधानी उदयपुर क्षेत्र मे सवत् १९२७ माघ शुक्ल नवमी के दिन आपका शुभागमन हुआ। आपश्री यहाँ पर बीस दिन विराजमान रहे। आपके पधारने से श्री सघ ने नवीन चैतन्य का अनुभव किया। चारो ओर उत्साह का वातावरण छा गया और धर्म की बहुत प्रभावना हुई। यहाँ से विहार कर खेरोदा, वासडा,

हिता, मगलवाड, मोरवण, चकारडा, नकूम, विनीता' वाडी, दारु, धनेरा, छावणी (नीमचकी) और नीमच क्षेत्र को पावन किया । इन छोटे २ क्षेत्रो में पधारने से वहाँ के भावुक प्राणियो को धर्म का नवीन बोध हुआ। जैनधर्म के प्रति उनकी जो श्रद्धा थी उसमे वृद्धि हुई। नीमच से विहार कर आपश्री नारायणगढ़ पधारे। यहाँ पर आपश्री ने अत्यंत श्रम-पूर्वक सुदर अक्षरो में एक पन्ना लिखा है। अक्षर इतने अधिक सुदर, स्पष्ट एव सूक्ष्म है कि दातो-तले अंगुली दबानी पडती है। एक ही पन्ने मे श्री दशवैकालिक सूत्र के दसो अध्ययनो की ७५० गाथाएँ ऐसे सुदर ढंग से अंकित की गई है कि बीच मे कही काटकूट या छेका-छेकी नही है। दशवैकालिक सूत्र समाप्त होने के बाद दूसरे पृष्ठ मे जो कुछ जगह बचकर रह गई थी, उसमे श्री पुच्छिमु णं की २९ गाथाएँ (श्री वीरस्तुति) और २५६ ढगले का थोकडा लिखा हुआ है। सवत् १९२८ चैत्र शुक्ल २ नारायणगढ़ लिखित श्री तिलोकरिख। ऐसे आपश्री द्वारा लिखे हुए पाँच-छह दशवैकालिक सूत्र है। ये पन्ने संत-सतियो के पास है। दशवैकालिक सूत्र की यह हस्तलिखित प्रति विशेषरूप से अवलोकनीय है। इसके दोनो ओर के फोटो खीच कर ब्लाक लिये गये है। युवाचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० का सवत् १९९४ में मुबई स्थित कादावाडी के उपाश्रय में चातुर्मास था, तब दानवीर, सेवाभावी, धर्मप्रेमी, सुश्रावक श्रीमान् मगनलाल भाई (सी पी. डोसी कपनी) ने अपनी माता के स्मरणार्थ इसे प्रकाशित कर श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी को समर्पित किया है। इसका स्पष्टीकरण आगामी प्रकरण में पाठक देख सकते है।

नारायणगढ से आपका विहार जनकुपुरा बुडो की ओर हुआ। पुन नारायणगढ़ से लुणाएदा होते हुए जनकुपुरा मे आपने पदार्पण किया। शारीरिक कारण से यहाँ पर आपका सत्तावीसवा लोच हुआ। वहाँ से अमरावद, आकोदडा, धणी, पाउवेडी, कोटडी, निनोर, पुन्याखेडी आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए आपश्री रतलाम पधारे। यह क्षेत्र चारो ओर से मध्य में होने से यहाँ सत-सतियो का विशेष रूप से आवागमन होता रहता है। अधिकतर वयोवृद्ध सत-सतियाँ यहाँ स्थिर-वास करती है। संत-सतियो की निरंतर कृपादृष्टि रहने से यह नगर एक प्रकार से धार्मिक नगर है। यहाँ पर आपने एक कृति की रचना की है। नाम है प्रथम बावनी, यह ग्रंथ इंद्रवज्रा छद में लिखा गया है। इद्रविजय छंदोबद्ध तिलोक-बावनी सवत् १९२८ वैशाख शुक्ल ९ शनिवार के दिन पूर्ण की है। यहाँ पर आपने कुछ दिन तक स्थिरता की। फिर रतलाम से विहार कर बड-नगर, गौतमपुरा, बडोदा, फत्तेबाद जवासिया, भेरुगढ होते हुए उज्जैन पधारे।

वहाँ से काएथो, नामुखेडी कणासा होते हुए आपश्री का ठाणा तीन से शाजापुर क्षेत्र में चातुर्मास के निमित्त शुभागमन हुआ। यहाँ पहुँच कर आप कसेरवाडी के विशाल स्थानक मे विराजे।

चातुर्मास–काल मे श्रावक-श्राविकाओ का उत्साह दर्शनीय था। धर्मध्यान, तपस्या आदि आपके प्रभाव से विशेष रूप से हुई। यहाँ सवत्सरी के पूर्व आपश्री का अट्ठावीसवा लोच हुआ। सावत्सरिकपर्व शान्तिपूर्वक सानद संपन्न हुआ।
यहाँ के चातुर्मास–काल में आपने श्रावण शुक्ल प्रतिपदा के दिन मगल-बत्तीसी की रचना पूर्ण की है। वह अतिम पत्र प्राप्त है, परतु पूर्व पत्र उपलब्ध नही है। इसी चातुर्मास में आपश्री द्वारा रचित एक ओर विशिष्ट कृति है। जिस का नाम चित्रालंकार काव्य है। उसे देखकर विद्वान् एव कविलोग आश्चर्य-चकित होते है। इसका स्पष्टीकरण आगे चलकर पूज्यपाद महाराजश्री की कला-कृतियो पर स्पष्टीकरणनामक प्रकरण मे दिया गया है। पाठक वहाँ से जानकारी प्राप्त कर सकते है।

आपश्री द्वारा रचित एक महाबल मलया सुदरी की चौपाई पत्र सख्या ३१ भी है। सवत् १९२८ भाद्रपद शुक्ल ९ शुक्रवार, लिपि कृत तिलोक, ग्राम शाजा-पुरमध्ये। यह प्रति ब्यावर जैन गुरुकुल में स्व पडिता प्रवर्तिनीजी श्री राज-कुँवरजी म० की विदुषी शिष्या प्र. श्री उज्ज्वलकुँवरजी म० की नेश्राय मे रहे हुए शास्त्र-भंडार संग्रहालय मे थी। वह चौपाई सवत् २०१२ के साल में प्रधान मन्त्रीजी म० को श्री धीरजलाल भाई तुरखिया से उपलब्ध हुई। इस चातुर्मास–काल मे सवत् १९२८ आश्विन कृष्ण ६ के दिन आपने एक ज्योतिषचक्र को लिपिबद्ध किया। वह चक्र अत्यत आकर्षक ढंग से लिखा गया है। उसे देखते ही चित्त प्रफुल्लित होता है। चक्र की प्रत्येक आकृति अनेक प्रकार के रंगो से चित्रित है। अवकहडा चक्र के राशि, नक्षत्र आदि बताते हुए अत्यत सुदर शैली से अकन किया गया है। इस चक्र का विशद स्पष्टीकरण आगामी प्रकरण में करने में आया है।

पन्ना नं० ७ के प्रथम पृष्ठ पर मार्गणा के बोल ५४ से ९८ तक लिखे हुए है। सवत् १९२८ कार्तिक वदि १२ लि तिलोकरिख। थोकडा बोल-सग्रह का पन्ना नं ८ में ९९ बोल विषयक संपूर्ण विवरण दिया गया है। सवत् १९२८ कार्तिक वदि लि तिलोकरिख। पीछे के हिस्से मे चक्रवर्ती की ऋद्धि के ९४ बोल तक लिखा हुआ है।

शाजापुर चातुर्मासमें प्रतिदिन उववाई सूत्र तथा भगवती सूत्रका वाचन नियत समय पर होता था। व्याख्यान के समय आप ऐसी सरल भाषाका प्रयोग

करते थे। कि साधारण व्यक्ति को भी अच्छी तरह समझ में आ जाय। इससे जैन-जैनेतर समाज अधिक सख्या मे उपस्थित होकर आपके व्याख्यान का लाभ लेता था। इस चातुर्मास में भी आपकी उपस्थिति से अन्य चातुर्मासो की तरह धर्म-ध्यान तपश्चर्या आदि अधिक परिमाण में हुए। सवत्सरी के पूर्व यहा पर आपश्री का अट्ठा-वीसवा लोच हुआ। सवत्सरी पर्व भी विशेष उत्साह एवं शाति-पूर्ण वातावरणमें संपन्न हुआ। उस समय अनेक ग्रामोके लोगो ने उपस्थित होकर क्षमापना मे भाग लिया था। अधिक क्या कहा जाय? श्रीसंघ ने जिस उत्साह से सेवा में चातुर्मास के लिये विनति की, उसी उत्साह से तन-मन-धनसे सेवा-भक्ति करके इस चातुर्मास को पूर्ण सफल बनाया।

संवत् १९२९ का चातुर्मास धरियावद क्षेत्रमें,

शाजापुर में शातिपूर्वक चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री का ठाना तीन से नल-खेडाकी ओर विहार हुआ। पहले आप मोना पधारे। मोना से विहार कर पुन आपने नलखेडा को पवित्र किया। फिर से आपका मोना में पदार्पण हुआ। यहां पर आपने एक कृति लिपिबद्ध करके पूर्ण की। कर्म-प्रकृति-विचार सवत् १९२८ मार्ग-शीर्ष शुक्ल ३ ग्राम मोना में लिखित तिलोक रिख। यहासे पुन आपने शाजापुर क्षेत्रकी ओर विहार किया। संवत् १९२८ पौष शुक्ल २ को पन्नवणा सूत्र से भाषा के बोल चित्रकारी के रूप में अकित कर पूर्ण किये है। ये कृति आपने शाजापुर क्षेत्र में लिपिबद्ध की। यहा से कणासा होकर मध्यवर्त्ती अनेक छोटे २ क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपने देवास की भूमि को अलकृत किया। कुछ दिन वहा विराजकर आपश्री का इदौर मे शुभागमन हुआ। यहा पर लोगो का आग्रह होने पर भी विशेष नही ठहरकर छोटे २ क्षेत्रो मे धर्मका प्रचार हो, इस उद्देश्य से उन क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपश्री धार की ओर पधारे। दतोदा, महू, धनड, बीटचा, दीवठाण, आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए राजा भोज की सुप्रसिद्ध राज-धानी धारा नगरी में पदार्पण किया। जहा पर कि पूज्यश्री धर्मदासजी महाराजश्री ने अपने शिष्य के निमित्त सथारा लेकर अपना जीवन-दान किया है। ऐसे धर्म-वीर की स्मृति के निमित्त अब भी वहापर वह पाट मौजूद है, जिस पर आसीन होकर आपश्री ने अनशन व्रत अंगीकार किया था।

धारा नगरी में आपश्री ने इसवार पहले-पहल आगमन किया था। अत एव वहा की जनता पिछले बहुत वर्षो से आपकी मधुर अमृतमय वाणी को सुनने के लिये लालायित थी। जनता के आग्रह और लालसा से आकर्षित हो आपश्री ने भी कुछ दिन वहां स्थिरता की और अपनी अमृतोपम वाणी द्वारा सदुपदेश

देकर श्रीसंघ के हृदय में स्थित धर्म-भावनारूपी अंकुर को विकसित किया। वहा का श्रीसघ तथा जनता प्रतिदिन व्याख्यान में अधिक सख्या मे उपस्थित होकर श्रवण-भक्तिका लाभ लेती थी। धारा नगरी मे आपने फिर रतलाम की ओर विहार किया। बीच के मध्यवर्ती स्थान पचलाणा, कडोद, कोद, वखतगढ, बदनावर, मूलथान, सेमलावदा, महु आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुये आप रतलाम पधारे। रतलाम से शिवगढ, रतनगढ, वाजणा, खादु, वासवाडा, तलवाडा और वहा से आपश्री का मेतवा में पधारना हुआ। वहा पर आपश्री का उनतीसवा लोच हुआ। अपने गुरु श्री अयवताऋषिजी म० की तरह छोटे २ क्षेत्रो को स्पर्शकर उनमे धर्मप्रचार करने की आपकी विशेष भावना रहती थी। बागड प्रात मे अधिकतर आदिवासी लोगो की वसती होने मे उधर सतो को अनेक परीपहो का सामना करना पडता है। आपकी दृष्टि सदैव ऐसे परीपह-प्रधान क्षेत्रो की ओर रहती थी। अनेक वार आपने विकट परीपहो को सहन कर ऐसे बीहड प्रातो में विचरण किया है।

मेतवाडा से विहार कर डडूका, अरथूणा, आजणा, होते हुए आपने वोरी क्षेत्र को अलंकृत किया। यहां पर कुछ स्थिरता कर पुनः सगवाडा, मेतवालो परसोला, खुता आदि स्पर्शकर संवत् १९२९ के चातुर्मास-निमित्त पूज्यपाद महाराजश्री का ठाणा चार से धरियावद क्षेत्र मे शुभागमन हुआ।

चातुर्मास-काल में व्याख्यान के समय श्रीस्थानागसूत्र तथा उपासकदशाग सूत्रका वाचन होता था। सूत्रो का अर्थ आप इस प्रकार सरल और बहुअर्थगामिनी भाषा मे करते थे कि साधारण श्रोतागण के हृदय मे उसके भाव अंकित हो जाते थे, वहांके लोगो की भी यही भावना रहती थी कि हमारे प्रात में संतो का आगमन विशेष नही होता है। बडे भाग्य से पूज्यपाद म० श्री पधारे हैं। बार बार फिर हमे यह सुअवसर प्राप्त नही होने वाला है, ऐसा सोचकर वे प्रतिदिन अधिक सख्या में व्याख्यान में उपस्थित होते थे। संवत्सरी के पहले आपका तीसवा लोच हुआ। संवत्सरी पर्व भी अत्यत उत्साह के साथ धर्मध्यान तप आदि करते हुए मनाया गया। उस समय बागड प्रात के छोटे २ ग्रामो के श्रावक-श्राविकाएँ अधिक संख्या में धर्मध्यान करने के लिये सम्मिलित हुई थी।

शाजापूर चातुर्मासके पश्चात् आपने जिस २ स्थानपर जो ग्रंथ-लेखनका कार्य किया, उसका उल्लेख उस स्थानके साथ हो चुका है। चातुर्मास-कालमें आपने जो लेखन कार्य किया, वह इस प्रकार है,। (१) "सुदर्शन शेठका चोढालिया,, इसे

आपने संवत् १९२९ श्रावण शुक्ल तृतीया के दिन सपूर्ण किया। यह प्रति स्थविर और सुलेखक मुनि श्री माणक ऋषिजी म के पास है। इस समय स्थविर मुनिजी घुलिया मे विराजते है। वहाँ पर आपका स्थिरवास है।

(२) "श्री अर्जुन माली का चौढालिया" यह प्रति पू उपाध्यायजी म. के पास है। यह भी इस चातुर्मास में बनाई गई होगी, ऐसा अनुमान किया जाता है। क्योकि उस पर स्थान संवत्, मिति आदि का निर्देश नही है।

३) तीसरी कृति केवल एक पन्ने पर है। इसमें स्वर, व्यंजनादि, मूलाक्षर वडे कलात्मक ढग से चित्रित किये गये है। प्रत्येक स्वर और व्यजन की आकृति अनेक प्रकार के रगो में निकाली गई है। अक्षरो के मोड, उनकी आकृति और सौदर्य को देखकर लेखक की कुशलता पर मुग्ध हो जाते है। स्वर व्यजन की तरह अंक एक से लेकर दस तक की संख्या भी लिखी गई है। अक भी स्वर व्यजन की तरह अनेक वर्णो से युक्त है। पन्ने के अंत मे लिखा है—सवत् १९२९ लि. तिलोक-रिख। इस पन्ने के विषय में पूज्यपाद म० श्री की कलाकृतियों पर स्पष्टीकरण-नामक प्रकरण से पाठक जानकारी ले सकते है।

चातुर्मास-काल में आपने जो लेखन-कार्य किया, वह संपूर्ण रूप से हमें प्राप्त नही हुआ। पर थोडा—बहुत प्रयत्न करने पर जितना उपलब्ध हो सका उस का विवरण यहाँ दिया है।

श्री नंदीषेण मुनि का चौढालिया पाना २ में "संवत् उगणीसे गुणतीस साल बरियावद वरसाल तिलोक कहे सुविशाल" ऐसा उल्लेख है। इस पर से यह ज्ञात होता है कि नंदीषेण मुनि का चौढालिया भी आपने बरियावद में संवत् १९२९ में लिखा है।

संवत् १९३० का चातुर्मास मंदसौर—जीवागंज मे

बरियावद मे विविध प्रकार की सत्प्रवृत्तियो में अपना वर्षावास व्यतीत कर आपश्रीने वहा से विहार किया। अपने उद्देश्य के अनुसार भूमणिया, चिकलार, देव-गढ आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपने प्रतापगढ क्षेत्र को पावन किया। यहाँ आपश्री कुछ दिन विराज कर अरणोद क्षेत्र की ओर पधारे। अरणोद मे आपका सालमगढ में शुभागमन हुआ। यद्यपि यह क्षेत्र छोटा है, तथापि वहाँ के श्रावक-श्राविकाओ का विशेष भक्ति-भाव होने से आपश्री ने उस क्षेत्र को अपनी चरण-रज से पावन किया। यहाँ पर कुछ दिन तक स्थिरता करके आपश्रीने "श्री अमरकोष प्रथमकाड मूल मात्र ऐसे अक्षरो में लिखा है कि साधारण व्यक्ति भी उसे शीघ्रता से ग्रहण कर सकता है। संवत् १९२९ पौष कृष्ण १४ के दिन पूर्ण किया है।

यहाँ से आपने रतलाम की ओर विहार किया। विहार मे मध्यवर्ती क्षेत्रो को स्पर्श कर धर्म-प्रचार करना आपके स्वभाव के साथ जुडा हुआ था। रतलाम से जावरा पधारे। यहां पर एकतीसवां लोच हुआ। जावरा से पीपलोदा, स्पर्श कर रतलाम में पधारना हुआ। रतलाम से पुन्याखेडी, पीपलोदा, गुनेडा, कोटडी, भावगढ, भालोट आदि क्षेत्रो को स्पर्श कर आप मदसौर पधारे। जिस दिन आपने मदसौर में पदार्पण किया, वह दिन संवत् १९३० वैशाख वदि प्रतिपदा का था। पूर्व के प्रकरणो में हम इस बात का निर्देश कर चुके है कि पहले पूज्यपाद म० श्री ने मदसौर मे चातुर्मास कर के वहां की जनता में धर्म का बहुत प्रचार किया, उनकी सुप्त भावना को जागृत कर धर्म की ओर मोडी थी। महाराजश्री ने उनकी रुचि शास्त्रो के स्वाध्याय की ओर पैदा की थी। अतएव मदसौर का सारा संघ आपश्री का बहुत ऋणी था। इस बार आपके मदसौर पधारने पर श्रीसंघ ने सोचा, पूज्यपाद महाराज श्री का चातुर्मास हुए दो वर्ष हो चुके है। इसलिए इस बार का चातुर्मास यहा पर ही कराया जाय तो जनता का बहुत लाभ होगा, हमारे धार्मिक ज्ञान में वृद्धि होगी, महाराज साहब के सान्निध्य मे अनेक नवीन शास्त्रो का स्वाध्याय कर सकेंगे, ऐसा सोचकर श्रीसघ ने महाराजश्री के सामने आगामी चातुर्मास के लिये अत्यत आग्रह-पूर्वक विनति की। मदसौरनिवासी श्रावक—श्राविकाओ की इस प्रकार की उत्कृष्ट श्रद्धा तथा विपुल उत्साह को देखकर आपश्री ने आगामी चातुर्मास मदसौर जीवागज में सुखे-समाधे द्रव्य क्षेत्र काल और भाव का आगार रखकर स्वीकार किया। महाराज साहब की इस स्वीकृति से श्रीसघ की श्रावक-श्राविकाएँ हर्षोत्फुल्ल हो उठी। पूज्यपाद श्री अब अन्य क्षेत्रो में विशेष विहार नही कर यहा पर शहर मे ही विराजे और अपना समय स्वय के स्वाध्याय एवं लेखन-प्रवृत्ति में व्यतीत कर यहा की जनता को धर्मबोध देते रहे, क्यो कि अब चातुर्मास का काल भी नजदीक आ गया था। इसलिये अब एक स्थान पर ही विराजने से विशेष लाभ होगा। मदसौरनिवासियो की इस आग्रह—पूर्ण विनति को लक्ष मे लेकर आपश्री वहा पर विराज गये। इस प्रकार आप चातुर्मास के पहले का काल जनकुपुरा आदि स्थानो में व्यतीत कर चातुर्मास के समय अपने निश्चत स्थान मदसौर मे आकर जीवागज में पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज ने चातुर्मास किया।

चातुर्मास-काल मे श्री भगवती सूत्र तथा अंतगडदशा सूत्र का वाचन हुआ। व्याख्यान आदि के समय जनता की बहुत उपस्थिति रही और जैनधर्मा-

नुकूल धर्मध्यान, व्रत, उपवासादि कर के जनता ने अपनी श्रद्धा को दृढ़ बनाया। श्रीसंघ ने तन-मन-धन से इस चातुर्मास को पूर्ण रूप से सफल बनाने का प्रयत्न किया। यहां पर संवत्सरी के पूर्व आपश्री का बत्तीसवा लोच हुआ।

संवत् १९३० के साल में कार्तिक शुक्ल पौर्णिमा तक आपने जो ग्रन्थ लिखे, उन हस्तलिखित ग्रन्थो में जिन ग्रन्थो का पता लगा, वे निम्नलिखित है।

(१) पंचवादि काव्य (सवैयाछंद) यह कृति सैद्धांतिक दृष्टि से विद्वानो को देखने योग्य है। संवत् १९३० वैशाख वदि १० सोमवार मंदसौरमध्ये। यह काव्य श्रीतिलोक-काव्य-संग्रह में प्रकाशित है।

(२) ज्येष्ठ कृष्ण ६ रविवार को साधु-छंद की रचना की। यह छंद भी तिलोक-छंद-संग्रह में प्रकाशित है।

(३) ज्येष्ठ शुक्ल ३ भृगुवासरे द्वितीय बावनी की रचना की गई। लि. तिलोकरिख, ग्राम मंदसौरमध्ये। यह काव्य भव्यजनो के लिए बोधप्रद होने के साथ चित्त को अत्यंत आकर्षित करनेवाला है। यह बावनी भी श्री तिलोक काव्य संग्रह में प्रकाशित है।

(४) आषाढ शुक्ल ३ शुक्रवार के दिन मंदसौर में रची हुई एक धर्म-जयकुमारकी चौपाई भी उपलब्ध हुई है। यह कृति जिन-शासन-प्रभाविका विदुषी महासतीजी श्री रतनकुंवरजी महाराज के पास है।

(५) आषाढ शुक्ल १३ भौमवार के दिन "ऋषभजिन—स्तवन की पूर्ति की है।

(६) अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनो कालो की चोवीसी की छंदरूप में रचना की गई है।

(७) श्री अरिहन्त जिन-छंद की रचना भी की है।

(८) इसी प्रकार चतुर्विंशति जिन-नाम नमोत्थुण-युक्त छंद भी आपने बनाया है। नंबर ६—७—८ इन तीनो छंदो में संवत् १९३० का निर्देश मिलता है, परंतु मास, तिथि और स्थान का निर्देश नही है। तथापि अनुमान कर सकते है कि इनकी रचना इसी चातुर्मास में हुई होगी। ये तीनो छंद श्री तिलोक छंद संग्रह में प्रकाशित है। और श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी (अहमदनगर) से प्राप्य है। इस वर्ष आपने और भी अनेक काव्यो की रचना की होगी, पर उनमे से अनेक अनुपलब्ध है और कुछ काव्यो पर स्थान संवत् मिति आदि का निर्देश नही होने से उनका यहा पर उल्लेख नही किया गया।

उपरि-निर्दिष्ट काव्यो में से कुछ काव्य "सत्यबोध,, नामक ग्रन्थ में श्री जैनधर्म प्रसारक सस्था, सदर बाजार नागपुर की ओर से प्रकाशित हुए हैं वर्तमान मे उस संस्था का प्रकाशन कार्य पाथर्डी मे चल रहा है।

इस प्रकार मदसोर-जीवागज मे आपका चातुर्मास अत्यत शांति-पूर्वक ढंग से पूर्ण हुआ। चातुर्मास—समाप्ति के दिन निकट आने पर वहा के निवासियो के चित्त उदासीनता से आच्छन्न हो गये, क्यो कि अब जल्दी ही ऐसे क्रिया-सपन्न, महाविद्वान् का वियोग होने से धर्म का लाभ नही मिलेगा। पर संत पुरुष सदैव एक स्थान पर नही रह सकते। एक स्थान पर रहने से उस स्थान तथा लोगो के प्रति आसक्ति की सभावना हो जाती है। एक दोहे मे कहा भी है:—

पानी तो बहता भला, पडा गदेला होय।
साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय॥१॥

चातुर्मास-काल समाप्त होने पर आपश्री ने मंदसौर से अन्य स्थान की ओर विहार किया। श्रीसंघ बहुत दूर तक आपको पहुचाने गया। परतु भावी भाव बलवान् होता है। विहार करने के बाद रास्ते मे कुछ शारीरिक व्यधि या अन्य किसी कारण के उपस्थित होने से आपको पुन मदसौर लौटना पडा। वापिस आने के बाद आपश्री का मंदसौर से मिति फाल्गुन वदि २ के दिन विहार हुआ है। ऐसा आपश्रीजी ने अपनी दैनदिनी के एक पन्ने में लिखा है।

श्री गजसुकुमाल का स्तवन छोटा पन्ना यह काव्य सोलह गाथा का है। इसकी अतिम गाथा इस प्रकार है।:—

संवत् उगणीसे तीसका काई, माघ पुनम रविवार,।
सेर मंदसौर में गाईया जी काइ मुनि गुणमंगलाचार ॥१६॥

स्तवन-संग्रह सत्य-बोधसे पाना ९६ में पद श्रीजु आदीश्वरजी का स्तवन सवत् १९३० मिति आषाढ शुक्ल १३ भौमवार शहर मदसौर मध्ये लि. तिलोक-रिख। यह काव्य आपके द्वारा विरचित है।

संवत् १९३१ एव संवत् १९३२ इन युग्म वर्षोका
चातुर्मास शाजापूर क्षेत्रमें,

मंदसौर क्षेत्र से आपश्री मिति फाल्गुन कृष्ण द्वितीया के दिन विहार कर दस मील की दूरीपर मडग्राम में पधारे। वहापर आप चार रात्रिपर्यंत विराजे। इस स्थानपर आपश्री द्वारा लिखित एक पन्ना प्राप्त हुआ है। इसके प्रथम पृष्ठपर वीर त्थुई (वीरस्तुति) अर्थसहित तथा दूसरे पृष्ठके अवशिष्ट भाग मे प्रकीर्णक ग्राथा-सग्रह लिखा गया है। संवत् १९३० फाल्गुन वदि ७ लि तिलोकरिख, गाम—मडमध्यें। यहाँ से विहार कर सीतामऊ क्षेत्र को अलकृत किया। यहांपर भी आपश्री

ने वीरस्तुई का एक पन्ना लिखा है। संवत् १९३० फाल्गुन वदि १० बृहस्पतिवार लि. तिलोकरिख सीतामऊ मध्ये। सीतामऊ से विहार कर तितरोद, दीपाखेडा कुंडला, हीराखेडी आदि स्थानों में धर्मप्रचार करते हुए गगराड (गंगाधर) क्षेत्र को पावन किया। वहांपर आपने तीन रात्रि पर्यंत स्थिरता करके डावला, कचनारा, जंबूणा आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए वडोद में शुभागमन हुआ। यहांपर आपश्रीजी ने "पांच समिति तीन गुप्ति" अर्थात् अष्ट प्रवचन माता की ढाल की रचना की है। संवत् १९३० फाल्गुन शुक्ल ८ भौमवासरे लि तिलोकरिख, शहर वडोद मध्ये श्रीमान् बूलचंदजी की पोषधशालामध्ये। यहांपर आप तेरह रात्रिपर्यंत विराजे। आपका तेतीसवां लोच यहीं पर हुआ। यहा से विहारकर जामली क्षेत्र को स्पर्शते हुये आपश्री ने आगर क्षेत्र को पावन किया। यहांपर आपने विशेषरूप से दर्शनीय एक कृति की रचना की है।

पुरुषाकार आकृति मे अंगसूत्र, उपांगसूत्र, मूलसूत्र, छेदसूत्र और आवश्यकसूत्र ऐसे ३२ सूत्रो के नाम यथास्थान दिये हुए हैं। अंत में ऐसा लिखा है। इति सिद्धांत कल्प संपूर्ण। संवत् १९३० चैत्र कृष्ण १३ तिथौ चंद्रवासरे, लि तिलोकरिख, शहर आगर-मध्ये सूत्र ग्रंथ गाथाओ की संख्याओ के साथ लिखे हैं। पन्ने के द्वितीय पृष्ठ में दिगंबर आम्नाय के ४३ ग्रंथो के नामो उल्लेख है। पन्ना केवल एक ही है। इस दर्शनीय वस्तु का फोटो निकाला हुआ है। इसे ब्लॉक-सहित इस ग्रंथ मे दे रहे है।

आगर से विहार कर पालडा, कानड, चंदणा, डुपाडा आदि स्थानो को स्पर्श कर आपश्री का शाजापुर में शुभागमन हुआ।

कानड में संवत् १९३१ चैत्र शुक्ल ५ चंद्रवासरे, श्री जेठमलजी स्वामीकृत अहमदाबाद मे अंग्रेजो के साथ जो चर्चा हुई, उसका विवरण पन्ना १—२। द्वितीय पन्ने के प्रथम पृष्ठ पर २७ प्रश्न संपूर्ण लि० तिलोकरिख।

श्री शाजापुर से विहार कर छोटे २ क्षेत्रो को पावन करते हुए आपका शुजालपुर क्षेत्र में पधारना हुआ। यहाँ पर शेष काल व्यतीत करके पुन. छोटे २ क्षेत्रों को पावन करते हुए चातुर्मास के निमित्त आपश्री ने शाजापुर क्षेत्र में पधारकर कसेरवाडी स्थानक में विराजे और वहाँ के श्रीसंघ को कृतार्थ किया। इस अवधि में आपके द्वारा हस्त-लिखित कार्य निम्न लिखित है।

(१) श्री उववाईसूत्र सार्थ, पन्ने २६ में लिखा है। संवत् १९३१ द्वितीय आषाढ कृष्णा ८ लि० तिलोकरिख, कसेरवाडी स्थानक-मध्ये, (२) श्री तिलोक तृतीय बावनी। संवत् १९३१ श्रावण शुक्ल १३ तिथौ सोमवासरे लि० तिलोक-

रिख, शाजापुर चातुर्मास में। यह बावनी श्री तिलोक-काव्यसंग्रह मे श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी से प्रकाशित हुई है।

इस चातुर्मासकाल में और विहार के समय आपश्री ने और भी अनेक रचनाएँ की होगी, पर अन्य कृतियो के उपलव्ध नही होने से देने में असमर्थ है। आपश्री का संवत्सरी के पूर्व चौतीसवाँ लोच हुआ।

इस चातुर्मासकाल मे आपश्री ने व्याख्यान के समय किन २ सूत्रो का वाचन किया, इसका हमारे पास कोई हस्तलिखित प्रमाण उपलव्व नही है। आपश्री की हस्तलिखित दिनचर्या मे यह उल्लेख है कि सवत् १९३१ और सवत् १९३२ के चातुर्मास शाजापुर क्षेत्र मे ही हुए है।

सवत् १९३१ के चातुर्मास के बाद आपश्री का विहार हुआ या नही? यदि हुआ तो वह किन क्षेत्रो में हुआ? इस सवंध में भी हमारे पास कोई लिखित प्रमाण नही होने से उसका विवरण यहाँ नही दिया गया है।

शाजापुर मे आपश्रीद्वारा लिखित जो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई, वे निम्न लिखित है—

(१) चैत्र शुक्ल १ संवत् १९३२ लि० तिलोकरिख शाजापुर मध्ये एक पन्ने में पच्चीस बोलका थोकडा सपूर्ण।

(२) "भयभजन अरिहत—स्तवन" सवत् १९३२ ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया शनिवार सिद्धि योग मे शाजापुर मे रचित, श्री तिलोक-छंद—सग्रह में प्रकाशित है।

(३) "श्री नेमी-चरित्र" भाद्रपद शुक्ल १३ सोमवार के रोज शाजापुर में

(४) भ्रमभजन कुमति-चपेटिका (उपनाम प्रश्नोत्तरयुक्त चर्चा-माला) संवत् १९३२। यह ग्रथ भी प्रकाशित है, पर इस में स्थान तथा समय का उल्लेख नही किया गया है।

(५) भरत क्षेत्र (भरत खड का नकशा) विक्रम सवत् १९३२ श्रावण शुक्ल ९ भृगुवार (शुक्रवार) के दिन शाजापुर कसेरवाडी धर्मस्थानक पौषधशाला में लिखा।

सवत् १९३१ की तरह संवत् १९३२ के चातुर्मास मे व्याख्यान के समय आपश्री ने किस सूत्र का वाचन किया, इसका भी लिखित प्रमाण उपलब्ध नही है।

विहार-वर्णन नही होने से आपश्री का पैंतीसवा लोच फाल्गुनी, चातुर्मासी पर और छत्तीसवाँ लोच सवत्सरी के पूर्व में हुआ है, ऐसा आगे के वर्णन पर से ज्ञात होता है।

संवत् १९३१ संवत् १९३२ के युग्म चातुर्मास शाजापुर में व्यतीत कर आपश्री ने मालव प्रांत में ही विहार किया। शाजापुर से मोना होते हुए आपने नलखेडा मे पदार्पण किया। नलखेडा से पुन. मोना पधारे। मोना से विहार कर आपश्री ने पुन शाजापुर की भूमि को अलंकृत किया। यहाँ पर कुछ दिन ठहर कर "श्रावक धर्म पच्चीसी" की संवत् १९३२ पौष मास की एकादशी के दिन शाजापुर के कसेरवाडी स्थानक में रचना पूर्ण की, और संवत् १९३२ चैत्र कृष्ण ११ शुक्रवार के दिन यहाँ पर स्थानक में ही लिखी है। यहाँ पर आपश्री का सेंतीसवाँ लोच हुआ। यहाँ प्रतिदिन आपका व्याख्यान होता था। यहाँ से विहार कर मार्ग में आने वाले छोटे २ ग्रामो को स्पर्शते हुए आपश्री देवास पधारे। देवास से इंदौर क्षेत्र में आपका शुभागमन हुआ। इंदौर से विहार कर उज्जैन को अलंकृत किया। यहाँ से ५२ मील की दूरी पर स्थित शाजापुर क्षेत्र की ओर आपका विहार हुआ। उज्जैन से शाजापुर पहुँचते समय रास्ते में मध्यस्थित क्षेत्रो को स्पर्श कर वहा के लोगो को धर्मोपदेश दिया। श्री जंबूद्वीपपट (जंबूद्वीप का संक्षिप्त नकशा) संवत् १९३३ मिति जेष्ठ शुक्ल ८ लि० तिलोक रिख, शाजापुरे, आर्यिका लाडुजी अर्थे।

शाजापुर में चातुर्मास के निमित्त विहार कर रास्ते में अपनी चरण-रज से अनेक ग्रामो को पावन करते हुए आपने शुजालपुर मे पदार्पण किया। आपश्री ठाणा पाँच से चातुर्मासार्थ पधारे थे। इस चातुर्मास में भी व्याख्यान के समय आपने किस सूत्र का वाचन किया? इसका दिनचर्या में कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नही है। यहाँ पर आपश्री का अडतीसवाँ लोच हुआ। केवल श्रावण शुक्ल १४ शुक्रवार श्रवण नक्षत्र, प्रीति, ववकरण मकर चंद्र मे स्थान शुजालपुर मालवा में आपने श्री सीता-चरित्र की रचना पूर्ण की है। यह ग्रंथ अप्रकाशित है। इसकी प्रति श्रीरत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी स्थित हस्तलिखित शास्त्र भंडार में मौजूद है।

विक्रम संवत् १९३४ का चातुर्मास रतलाम क्षेत्र में

शुजालपुर का चातुर्मास आनंदपूर्वक पूर्ण होने के पश्चात् आपश्री ने शाजापुर की ओर अपना विहार किया। विहार के समय मध्यवर्ती छोटे स्थानो में थोडी देर ही सही, पर आपका सदुपदेश बराबर चलता रहता था। आपके थोडे से सहवास से लोग अत्यंत शांति का अनुभव करते थे। शाजापुर के बाद बीच के क्षेत्रो का स्पर्श करते हुए आपश्री देवास पधारे। वहाँ से इंदौर पदार्पण किया। कुछ रात्रिपर्यंत वहाँ स्थिरवास कर आपश्री ने पुनः रतलाम की ओर अपना

विहार किया । इदौर से रतलाम साठ मील की दूरी पर स्थित है । रतलाम जाते समय बीच के अनेक छोटे २ क्षेत्रों को अपने बोधामृत से पावन किये । रतलाम से फिर सैलाना, पुन्याखेडी, पीपलोदा आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपश्री ने फाल्गुनी चातुर्मास के निमित्त जावरा क्षेत्र मे पदार्पण किया। यहाँ पर आपका उचालीसवाँ लोच हुआ। शुजालपुर चातुर्मास के बाद आपने जो जो प्रतियाँ लिखी उनमे उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियाँ निम्नाकित है --

(१) संवत् १९३३ मार्गशीर्ष शुक्ल २ के दिन बृहत्कल्पसूत्र के पन्ने १५ पूर्ण किये । लि० तिलोकरिख ।

(२) सवत् १९३३ फाल्गुन शुक्ल १ दतोदा नामक क्षेत्रो मे श्री भक्तामर स्तोत्र–मूलमात्र एक ही पन्ने मे सपूर्ण लिखा है। लि० तिलोकरिख ।

(३) चित्रकलायुक्त काव्य एक पन्ना । सवत् १९३३ में लिखा हुआ है। नव तथा आठ अक के सबध मे एक काव्य है । और साथ मे एक विचित्र दोहा है । पन्ने की पृष्ठ-पीठिका मे नव काव्य है उनमे से तीन दोहे गूढार्थक है । इसके अतिरिक्त आपने और कितना लेखन कार्य किया, वह उपलब्ध नही है । बहुत से ऐसे काव्य भी है, जिनपर सवत् मिति, ग्राम आदि का उल्लेख नही होने से उनका यहाँ निर्देश नही किया गया है ।

जावरा से आपश्री ने पचेड विहार किया। वहाँ से मावता, कोटडी, भावगढ, नदावता, भालोट आदि को स्पर्श कर आप मन्दसौर क्षेत्र में पधारे। मन्दसौर मे आपश्री द्वारा लिखित एक कृति उपलब्ध, है । श्री पार्श्वनाथजी का छद सवत् १९३४ वर्षे लि० तिलोकरिख शहर मंदसौर मध्ये ।

मदसोर से बीस मील की दूरी पर स्थित प्रतापगढ मे आपश्री का पधारना हुआ। प्रतापगढ से विहार कर मदसौर को पावन करते हुए आपने पुन जावरा में पदार्पण किया। अब यहा से चातुर्मास के निमित्त आपश्री का (रत्नपुरी) रतलाम मे पधारना हुआ । चातुर्मास के दिनो मे व्याख्यान के समय श्री जंबूद्वीप-पन्नत्ति, श्री अतगडदशा सूत्र, श्री निरियावलिका सूत्र का वाचन हुआ ।

प्रतिदिन बहुसंख्यक श्रोता-गण उपस्थित होकर आपके व्याख्यान का लाभ लेते थे। यहा पर आपश्री का चालीसवा लोच हुआ । संवत् १९३४ के प्रारभ से कार्तिक शुक्ल १५ तक आपने जो लेखन कार्य किया, वह इस प्रकार है–

१) "श्री आचार्य छंद, की रचना सवत् १९३४ वैशाख शुक्ल पौणिमा सोमवार के दिन की गई। स्थान निर्देश नही है ।

२) प्रथम जेष्ठ शुक्ल १३ सवत् १९३४ चंडकृत प्राकृत लक्षण व्याकरण

समाप्त । लि० तिलोकरिख, मदसौर मध्ये ।

३ श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र सहस्त्र नाम सपूर्ण । सवत् १९३४,। मिति कार्तिक वदि ६ रविवासरे लि० तिलोकरिख, मंदसौर मध्ये ।

४ एक छोटा पन्ना। एक इंच चौकोनी जगह में आपश्री ने, १०१ हाथी के चित्र चित्रित किये है । यह कृति दर्शनीय है। संवत् १९३४ लि० तिलोक-रिख रतलाम मध्ये ।

पूज्यश्री धर्मदासजी महाराज की संप्रदाय की पडिता महासतीजी श्री सज्जन कुवरजी म० ठाणा १० घुलिया पधारे । उस समय २०१५ के साल में उपाध्यायजी श्री आनंदऋषिजी म० की सेवा में यह पत्र तथा पूज्यपादश्रीजी ने पैरो से कतरा हुआ, एक कागज का चित्र ये दोनो महासतीजी से सादर प्राप्त हुए।

उपलब्ध सामग्री से हम जिन ग्रथो का अवलोकन कर सके उनका नाम-निर्देश ऊपर किया गया है।

पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज का मालवप्रांतीय अंतिम चातुर्मास, संवत् १९३५ का जावरामें,

श्री रतलाम नगर मे आपका १९३४ का चातुर्मास विशेष शाति-पूर्वक व्यतीत हुआ। वहापर वैरागी श्री भवानीऋषिजी की दीक्षा 0संवत् १९३४ मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी के दिन हुई । सात दिन पश्चात् उनकी वडी दीक्षा होने पर आपश्री ने वहा से विहार किया। यहा से सैलाना, पुन्याखेडी, पीपलोदा की ओर चंक्रमण किया। पीपलोदा में कुछ दिन विराजकर वहा से सुखेडा को स्पर्श करते हुए पुनः पीपलोदा पधार कर आपश्री ने जावरा में पदार्पण किया। जावरा से रतलाम की ओर विहार कर वहा कुछ दिन स्थिरवास किया। यहा से शिवगढ, सैलाना, सेरपुर, निनोर, कोटडी, भावगढ, नदावता, कुणी, कल्याण-पुरा, नोगाडा, कणगेटी, जीरण आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपश्री जी नीमच पधारे। यहां से आपका जावद की ओर विहार हुआ।

जावद में आपश्री ने ८४ सिखामण (चौरासी हित-शिक्षाएँ) का एक पन्ना लिखा। संवत् १९३४ माघ शुक्ल ११ शहर जावद मध्ये लि, तिलोकरिख । यह पन्ना शुजालपुर क्षेत्र में विराजित स्थविरा महासतीजी श्री फूलकुंवरजी महाराज से प्राप्त हुआ । संवत् २०१४ मे उपाध्यायजी श्री आनंदऋषिजी म० ठाणे ६

0 पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० का एक सक्षिप्त जीवन-चरित्र प० श्री राजधारी त्रिपाठीजी ने लिखा है। इसमें आपके मतानुसार १९३३ में यह दीक्षा हुई थी। पर उपलब्ध सामग्रीके आधार से यह सिद्ध हो चुका है कि यह दीक्षा शुजालपुर-चातुर्मास के समय न होकर रतलाम के चातुर्मास के वाद स १९३४ में हुई थी।

का चातुर्मास शुजालपुर में था। तब महासतीजी ने आपकी सेवा में यह पन्ना अर्पण किया था। शिक्षाप्रद एवं जीवनोपयोगी समझकर श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी द्वारा प्रकाशित है। जावद से विहार कर आप पुनः नीमच पधारे। नीमच से जामुनिया, कचोरी, मल्हारगढ, पाडलिया, मदसौर रेवास, दावडा आदि क्षेत्रों को स्पर्शकर आपश्री मिति फाल्गुन कृष्ण प्रतिपद मगलवार के दिन ठाणा २ से प्रतापगढ पधारे। यहापर आपश्री ने दस रात्रिपर्यंत स्थिरवास किया।

यहा से विहार कर झासडी आहार-पानी करके चाचाखेडी पधारे। यहा से मोवाई होकर कोटडी मे पदार्पण किया। फाल्गुनी चातुर्मासी आपने यहा पर ही बिताई और इस स्थानपर आपका इकतालीसवा लोच हुआ। कोटडी से विहार कर मावता की भूमि को अलकृत किया। यहा पर श्री दशवैकालिक सूत्र का मूल पाठ दश पन्नो में सपूर्ण किया। संवत् १९३४ चैत्र कृष्ण ५ तिथौ शनिवासरे, लि तिलोकरिख, गाँव मावता मध्ये।

मावता से काल्-खेडा को स्पर्शकर मम्मटखेडा मे पदार्पण किया। वहा मिति चैत्र शुक्ल १२ रविवार संवत् १९३५ के दिन श्री प्याराऋषिजी म० की दीक्षा हुई। इनकी बडी दीक्षा छह महीने बाद हुई, ऐसा दिन-चर्या में उल्लेख है। यहा से विहार कर आपने जावरा की भूमि को सुशोभित किया। जावरा के श्रीसघने विशेष आग्रहपूर्वक आपश्री से अपने यहा चातुर्मास करने के लिये विनति की। आपश्रीने अवसर देखकर उस प्रार्थना को स्वीकार किया, इससे श्रीसघ को आनद की सीमा नही रही। जावरा से लुवारी, चाडल्या, नामली, सेजावता आदि छोटे २ क्षेत्रो को स्पर्श करके आपश्री ने रतलाम में पदार्पण किया। यहा पर पधारकर कुछ दिन स्थिरवास किया। तत्पश्चात् पुन छोटे २ क्षेत्रो को स्पर्श करते हुए उग्र विहार किया।

परसोला, पचेड, सैलाना, करिया, पुन्याखेडी, गुटखेडा, निनोर, सुखेडा, कोटडी, आदि क्षेत्रो को पावन कर मावता ग्राम में पदार्पण किया। यहा पर आपश्री द्वारा लिखित एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। उसका नाम है श्री कृष्ण-ब्यावलो। प्रति के पन्ने १४ है। इसे आपने सवत् १९३५ ज्येष्ठ शुक्ल २ रविवार के दिन पूर्ण किया है। तत्पश्चात् चातुर्मास के निमित्त जावरा की ओर विहार किया। रास्ते में कोटडी, सुखेडा, पीपलोदा, राकोदा पचेवा, मम्मटखेडा आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए कविकुल-भूषण, पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० श्री भवानीऋषिजी म० मुनिश्री प्याराऋषिजी म० आदि ठाणे ३ ने चातुर्मासार्थ जावरा क्षेत्र में पदार्पण किया। आपके शुभागमन से यहा की जनता ने अत्यंत हर्षका अनुभव किया, उसे शब्दो द्वारा प्रकट नही किया जा सकता,

चातुर्मास-काल में श्री जीवाभिगम सूत्र का वाचन हुआ। जावरा शहर-निवासी श्रावक-श्राविकाएँ तथा इतर जनता आपके अमृतोपम उपदेश को सुनकर अत्यंत आनद का अनुभव कर संतुष्ट होती थी। यहाँ आपश्री का सावत्सरिक ४२ वाँ लोच हुआ। सावत्सरिक पर्व भी वडे उत्साह तथा शांति-पूर्वक वातावरण में सपन्न हुआ।

इस चातुर्मास में एक विशेष उल्लेखनीय वात हुई। चातुर्मास-समाप्ति के पूर्व पूना जिला के अतर्गत घोडनदीनिवासी सुश्रावक श्री गंभीरमलजी लोढा मालव प्रात में सत-सतियो के दर्शनार्थ निकले थे। उस समय दक्षिण देश में सत-मुनियो का विहार वहुत ही कम होता था। इसलिये जैनधर्म का पालन करने-वाले अनेक लोगो की अपने धर्म से श्रद्धा कम होती जा रही थी। सत-मुनिराजो का सपर्क नही होने के कारण वे अन्य वैष्णव आदि धर्म की ओर आकर्षित हो रहे थे। यह वात वहाँ के अच्छे श्रावकों को वहुत अखर रही थी। उनकी अहर्निश यही भावना रहती थी कि हमारे इधर किसी सत का विचरण हो तो अच्छा। ऐसे श्रावको में श्री गभीरमलजी लोढा अग्रगणनीय थे। श्री गभीरमलजी लोढा ने पहले इंदौर क्षेत्र में विराजित कोटा सप्रदाय के पूज्य छगनलालजी म० के दर्शन किये और आपश्री की सेवा मे दक्षिण देश मे पधारने की विनति की। परंतु अपरिचित देश के साथ वहुत दूर होने से आपकी प्रार्थना स्वीकृति नही की गई।

तत्पश्चात् लोढाजी अन्य स्थानो में विराजित संत-मुनियो के दर्शन करते हुए जावरा क्षेत्र में उपस्थित होकर आपश्री की सेवा में पहुंचे। पूज्यपाद म० श्री की शात प्रकृति, गंभीरता तथा सरलता आदि अनेक गुणो से विभूषित महा-राज श्री के दर्शन कर श्रीमान् लोढाजी को विशेष सतोष हुआ। तत्पश्चात् पूज्यपाद श्री जी की सेवा मे दक्षिण देश में विहार करने की प्रार्थना की। उनकी इस आग्रह-पूर्ण विनति मे यह भाव था, अभी दक्षिणदेश मुनिराजो के संचार से रहित होने के कारण अपने धर्म से विमुख होता जा रहा है। आपके उधर पधारने से जैनधर्म पालन करनेवाली जनता के साथ अन्य लोगो का भी वहुत उपकार होगा। लोगो को सद्धर्म का वोध होगा। वे अपने कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय कर सकेंगे। आपके पधारने से विशेष उपकार होगा। ये शब्द लोढाजी ने कुछ ऐसे ढग से कहे कि उन्होंने पूज्यपाद म० श्री के हृदय में घर कर लिया। विशेष उपकार की भावना से महाराज साहव ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। अवसर देखकर सुखे-समाधे चातुर्मास होने के वाद दक्षिण देश की ओर

विहार करने की महाराजश्री ने भावना व्यक्त की। स्वीकृति–जनक इन वचनो को सुनकर सुश्रावक श्री गभीरमलजी लोढा को अत्यंत सतोष का अनुभव हुआ। आपश्री के पधारने से अब दक्षिण देश पावन हो जायगा। वहाँ फिर लोग नये रूप से अपने धर्म का ज्ञान प्राप्त कर के धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा दृढ बनायेंगे। ऐसा विश्वास प्रगट करते हुए श्री लोढाजी घोडनदी की ओर चले गये।

जावरा चातुर्मास के समय आपने जो लेखन-कार्य किया, उसमे जो कृतियाँ उपलब्ध हो सकी, वे इस प्रकार है —

(१) पाप-छत्तीसी सवैया संपूर्ण। संवत् १९३५ वर्षे आषाढ शुक्ल १५ रविवासरे।

(२) श्री अध्यात्मत्थुई काव्य ८ मे संपूर्ण। पन्ना १ प्रथम पृष्ठ पर सवत् १९३५ वर्षे आश्विन शुक्ल २ तिथौ लि० तिलोकरिख।

(३) श्री नवतत्त्व (बडी) सपूर्ण, पाना ६ सार्थ। संवत् १९३५ वर्षे आश्विन शुक्ल ३ लि० तिलोकरिख शहर जावरा-मध्ये।

(४) राजीमती बारहमासा, सवत् १९३५ दीपमालिका दिने लि० तिलोकरिख शहर जावरा-मध्ये।

पूज्यपाद कविकुल-भूषण श्री तिलोकऋषि जी म० आदि ठाणे तीन का १९३५ में दक्षिण प्रान्त की ओर विहार,

जावरा क्षेत्र में सवत् १९३५ का चातुर्मास अत्यंत शाति-पूर्ण ढग से पूर्ण हुआ। इस चातुर्मास मे ही दक्षिण देशस्थ घोडनदीनिवासी सुश्रावक श्री गभीरमलजी लोढा महाराजश्री से दक्षिण देश मे विहार करने की विनति कर चुके थे। अतएव चातुर्मास समाप्ति के बाद आपकी प्रार्थना को लक्ष्य में रखकर आपश्री ठाणा तीन (पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म०, श्री भवानीऋषि म० और श्री प्याराऋषिजी म० एव ठाणा तीन) ने जावरा से दक्षिण देश की ओर विहार किया। पहले लुबारी, नामली होते हुए रतलाम पधारना हुआ। यहाँ पर आपश्री आठ दिवसपर्यन्त विराजे। रतलाम से पंचेड होते हुए पुन्याखेडी पधारे। वहा पर चार दिन की स्थिरता की। फिर पुन्याखेडी से बडाएलो को स्पर्श करते हुए जावरा पधारना हुवा। यहाँ आठ रात्रि स्थिरता करके पुन लुबारी होते हुए अपनी जन्मभूमि रतलाम को अलंकृत किया। वहाँ छह रात्रि विराजकर मार्गशीर्ष शुक्ल ९ मगलवार के दिन विहार किया। वहाँ से धराड, सेलवाडा, मूलथान, वखतगढ कानवन, नागदा, खेरोद, पखी आदि छोटे २ क्षेत्रो का स्पर्श करते हुए आपश्री का मिति मार्गशीर्ष शुक्ल १५ के दिन धारानगरी में

शुभागमन हुआ। यहा पर आठ दिन तक स्थिरता की। तत्पश्चात् दीवठाण, चमलवडोदा, वेटमा, कलाल्या आदि स्थानो में विचरण करते हुए इदौर को अलकृत किया। यहाँ आपश्री केवल तीन रात्रिपर्यन्त विराजे। इंदौर से मोरोद होते हुए दतोदा में दो दिन ठहरे। वहा से विहारकर सिमरोड, चोरड, विल–वाडा, नाद्या आदि क्षेत्रो को पावन किया और इदौर से ३७ मील की दूरी पर जो वडवाह ग्राम है वहा पदार्पण किया। वहाँ से दो मील पर नर्मदा नदी का जो पुल है, वह ६०० पादु का है। इंदौर से वह ३९ मील की दूरी पर है। वहा से फिर सेनावद, खेडी, अत्तर, टेमी आदि स्थानो में विचरण कर खडवा पदार्पण किया। यहाँ से पाजरो, कुमटी, वोरगाव, खेराला, मार्गीठाकुर सा० मुकुंदराम, भगवान्, घनराज, रामचंद्र किसन तथा दयाचद, चौकी, आसेरगढ निंवोला आदि रास्ते में पडनेवाले छोटे २ ग्रामो को अपनी चरण-रज से पवित्र करते हुए आपश्री ठाणे ३ का वरहानपुर में शुभागमन हुआ। यहाँ पर तीन रात्रिपर्यन्त विराजकर विहार किया। वरहानपुर से रगेटी, वादरपुरा, रसून–पुरा, विडरो होते हुए फैजपुर में पदार्पण किया। यहा आस-पास के गावो में दिगवर आम्नाय के अंतर्गत तारणस्वामी का एक पन्थ चलता है, उसको मानने वाले एक जाति के महाजन वणिक् है। वे केवल शास्त्र को मानते हैं और पूजते हैं। आपश्रीजी ने उपदेश देकर वहुत से लोगो को साधुमार्गी वनाये। महासतीजी श्री हीराजी म० जो कि ससार पक्ष की आपकी भगिनी थी, वह भी दक्षिण देश को पावन करने के लिये आपके पीछे विहार करती २ फैजपुर आ पहुंची थी। यहा पर महासतीजी श्री हीराजी म० के समीप पूज्यपाद महाराजश्री के मुखारविंद से वैराग्यवती श्री भूराजी की दीक्षा हुई और वह आपकी नेश्राय मे की गई अर्थात् दक्षिण देश में पधारते समय श्री हीराजी महासतीजी की नेश्राय में यह प्रथम शिष्या हुई। पूज्यपाद श्री यहा पन्दरह दिवसपर्यन्त विराजे।

फैजपुर से विहार कर आपश्री भालोद होते हुए सांकली में सात रात्रि विराज–मान रहे। वहाँ से सिरसाला, यावल आदि स्थानो में विचरण कर फैजपुर पधारे और सात दिन तक यहाँ स्थिरता की। यहाँ से वामणोद होकर भुसावल क्षेत्र में पदार्पण किया। यहाँ आते समय विहार में तापी नदी पर होकर आना पडा। भुसावल से साकेगाँव (वागुर नदी) कडगाँव स्पर्शते हुए जलगाँव में पदार्पण किया। यहाँ आपश्री द्वारा लिखित एक पन्ना उपलब्ध हुआ है। उस पत्र पर "जोगी का झगडा" "पडिक्कमणे की सज्झाय" और विपापहार स्तोत्र ये तीन चीजें लिखी गई हैं। संवत् १९३५ फाल्गुन वदि ३० शुक्रवार खानदेश जिला जलगाव मध्ये लि० तिलोकरिख। जलगाव से विहार करते हुये रास्ते मे गिरणा

नदी उतरी गई । वहाँ से पालधी पधारे । यहाँ से विहारकर रास्ते मे पीपरी और अजना नदी पार कर धरणगाव होते हुए टाकरगाव पधारे । इस मार्ग में चीरली नदी तथा बोरी नदी भी है । इस प्रकार रास्ते में अनेक क्षेत्रो को पावन करने के साथ कई नदी-नालो को पार कर आपश्री ने अंत में अमलनेर पदा-र्पण किया ।

अमलनेर से मुकटी, फागणा होते हुए आपश्री का धुलिया (पश्चिम खान-पेश) में शुभागमन हुआ । यहाँ से पुर, चिकलवाड पधारे । चिकलवाड पहुँचते २ फाल्गुनी चातुर्मासी आ गई थी । यहा पर आपश्री का तैतालीसवाँ लोच हुआ । चिकलवाड से मालेगाव पधारना हुआ । आप अपने जावरा चातुर्मास के समय दक्षिण देश में विहार करने पर घोडनदी पहले स्पर्श करने का वचन दे चुके थे । अतः आपश्री ने पश्चिमखानदेश में अधिक नही रुक कर अपना विहार अनवरत रूप से जारी रखा । परीषहो की चिंता किये विना एक के वाद एक ग्राम का विचरण करते हुये द्रुतगति से विहार कर रहे थे । मालेगाव से आपने मनमाड में पदार्पण किया । मनमाड से येवला, सावरगाव, येसगाव, कोपरगाव, सवत्सर, वारी, पुणताबा, खेरी, निंबगाव, बेलापुर, लाख, मिया टाकली, देसुडी, आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपश्री का ठाणे ३ से वाम्बोरी में शुभागमन हुआ । यहाँ से विलद, भालवणी, जामगाँव, जातेगाव, नारायणगाँव होते हुए मिति चैत्र कृष्णा नवमी के दिन दक्षिण देशस्थ घोडनदी क्षेत्र मे आपश्री के पदार्पण होने से यह क्षेत्र पवित्र हो गया ।

घोडनदीनिवासी श्री गंभीरमलजी लोढा को तो इतनी प्रसन्नता हुई कि उसे शब्द बद्ध नही किया जा सकता । अत्यत प्रसन्नता से उनका रोम-रोम खडा हो गया । घोडनदी के श्रीसंघ ने भी आपके शुभागमन से उत्साहपूर्वक हर्ष मनाया था । इसे एक प्रकार से महाराज साहव का वरदान ही समझना चाहिये कि दक्षिण देश में पहले-पहल महाराज श्री द्वारा इस क्षेत्र का स्पर्श करने के बाद यह क्षेत्र साधु-संतो की चरण-रज से पवित्र होता आ रहा है । यहाँ के निवा-सियो को शास्त्रो का जितना अच्छा ज्ञान है आस पास के अन्य क्षेत्रो में उतना ज्ञान नही है । घोडनदी में अठारह रात्रि-पर्यन्त महाराज श्री विराजे ।

जिस समय महाराज श्री घोडनदी में विराजमान थे, उस समय अहमद-नगर जकर मसंघ आपश्री के दर्शन करने आया । उसी प्रकार आसपास अन्य क्षेत्रों से झुड के झुड लोग आपके दर्शन का लाभ लेने के लिए आते रहे । आपश्री के पधारने से सारे दक्षिण देशमें हर्ष की सीमा नही रही । हमारी उस समय के अनेक

वृद्धो से भेट हुई। वात-चीत के समय उन्होने हमारे सामने अपने ये उद्गार प्रगट किये है कि श्री तिलोकऋषिजी महाराज सा. के पधारने पर सारे दक्षिण देशमे जो उत्साह और हर्ष छा गया, वह वर्णनातीत है। उनके पधारने मात्र मे ही लोगो में अपने धर्म के प्रति नवीन श्रद्धा पैदा हुई। वे अपने उत्साह और वल का अनुभव करने लगे और प्रत्येक व्यक्ति रुचिपूर्वक कुछ न कुछ नवीन धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने लगा। उस समय सव लोगो मे यह स्पर्द्धा की भावना थी की महाराज साहव हमारे क्षेत्र को पहले पवित्र करे। परन्तु उन सब में अहमदनगर श्रीसंघ ने पूज्यपाद महाराज श्री का विहार अपनी ओर कराने मे पहले सफलता प्राप्त की, महाराजश्री ने घोडनदी से पहले अहमदनगर क्षेत्र को स्पर्शने की स्वीकृति दी, फिर आपश्री ने घोडनदी से विहार कर नारायणगाँव सुपा, चास होते हुए अहमदनगर क्षेत्र में पदार्पण किया। अहमदनगर में उस समय सुविख्यात दृढधर्मी सुश्राविका श्रीमती रभावाई पितलिया जी रहती थी। श्री तिलोकऋषिजी म० अहमदनगर में पधार रहे है, यह समाचार जिस व्यक्ति ने (पूनमचदजी ने) वाईजी को सुनाया उस व्यक्ति को वधाई की खुशी में अपने हाथो से सुवर्ण का कंकण निकाल कर दे दिया। यह वात वहाँ के वृद्ध अनुभवी श्रावको द्वारा सुनी गई है। आपश्री के शुभागमन से अहमदनगर में वडा ही उत्साह वढा। प्रति दिन व्याख्यान होता था। व्याख्यान के समय जैन धर्मी श्रावक-श्राविकाओ के अतिरिक्त इतर जनता काफी सख्या में उपस्थित होती थी। विशाल जगह होते हुए भी खचा-खच भर जाती थी। आपश्री यहा इक्कीस रात्रि पर्यंत विराजे चातुर्मास के लिये अहमदनगर के श्रीसंघ ने आपसे वहुत प्रार्थना की, परंतु घोडनदीनिवासी सुश्रावक श्री गभीरमल जी लोढा की सव वाते सुनकर आगामी वर्ष के लिये कुछ छाया देकर आपश्री ने अहमदनगर से विहार किया। घोडनदी का श्रीसघ तथा श्री गंभीरमलजी लोढा की अत्यत आग्रहपूर्ण विनति होने से संवत् १९३६ के चातुर्मास की स्वीकृति घोडनदी में करने की दी गई।

संवत् १९३६ का चातुर्मास घोडनदी लश्कर में।

अहमदनगर से नेपती, दैठाना, जामगाव, पारनेर, वडझीरा, वाभुलवाडा आदि क्षेत्रो को स्पर्शकर आपश्री आवल कुटी (आळकुटी) पधारे। यहा पर ग्यारह रात्रि पर्यंत स्थिरता की। वहा से राघो वडगाव, और कान्हूर पठार स्पर्शते हुए गोरेगाव, भालवणी, खाराकरजूना, विलद आदि क्षेत्रो में विचरण कर वाम्वोरी में आपका पदार्पण हुआ। वावोरी में छह रात्रि पर्यंत शातिपूर्वक विराजे।

वाबोरी से पीपलगाव होते हुए अहमदनगर में पधारना हुआ। अहमदनगर से निंबुडी, चिचौंडी, (महादपाटील) पीपला होते हुए पुन चिचोडी में छह रात्रि-तक बिराजे। चिचोडी से निंबुडी भिंगार (सदरबाजार) मे पधारकर आपश्री ने पुन अहमदनगर में पदार्पण किया। यहा पर आपश्री १७ रात्रि तक विराजे। नगर से विहार कर सुपा होते हुए आपश्री का चातुर्मासार्थ मिति आषाढ कृष्ण १४ के दिन ठाणा तीन से सुखे-समाधे घोडनदी पधारना हुआ। उसके बाद आपश्री की संसार पक्ष की ज्येष्ठ भगिनी सती-शिरोमणि श्रीहीराजी म० ने भी मालेगाव से क्रमश विहार कर ठाणा ३ से घोडनदी में पदार्पण किया। ऐसा सुना जाता है कि उस समय आपके सतत उपदेश से दक्षिण देशका पुनरुद्धार हुआ। अनेक पुण्यशाली व्यक्तियो ने आपके सहवास का लाभ उठाकर अपने जीवन को सफल बनाया। प्रतिदिन आपका सदुपदेश होने लगा।

एक दिन आपश्री ने श्रीमान् गंभीरमलजी लोढा से कहा कि लोढाजी ! आपने मालव प्रात में आकर मुझसे कहा था कि दक्षिण देश पधारिये। आपश्री के दक्षिण देश में पधारने से बहुत उपकार होगा। मै आपके वचन पर ही विश्वास कर इतनी दूर आया हूँ। अब आप ही बताइये, यहाँ आने पर क्या उपकार हुआ है ?

इस पर श्रीमान् लोढाजी ने कहा आपश्री के उपदेश मे ही महान् शक्ति है, वह धीरे २ अप्रत्यक्ष रूप से सब कार्य करती जा रही है, उसका अभी हमें मूर्तरूप नही दिखाई देता, पर थोडे ही दिनो में आपके उपदेश से यहाँ वह कार्य होगा, जिसे देखकर लोग चकित रह जायगे। दक्षिण में वह एक अभूत-पूर्ण घटना होगी,।

श्रीमान् लोढाजी के कथनानुसार पूज्यपाद म० श्री के उपदेश ने अपना कार्य किया। लोढाजी के एक रामकुंवर नामक सुपुत्री थी, वह केवल अठारह मास पर्यंत पति के सुख का अनुभव कर विधवा हो चुकी थी। प्रतिदिन महा-राजश्री का व्याख्यान सुनते २ उसे ससार से वैराग्य हो गया। उसके साथ उसकी माता श्री चपाबाई को भी संसार से विरक्ति होने लगी। होते २ यह विरक्ति यहाँ तक बढी कि दोनो माता-पुत्री ससार छोडकर दीक्षा लेने के लिये कटिबद्ध तैयार हो गई। उस समय माणकदौंडी (जि. अहमदनगर) वाले श्रीमान् स्वरूपचदजी प्रिंगल और उनका एक रतनचदजी नामक बारह वर्ष का पुत्र ये दोनो घोडनदी मे आकर रहे थे। श्रीमान् स्वरूपचदजी प्रतिदिन पूज्यपाद महा-राजश्री का व्याख्यान एकाग्रचित्त होकर सुनते थे। जब आपने माता-पुत्री के

एक साथ दीक्षा लेने के समाचार सुने, तब आपका मन भी उसी दिशा की ओर दौडने लगा। प्रतिदिन एकाग्रता से व्याख्यान सुनने पर आपको संसार की अनित्यता का भास हो चुका था। संसार में रहनेवाले प्राणियो को आये दिन कितनी चिंताओ तथा परेशानियो का अनुभव करना पडता है ? इसका प्रत्यक्ष अनुभव वे बहुत समय से कर रहे थे। उन्होने सोचा कि मेरे पूर्व पुण्यो से ऐसे महापुरुषों का सुयोग प्राप्त हुआ है, बार-बार ऐसा सुअवसर प्राप्त होनेवाला नही। जहाँ जैनधर्म एकदम क्षीण तेज हो रहा था, वहाँ आपश्री ने यहाँ पधार कर उसे प्रदीप्त बनाया। आपके यहाँ से विहार कर देने पर न मालूम ऐसा सुयोग प्राप्त होगा या नही ? इसलिए जल्दी ही इस संसार को छोडकर प्रव्रज्या ग्रहण करने में मेरा श्रेय है। श्रेय—कारक कार्य को यथा—सभव शीघ्र कर लेना चाहिए। श्रीमान् स्वरूपचदजी ने अपने ये विचार अपने द्वादशवर्षीय पुत्र श्री रतनचदजी के सामने प्रकट किये। विनीत पुत्र ने तत्काल उत्तर दिया, जिस कार्य को आप श्रेय समझते हैं, मेरे लिये भी वह श्रेयस्कर है। पर आप अकेले ही दीक्षा लेकर अपना कल्याण नही साध सकते। आपके साथ मैं भी प्रव्रज्या ग्रहण करके आपका पदानुसरण करूंगा। दीक्षावस्था में आप की देखरेख मे मैं जल्दी ही अपना लक्ष्य सिद्ध कर सकूगा। अपने विनीत और साधुचरित पुत्र की ये बाते सुनकर श्रीमान् स्वरूपचंदजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने अपनी यह भावना श्रीसंघ के सामने प्रकट की। हम पिता-पुत्र भी ससार से विरक्ति हो जाने से संसार को छोडकर दीक्षा लेना चाहते है। उन के मुह से यह बात निकलते ही वायु-वेग से चारो ओर फैल गई। जिधर देखो उधर इसी की चर्चा होने लगी। लोग कहने लगे महाराजश्री के दक्षिण देश में पधारने से लोगो के हृदय में कैसा परिवर्तन हो रहा है। हमारे घोडनदी क्षेत्र से ही एक साथ चार व्यक्ति दीक्षित हो रहे है। फिर तो सब लोग बडे उत्साह से दीक्षा—महोत्सव की तैयारी में जुट गये। उन में श्रीमान् लोढाजी अगुवा थे। दीक्षा-महोत्सव के खर्च आदि की सारी जिम्मेवारी उन्होने अपने सिर पर ही ले ली।

आषाढ शुक्ल नवमी शनिवार के शुभ दिन का उदय हुआ। घोडनदी मे बडे उत्साह-पूर्वक दीक्षा—महोत्सव मनाया गया। इस मंगलकार्य मे सम्मिलित होकर अपने को कृतार्थ करने के लिये आस-पास के ग्रामो के हजारो लोग सम्मिलित हुए। सब अपने हर्षोद्गार प्रकट कर रहे थे। इस क्षेत्र मे इस के पहले

इतने लोग कभी इकट्ठे नही हुए थे। बडे समारोह के साथ वैरागी व्यक्ति दीक्षा-महोत्सव के स्थान पर पहुचे। वहाँ कविकुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० ने अपने मुखारविंद से "करेमि भते,, का पाठ सुनाया और चारो वैरागी आत्माओ को दीक्षित किया।

पिता-पुत्र श्री स्वरूपचदजी और रतनचदजी इन दोनो को महाराजश्री ने अपनी नेश्राय में शिष्य बनाये और दीक्षा लेने के बाद उनके नामो को बदलकर श्री स्वरूपऋषिजी म० तथा श्री रत्नऋषिजी म० इस प्रकार रखा गया। दीक्षा लेने के समय श्री रत्नऋषिजी म० की अवस्था केवल बारह वर्ष की थी। दूसरी ओर माता और पुत्री श्री चंपाबाई और श्री रामकुवर ये दोनो सती-शिरोमणि श्री हीराजी म० की नेश्राय मे शिष्याएँ हुईं। इनका भी नाम-करण क्रमश श्री चंपाजी म० तथा श्री रामकुवरजी म० इस प्रकार किया गया।

इस प्रकार लश्कर घोडनदी क्षेत्र में एक ही साथ एक ही रोज चार दीक्षाएँ हुई। वह पिता-पुत्र तथा माता-पुत्री की जोडी थी। बडे पुण्य से सैकडों वर्षो से कभी ऐसा सुयोग प्राप्त होता है। स्वयं श्रीतिलोकऋषिजी म० के जीवन मे ऐसी घटना घटी थी। उन्होने भी अपने शिरच्छत्र, पितृकल्प ज्येष्ठ सहोदर के साथ दीक्षा ली थी और उनकी ज्येष्ठ भगिनी तो अपनी मातेश्वरी के साथ दीक्षित हुई थी। लश्कर घोडनदी में पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० आदि ठाणे ५ तथा महासतीजी श्री हीराजी म० आदि ठाणे ५ कुल मिलाकर दस ठाणों का चातुर्मास हुआ। चातुर्मास-काल मे श्री समवायाग सूत्र का वाचन हुआ। यहाँ पर आपका ४४ वाँ लोच हुआ।

दक्षिण देश में घोडनदी क्षेत्र में महाराजश्री का यह प्रथम चातुर्मास था। इसलिये वहाँ पर लोगो की बहुत चहल-पहल रही। महाराजश्री का दर्शन करने प्रति दिन बाहर के गावो से अनेक लोग आने लगे। धर्म-ध्यान, व्रत-पच्चक्खाण, आदि की नवीन परंपरा प्रारंभ हुई। प्रतिदिन व्याख्यान के समय महाराजश्री के सदुपदेश को सुनकर लोग अंतर्मुख होकर विचार करने लगे। सवत्सरी के दिन तो इतने लोग इकट्ठे हुए कि कहा नही जा सकता। फिर भी यह महापर्व अत्यत शाति-पूर्वक और बडे उत्साह से मनाया गया। इस प्रकार दक्षिण देश मे यह प्रथम चातुर्मास विशेष सफलता-पूर्वक सपन्न हुआ।

सवत् १९३६ के सालमे चातुर्मास की अवधि-पर्यंत आपश्री ने जिन ग्रंथो का निर्माण किया, उनमे से उपलब्ध ग्रथो की सूची निम्न प्रकार है।–

१ आवश्यक सूत्रमूल पाना १९	संवत् १९३६	भाद्र शुक्ल ८	घोडनदी
२ व्याख्यान-मडल सवैया पाना १	,,	आश्विन शु १२	,,
३ सतियाकी सज्झाय	,,	चातुर्मास	,,
४ गणधरकी ,,	,,	,,	,,
५ सामायिक के दोषोका पन्ना १	,,	,,	,,
६ समकित-छत्तीसी	,,	,,	,,
७ गजमुकुमारकी लावणी पन्ने २	,,	,,	,,

संवत् १९३७ का चातुर्मास अहमदनगर क्षेत्रमें

घोडनदी का चातुर्मास विशेष उत्साह तथा शाति-पूर्वक वातावरण मे सपन्न हुआ। चातुर्मास के बाद आपश्री विहार करनेवाले थे। इतने ही में वहा के श्रीसघ ने उपस्थित होकर आपश्री से विनति की। यहापर अभी वैराग्यवती श्रीरभाबाईजी की दीक्षा लेन की उत्कट इच्छा है। उनकी ससार से एकदम विरक्ति हो गई है। वैराग्य-वती बाई तथा यहा के श्रीसघ की यह इच्छा है कि यह दीक्षाविधि आपके द्वारा ही संपन्न हो। इसलिये श्रीरंभाबाई की दीक्षा हो तब तक आप यहा विराजमान रहने की कृपा करे। पूज्यपाद महाराजश्री ने सोचा कि श्रावक-गणका कहना समुचित है। तथा यह शुभ कार्य है। इस मगलमय कार्यको संपन्न करने के लिये मेरा यहाँ रहना समयोचित है।

फिर सवत् १९३६ मार्गशीर्ष कृष्णा १३ गुरुवार के दिन वैराग्यवती श्री रंभाबाई को अत्यंत समारोह के साथ दीक्षा दी गई। वह महासतीजी श्री हीराजी म० की नेश्राय में शिष्या हुई। दीक्षा के सात दिन बाद उन्हे बडी दीक्षा देकर मार्गशीर्ष शुक्ल ५ शुक्रवार के दिन आपश्री ने वहाँ से विहार किया। विहार कही दूर नहीं कर केवल स्थान-परिवर्तन मात्र किया गया। क्यो कि रभाबाई की दीक्षा के समय एक बहिन की और दीक्षा लेने की इच्छा हो गई। इस समारोह को संपन्न करना आपका कर्तव्य था। फिर वैराग्यवती श्री गोकुलजी की दीक्षा सवत् १९३६ पौष शुक्ल ६ शनिवार के दिन आपश्री की उपस्थिति में हुई। वह भी सती-शिरोमणि श्री हीराजी म० की नेश्राय मे शिष्या हुई। नव दीक्षिता महासतीजी को पौष शुक्ल द्वादशी के दिन बडी दीक्षा देकर आपश्री ने घोडनदी से विहार किया। रास्ते में छोटे २ क्षेत्रो को स्पर्शते हुए वाबोरी (अहमदनगर) मे आपका शुभागमन हुआ। यहा पर वैराग्यवती श्री छोटाजी की संवत् १९३६

माघ कृष्ण १ बुधवार के रोज दीक्षा हुई। ये भी महासतीजी श्री हीराजी म० की नेश्राय मे शिष्या की गई।

वाबोरी से विहार कर ब्राह्मणी, खेरडा, करजगाँव आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए सोनई क्षेत्र मे पदार्पण किया। यहाँ पर ग्यारह रात्रि पर्यंत स्थिरता की। यहाँ पर रहकर "एषणा समिति" का चौढालिया सपूर्ण किया। संवत् १९३६ गाँव सोनई मध्ये। विहार-वर्णन से पता चलता है कि यह ग्रथ माघ वदि पंचमी शनिवार के दिन पूर्ण किया होगा। एषणा समिति का यह चौढालिया "सत्य बोध" नामक बडी पुस्तक में प्रकाशित है। सोनई से विहार कर ब्राह्मणी, उमरा, टाकली, लाख, बेलापुर, कोल्हार (भगवती,) लुणी, गोगलगाव, ओझर, बडझीरा, तलेगाँव, तिरला, भोकनी तथा निव्रगाव होते हुए आपश्री ने फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष मे साइखेडा (नाशिक) में पदार्पण किया। यहाँ पर आपश्री छह रात्रि पर्यंत विराजे। यहाँ के स्थिरवास के समय मिति फाल्गुन कृष्ण १० शनिवार के दिन "भोलप छत्तीसी" नामक ग्रथ की रचना पूर्ण की। यहा से विहार करते समय रास्ते में गंगानदी (गोदावरी नदी) उतरनी पडी। नदी को पार करने के बाद आपश्री ने चादोरी, लाखनगाँव, ओडा आदि स्थानो को स्पर्श करते हुए नाशिकनगर में पदार्पण किया। नाशिक में गोदावरी नदी बहती है। वहा पर आप त्रिबकेश्वर दरवाजे श्रावगी के उपाश्रय मे उतरे। यहा पर भी आपने दो रात्रि पर्यन्त स्थिरता की। नाशिक से विहार कर आडगाव में आहार-पानी किया। वहा से ओझर, सरसगाव, कादवा नदी पत्थर पर से उतरे। वहाँ से वसंतपीपलगाँव में आपश्री का शुभागमन हुआ। यहा फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी को अमरकुमार-चरित्र नामक काव्य सवत् १९३६ में पूर्ण किया गया है। यहा पर आपश्री तीन रात्रि पर्यंत विराजे। पीपलगाव से विहार कर कारसूल, कुंदेवाडी, सुकिना आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए निफाड पहुँच कर वहा पाँच रात्रि पर्यंत स्थिरवास किया। यहा आपश्री का ४५ वाँ लोच हुआ। वहा से विहार कर पुन. कोठरा, चादोरी होते हुए साइखेडा क्षेत्र मे चैत्र कृष्ण ३ के दिन पदार्पण किया। यहा पर वैराग्यवती श्री नंदूबाई की दीक्षा संवत् १९३६ चैत्र कृष्णा १३ बुधवार के दिन हुई। यहा कुछ दिन स्थिरवास कर वैशाख कृष्ण प्रतिपद के दिन आपने यहा से विहार किया। रास्ते में चादुरी, पीपलास, निफाड तथा नादूर्डी होते हुए आपने लासलगाँव में पदार्पण किया। यहा पर चार रात्रि विराजकर विंचूर, देशमानव होते हुए मुखेड पहुँच कर आहार-पानी किया। वहा से पुनः माहारगाँव को स्पर्श कर कोपरगाव में आपका पधारना हुआ। वहा से मोजडा मे आहार-पानी करके वारी जाकर तीन रात्रिपर्यत विराजे। वहा से पुन

तावा, खेरी निवगाव होते हुए वेलापुर पधारे। फिर लाख स्पर्श कर टाकली में आहार-पानी किया। टाकली से देसूंडी होते हुए वावोरी में पदार्पण किया। वावोरी मे दो रात्रि स्थिरता की। तत्पश्चात् ब्राह्मणी में आहार-पानी करके सोनई, खरवंडी आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए हीवडा भानस में पधारना हुआ। यहा पर आपने छह रात्रि पर्यन्त स्थिरवास किया। यहा पर आपश्री ने वैशाख कृष्ण त्रयोदशी के दिन "विनय-आराधना का चौढालिया" की रचना पूर्ण की तथा अक्षयतृतीया के दिन "श्री उपदेश-लावणी" की रचना इसी गाव मे की।

फिर भानस हिवरा से विहार कर कुकाना क्षेत्र में पधारे। यहा दो दिन विराजे। यहाँ से देवगाव होते हुए चादा मे कुछ विराजकर सोनई मे आपका पदार्पण हुआ। यहापर तीन रात्रि विराजे। वहासे ब्राह्मणी होते हुए वावोरी क्षेत्रको अलकृत किया। वावोरी श्रीसंघके विशेष आग्रह मे आपश्री यहा १८ रात्रि पर्यंत विराजे। इन सब क्षेत्रो पर महाराज श्री की असीम कृपा थी। जहा कही पर आपश्री की अधिक स्थिरता होती, वहा आस-पासके ग्रामो से दर्शनार्थियो का ताता लगता रहता था। उन सब स्थानो का श्री संघ भी इतना उदार तथा उत्साही था कि अपने यहा महाराज श्री के दर्शनार्थ आनेवाले व्यक्तियो का तन–मन–धन से आतिथ्य–सत्कार करने के लिये सदैव तत्पर रहता था।

इस बात का हम पहले ही उल्लेख कर चुके है कि घोडनदी क्षेत्र मे ही अहमदनगर चातुर्मास करने की महाराजश्री ने स्वीकृति दे दी थी, अब चातुर्मास के दिन भी निकट आगये थे, अत चातुर्मास के निमित्त आपश्री ने ठाणा ४ से विहार किया। वावोरी से विहार कर देवगढ, डोगरगढ, होते हुए पीपलगाव मालवी मे आपश्री नें पदार्पण किया। पूज्यपाद महाराज श्री दक्षिण देश मे पधारे, उस समय से ही अदमदनगर का श्रीसंघ आपश्री का चातुर्मास कराने के लिये, लालायित था। इसके लिये उसने अपने प्रयत्न मे कुछ कमी नही रखी, परंतु श्रीमान् लोढाजी और घोडनदी के श्रीसंघ के आगे उसे झुकना पडा। पर अब नगर के श्रीसघ की भावना सफल हुई। इस से नगर-निवासियो के हर्ष की सीमा न रही। उन्होने सोचा अब ऐसे महापुरुषो का चातुर्मास जितनी लबी अवधि तक समागम रहने वाला है, इससे वढकर हमारे लिये और क्या सुवर्णावसर हो सकता है? पूज्यपाद म० श्री अब चातुर्मास के निमित्त अहमदनगर के पास पधार गये है। ऐसा जान कर नगर का श्रीसंघ आपके स्वागतार्थ बहुत दूर तक पहुचा। सैकडो व्यक्ति जय-घोष की ध्वनि से आकाश को गुजायमान कर रहे थे। ऐसे लोगो के समूह के साथ आपश्री का अहमदनगर मे शुभागमन हुआ। महाराजश्री के साथ जुलूस का यह दृश्य दर्शनीय था। ऐसा वृद्धो के मुखो से सुना जाता है। अहमदनगर में पदार्पण

कर श्रीसंघ के विशाल धर्म-स्थानक में आप विराजमान हुए। उस समय महासतीजी श्री झमकूजी महाराज भी ठाणा ३ से चातुर्मास के निमित्त अहमदनगर पधार गईं। इस प्रकार अहमदनगर में कुल ठाणा सात का चातुर्मास हुआ। इस समय अहमदनगर में श्रीमान् किसनदास जी मुथा, श्रीमान् चंदनमलजी पीतलिया, श्रीमान् हनोतमलजी कोठारी जैसे शास्त्रज्ञ मुख्य श्रावक विद्यमान थे। चातुर्मास प्रारभ होने पर प्रतिदिन व्याख्यान होने लगा। व्याख्यान में उत्तरोत्तर संख्या बढने लगी, धीरे २ लोक इतने अधिक आने लगे कि स्थानक खचाखच भर जाता था। व्याख्यान मे श्री आचाराग सूत्र तथा श्री सूयगडागसूत्र का वाचन होता था। आपश्री के मधुर अमृतोपम उपदेश को श्रवण कर श्रोता-गण पुन पुनः उसे सुनने के लिये इतने अधिक लालायित रहते थे कि उन्हे कभी तृप्ति नही होती थी। स्थानीय श्रावक-श्राविकाओ के अतिरिक्त दूर दूर से अनेक लोग व्याख्यान सुनने के लिये आते थे। पर्युषण तथा सावत्सरिक महापर्व भी विशेष उत्साह तथा शातिपूर्ण ढंग से सपन्न हुआ। यहा आपश्री का ४६ वा लोच हुआ। श्रीसघ ने धर्मध्यान तथा व्याख्यान-वाणी का प्रचुर परिमाण मे लाभ उठाया। चातुर्मास के समय पूज्यपाद महाराज श्री के दर्शनार्थ आनेवाले व्यक्तियो का श्रीसंघ ने तन—मन—धन से आतिथ्य-सत्कार किया। इस प्रकार चातुर्मास-काल आनद-पूर्वक सपन्न हुआ।

चातुर्मास-काल में आपश्री ने जिन जिन ग्रथो की रचना की, उनमें से उपलब्ध ग्रथो की सूची निम्न प्रकार है—

१) भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशी शुक्रवार शिव योग में "श्री वर्द्धमान दशोटन" नामक काव्य बनाया, वह सत्य बोध नामक बडी पुस्तक मे प्रकाशित है।

२) आश्विन कृष्ण ४ बुधवार भरणी नक्षत्र हर्षण योग, अहमदनगर नवी पेठ धर्मस्थानक मे "श्रीचद्र केवली चरित्र" की रचना परिपूर्ण की। ढाल ६७ तथा ४५०० गाथा परिमाण यह ग्रथ है और अप्रकाशित है।

३) आश्विन कृष्ण ७ मदवासरे "नमिपव्वजा" (उत्तराध्ययन सूत्रका नौवां अध्ययन) एक पत्र में लिखा। यह मयूर एवं प्रासाद को विचित्र आकृति में अकित किया गया है। इसकी लेखनशैली दर्शनीय है और यह पत्र अप्रकाशित है।

४) आश्विन कृष्ण १४ बुधवार को "द्वितीय चौवीस जिन-स्तवन" की रचना सपूर्ण हुई। यह सत्यबोधनामक बडी पुस्तक में प्रकाशित है।

५) आश्विन शुक्ल १० विजया दशमी के रोज "पच परमेष्ठि स्तवन तथा वीर रस प्रधान "श्री महावीर स्वामी का पच ढालिया" इन दो ग्रंथो की रचना परिपूर्ण की गई। यह अप्रकाशित है।

६) कार्तिक कृष्ण ३० दीपमालिका के रोज "श्री वर्द्धमान स्वामी का चौढालिया" नामक ग्रंथ की रचना की गई अहमदनगर मध्ये। यह ग्रथ सत्यवोध नामक वडी पुस्तक मे प्रकाशित है।

संवत् १९३८ का चातुर्मास वांबोरी में

श्री अहमदनगर का चातुर्मास सानंद सपन्न होने के वाद आपश्री का मार्गशीर्ष कृष्ण २ गुरुवार के दिन नगर के वाहर धर्मशाला में विहार हुआ। यहा से केडगाव, कामरगाव, सुपा, हिंगा, पारनेर, कान्हूर पठार, पाडली, वाभुलवाडा आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपश्री ने ठाणा चार से आलकुटी मे पदार्पण किया। यहाँ पर आठ रात्रि पर्यन्त विराजे। आलकुटी से विहार कर लुणी, निघोज, जवला आदि क्षेत्रो का स्पर्श कर घोडनदी पधारे। यहाँ पर आपश्री ने चौदह रात्रि तक स्थिरवास किया। सवत् १९३७ मिति मार्गशीर्ष शुक्ल १२ के दिन आपश्रीजी ने ज्ञानकुजर तैयार किया। यह ज्ञानकुजर आध्यात्मिक दृष्टि से गद्य तथा पद्यमय शैली में लिखा गया है। इस में अबारीसहित एक वृहत् हाथी की अक्षरमय आकृति है।। सूड से प्रारभ कर पढते जाइये क्रमशः धीरे २ हाथी की आकृति तैयार हो जायगी। इस वृहत् हाथी की आकृति में एक चवन्नी भर जगह में सव अवयवोसहित ६५ हाथिओ की आकृतियाँ चित्रित की गई है। इस दर्शनीय और अमूल्य वस्तु की श्री जैनधर्म प्रसारक संस्था सदर वाजार, नागपुर ने हजारो प्रतियाँ प्रकाशित की है। परतु साधारण जनता इसे देखकर इसका भाव नही समझ सकती। सामान्य लोग भी इसमे निहित भाव को हृदयगम कर सके, इसके लिये "श्री ज्ञानकुजर दीपिका" नामक एक पुस्तिका नाथद्वारा निवासी पं० श्री राधाकृष्ण शर्मा एम् ए द्वारा लिखित श्री रत्न जैन पुस्तकालय, पाथर्डी (जि अहमदनगर) से प्रकाशित की गई है।

इस पुस्तक में ज्ञानकुजर (ज्ञान का हाथी) के विभिन्न अवयवो को अलग २ देकर उनमें लिखे हुए अक्षरो का भावार्थ समझाया गया है। सूड से लेकर पूछ तक थोडे में महाराज साहव ने कितने गहरे तत्त्वो को लिपिबद्ध किया है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। वडे-वडे विद्वान् भी इस कृति को देखने के पश्चात् विस्मय-विमुग्ध हो जाते है। इसके वारे में विशेष जानकारी "श्री ज्ञानकुंजर-दीपिका" से प्राप्त कर सकते है। इसकी हस्तलिखित मूल प्रति पूज्य उपाध्यायजी श्री आनदऋषिजी महाराज के पास है।

घोडनदी से विहार कर दैठणा, ढवलगाव, कोडेगव्हाण, निंवी, पीपलगाव पीसा, कोलगाव कोइथल, ढोरजा, भानगाव, देवलगाव आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए आपश्री ने श्रीगोदा में पदार्पण किया। यहाँ नव रात्रि पर्यन्त स्थिरता

की। अपने स्थिरवास के समय पौष शुक्ल ८ शुक्रवार के दिन आपश्री ने "जीवरक्षा की लावणी" तथा "श्रावक ऊपर लावणी" इन दो काव्यो की रचना की। ये दोनो काव्य सत्यबोध में प्रकाशित है।

श्रीगोदा से विहार कर देवलगाव, भानगाँव, खाडगाव, कातरावाह, माडवगण, रुई, लोणी आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए चिचोडी (महाद पटेल) में आपका शुभागमन हुआ। यहाँ पर आपश्री चौदह रात्रि पर्यन्त विराजे। यहाँ पर "मुनि मगल गुणमाला" की रचना मिति माघ वदि ८ के दिन की गई। इस काव्य की रचना इतने सुन्दर ढग से की गई है कि इसमें निहित शास्त्रोक्त ज्ञान को साधारण से साधारण व्यक्ति भी समझ सकता है। भाषा भी इसकी अत्यंत सरल है। यह सत्य बोध नामक बडी पुस्तक मे प्रकाशित है।

चिचोडी से विहार कर पीपला आकर चार रात्रि पर्यंत विराजे। यहाँ पर श्रीमान् कोडीरामजी बोरा आपश्री से प्रभावित होकर आपके पूर्ण भक्त बन गये। वहाँ से फिर बोराडी, लिंबगाव, घूमरी, मिरजगाव, पाटेगाव, निबगाव, चापडगाव आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए माघ मास के शुक्ल पक्ष में करमाला क्षेत्र को अलकृत किया। यहाँ पर छह दिन तक स्थिरता की। यहाँ पर माघ शुक्ल दशमी भौमवार के दिन "श्रावक छत्तीसी,, की रचना की गई और माघ शुक्ल तेरस को "नरक दुख वर्णन,, की रचना कर के "उपदेश आश्रय पद्य बीजु,, की रचना भी यही पर की गई। ये तीनो काव्य सत्यबोध मे प्रकाशित है।

करमाला से विहार फर रायगाव, कोरेगाव, कर्जत, डिकसल, आदि ग्रामो को स्पर्शते हुए मिरजगाव में पदार्पण किया। यहाँ पर चार रात्रि पर्यन्त विश्राति की। विश्राति के समय फाल्गुन कृष्ण द्वितीया बुधवार को "अध्यात्म फाग स्वाध्याय,, की रचना की। यहाँ से वाकी, सिराल होते हुए कडा पधारे। यहाँ फाल्गुन कृष्ण एकादशी को "सोलह स्वप्न की लावणी,, रचना की। इस लावणी पर "सम्राट् चद्रगुप्त के सोलह स्वप्न नामक पुस्तक पडित राधाकृष्णजी शर्मा एम्० ए० द्वारा विवेचन सहित लिखी गई है और श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी (अहमदनगर) से प्रकाशित की गई है। पुस्तक का विषय बोधप्रद, रोचक एवं मननीय है।

कडा से डोगरगण, दादेगाव, देवलाली, पानाकी, आलणवाडी, सावरगाव, घाटसिरस, करजी, कौडगाव, सदर भिंगार होते हुए फाल्गुन शुक्ल सप्तमी के दिन अहमदनगर में पदार्पण किया। यहाँ पर फाल्गुनी चातुर्मासी का सैतालिसवा लोच हुआ। नगर मे आपश्री ने लगभग सत्तावीस दिन पर्यन्त स्थिरता की। अहमदनगर में आपश्री द्वारा लिखित कार्य निम्न प्रकार हुआ।

(१) चैत्र वदि द्वितीया गुरुवासरे श्री दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययन मूलपाठ पाना, २ अहमदनगर नवीपेठ में।

(२) चैत्र वदि सप्तमी के दिन "शीला सप्तमी स्वाध्याय" की रचना की गई। यह सत्यबोध में प्रकाशित है।

(३) चैत्र शुक्ल पंचमी रविवार के दिन अहमदनगर स्थानक से विहार कर सिद्धेश्वर बाग में पधारे। रात्रि मे वहाँ निवास किया और उसी रोज आपश्री ने "श्री अध्यात्म बाग,, की रचना की। यह काव्य भी सत्यबोध में प्रकाशित है।

सिद्धेश्वर बाग से विहार कर पीपलगाव स्पर्शते हुए आपश्री ने पुन वाम्बोरी को पावन किया। यहा पर आपने दस दिन तक स्थिरता की। यहां आपश्री ने जिन २ काव्यो की रचना की, उनकी सूची --

(१) चैत्र शुक्ल एकादशी सोमवार के दिन "काल की लावणी" बनाई,
(२) चैत्र शुक्ल पौर्णिमा को "सात वार अध्यात्म स्वाध्याय" की रचना की,
(३) चैत्र शुक्ल पौर्णिमा को "पदर तिथि अध्यात्म स्वाध्याय" को बनाया
(४) चैत्र ,, ,, "बारह मास अध्यात्म स्वाध्याय" की रचना की,
(५) ,, ,, ,, "अध्यात्म गिनगोर" की रचना की।

इस प्रकार वाम्बोरी मे विराजते हुए आपश्री ने इतने काव्यो की रचना की। उपरि लिखित पाचो काव्य सत्यबोध मे प्रकाशित है।

वाम्बोरी से आपश्री ने ठाणा चार से विहार किया। ब्राह्मणी होकर सोनई क्षेत्र को पावन किया। यहा तेरह दिन तक स्थिरवास किया। यहा से विहार कर घोडेगाव को स्पर्श कर मिरि में पदार्पण किया।

वैशाख शुक्ल तृतीया को "अक्षय तृतीया की अध्यात्म स्वाध्याय" की रचना की गई। वैशाख शुक्ल षष्ठी के दिन "करमपच्चीसी की लावनी" रची। तथा वैशाख शुक्ल द्वादशी बुधवार के रोज "कक्का बत्तीशी,, की रचना की गई। ये तीनो काव्य सत्यबोध नामक बडी पुस्तक में प्रकाशित है। यहा आठ रात्रि स्थिरता रही। मिरि से विहार कर वडुला मे पाच रात्रि पर्यन्त विराजे वहा से कुडगाव दो दिन ठहर कर देवटाकली पधारे। यहा ज्येष्ठ वदि तृतीया सोमवार के दिन "पंचम आरा की लावनी" की रचना की गई और "काल की लावणी" भी यही लिखी गई। यहा से विहार कर कुकाना जाकर ग्यारह रात्रि तक स्थिर-वास किया। यहा पर ज्येष्ठ वदि नवमी के दिन "श्री चौवीस जिनवर की स्तुति" की रचना की गई। कुकाना से विहार कर भीडा में,आहार-पानी करके हिवडा (भानस) में जाकर चार दिन स्थिरता की। फिर चिचोरा से रस्तापुर पधारे।

(७-८) कार्तिक कृष्ण अमावास्या के दिन "दीप मालिका अध्यात्म स्वाध्याय" तथा "मंगलमय पर्व दीपावली" काव्य की रचना की।

(९) "श्री इग्यारह गणधर की चतुर्थ सज्झाय" ये सभी काव्य सत्य-बोध नामक बडी पुस्तक में प्रकाशित हैं।

इस प्रकार चातुर्मास-काल मे आपने इतने ग्रंथो की रचना की तथा वावोरी चातुर्मास का समय भी बहुत शाति एव उत्साहमय वातावरण में सपन्न हुआ।

संवत् १९३९ का चातुर्मास घोडनदी क्षेत्र में,

वावोरी क्षेत्र में शातिपूर्वक चातुर्मास पूर्ण होने के बाद मार्गशीर्ष वदि द्वितीया को वहाँ से विहार किया और डोंगरगण होते हुए पीपलगाव में दो दिन ठहर कर आपश्री ठाणा चार से अहमदनगर पधारे। यहापर पदरह दिन पर्यंत स्थिरवास किया। यहाँ से विहार कर मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थी के रोज केडगाव पधारे। सवत् १९३८ मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को "श्री गौतम स्वामीका रास" नामक ग्रथ की रचना की। विहार के तिथि-क्रमसे इस ग्रंथ की रचना कामरगाव मे हुई होगी। तदनंतर क्रमशः विहार कर हिंगा मसणा, पारनेर, वडझीरा आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए आपश्री का आलकुटी में पदार्पण हुआ। यहाँपर दस दिन तक स्थिरता की। आलकुटी से विहार कर तासकरवाडी, निघोज, गुणारा होते हुए घोडनदी को अलकृत किया। यहाँपर ग्यारह रात्रि ठहरकर यहाँ से जवला, पावल होते हुए दीक्षा देने के निमित्त पूज्यपाद श्री ठाणा चार से आलकुटी पधारे। यहाँ पर सोलह रात्रि स्थिरता की। सवत् १९३८ पौष शुक्ल १२ रविवार को साय–काल के समय श्री झमकुजी और सोनाजी इन दोनो बाइयो की दीक्षा हुई। बडी दीक्षा सातवे दिन हुई। सवत् १९३८ माघ कृष्ण तृतीया शनिवार के दिन "चौवीस जिन स्तवन" तथा चौवीसी मे पाँचवे पद्य की रचना की गई। माघ कृष्ण चतुर्थी रविवार के दिन तीन प्रकार का "उपदेशी फटका" तथा आठ प्रकार के "चौवीस जिन स्तवन" की रचना पूर्ण की। ये सभी काव्य सत्य बोध मे प्रकाशित हैं। फिर माघ कृष्ण पंचमी को आलकुटी से विहार किया। तत्पश्चात् निघोज धनगर टाकली, मलठण होते हुए शिरूर से घोडनदी पधारे। यहाँपर दस रात्रि पर्यंत विराजे। संवत् १९३८ (तिथिवार का उल्लेख नही है) में "चैतन की अदालत लावणी" की रचना घोडनदी में की गई है। यह काव्य भी सत्यबोध नामक बडी पुस्तक में प्रकाशित है।

घोडनदी से विहार कर नारायण गव्हाण, सुपा, कामरगाव, चास, आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए अहमदनगर क्षेत्र मे पधारना हुआ। यहांपर पूज्यपाद महाराज श्री ने वीस दिनतक स्थिरता रखी। माघ शुक्ल पंचमी को "वसत पंचमी अध्यात्म स्तवन" की रचना की। यह काव्य भी सत्यबोध मे प्रकाशित है।

अब यहाँ से विहार कर पूज्यपाद महाराजश्री ने औरगाबाद, जालना की ओर विहार किया। फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को विहार कर शेंडी, चौकी जेऊर, घोडेगाव, सोनई, तामसवाडी, नेवासा, प्रवरासगम, भीडला, दहीगाव और वालुज आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए औरंगाबाद छावनी-निवासी श्रीमान् रतनचदजी सेठ राजीबाई के बगले में दो रात्रि रहकर औरगाबाद पधारे। वहाँ से विहार कर रुई मे दो रात्रि निवास किया। फिर चिकल ठाणा, करमाड, सेकटा, बदनापुर, सेलगाव आदि गावो को स्पर्शते हुए जालना (निजामस्टेट) मे पदार्पण किया। यहाँ आपश्री ने दस दिन तक स्थिरता की। तथा फाल्गुनी चातुर्मासिक ४९ उंचासवाँ लोच यहीपर हुआ। तत्पश्चात् जूना जालना स्पर्शकर वहाँ से विहार किया। पुन सेलगाव कडचोगाव (यहाँ आहार-पानी किया) गोलटगाव, करमाड, सेदूरी आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए औरगाबाद मे पदार्पण किया। यहाँ आपश्री आठ रात्रि विराजे और तीन रात्रि बंगलेपर। वहा से विहार कर वालुज, भीडाला, प्रवरासंगम, खडका, हिवडा, चिचोरा, खरुडी, सोनई आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए बाबोरी पदार्पण कर चैत्र शुक्ल १० और ११ के दिन "श्री धन्नाजी की लावणी" की रचना की। वह सत्य बोधमें प्रकाशित है।

तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर पीपलगाव होते हुए अहमदनगर क्षेत्र मे चैत्र शुक्ल द्वादशी शुक्रवार के दिन आपश्री का शुभागमन हुआ। यहापर ४४ चौवालीस दिन तक स्थिरवास किया। यहापर रहते समय वैशाख शुक्ल चतुर्दशी के दिन मगलवार को "हस केशव चरित्र" की रचना पूर्ण की। तथा मिति ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थी रविवार के दिन, "श्री धर्मबुद्धि पापबुद्धि चरित्र" की रचना परिपूर्ण की। ये दोनो चरित्र अप्रकाशित है। तत्पश्चात् संवत् १९३९ ज्येष्ठ कृष्ण नवमी गुरुवार के दिन बडे समारोह से महासतीजी श्री हीराजी महाराज के सान्निध्य मे दो दीक्षाएँ हुईं। उनके दीक्षित नाम है, १ श्री हरियाजी म० और २ श्री अमृताजी म०। दीक्षा का कार्य संपन्न कर ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी रविवार के दिन अहमदनगर से विहार किया और केडगाव, सोवनवाडी, अकोलनेर, सारोला, राजणगाव से कडुस दैठणा को स्पर्श कर आपश्री घोडनदी पधारे। यहा पर केवल चार दिन की स्थिरता की। यहा जेष्ठ शुक्ल द्वितीया को "श्री खंदक मुनि का चौढालिया" पूर्ण किया। यह सत्यबोध में प्रकाशित है।

घोडनदी से विहार कर कारेगाव, राजनगाव, गणेगाव, घामोरी, पीपला आदि क्षेत्रो को पावन करते हुए फुलगाव में पदार्पण कर दो रात्रि स्थिरता की। वहा से मरकल, चारोली, लोहगाव आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए पूना क्षेत्र को अलकृत किया। यहाँ नानापेठ मे सात दिन स्थिरवास किया। अवकाश के समय आषाढ कृष्ण प्रतिपदा के रोज "श्री मेतारज मुनि का चौढालिया" तैयार किया और आषाढ कृष्ण चतुर्थी को "तेरह काठिया की स्वाध्याय" नामक काव्य की रचना की। ये दोनो काव्य सत्यबोध में प्रकाशित है।

पूना से फिर घोडनदी की ओर विहार हुआ। पूना से लोहगाव होते हुए फूलगाव में तीन रात्रि ठहर कर वाडी जाकर आहार-पानी किया। वहा से फिर तलेगाव पावन कर राजणगाव (गणपति) कारेगाव, वुराखी आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए घोडनदी मे पधारना हुआ और केवल तीन रात्रि विराज कर यहा से विहार कर दिया। वहा से करडा जाकर दो रात्रि पर्यन्त रहे। फिर अमला होते हुए न्हावरा जाकर आहार-पानी किया। वहा से आलेगाव में पदार्पण कर चार रात्रि स्थिरता की। यहा निर्वी आमला, करडा आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए चातुर्मास के निमित्त पुन घोडनदी क्षेत्र मे आषाढ शुक्ल एकादशी के दिन पधारे। घोडनदी का श्रीसघ आपश्री के स्वागतार्थ सैकडो की सख्या मे वहुत दूर तक गया। वडे उत्साह के साथ जय—ध्वनि के वातावरण के वीच आपश्री का शुभागमन हुआ। उस समय सती—शिरोमणि श्री हीराजी महाराज भी अपनी शिष्याओ के साथ १४ ठाणा से चातुर्मासार्थ पधारी थी। इस प्रकार घोडनदी क्षेत्र मे कुल १८ सत—सतियो का चातुर्मास हुआ।

घोडनदी क्षेत्र मे चातुर्मास के समय व्याख्यान मे श्री स्थानागसूत्र का वाचन तथा श्री चद्रकेवलि का रास एवं श्री श्रेणिक—चरित्र के उपदेशामृत की अखडधारा सतत वहती रहती थी। यहाँपर आपश्री का पचासवाँ लोच हुआ। सावत्सरिक पर्व के दिन आस-पास के गावो से हजारो आदमी उस महान् पर्व में सम्मिलित होने के लिये आये और धर्मध्यान, तपश्चर्या, व्रत—प्रत्याख्यान आदि सत्क्रिया करते हुए सावत्सरिक क्षमापना की गई। आपश्री के प्रभावोत्पादक प्रतिवोध से व्रत—नियम भी पर्याप्त सख्या में हुए।

इस चातुर्मास मे विशेष उल्लेखनीय वात यह हुई कि आपश्री के उपदेश से प्रभावित होकर श्रीमान् कुंदनमलजी वाफना ने पाँचवे अणुव्रत परिग्रह—परिमाण की मर्यादा की। श्रीमान् वाफनाजी ने यह पच्चक्खाण किया कि लगभग ६१ हजार की पूजी हो जाने पर मै अपना व्यवसायादि वद कर दूंगा। पूज्यपाद

महाराजश्री के वचनो पर बाफनाजी की बहुत श्रद्धा थी। थोडे ही समय में निश्चित रकम एकत्रित हो जाने पर आपने परिग्रह परिमाण की दृष्टि से अपना व्यवसाय बंद कर दिया। फिर भी खर्च करने के बाद जब आय बढने लगी, तब अधिक रकम आप जीवदया, परोपकार आदि सत्कार्यों में लगा देते थे। अपनी मर्यादा से आपने कभी अधिक सग्रह नही किया। इस नियम का आपने जीवनपर्यंत पालन किया। वर्तमान मे आजकल उनकी तीसरी पीढी में श्रीमान् सोभाचंदजी बाफना विद्यमान है। वे भी अच्छी स्थिति में है।

महासतीजी श्री लिछमाजी महाराज जिनकी दीक्षा हुए अभी कुल एक वर्ष दो महीने नौ दिन हुए थे उन्होंने आपश्री के मुखारविंद से घोडनदी क्षेत्र में भाद्रपद सुदि दशमी के दिन सथारा लिया अर्थात् अशनादि का यावज्जीव प्रत्याख्यान किया। सथारा मे अंतिम समय तक शातिपूर्वक नामस्मरण के साथ कालक्रमण करते हुए इह लोक की यात्रा पूर्ण कर आपश्री दिवगत हुई। महासतीजी को साढे चार प्रहर का संथारा आया था।

घोडनदी क्षेत्र मे चातुर्मास के समय आपश्री ने जो लेखन एव काव्य रचना की, वह निम्न लिखित है।

(१) श्री दशवैकालिकसूत्र का प्रथम अध्ययन सपूर्ण। संवत् १९३९ भाद्रपद कृष्ण दशमी के दिन।

(२) "श्री श्रेणिक चरित्र" सवत् १९३९ आश्विन सुदि प्रतिपदा शुक्रवार अमृतबेला तुला लग्न में इस चरित्र की पूर्णता की गई। यह श्रेणिक चरित्र धुलिया से तथा मारवाड से प्रकाशित है।

इस प्रकार घोडनदी लश्कर मे चातुर्मास—सरीखा दीर्घ-काल बहुत ही शातिमय वातावरण मे सपन्न हुआ। श्रीसंघ ने भी सत-सतियो की सेवा भक्ति के साथ तन-मन-धन से आतिथ्य—सत्कार कर अपूर्व लाभ उठाया।

चातुर्मास पूर्ण होने के बाद पूज्यपाद महाराजश्री का विहार

चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् आपश्री तुरंत विहार करने वाले थे, परंतु एक विरक्त आत्मा वैराग्यवती बाईजी की दीक्षा होने वाली थी, इससे आपने कुछ समय तक स्थिरवास किया। संवत् १९३९ मार्गशीर्ष कृष्ण पंचमी बुधवार के दिन श्री रंगूजी की दीक्षा हुई। दीक्षित नामकरण रंगूजी महासतीजी किया गया। दीक्षा—महोत्सव सानंद सपन्न होने के पश्चात् आपश्री ने मार्गशीर्ष कृष्ण षष्ठी गुरुवार के दिन वहाँ से विहार किया। रात्रिभर गाव के बाहर मंदिर में निवास कर कारेगाव में पदार्पण करके दो रात्रि पर्यंत विराजे। वहाँ से राजनगाव (गण-

पति) पधारे। यहाँ से कोडापुरी होते हुए पीपला जगतापा का स्पर्श कर पीपल-गाव को अलकृत किया। यहाँ भी दो रात्रि विराजे। वहाँ से चारोली को स्पर्श कर आपश्री का पूना में शुभागमन हुआ। यहाँ भी दो दिन स्थिरता की पूना से सतारा की ओर विहार हुआ। कात्रज, सिंद्यावाडी, कामथडी, किकवी, न्हावी, खंडाला, एलू होते हुये भूइज में आहार-पानी कर उडनारा में रात्रि-भर निवास किया। वहाँ से सतारा क्षेत्र में पूज्यपाद महाराज श्री ठाणे ४ चार का पधारना हुआ। वहा भवानी पेठ मे तेरह रात्रि पर्यन्त स्थिरता की गई।

यहाँ पर मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी सोमवार के दिन दो "उपदेशी स्तवन" की रचना की तथा मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी के दिन "उपदेशी स्तवन" (फटका) चतुर्थ पद बनाया गया। तत्पश्चात् पौष कृष्ण तृतीया बुधवार के दिन "श्री आनन्दजी श्रावक का चौढालिया" और पौष कृष्ण चतुर्थी गुरुवार के दिन "श्री कामदेवजी श्रावक का चौढालिया" इन दोनो ग्रथो की रचना की गई। सतारा में की हुई सभी रचना सत्य बोधमें प्रकाशित है।

सतारा क्षेत्रमें पूज्यपाद महाराज श्री का यह प्रथम ही पधारना हुआ था। आपश्री के शुभागमन के पूर्व ही सारे दक्षिण देश मे आपकी कीर्ति व्याप्त हो चुकी थी। जहा कही आपश्री का शुभागमन होता, लोग अपने आपको कृतार्थ समझते थे। अनेक जन्मो के पुण्यसे ऐसे संतो के सहवास का सुअवसर जीवन मे यह प्रथम बार हुआ था। इस लिये आपश्री के व्याख्यान का प्रत्येक व्यक्ति रुचि-पूर्वक लाभ लेता था। प्रतिदिन व्याख्यान के समय बोधामृत का पान करने से वहा के श्रावक-श्राविकाओ की धार्मिक-भावना मे विशेष वृद्धि हुई।

आपके प्रवचन सुनते २ वहा के मुख्य श्रावक श्रीमान् बालमुकनजी मुथाजी के हृदय में यह भावना जागृत हुई कि ऐसे त्यागी और ज्ञानी संत के पास से कुछ शास्त्राभ्यास करना चाहिये। ऐसा विचार कर उन्होंने अपनी इच्छा महाराज श्री के सामने व्यक्त की।

वे प्रतिदिन अपनी लालसा महाराज श्री के आगे प्रदर्शित करते थे, पर "अवसर होगा तब देखा जायगा,, ऐसा कहकर महाराज श्री टाल देते थे। होते२ अत में विहार का समय निकट आ पहुँचा। उस श्रावकजी के मन में आया" कहीं महाराज श्री के विहार कर देने पर मेरी यह इच्छा अधूरी न रह जाय,,पर जब विहार करने का अवसर आया तब पूज्यपाद महाराज श्री ने श्रीमान् बालमुकनजी मुथा से फरमाया "मुथाजी! आप अपने साथ में कुछ शास्त्र रखने का उपयोग रखें,, ऐसा कह आपश्री सतारा से विहार कर शहर से बाहर निकल गये। साथ मे श्रावक-श्राविकाएँ पर्याप्त संख्या में थी, उन्हें मागलिक सुनाया। मागलिक सुनने के बाद

अनेक श्रावक-श्राविकाएँ अपने २ स्थानपर चली गई। बादमे आपने श्रीमान् मुथाजी से पूछा "मुथाजी ! क्या आप अपने साथ कोई शास्त्र लाए है ? तब मुथाजी ने कहा, हाँ, मेरे पास दशवैकालिक सूत्र है। तब आपश्री जी ने उन्हे कहा-आप को शास्त्र की वाचना लेनी है न ? हाँ, इस प्रकार वार्तालाप हो कर पास ही वट-वृक्ष के नीचे आपश्री और मुथाजी बैठ गये। पूज्यपाद महाराज श्री ने अपने मुखारविंद से शुभ समय मे श्री दशवैकालिक-सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा--

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो
देवा वि तं नमसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

का उच्चारण कर विवेचन किया और तुरंत वहाँ से विहार किया। महा-पुरुप के मुखारविद से लिया हुआ यह शास्त्र का ज्ञान बुद्धि मे तैल-बिंदु के समान फैला और थोडे ही समय मे वे शास्त्रो के अच्छे ज्ञाता हो गये।

यहाँ से विहार कर आपश्री पूना की ओर पधारे। रास्ते में उडतारा, होते हुए भूइज मे आहार-पानी किया। फिर वहाँ से शिरूर, खडाला, किकवी, शिवा-पुर बाग, कात्रज आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए पूना में पदार्पण किया। यहाँपर दश रात्रि तक स्थिरता की। यहाँपर पौष सुदि पचमी शनिवार के दिन "श्री अनुभव सक्राति स्वाध्याय" और श्री भृगु पुरोहित पंच ढालिया (पूना शहर नाना पेठ मे) सपूर्ण लिखा। यह अप्रकाशित है। पौष सुदि पंचमी शनिवार को "दीप-मालिका द्वितीय अध्यात्म स्वाध्याय" की रचना भी पूना मे की गई। दोनो अध्यात्म-स्तवन सत्यबोध मे प्रकाशित है।

पूना से चारोली स्पर्शकर सेल पीपलगाव में पधारना हुआ। यहाँ सात रात्रि स्थिरता की। अपने स्थिरवास के समय पौष सुदि अष्टमी को "सुधर्मा स्वामी की स्वाध्याय" की रचना की। पीपलगाव से दावडी पधारे। यहाँपर पौष सुदि १४ के दिन चौवीसी स्तवन मे पंचम पद्य की रचना की। दावडी से खेड पदार्पण कर तीन दिन तक विराजे। वहाँ से फिर रेटवडी हो कर खेड पधारने पर दो रात्रि स्थिरता की। पुन रेटवडी से दावडी स्पर्श कर [illegible] दीक्षा के निमित्त पदार्पण किया। तेरह रात्रि पर्यंत यहाँ स्थि[illegible] १९३९ माघ सुदि पंचमी (वसंत पचमी) के दिन श्रीकंचन[illegible] की दीक्षा हुई। यहा सवत् १९३९ माघ सुदि द्वितीया के दिन [illegible] नवम अज्झयण" (श्री उत्तराध्ययन-) सूत्र का नववाँ अध्ययन ए[illegible] लिखा है।

दीक्षा होने के पश्चात् आपश्री ने विहार कर सेलगाव मे जाकर दो दिन निवास किया। फिर भीमगाव, खेड, तथा पेठ को स्पर्शते हुए मचर मे पदार्पण कर दो दिन स्थिरता रखी। यहाँ पर माघ शुक्ल त्रयोदशी के दिन श्री कर्म-विपाक-माला ग्रन्थानुसार एक सो वत्तीस वोल की रचना की। यह काव्य अत्यत उपदेशप्रद है और यह सत्यवोध में प्रकाशित है।

मचर से कलंव को स्पर्श कर नारायण गाव में तीन रात्रि विराजे। वहाँ से विहार कर जुन्नर क्षेत्र मे चार दिन स्थिरता की। फिर सावरगाव, वडगाव, पीपलगाव, अर्वी, नारायणगाव पुन वडगाव, मिरोली, साकुरी, पाडुली, आदि क्षेत्रों को स्पर्श कर ऑवलकुटी मे पधारना हुआ। यहा पर पाँच रात्रि विराजे। यहाँ से वडझीरा, पारनेर, जामगाव, देवठाण, नेप्ती आदि क्षेत्रो को धर्मोपदेश का लाभ देते हुए आपश्री ने ठाणा पाँच से फाल्गुन शुक्ल षष्ठी के दिन अहमद-नगर मे पदार्पण किया और उसी दिन "चौदह नियम की सज्झाय" की रचना परिपूर्ण की। यह उल्लेख दिनचर्या के पत्र पर से किया गया है। यह सत्यवोध में प्रकाशित है। यहाँ पर आपश्री का ५१ वा लोच हुआ।

चैत्र सुदि द्वितीया के दिन श्री दशवैकालिक सूत्र के दस अध्ययनो का पद्य-वद्ध भाषातर किया, जो कि मुमुक्षु साधक के लिये मननीय है। चैत्र सुदि तृतीया के दिन "श्री शालीभद्रजी का चरित्र" रचना पूर्ण की। तत्पश्चात् चैत्र शुक्ल पंचमी के रोज "एक सौ पच्चीस वोल तीर्थंकरो का लेखा" छप्पय नामक छंद मे काव्यात्मक शैली से संपूर्ण लिखा। इस प्रकार आपश्री ने यहा साधुओ के लिये कलपता काल अर्थात् उनतीस दिन तक ग्रन्थ-निर्माण आदि शुभ प्रवृत्तियों में व्यतीत कर वाम्वोरी की ओर विहार किया।

अहमदनगर से पीपलगाव, डुगरगण होते हुए आपश्री ने वाम्वोरी क्षेत्र में पदार्पण किया। अहमदनगर से वाम्वोरी करीव पद्रह मील की दूरी पर स्थित है। वाम्वोरी में वैशाख कृष्ण त्रयोदशी के दिन "एक सौ पच्चीस वोल लेखा-गर्भित महास्तवन" पन्ना १८ से २७ तक में संपूर्ण किया है। 'स्वपठनार्थ' ऐसा उस पर आपश्री द्वारा उल्लेख किया गया है। आपश्री के हस्ताक्षर से लिपिवद्ध किये हुए पन्ने श्री रत्न जैन पुस्तकालय के हस्त-लिखित भंडार में विद्यमान है। यह काव्य भी सत्यवोध में प्रकाशित है।

यहा पर आपश्री करीव कलपते काल तक विराजे होगे, ऐसा अनुमान किया जाता है। यहाँ से विहार कर ब्राह्मणी क्षेत्र को स्पर्श कर खेडला (पर-मानद) में पधारना हुआ। यहा वैशाख शुक्ल पौर्णिमा के दिन "श्री परमेष्ठी स्तवन" की रचना की। खेडला से विहार कर करजगाव को स्पर्श कर सोनई,

ब्राह्मणी होकर पुनः वाम्बोरी पधारे होगे। क्यो कि स्वर्गीय गुरुवर्य श्री १००८ श्री रत्नऋषिजी महाराज के मुखारविंद से ऐसा सुना गया है कि संवत् १९४० के चातुर्मासार्थ वाम्बोरी से अहमदनगर पधारना हुआ था। "श्री समरादित्य केवलि-चरित्र" की रचना आपश्री ने चैत्र सुदि प्रतिपदा के दिन प्रारभ की और आषाढ सुदि पचमी चद्रवासरे, पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्रे, वरियान-योगे, अमृत-वेलाया उसे समाप्त किया है। ऐसा उस ग्रन्थ पर आपश्री द्वारा अंकित है। पर संवत् का निर्देश नही किया गया है। यह बृहत् ग्रथ सभवत आपश्री द्वारा अंतिम रचित ग्रन्थ है, ऐसा अनुमान किया जाता है। इसके अतिरिक्त आपश्री द्वारा लिखित काव्य, ज्योतिष-विषयक विचार, तात्त्विक बोल, चर्चा-विषयक निबंध, थोकडो आदि का संग्रह, नय-विषयक विवेचन आदि अनेक विषयो की सामग्री, प्रकीर्णक पत्रो में प्राप्त हुई है। यह मालव प्रान्त मे श्रीसंघ द्वारा अर्थात् प्रतापगढ, शाजापुर, शुजालपुर, बडोद आदि क्षेत्रो से तथा संत-सतियो के द्वारा भी प्राप्त हुई है। पर उन पत्रो पर संवत्, मिति, ग्राम, नामादि का उल्लेख नही है। फिर भी-अक्षरो की लिखावट से हम इसी निर्णय पर पहुँचे है कि ये पत्र पूज्यपाद महा-राजश्री द्वारा लिखित है। उनका निर्देश हमने स्वतंत्र रूप से किया है।

उनकी दैनंदिनी से जितने दिन की चर्या ज्ञात हुई तथा किस २ स्थान पर आपने किस २ ग्रन्थ का निर्माण किया, उसकी साधार नोध इस चरित्र मे दी गई है। इसके अतिरिक्त भी आपश्री द्वारा निर्मित विपुल साहित्य होगा, पर उसका पता नहीं लगने से हम उसे देने मे असमर्थ है।

वाबोरी रहते समय अहमदनगर श्रीसघ के अत्याग्रह से आपश्री ने संवत् १९४० का चातुर्मास अहमदनगर मे करने की स्वीकृति दे दी थी। अतएव आप-श्रीजी ने चातुर्मास-निमित्त वाबोरी से अहमदनगर की ओर विहार करने का निश्चय कर रात्रि में शयन किया। निद्रावस्था में रात्रि के चतुर्थ प्रहर में आपने स्वप्न देखा कि मै पहाड के उपरिभाग से नीचे गिर पडा हूँ। स्वप्न देखते ही महाराजश्री एकाएक निद्रा से जागृत हुए। उठकर ध्यान, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण आदि प्रात कालीन क्रिया पूर्ण की और सूर्योदय होने के पश्चात् विहार करने के लिये कमर बांधकर स्थानक के बाहर निकले तब एक कोयले की टोपली दिख पडी। आगे चलकर देखा तो सामने एक भैसा आ रहा है। इन सब अपशकुनों को देखकर आपश्री ने पास में ही एक बगीचे में रात्रि-निवास किया। दूसरे दिन आषाढ सुदि पचमी के दिन ठाणा पाँच से विहार कर डोगरगण मे पदार्पण किया। आषाढ सुदि षष्ठी के दिन पीपलगाँव पधारे। वहाँ एक वृक्ष के नीचे ध्यान करने के लिये खडे हुए, इतने मे ही आपश्री के शरीर में भयकर शिरो-वेदना होनी

प्रारभ हुई। अहमदनगर श्रीसघ के पास ये समाचार वायु की गति से उसी समय पहुँच गये। महाराजश्री की व्याधि का पता चलते ही वहाँ के श्रीसघ के अनेक अगुआ लोग नगर के मुख्य चिकित्सको को लेकर तत्काल आपश्री की सेवा में पहुच गये। अनेक प्रकार का औषधोपचार किया गया, पर तीव्र वेदना शात होने के बजाय उत्तरोत्तर बढती ही गई। व्याधि के समाचार फैलते ही आस-पास के अनेक श्रावक-श्राविकाएँ इकट्ठी हो गईं।

एक शिरोवेदना तो पहले से ही थी, उसपर भी रात्रि को आठ बजने के बाद पूज्यपाद महाराज श्री पर भयकर ज्वर ने अपना अधिकार जमा लिया। तीन दिन तक पीपलगाव में महाराज श्री के पास सब श्रावक जमा रहे। इस बीच डॉक्टरो ने भी म० श्री को स्वस्थ करने के अनेक उपाय किये, पर ज्वर किसी भी प्रकार कम नही हुआ। श्रद्धालु श्रावक वर्ग के लिये यह बात अत्यंत असह्य थी कि ऐसे छोटे से सुविधा-विहीन स्थान मे पूज्यपाद महाराज श्री ज्वरावस्था मे इस प्रकार पडे रहे। सब एकरूप से मन ही मन यही प्रार्थना कर रहे थे कि पूज्यपाद श्री किसी भी अवस्था में अहमदनगर पहुंच जांय, परतु उन्हे कुछ भी भी रास्ता नही दिखाई दे रहा था। सब किंकर्तव्य-विमूढ थे। अहमदनगर महाराज श्री किस प्रकार जल्दी पहुँचे, यह रास्ता उन्हे सूझ नही रहा था। समय-सूचक पूज्य-पाद म० श्री ने अपने धर्म-प्रेमी सुश्रावको की इस चिंता का अनुभव किया, और अपनी वेदना तथा भयकर ज्वर की परवाह किये बिना शरीर विशेष क्षीण होने पर भी केवल अतिम-बलसे विहार कर आषाढ सुदि नवमी के दिन ठाणा पाच से अहमदनगर मे पदार्पण किया।

अहमदनगर में पधारने पर अनेक वैद्य तथा डॉक्टरो की चिकित्सा निर-वच्छिन्न रूप से चलने लगी। सब चिकित्सक इसी प्रयत्न मे थे कि किसी प्रकार महाराजश्री रोग-मुक्त हो जांय, परतु डॉक्टरो का वह अथक प्रयत्न फलदायी न हो सका। अवस्था सुधरने के बजाय उत्तरोत्तर बिगडती ही गई। अहमदनगर में पदार्पण करने के पूर्व ही महाराज श्री तीव्र शिरो-वेदना तथा भयंकर व्याधिमे पीडित थ, ऐसी अवस्था मे कोई भी व्यक्ति एक कदम तक नही चल सकता, फिर भी आपश्री केवल अपने मनो-बल से असहायावस्था मे इतनी दूर तक विहार कर आये थे। इस श्रम का भी आपके शरीरपर विपरीत प्रभाव हुआ। इस समय तक आपका सुयश और कीर्ति चारो ओर व्याप्त हो चुकी थी। आपने अपने सत्प्रवृतिमय जीवन से सबके हृदय मे अक्षुण्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। विकराल काल आपकी इस सुकीर्ति को सहन नही कर सका और देखते २ अंत में श्रावण कृष्ण द्वितीया रविवार के दिन वह बाल-ब्रह्मचारी कविकुल-भूषण पूज्यपाद श्री श्री

उसके द्वारा जारी किये हुए कार्य की रक्षा करना ही उसकी आत्मशांति का सबसे श्रेष्ठ साधन है। ऐसा करके ही अनुयायी वर्ग अपने गुरुके ऋणसे उऋण हो सकता है।

समाजने भी सोचा-पूज्यपाद महाराजश्री के स्वर्गवास के बाद अब अश्रु-पात करने से क्या लाभ है ? उनकी वह मूर्ति तो हमारी आँखो से ओझल हो गई। सदैव संचरण-शील उनका वह पाँचभौतिक देह भी हमारे बीच न रहा। संसार की स्थिति विचित्र है। सुख-दुःख, हर्ष-शोक के व्रात्य में फँसा हुआ प्राणी क्षण २ में विपरीत अनुभवो को करता रहता है, ये सब क्षणिक है। कोई आत्मा के सहज धर्म नही। शरीर की इस नश्वरता का अनुभव कर दक्षिण देशवासी समाज की आँखे खुल गईं। वे अब महाराजश्री के शाश्वत यश:शरीर की रक्षा के लिये सन्नद्ध हो गये। सब लोगो ने एक सम्मति से यह निश्चय किया कि जब तक पूज्यपाद महाराज श्री विराजमान थे, तब तक हम लोगो ने उनके सान्निध्य मे रहकर अपने २ पुण्य तथा शक्ति के अनुसार लाभ उठाया था। अब तो हमारे बीच केवल उनका यशरूपी साक्षर देह ही विद्यमान है, अतएव प्राणो की बाजी लगाकर भी इस देह की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० के स्वर्गवास होने पर चातुर्मास के पश्चात् जब उनके पट्ट शिष्य पूज्यपाद श्री रत्नऋषिजी म० और सती-शिरोमणि श्री हीराजी म० मालवा की ओर विहार कर चले गये। तत्पश्चात् अहमदनगर श्रीसघ ने सोचा, हमारे यहाँ ही महाराजश्री ने पाचभौतिक देह छोडा है। आपश्री ने इसके पूर्व सारे दक्षिण में विहार कर लुप्तप्राय जैन धर्म को पुनरुज्जीवित किया। अतएव उन पुण्यश्लोक दिवगत महात्मा की सुन्दर काव्य-कृतियो का प्रकाशन कर क्यो न उनके नाम को अमर किया जाय ? अहमदनगर श्रीसंघ की यह योजना आस-पास के सब क्षेत्रनिवासियो को पसंद आई और तत्काल राहता, सतारा, वावोरी, घुलिया, चिचोडी पटेल, ही[illegible] कर अन [illegible] पुलेजगढ, नादूर, वारागाव [illegible] था थी, [illegible] आदि गावो के श्रावको ने उसका स्वागत किया। [illegible]लस्वरूप महाराजश्री की छोटी-वडी प्राप्त सब काव्य-कृतियाँ एकत्रित की गईं औ[illegible] उनमें से चुनकर सत्य-बोध नामक पुस्तक सार्थ प्रतिक्रमणसहित बिक्रम सवत् १९४७ म प्रकाशित की गई। अध्यात्मयोगी श्री तिलोकऋषिजी म० के पवित्र विचारो के अनुरूप यह ग्रथ पाठको के विकास में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। यह ग्रंथ धर्म-कर्म और गुण के समुदाय को बताने वाला है। प्राणी को निम्न दिशा की ओर ले जाने वाले मान, मोह, मद और मार का मर्दन करनेवाला है, अज्ञानी जीवो के अज्ञान-रूपी अधकार का अपहरण करने वाला है और अपने 'सत्यबोध' नाम के अनु-रूप प्राणी मात्र को सत्य का मार्ग बताकर अपने नाम को चरितार्थ करनेवाला

है। यह ग्रन्थ सर्व साधारण के लिये अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ। आपश्री के स्वर्गवास के बाद इसका परायण कर लोग अपना कल्याण साधने लगे। देखते इसकी सब प्रतियाँ समाप्त हो गईं और लोगो की विशेष माग को देखकर इस२ "सत्यबोध" नामक पुस्तक की द्वितीय आवृत्ति "श्री जैनधर्म प्रसारक संस्था, सदर बाजार नागपुर से प्रकाशित की गई।

पूज्यपाद महाराजश्री का स्थायी स्मारक बनाने के लिये समाज का निश्चय था। उसके पीछे अनेक सत–सतियो की साधना तथा तपश्चर्या थी। जिसके फलस्वरूप दक्षिणदेशवासी स्था० जैन समाज ने उन दिवगत आत्मा के स्मारक रूप मे दो कार्य ऐसे कर दिखाये, जो आज सारे जैन-समाज का ध्यान आर्कषित कर रहे हैं। उनमे एक श्री तिलोक जैन विद्यालय और दूसरा है श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड। ये दोनो सस्थाएँ पाथर्डी (अहमदनगर) में स्थापित है। श्री तिलोक जैन विद्यालय में हाईस्कूल तक का अभ्यास कराया जाता है। विद्यालय के साथ एक छात्रालय भी संलग्न है। इसमें जैन समाज के छात्रो के अध्ययन की दृष्टि से रहने तथा खान-पान की अच्छी सुविधा है। छात्रालय में रहनेवाले समर्थ–असमर्थ छात्रो को बोर्ड द्वारा निश्चित धार्मिक अभ्यास कराया जाता हैं। इस प्रकार इस विद्यालय में पढनेवाले छात्र व्यावहारिक तथा धार्मिक दोनो ज्ञान से युक्त होते है।

स्वनाम-धन्य स्वर्गीय श्री तिलोकऋषिजी म० सा० के नाम से सस्थापित श्री ति० र० स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड का सारे जैन समाज मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी परीक्षाएँ सारे भारत में व्याप्त है। ठेठ उत्तर भारत से लेकर दक्षिण तक के छात्र बोर्ड की परीक्षाओ में सम्मिलित होकर अपने ज्ञान की वृद्धि करते है। इसकी मुख्य वि[illegible] यह है कि इसके द्वारा सत–सतियो के धार्मिक ज्ञान की वृद्धि मे भी व[illegible]स करुण [illegible] पहुँच रही है। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका सघ के ये चारो तीर्थ, बिना किसी भेदभाव के परीक्षाओ मे सम्मिलित होकर अपने ज्ञान को परिपक्व करते रहते है। इस परीक्षा बोर्ड का ही परिणाम है, आज स्थानकवासी जैन समाज में अनेक सत–सतियाँ जैनदर्शन की आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करके अपने ज्ञान को निरंतर आगे बढाती हुई ग्रन्थ निर्माण, सशोधन आदि कार्य में लगी हुई है।

इसी प्रकार परीक्षा बोर्ड से संलग्न श्री रत्न जैन पुस्तकालय भी अपनी एक विशेषता रखता है। इसमें प्रायः सभी जैन ग्रन्थो का संग्रह है। इसके अतिरिक्त भी भारतीय दर्शन के विशेष महत्त्वपूर्ण ग्रथो का किसी भेद-भाव के विना सग्रह किया गया है। केवल मुद्रित पुस्तको का ही यहाँ पर संग्रह नही है, अमुद्रित हस्तलिखित

प्राचीन प्रतियो का भी यहा एक अद्भुत संग्रह है। उनमें पूज्यपाद श्री तिलोक-ऋपिजी महाराज की हस्तलिखित प्रतियो को संग्रह करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। जिस किसी भडार, व्यक्ति या सत-मुनिराज के पास उनकी कोई कृति दिखाई दी, उसे वडे प्रयत्न-पूर्वक यहा लाया गया है। इतना प्रयत्न करने पर भी उनकी वहुत-सी कृतियाँ अव भी अनेक व्यक्तियो के पास गुप्त रूप मे पडी हुई है। ऐसे सव व्यक्तियो से हमारा नम्र निवेदन है कि वे श्री पूज्यपाद महाराजश्री की कृतिया हमारे पास पहुँचा दें जिससे उनकी प्रतिलिपि करवा कर पुन सुरक्षित रूप से भेजनेवालो की सेवा में पहुँचाकर सर्व सावारण समान रूप से उनके अमूल्य साहित्य से लाभ उठा सके।

प्रात:–स्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋपिजी म० के स्मारक रूप मे सस्थापित इन संस्थाओ का विस्तृत परिचय मैं इसी अभिनदन ग्रन्थ मे अलग दे रहा हूँ। पाठक विशेप जानकारी उस स्थान पर ही प्राप्त करे। इस प्रकार दक्षिण के स्थानकवासी जैन समाज ने महाराजश्री के दिवगत होने के पश्चात् उनके शाश्वत यश:शरीर की रक्षा करने में अपने अद्भुत कौशल का परिचय दिया है। ये संस्थाएँ उत्तरोत्तर प्रगति करती हुई दिनदूनी रातचौगुनी वढती जा रही है। इनका सदर्शन कर प्रत्येक व्यक्ति अपने हर्षोद्‌गार प्रकट करता है। केवल जैन समाज के व्यक्ति ही इनसे विद्यालाभ प्राप्त कर अपना कल्याण नही साध रहे है, समाज के वाहर के वहुत से जैनेतर लोग भी यहाँ अभ्यास कर अपने जीवन को सुधार रहे हैं। इस प्रकार महाराजश्री का स्वर्गवास होने के वाद भी आज वे इतर रूप से जनता का कल्याण कर रहे है। उसके पीछे कारण है उनका यश शरीर।

महाराजश्री के जीवन की सब से वडी विशेपता है, दक्षिण देश मे सर्व प्रथम विहार। दक्षिण प्रात मे मारवाड से आ कर अनेक जैन भाई अपना व्यवसाय कर रहे थे, उनकी अपने धर्म के प्रति श्रद्धा थी, पर इधर संत-सतियो का सचार नही होने से धीरे २ उनकी धार्मिक श्रद्धा लुप्त होती जा रही थी। वहुत से व्यक्ति अन्य सप्रदायो की क्रिया करने मे रुचि लेने लग गये थे। वे अपने धर्म के रहे-सहे थोडे से ज्ञान से भी विमुख होते जा रहे थे। ऐसा कोई उपाय नही था, जिस से राजस्थान, मध्यभारत या पंजाव गुजरात आदि में विहार करने-वाले सत इधर आते, विहड रास्ता होने से कोई इधर आने का साहस नही करता था। महाराजश्री ने ही सर्वप्रथम इधर पधार कर केवल नामधारी जैन-जनता में धर्म के नवीन प्राण फूँके। उन्हे धर्म का प्रतिवोध दिया। लोगो की विचलित श्रद्धा को अडिग वनाया। दक्षिण प्रात में जहाँ सत-सतियो की परपरा लुप्तसी

हो चुकी थी, उसे पुनरुज्जीवित किया। अनेक विरक्त मुमुक्षु आत्माओ को दीक्षित अवस्था में प्रविष्ट करवाया। यह सब उन्ही का प्रताप है कि आज दक्षिण प्रदेश अपने धर्म-गुरुओ के विहार तथा उपदेश से वचित नही है। आज तो उनकी परंपराने इतना विस्तृत रूप धारण कर लिया है कि देखकर आश्चर्य होता है। अधिक क्या कहे ? यदि महाराजश्री इधर नही पधारते तो यहाँ के लोग स्थानकवासी धर्म के चिन्हस्वरूप मुँहपर मुहपत्ती बाधना तक भूल जाते।

उपसहार

प्रिय सज्जन पाठक वृद ! प्रात-स्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की अलौकिक उपर्युक्त गुणसपत्ति यथामति यथाशक्ति तथा जितने प्रमाण उपलब्ध हुए तदनुसार लिखा गया है। नही तो समाज-विख्यात ऐसे प्रधान पुरुष के गुणो का वर्णन कवीश्वरो द्वारा जितना किया जाय उतना थोडा ही है। अब उपसंहाररूप मे महाराजश्री के गुण-समुद्र मे सार खीच कर आप लोगो के सामने उपस्थित करता हूँ। सद्गुणालकृत श्री तिलोकऋषिजी महाराज ३६ वर्ष २९ दिन की अवस्था मे इस पाचभौतिक शरीर को त्याग दिये, जिस में २५ वर्ष ६ माह एक दिन का सयम पालन कर इस अल्प काल मे ही चंद्रवत् मिथ्यात्वरूपी अधकार का नाश कर जैनधर्माभिलाषी भव्य पुरुषो को कुमुदवत् विकास करने के लिये शास्त्रानुसार साठ सत्तर हजार गाथा की सख्या में बडे-बडे ग्रथो को रचकर जैन समाज के ऊपर उपकारो का कतार बोझ दिया है।

स्वभाव

महाराज साहब का स्वभाव चन्द्रमा के समान शीतल, समुद्र-समान गभीर था। आबाल दृढ ब्रह्मचर्य, मिष्ट-मित-भाषण, विशिष्ट कवित्वशक्ति, वाक्यचातुर्य, समयसूचकता, जैन शास्त्र तथा पर शास्त्र-गामित्व वगैरह अनेक गुण आप में अधिक प्रशसनीय थे।

चारित्र-शुद्धि,

महाराजश्री का चारित्र इतना शुद्ध था कि उसका वर्णन उस तत्त्व के वेत्ता ही पुरुष कर सकते है। परपक्षीय लोग भी आजतक मुक्तकंठसे उनकी प्रशंसा करते है। यह उनके चारित्र-शुद्धि की ही सबूत है, क्यो कि चारित्र-हीन पुरुष का गुण-समूह धूलिमें मिल जाता है। प्राणी-मात्र में विशेषत साधु पुरुषो का चारित्र ही एक अमूल्य रत्न है, उसीकी रक्षा से वह विश्वपर अपनी सत्ता जमा सकता है।

वाग्मिता

पूज्यपाद की वाणी जो निकलती थी, वह अक्षरशः सनातन जैन धर्म के अनुकूल ही निकलती थी। आपके प्रायः हर एक वाक्य मे हित-शिक्षा का भाव

पूर्ण भरा हुआ निकलता था। यहा तक कि दक्षिण देश के कुछ गावो के नाम दो सवैयो में आपने लिखे है, उनमे व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक उपदेश इतना उच्च कोटि का भरा हुआ है कि शायद ही कही दूसरे कवियो के मुख से ये भाव निकले हो और जिन्हो ने ऐसे उत्कृष्ट कवियो के काव्यो का परिशीलन किया होगा वे ही इसके अतरंग भाव को पा सकते है। देखिये पूज्यपाद महाराज-विरचित सत्यबोध नामक वडी पुस्तक के पृष्ठ २२३ मे "अहमदनगर पाई" इत्यादि।

निर्ममत्व,

महाराजश्री इतने वडे प्रधान पुरुष होकर भी ऐसे विनम्र भाव से रहते थे कि जिसकी हद नही है। अहंकार ने उनके पास स्थान ही नही पाया। ऐसे उच्च आदर्श कवि होते हुए भी अपने काव्यों में "मिच्छामि दुक्कड" शव्द देते गये है।

ज्ञानबल तथा शास्त्रीय ज्ञान,

पूज्यपाद का ज्ञान वल भी वहुत प्रवल था, वृद्ध लोग कहते है कि यदि महाराजश्री के सामने कोई किसी प्रकार का प्रश्न करता था, तो उनका उत्तर अनेक शास्त्रो के प्रमाणो द्वारा देकर प्रश्नकर्त्ता के हृदय को आह्लादित कर देते थे। वहुत से व्यक्तियो मे यह देखा जाता है कि वे पृच्छक के प्रश्नो को सुनकर आवेश मे आ जाते है। परंतु पूज्यपाद के सामने जिज्ञासु या श्रुत-श्रौत अथवा परीक्षक तथा अन्य किसी प्रकार से जो प्रश्न करते थे, उन सव लोगो को प्रेम भाव से उत्तर देते थे, प्राणीमात्र से यह गुण अनुकरणीय है। वस, पूज्यपाद के चरित्र-विषयिणी लेखनी को यही विश्राम देता हूँ। कारण कि पूज्यपाद महाराजश्री के काव्यो द्वारा तथा तत्कालीन वृद्धो द्वारा उनके जीवन में पद-पद पर रहस्य प्रकट होता है, उन सव वातो को लिखने के लिये मेरी शक्ति नही है। दूसरा यह कि जो विशेषज्ञ है, उनसे कोई वात छिपी नही है और जो उनसे अपरिचित है, वे लेखक के साथ-साथ पूज्यपाद के विषय में भी संदेह करेगे। अत प्रेमभाव से प्रार्थना है कि गुणग्राही सज्जन आदरपूर्वक इसका पठन करेगे तथा पूज्यपाद के गुणो का अनुकरण कर इस परिश्रम का सदुपयोग करेगे।

ॐ शांति! शांति!! शांति!!!

अथ श्री तिलोकाष्टकम्

सवित्री नानू मा जननवसती रत्ननगरी ।
दुलीचन्दस्तातः प्रवरगुणवान् यस्य विदितः ॥
कलेन–श्रीयुक्तो व्रतनियम–निर्वासितमलो ।
गुणैः शुभ्रैर्धन्यो जयतु स तिलोको मुनिवरः ॥१॥

भावार्थ—रतलाम नगरी मे माता **नानूबाई** प्रसिद्ध गुणवान् पिता **दुलीचंदजी सुराणा** के यहा उत्पन्न होकर रमणीय और श्रेष्ठ कलाओ से युक्त तथा व्रतनियमो से पापो को हटानेवाले, उज्ज्वल गुणो मे प्रशंसनीय पवित्रात्मा **श्री तिलोकऋषिजी महाराज** अपने यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजमान होवे ॥१॥

महद्दिव्य ज्ञान समधिगतमेतेन तपसा ।
कथं स्वल्पे काले तदिह विदुषां मोहजननम् ॥
परं यद्ग्रन्थौघान् विरचयति तान्मोहविगतान् ।
गुणै शुभ्रैर्धन्यो जयतु स तिलोको मुनिवरः ॥२॥

भावार्थ—तपोवल मे थोडे ही काल में जो आपने दिव्यज्ञान उपार्जन कर लिया, क्या यह विद्वानो को भी आश्चर्यकारी नही है ? उससे भी अधिक आश्चर्यकारी मोह को हटानेवाले आपसे रचे गये ग्रन्थसमूह है । उज्ज्वल गुणो से युक्त ऐसे पवित्रात्मा **श्री तिलोकऋषिजी महाराज** अपने यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवे ॥३॥

यशःपुंजं यस्य चरितसमरादित्यप्रभृतौ ।
सुपद्यैर्विस्तीर्णैरयुतरससंख्यैः सुविमलम् ॥
जनान्मार्गध्वस्तान् प्रतिदिशति निःश्रेयसपदम् ।
गुणै शुभ्रैर्धन्यो जयतु स तिलोको मुनिवर ॥३॥

भावार्थ—साठ हजार गाथा संख्या से रचे गये हुए समरादित्य केवली चरित्रादिको में जिनका निर्मल यश पुज विस्तीर्णता को प्राप्त होकर मार्ग से बिछुडे हुए प्राणियो को कल्याणमार्ग का उपदेश कर रहा है, ऐसे उज्ज्वल गुणो से युक्त पवित्रात्मा **श्री तिलोकऋषिजी महाराज** अपने यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवे ॥३॥

वृहच्छास्त्र पुच्छीसुणमिह लिखित्वैकदलके ।
परां काष्ठां नीतां विदशप्रवरां लेखनकलाम् ॥
विजेतुं स्पर्द्धन्ती जगति रमते चित्रणकला ।
गुणैः शुभ्रैर्धन्यो जयतु स तिलोको मुनिवरः ॥ ४ ॥

भावार्थ—एक पन्ने के ऊपर **दशवैकालिक सूत्र** सपूर्ण तथा श्रीसूयगडाग-सूत्र का वीरस्तुति नामक छठा अध्ययन **पुच्छीसु णं** लिखकर अति निर्मल उच्च कोटि की जो लेखनकला प्राप्त की, उसको भी जीतने के लिये जिनकी चित्रकला स्पर्द्धा (इच्छा) कर रही है, ऐसे उज्ज्वल गुणो से युक्त पवित्रात्मा **श्री तिलोक-ऋषिजी महाराज** अपने यशःशरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवे ॥ ४ ॥

महाराष्ट्रे देशे यदपि वहुला जैनजनता ।
न गम्य क्त्वासीदतिगहनमार्गो हि मुनिना ॥
सहन्नानाकष्टं तदपि विधियोगादुपगतो ।
गुणै शुभ्रैर्धन्यो जयतु स तिलोको मुनिवर ॥ ५ ॥

भावार्थ—यद्यपि दक्षिण देश में जैनजनसमूह अधिक है, तथापि अति कठिन मार्ग होने से मुनिराजो का सचार कम था, परंच आप अनेक कष्टो को सहन करते हुए कर्तव्यवल से वहा आकर प्राप्त हो गए, ऐसे उज्ज्वल गुणो से युक्त पवित्रात्मा **श्री तिलोकऋषिजी महाराज** अपने यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवे ॥ ५ ॥

प्रभुर्य श्रीरत्नप्रभृति-निजशिष्यै परिवृतोऽ-
चतुर्थे विश्रामेऽहमद नगरे पूज्यचरण ।
गतः कायोत्सर्गं सुरपुरमगात् कीर्तिविशदो ।
गुणैः शुभ्रैर्धन्यो जयतु स तिलोको मुनिवर ॥६॥

भावार्थ—दक्षिण देश में पाँचवे चातुर्मास के लिए महाराज **श्री रत्नऋषिजी** वगैरह शिष्यो के साथ **अहमदनगर में** पधारे वहाँ पर ही इस नश्वर शरीर को छोडकर विमल कीर्ति के साथ सुरपुर सिधारे, ऐसे उज्ज्वल गुणो से युक्त पवित्रात्मा **श्री तिलोकऋषिजी महाराज** अपने यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवे ॥६॥

समुद्योगाद्यस्य धनदवसतिर्वं यमदिशा ।।
शरण्यं शांताढ्य शरणमुपयाता जिनमतम् ।।
मुनीनां जैनाना निवसतिरियं सौख्यजननी ।
गुणै शुभ्रैर्धन्यो जयतु स तिलोको मुनिवर ।।७।।

भावार्थ---जिस महात्मा के समुचित उद्योग से यमदिशा धनद वसतिः--कुबेर के नगर समान हो गई, अर्थात् जिस दक्षिण देश में मुनिलोग आने मे संकोच रखते थे, उस देश को आपने मालवा मारवाड़ सदृश मुनिराजो का सुखकर निवास्थान बना दिया और शरण को चाहनेवाला जिनमत शातिस्थल पा गया, ऐसे उज्ज्वल गुणो से युक्त पवित्रात्मा **श्री तिलोकऋषिजी महाराज** अपने यश शरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवे ।।७।।

प्रसादाद्यस्येम हरितभरित धर्मविटपम् ।
मुनीशः श्रीरत्न प्रखरविदुषानन्दमुनिना ।।
सुशिष्येणोपेतो वचनपयसा सिचतितराम् ।
गुणै शुभ्रैर्धन्यो जयतु स तिलोको मुनिवरः ।।८।।

भावार्थ--जिस महात्मा के प्रसाद से यह जैनधर्मरूपी वृक्ष हराभरा दिख रहा है और उस वृक्ष को आपके पाटवी शिष्य **श्रीरत्नऋषिजी महाराज ने** अपने सुशिष्य प्रखर विद्वान् **श्रीआनदऋषिजी** के साथ वचनरूपी जल से सिंचन कर रहे है, ऐसे उज्ज्वल गुणो से युक्त पवित्रात्मा **श्रीतिलोकऋषिजी महाराज** अपने यशःशरीर से सर्वोत्कृष्ट विराजित होवे ।।८।।

इति श्रीरामस्वरूपशास्त्रि-प्रणीत श्रीतिलोकाष्टक सपूर्णम्



स्व. शास्त्र विशारद पंडित रत्न श्री अमीऋषिजी म० प्रणित

श्री तिलोकाष्टक

उत्तम व्रत धारे, दूर पातिक हरण हारे,
विपत्ति विदारे, आप अमृत के क्यारे थे।
ज्ञान संयम मतवारे, दान करुणा सतवारे,
चित्त उज्ज्वल हितवारे, पक दूषणतें न्यारे थे ।।
तत्त्व मारक उच्चारे, किए कुमति से किनारे,
होन शिब के दुलारे, सुमति के प्राण प्यारे थे ।
वचन अमृत उच्चारें, अमर धाम को पधारे,
वे तिलोक रिख स्वामी, जग जीव रखवारे थे ।।१।।
मात नानू के नाने, नहीं रहे जग छाने,
विश्वमांहि प्रगटाने, जास महिमा वरवाने है।
सुधा-वचन सुन काने, घने जीव हरखाने,
दया भाव उर आने, जैन तत्त्व को पिछाने है।।
क्रिया दान देत दाने, मोक्ष मारग बत्ताने,
जिनराज, गुण गाने, नहीं नेक अरसाने है ।
आज अमृत गुण जाने, वे तिलोक रिख दाने
हाय! छिन में विलाने, मेघ इंद्र ज्यो छिपाने है।।२।।
मनमे वैराग्य धार, त्याग के सन्सार शिव
मार्ग चित्त लाग, सब पातक तें न्यारे थे ।
उदे बडभागे जैनागम अनुरागे सागे,
आपके प्रताप आगे, मिथ्यामति हारे थे ।।
बडे बडे पंडितके, खंडित किये हैं मान,
अमृत वखाने धर्म-दीपक उजारे थे ।
महा गुण वारे ज्ञान क्रिया धन वारे,
थे तिलोकरिख स्वामी जगजीव रखवारे थे ।।३।।
सकल संसार सुख जान के अनित्य चित्त,
त्याग भावधरी हितकारी शुभ संत है ।
आश्रव प्रमाद टार, रागद्वेषादि विदार,
विषय कषाय लाय ठारी उवसत है ।।
धारे जिनकेन मोक्षपंथ सुख देन ऐन,

देखत दीदार भव्य हिय हुलसत है ।
अमीरिख कहे पाल संजम विशुद्ध चित्त,
स्वामीजी तिलोक सुरधाममें वसत है ॥४॥
व्हे गयो जगत जाल पातक ते दूर शूर,
धर्मदया मूल भेद रसनाते के गयो ।
के गयो अनेक मत आगमके भेद भार,
अमृत जिनवेन चद आननते चे गयो ॥
घने भव्य जीवन को, ज्ञान दान दे गयो, ।
चे गयो अमर धाम आतम आराम काम,
दे गयो सुमत चित्त अमृत अखंड सो,
तिलोकरिख स्वामी गुण नामी एक व्हे गयो॥५॥

॥ गीता छद ॥

कुमति तिमीर दल दलन स्वामी, धर्म दीपक सम हुए ।
शुद्ध जैन आगम भेद अमृत, सार रसनाते चये ॥
भवि जीवको दरसाय शिवमग, जैन मत धारी किये ।
उपकारी धन्य तिलोक रिख गुरु आप सुरवासी भये ॥६॥
दयाके निधान भव्य जीवन के प्राण औ,
सुजान ज्ञान ध्यान में विमग्न गुणधामी थे ।
बाल ब्रह्मचारी महादुक्कर आचारी सार
काव्य कला धारी हितकारी विसरामीथे
सुधा समवाणी मृदु सबनके शाता दानी,
देय उपदेश जीव तारवेके कामीं थे ।
अमृत रटत नाम लेत ही कटत पाप.
ऐसे ही प्रतापी श्री तिलोकरिख स्वामी थे ।७॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

तिलोक के नाथ की आन गहे उर, संजम ले चित्त होय विशोक ।
विशोक हिये तप चारित पालत, टालत पाप अनत्थ विलोक ॥
विलोक लिये जिन वेण भली विध, वंदत भव्य सदा देइ धोक ।
धोक पियूष दिए तिहुं काल कृपाल, कृपाकर स्वामि तिलोक ॥ ८ ॥

(प. श्री सूर्य मुनि महाराज से प्राप्त)

श्रद्धांजली -- प्रकरण



दिवंगत पूज्यपाद महाराज श्री के प्रति
चतुर्विध श्रीसंघ की

卐 श्रद्धांजलियाँ 卐



साधना के अमर उपासक

(आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज, लुधियाना)

मनुष्य जन्म लेता है और तुरत मृत्यु की ओर यात्रा प्रारभ कर देता है। जन्म के दूसरे क्षण से ही मृत्यु उसे दबोचना शुरू कर देती है और एक दिन वह उसे पूरी तरह निगल जाती है। परतु यह नितात सत्य है कि मृत्यु का असर केवल शरीर पर पडता है, वह आत्मा का कुछ भी नही विगाड सकती। यही कारण है कि संत जीवन पर मृत्यु का कोई प्रभाव नही पडता। उनके शरीर का नाश हो जाने पर भी उनका जीवन-प्रभाव अजस्र रूप से प्रवहमान रहता है। भगवान् ऋषभदेव, राम, महावीर आदि महापुरुषो को काल के गाल मे पहुँचे हजारो लाखो एव करोडो वर्ष हो गये, फिर भी उनका जीवन समाप्त नही हुआ। शरीर से मर कर भी वे आज जीवित है। इस से स्पष्ट है कि सत-जीवन सदा जीवित रहता है।

स्वर्गीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० आज हमारे सामने नही है। उनकी दीक्षा को सौ वर्ष से भी अधिक हो गया और स्वर्गस्थ हुए भी ७७ वर्ष के लगभग बीत चुके है। इतने लंबे काल के वाद भी उनका जीवन-प्रवाह सूखा नही है।

समाज के जिन साधु-साध्वियो एव श्रावक-श्रावकाओ ने उनके दर्शन नही किये, उनके सामने भी वे आज जीवित है। प्रतिदिन प्रतिक्रमण करनेवाले साधको के सामने उनकी प्राणवत साधना दिन-रात मे दो वार साकार हो उठती है। भाववदन के समय पंचपदो की स्तुतियाँ पढते हुए मन आनद-विभोर हो उठता है,। इसके अतिरिक्त आपश्री द्वारा रचित अन्य साहित्य दिनमे से कुछ पुस्तके उपाध्याय श्री आनदऋषिजी के प्रयत्न से प्रकाशित हो चुकी है और १९ पुस्तके अभी उपाध्यायजी के पास सुरक्षित है, उनसे भी जनता को प्रेरणाप्रद सामग्री मिलती है। आपके द्वारा चित्रित शीलरथ, ज्ञानकुंजर एव चित्रालंकार काव्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह साहित्य आपकी जीवन–साधना का प्रतीक है।

आपने दस वर्ष की अवस्था में साधना के पथ पर कदम रखा और जीवन के अतिम सास तक उस पर अनवरत बढते रहे। आपकी साधना का स्रोत महाराष्ट्र मे अधिक रहा। आपने अथक प्रयत्न के द्वारा वहा की सुषुप्त जनता को जगाकर धर्म का दिव्य सदेश सुनाकर उनके जीवन को धर्म के सन्मुख करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। यही आपके जीवित व्यक्तित्व का प्रतीक है। या यो भी कह सकते है, कि ये कार्य ही जीवित स्मारक है, जो हमारे जीवन को आगे बढाने के लिये प्रेरित करते है।

बस, केवल इसी आकाक्षा के साथ कि संत-जीवन की मधुर सुवास हमारे मन-मस्तिष्क में सदा धर्म की, साधना की ताजगी बनाए रखें । मै अपनी हार्दिक श्रद्धा स्व० पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० के चरणो में अर्पण करता हूँ ।

उपाचार्य श्री गणेशलालजी महाराज के अभिप्राय से--

ले-पं लालचंदजी मुणोत, उदयपुर

श्रद्धांजली

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० अच्छे त्यागी महात्मा थे । उनका जीवन स्थानकवासी समाज में आदर्श महा-सतो के रूप में रहा है । उनकी कविताएँ प्राय. कई स्थलो पर बडे भाव से गाई जाती है । उनकी ज्ञानकुजर आदि की रचनाएँ कला-दृष्टि को सुशोभित करती हुई संसार के सामने है । अतः ऐसे महापुरुष अपने चारित्र व कलाकृतियो से ससार को प्रेरणा देनेवाले है ।

कवि-कुल-भूषण श्री तिलोकऋषिजी महाराज

पं० रत्न उपाध्याय **श्री हस्तिमलजी म० के अभिप्राय से पं० शशिकांत झा,**

वीसवी सदी के अनेक विशिष्ट संतोमें कवि-कुलभूषण श्री तिलोक ऋषिजी महाराज का नाम कभी भुलाया नही जा सकता । आपका शुभ जन्म १९०४ को मालव वसुन्धरा के प्रसिद्ध नगर रतलाम में हुआ । दश वर्ष की छोटी आयु में ही आपने ज्येष्ठ वन्धु माता और भगिनी के साथ जैन मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली और पं० रत्न श्री अयवन्ता ऋषिजी म० के शिष्य रूप में प्रसिद्ध हुए ।

आपकी प्रतिभा विलक्षण और स्मरण शक्ति अतिशय तीव्र थी । फलत गुरुदेव की असीम कृपा और अपनी प्रखर वुद्धि के कारण थोडे ही समय में आपने जैनागम का एवं अन्य दर्शनो का विधिवत् अध्ययन किया था ।

सं १९३५ मे घोडनदी के तत्कालीन प्रमुख श्रावक गभीरमलजी लोढा की प्रार्थना से आप महाराष्ट्र (दक्षिण) पधारे । जैन सन्त के रूप में आपके प्रथम पदार्पण से वहाँ जैन धर्म की वडी प्रभावना हुई । धर्म--विमुख लोगो में भी आपके सहज सरस उपदेश से धर्म के प्रति गहरी श्रद्धा और भक्ति वढी तथा जिन शासन की मन्द और फीकी पडी धर्म लौ आपके प्रवचन महकार से पुन प्रज्वलित एवं प्रदीप्त हो उठी । चार पाच वर्ष की छोटी अवधि में आपने महाराष्ट्र में जो धर्मोपकार किया, वह वास्तव में श्लाघनीय है ।

नीतिकारो की वाणी है कि---

नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्व दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।

अर्थात् प्रथम तो मानव जीवन मिलना ही कठिन है और उसके मिलने पर विद्या की प्राप्ति और भी कठिन है विद्वान बन जाने पर भी कवित्व प्रतिभा की प्राप्ति सर्वथा असभव और फिर सत्व सपन्न होना तो और भी कठिन है। कविकुल भूषण इस नीतिमयी वाणीके जाज्वल्यमान प्रतीक थे। एक व्यक्ति में इन सर्व गुणो का समावेश निश्चय में चमत्कारिता नही तो और क्या है ?

आपकी कविता ओज माधुर्य और गाभीर्य से परिपूर्ण होते हुए भी सर्व-बोध-गम्य हुआ करती थी। विविध विषयो पर आपने हजारो कविताएँ लिखी। जिनमें सरसता, सरलता, और सुस्वच्छता की त्रिवेणी प्रवाहमान है। जटिल से जटिल विषयो को भी हृदयंगम कराने में आपकी कविता को कमाल हासिल है। फडकती भाषा और चुभते शब्दो के द्वारा आप श्रोताओ की हृत्तत्रीकी झनझना देते और अनजाने एव अनबूझे विषय की ओर भी जन-मानसको बरबस आकृष्ट कर लेते थे।

यो तो आपके काव्य-कानन कमनीय-कुसुमो की सुषमा ओर सुरभी से ओत-प्रोत है, फिर भी बानगी के रूप में आप की ये कुछ सरस पक्तियाँ सर्वथा दृष्टव्य है

स्वभाव वादी-कथन

कहत स्वभाव वादी कहा करे सके काल,
बिन ही स्वभाव कोई वस्तु नहीं जगमें।
महिला के मूंछनही बांझ न जणत बाल,
रोमनहीं करतल हाडनहीं रगमें ॥
जात जात दरखत पानफूल भांतभांत,
जलचर थलचर पंखी उडे खग में।
एक जिनमत नय जाणे बिना जगजीव,
कहततिलोकरिख भूले पग पग में ॥

काँटा बोर वबूल का कौनकरे तीक्षणता,
हसको सरलभाव कपटाई वगमे ॥
विन ही स्वभाव मोर-पंखकुण चितरत,
कोकिलाको कंठ वर स्वर-भंग कगमें ॥
विषधर शिर-मणि जहर हरे तत्काल,
विषको स्वभाव निज कहीजे उरगमें ।
एक जिनमत नय जाणे विना जगजीव,
कहत तिलोकरिख भूले पगपगमें ॥

वस्तुतः उपरोक्त पक्तियाँ सर्व-सुलभ होते हुए भी अंत सार गर्भित और काव्य-सौष्ठव से परिपूर्ण हैं ।

कर्मवादी-कथन.

नियति स्वभाव काल तीनो झूंठे निरातात्र,
कर्म का अजव ख्याल कर्म वलवान है ।
कर्मही से बुद्धिवंत कर्मही से ऋद्धिवंत,
कर्म ही से निरधन मूरख अजान है ॥
कोई महासुंदर अनूप रूप तेजवान,
कोई कुष्ठी कुवडो सो कुरूपो कुसान है
एक जिनमत नय जाणे विना जगजीव,
कहत तिलोकरिख भ्रमत अज्ञान है ॥

इस तरह आपकी सारी कविताएँ सरल, सरस और सहज भावो से श्रोताओ को आनंदानुभूति प्रतीत कराती है।

आज भी आपके प्रशिष्य श्री वर्द्धमान स्था जैन श्रमण संघ के उपाध्याय श्री आनदऋषिजी महाराज की सन्निध्य मे आपके कतिपय अप्रकाशित चरित्र काव्य विद्यमान हैं, जो अदूर भविष्य मे प्रकाशित होने पर श्रोतृवृंद के आनंदज्ञान संवर्द्धन में सहायक होगे ।

इस तरह लेखन, पाठन और काव्य निर्माण से आपका साधु जीवन कितना अप्रमत्त, अनुशासित और सुव्यवस्थित वना हुआ था। यह सहज प्रतीत होता हैं। वस्तुत आपका अमिन उपकार और वर्चस्व भरा काव्यमय विचार जैन जगत के लिये सतत उपहार तुल्य सावित होगा।

आपकी पुण्य-स्मृति मे श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड (पाथर्डी) समाज के धर्मज्ञानाभिलाषी जनो मे ज्ञान के सग धर्म भावों की अभिवृद्धि कर रहा है। अन्य भी कतिपय सस्थाएँ महाराष्ट्र जैनधर्म प्रचारक मिशन के रूप मे काम कर रही है। जिनके मूल मे आपकी प्रेरणा ही बलवती है।

ज्ञान क्रिया के सतत उपासक और काव्य कला कोविद ऐसे सत युग २ में उत्पन्न हो और जिन शासन की उज्ज्वल प्रभा को भास्कर की तरह शत सहस्र गुण प्रद्योतित करे, यही कामना है।

हम विनम्र भावो से इस युग वरेण्य संत की सेवा मे समस्त हार्दिक सद्भावनाओ के सग श्रद्धाजली समर्पित करते है और विश्वास करते है कि आपके प्रशिष्य उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महाराज अपकी श्रुत सेवा को अखंडित रखकर प्रेरणाभरी कुछ अमूल्य कृतियाँ जैनजगत् के सम्मुख प्रस्तुत कर धर्म और समाज के गौरव की श्री वृद्धि करेगे।



शास्त्र विशारद व्याख्यान-वाचस्पति श्री मदनलालजी म०

कविकुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज स्थानकवासी श्रमणो की परंपरा में जाज्वल्यमान होकर चमकते रहे हैं। उनके त्याग वैराग्य का परिचय हमें उनकी कविता से मिलता रहा है। उनका जीवन चाहे हम से कितना ही दूरस्थ रहा हो, पर समाज के अंग-प्रत्यगो मे वह भक्ति और विराग का एक उत्साह सा भरता रहा है। श्रद्धेय आनदऋषिजी महाराज उनके उत्तराधिकार को जनता-जनार्दन मे बाटने की उदारता कर रहे है। यह प्रसन्नता का विषय है। इन प्रकाश-स्तभो से हम जितना प्रकाश ले सके, लेते रहे, यह मेरी भावना है।



वयोवृद्ध प० रत्न मत्री मुनि श्री पन्नालालजी म०

जैन सस्कृति व्यक्ति-पूजा की अपेक्षा गुण-पूजा मे विश्वास रखती है, आत्म गुणो का साधक एवं मोक्ष मार्ग का पथिक ही यहा श्लाघनीय होता है। ज्ञान-ज्योति से जगमगाता तप पूत जीवन ही वस्तुतः जन-मानस में अपना विशिष्ट स्थान बनाता है।

निरंतर तत्त्वचितन, सतत मनन, ज्ञानाराधन एवं आत्म-गुणो में रमण ही साधक-जीवन का ध्रुव ध्येय है। श्रद्धेय श्री तिलोकऋषिजी म० का जीवन भी इन्ही दिव्य गुणो से अलकृत रहा है।

श्रद्धेय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० जिनका साधनामय जीवन २६ वर्ष तक निरंतर मानव-समाज को ज्ञान-सुधा से सिंचित करता रहा है। जिन्हें आज हमारी आँखों से ओझल हुए करीब ७८ वर्ष जितना लंबा काल बीत चुका है।

भले ही आज वे अपने पार्थिव शरीर से हमारे मध्य में न रहे हों परंतु उनका चिर-संचित ज्ञान-वपु सम्प्रति भी भव्य समाज के जीवन को आलोकित कर रहा है।

मेरे जीवन मे इस विरल विभूति का साक्षात्कार करने का सुअवसर समुपस्थित नही हो पाया है। तथापि आप द्वारा गुंफित कतिपय साहित्य-सुमन को प्राप्त कर साक्षात्कार का आनंद अनुभव करता हूँ।

आपकी हस्तकला के प्रतीक जो ज्ञानकुंजर, शीलरथ आदि समुपलब्ध हो रहे है। वे यह सिद्ध कर रहे है कि आप हस्तकला के बेजोड थे।

ऐसे महान् प्राभाविक, मोक्ष-मार्ग के सच्चे साधक की दीक्षा-शताब्दी पर श्रद्धा के सुमन समर्पित कर मैं अपने को कृतकृत्य होने का अनुभव करता हूँ।



गागर में सागर

पं. रत्न मंत्री मुनिश्री विनयऋषिजी म.

संसार यह एक विष-वृक्ष है। इस विष-वृक्ष पर अनेक कटु विष फल लगते है। उन अनेक विष-फलो मे दो अमृत-फल भी लगते है। उन दो अमृत-फलो मे एक है सत्संगति और दूसरा है सत्साहित्य। विश्व-विभूति श्री पूज्यपाद महाराज श्री ने ए दोनो अमृत-फल संसार के विष-वृक्षपर पैदा किये है। अपने उच्च-चरित्र-सपन्न जीवन के समागम के द्वारा लोगो को सत्संगति का लाभ उन्होने दिया है। लेकिन यह अमृत-फल तो लोगो को कुछ समय तक ही वे दे सके, परंतु उन्होने जो साहित्य-सर्जन किया, उस सत् साहित्य का अमृत-फल वे अपने पीछे छोड़ गये है। जिसका लाभ जनता को हजारो वर्षों तक मिलता रहेगा।

कविवर्य पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० की कवित्व-शक्ति अद्‌भुत थी। उनके काव्यो को देखने से मालूम पडता है कि उन्होने छोटी २ कविताओ के अंदर खूब ज्ञान–राशि भर दी है। केवल ज्ञान का सार जैसे चौदह पूर्व में भर दिया है और चौदह पूर्व का सार जैसे एक पूर्व में आ जाता है, वैसे ही आपकी नन्ही नन्ही कविताओ के अंदर अनंत ज्ञानियो के अनंत ज्ञान का सार आ जाता

है। आपकी नन्ही २ कविताओ के अंदर जो विशिष्ट ज्ञान भरा हुआ है, उसके लिए यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नही होगी कि, आपने बिदु में सिंधु भर दिया है या गागर में सागर समा दिया है।

देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण ने चौदह पूर्व के सार रूप ज्ञान का सग्रह किया, परंतु उतना ज्ञान भी आज के विज्ञान के जडवादी युग में साहित्य के समुद्र समान मानवो को प्रतीत होने लगा, तब पूज्यपाद ने देवर्द्धि क्षमा क्षमण का अनुकरण करके लोक-भाषा में श्री दशवैकालिक सूत्र और श्री उपासक दशा सूत्र का सरल, सरस, सुबोध भाषानुवाद किया, इसी तरह सब शास्त्रो का दोहन कर सार रूप संक्षिप्त मे वैराग्यमय काव्यो की रचना की। जो रचना जैन और अजैन के लिये स्वाध्यायार्थ परम उपयोगी है।

जैसे अन्य धर्मावलंबी लोग गीता, कुरान, पुराण एव बाइबल को अपना सर्व श्रेष्ठ ग्रंथ मानते हे। उससे भी सरल और सुबोध पूज्यपाद म० श्री का काव्य सग्रह है। जिस को नौ वर्षका बालक और ९० वर्षों का उसका दादा भी सरलता से समझ सकता है। इतना लोकभोग्य यह साहित्य है।

जैन तत्त्व-ज्ञान का इतनी सरल और सरस भाषा में साहित्य निर्माण करने की कला पूज्यपाद श्री में स्वाभाविक थी। छत्तीस वर्ष की अल्पवय में पूज्यपाद महाराज श्री की जीवन-लीला समाप्त हो गई। अन्यथा दशवैकालिक और उपासक-दसा सूत्र के जैसे अनेक आगमो का भाषानुवाद पूज्यपाद म० श्री कर सकते थे। कितनी समाज के भाग्योदय की न्यूनता? सो यह कार्य अपूर्ण रह गया।

एक शताब्दी जितना समय व्यतीत हो जाने पर भी पूज्यपाद के जैसा लोक-भोग्य साहित्य के लिये आज तक किसी ने सम्यक् प्रयत्न किया हो, यह अनुभव मे नही आया। इतनी पूज्यपाद की अपूर्वता का परिचय प्रत्यक्ष रूप से हो रहा है और जैन तत्त्व-ज्ञान के सागर को गागर में काव्य कलामय दृष्टि से सुंदरता के साथ समावेश किया है, यह पूज्यपाद का नैसर्गिक काव्य-कला का अपूर्व नमूना है।

जैसे विश्व की सब संपत्ति का समावेश एक छोटे से कोहिनूर हीरे में हो गया है, उसी प्रकार श्री पूज्यपाद म० ने जैन तत्त्व-ज्ञान को अपने काव्य-कोहिनूरो में समावेश किया है। आज के विज्ञान के युग में दिन प्रतिदिन दिन दूने और रात चौगुने के जैसे हजारो रोग बढते जा रहे हैं और उन रोगो को मिटाने के लिए लाखो दवाइयो का अविष्कार हो रहा है। परतु बायो केमिक पद्धतिवालो ने इन लाखो दवाइयो की उलझन में से लोगो को बचाने के लिए उन लाखो दवाइयो के

सार रूप बारह क्षारो की शोध की है। सिर्फ उन बारह ही क्षारो के द्वारा वे लोग हजारो रोगो की चिकित्सा करते है। इसी प्रकार ससार में अनादि काल से जन्म, जरा, मरण वगैरह अनेक रोगो से जीव पीडित है। उस दु:ख-रूपी रोग से जीव को मुक्त करने के लिये श्री पूज्यपाद महाराज श्री ने अति सक्षिप्त में आगमो का दोहन कर के चारो तीर्थ की अपूर्व सेवा की है। जिससे कि अल्प बुद्धिवाले सामान्य जीव विशेष उलझन में न पडें। यह उनका चारो तीर्थो के ऊपर महान उपकार है।

कविकुल–शिरोमणि पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि जी महाराज का काव्य सग्रह भाव, भावना, सहृदयता और वैराग्य से ओत-प्रोत होने से पाठको के लिये यह साहित्य परम प्रेरणा देकर के जीवन को उन्नत बनाने में सुप्त मानस को जागृत करता है।

आशा है कि भविष्य की प्रजा पूज्यपाद की भाव-वाहिनी काव्य-माला का लाभ लेकर के इस जडवाद के युग में अध्यात्म–रस का पानकर अपने जीवन को धन्य और सफल बनायेगी, यही मंगल कामना है।



छंद–छप्पय

मरुधर केसरी पं. मंत्री मुनि श्री मिश्रीमल्लजी महाराज

साहित्य ज्ञान समंद, कला कोविद मृदुभाषी।
ज्ञान दर्श चारित्र, रत्नत्रय दिये उजासी॥
कविकुल भूषण, ललित लेखिनी, चित्रकार थे।
खम-दम समसे कलित, फलित शुभ सहकार थे॥
तीन लोक के सयल गुण, ढूंढत कां इत उत फिरो?
चहुन एक स्थल प यदि, श्री तिलोक पावों परो॥१॥
रत्नपुरी मे रत्न प्रगट भये दुलीचंद घर।
नाम् जन्मा लाल, संवत् उन्नीसे चउअर॥
चैत्र कृष्ण की तीज, वार आदित्य सुखागर।
गोत्र सुराणा जान वर्ष दस की भई ऊमर॥
अयवंता ऋषिराज के, शिष्य पाटवी मानिये।
प्रतिभाशाली भये प्रगट, अनहद आनंद आनिये॥२॥

कुंडलिया

युगपद् युगकर मे चतुर, चलत लेखिनी लहर।
वसु अवधानी विबुधवर, मात शारदा महर॥
मात! शारदा महर, शहर क पुर वो पट्टन।

विचरी दे उपदेश, तिमिर मिथ्या दल दट्टन।
बट्टन विजुरिको लगत, झलमल ज्यों ज्योति फहर।
त्यों तिलोक तनसे निकर, ज्ञान—गंग उमठी लहर।३॥

सवैया २४ सा,

ननतेज महारवि-सो तगरो, इसडो कवि ओर न नैनपऱ्यो।
वर्य आप अहा छत्तीस लही, कही आलस आ नहीं अंगअऱ्यो॥
मदमोह हटाय मिटा ममता, समता शुभ भूषण देहधऱ्यो।
जस गंध-सुगंध-अजौं-इलपैं, पसराय तिलोक सुधान वऱ्यो॥४॥

—दोहा—

उपाध्यायआनन्दप्रवर, दीख शताब्दी ग्रथ।
भेट कियो भल भावसे, श्री अभिनंदन ग्रथ॥५॥
श्रद्धांजली हित प्रेरणा, मिश्रीमनि मिलनाय।
प्रेमसहित अर्पण करे, श्री तिलोक चरणाय॥६॥

श्रद्धांजली

लेखक—प रत्न मंत्री मुनि श्री प्रेमचंदजी महाराज भटिंडा

यह सिद्धात सर्वसामान्य है कि इस भूतल पर जितने भी जड और चेतन, सूक्ष्म और स्थूल पदार्थ है, वे सबके सब पर्यायापेक्षा से परिवर्तनशील है। समय समय पर उनकी अतरात्मा में परिर्तन होता रहता है। कोई भी पदार्थ ऐसा नही, जिसमें परिवर्तन न होता हो। बीज से फूल, फूल से धूल, सुगंध से दुर्गन्ध, और दुर्गन्ध से सुगध सुकोमल, से कठोर और कठोर से सुकोमल। सुन्दर से असुन्दर और असुन्दर से सुन्दर। स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से स्थूल। मतलब यह है कि प्रकृतिनटी का अनंतकाल से यही कुतूलमय स्वभाव चला आता है। वह किसी भी पदार्थ को परिवर्तनशीलता से अछूता नही छोडती।

प्रत्यक्षरूप से देखने में आता है, जहाँ प्रावृट् ऋतु मे मेदिनी अनेक प्रकार के फल-फूल लताएँ तथा रग-विरंगी मनोरम सब्जियो से सुशोभित होती है, उसके विरोध में ग्रीष्मऋतु अपनी सतापना से प्रावृट्ऋतु प्रदत्त मेदिनी के सौंदर्य को नष्ट—भ्रष्ट कर उसे सौन्दर्य विहीन-बना देती है। जहाँ वर्षाकाल में भूतल की नदियाँ जलरूप अतुल-निधि प्राप्त कर फूली नही समाती, वहाँ ग्रीष्म काल में सपत्ति-विहीन हो संतप्त नजर आती है। यदि जन्म की खुशी है तो मृत्यु से रोता है। जवानी के पीछे बुढापा है। जीवन के पीछे मृत्यु है। खुशी के पीछे गमी है। दिन के पीछे रात्रि है।

सारांश यह है कि कोई भी भौतिक पदार्थ ऐसा नही है, जो सदैव एक रूप रहता हो। भला है कोई इस भूतल पर ऐसा कुसुमोद्यान ? जिसके सुदर पुष्प खिलते हो और धूल में न मिलते हो ? एक ऊर्दू के कवि ने ठीक ही कहा है।

कुछ गुल तो दिखला के वहार अपनी हे जाते,
कुछ सूख के कांटो की तरह हैं नजर आते।
कुछ गुल है कि फूले न जामे में समाते,
गुचे बहुत ऐसे जो वद किसमत कि खिलने भी न पाते ॥१॥
दूर न हो कोई कभी, वह उपाय है कौन ?
यही प्रश्न है विश्व में, यहाँ विश्व है मौन ॥२॥

सच पूछो तो इस उलझी हुई पहेली का उत्तर किसी के भी पास नही है। इस विनश्वर भौतिक स्थूल जीवन का क्या भरोसा ? किस समय आत्मा का साथ छोड़ जाय। वास्तव में उन्ही भव्यात्माओ के पवित्र जीवन का मूल्य आका जाता है, जो अपने जीवन के क्षणो में स्वपर का कल्याण कर जाती है। ससार उन्ही की पुण्य कृतियो को संस्मरण कर उन्हे याद करता है। कहा भी है--

जिदगी ऐसी बना जिदा रहे दिल शाद तू।
जब न हो दुनियाँ में तो दुनियाँ को आये याद तू ॥१॥
मुबारिक है जो दिल मे दूसरो का दर्द रखते है।
आँखो में आसू लब पे आहे सर्द रखते है ॥२॥

मै इस विनश्वर संसार की अनित्यता की खोज में मस्त होकर कुछ दूर निकल गया हूँ। हाँ तो मै जिस स्वर्गीय कविकुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० के चरणारविंदो में सादर अपनी श्रद्धाजली सर्मपित करने जा रहा हूँ, उनका जीवन एक आदर्श जीवन था। वह जीवन अधेरी गलियो मे भटकने वाला नही था। उस पावन जीवन के पीछे कुछ लक्ष्य था, ध्येय था, प्रकाश था, आत्मसाधना और मोक्ष-प्राप्ति का पवित्र उद्देश्य था।

हे ज्ञानार्णव! तेरा विशाल ज्ञान समुद्र की भाँति अथाह था, मेरे जैसे तुच्छ वुद्धिशील के लिये उसका पार पाना कठिन है। हे चारित्रचूडामणे! तेरा पवित्र चारित्रमय जीवन मानव संसार के लिए एक प्रकाश—स्तंभ था, जिससे प्रकाश लेकर अनेक भव्य आत्माओं ने अपने जीवन को प्रकाशित किया, मिथ्यात्व और अज्ञानमय-कुपथ का परित्याग कर सत्यानुगामी वनी।

हे मार्गदर्शक ! आपने अनेक भूले-भटके प्राणियो को मोक्षमार्ग का पथिक बनाया।

हे जिन-शासन-प्रभावक ! आपने अपनी तीव्र बुद्धि और वाक्पटुता से अनेक प्रकार की आत्मबोधक कवितारूप साहित्य का सर्जन कर जो मानव-ससार पर उपकार किया है, वह चिरस्मरणीय रहेगा । जिस प्रकार अधेरी निशा में दीपक ठीक मार्गदर्शन कराता है, ठीक इसी तरह आपका रचित साहित्य भी मार्गदर्शन कराता रहेगा ।

हे कविकुलभूषण ! प्रकृति-चित्रकला के निष्णात कलाकार ! तेरी ज्ञान कुजर जैसी आध्यात्मिक चित्रकला ने चित्रकलाभिमानी संसार को विस्मित एवं चकाचौध कर दिया है ।

हे परोपकारी पुनीत महात्मन् ! तेरी गुण-गाथाओ का जितना भी वर्णन किया जाय उतना थोडा ही है । आपके जीवन के विषय में जो ये कतिपय पंक्तियाँ लिखी गई है यह एक प्रकार का दु साहस और धृष्टतासूचक ही कार्य है । अतत' स्वर्गीय आत्मा के प्रति मेरी हार्दिक कामना है कि उत्तरोत्तर सम्यग्ज्ञान,–दर्शन–चारित्र की प्राप्ति होती रहे जिससे आपको शीघ्रातिशीघ्र शाश्वत निर्वाण-पद की प्राप्ति हो ।

कला का कीर्ति–स्तंभ

–पं० प्रवर मंत्री मुनि श्री पुष्कर मुनिजी महाराज

कला के क्षेत्र में काव्य-कला का महत्त्वपूर्ण स्थान है । अनुभूति की अभिव्यक्ति का इससे बढकर अन्य कोई सुन्दर साधन नही है । यह कला अपने आप में इतनी परिपूर्ण और चित्ताकर्षक है कि गुलाबी बचपन से लेकर जीवन की सध्यावस्था तक सभी का दिल मोह लेती है । जो काव्यकला बिजली के सजीव तार की भाँति हृदय को धक्का न दे सके, अथवा जिससे पाठको को कुछ भी प्रेरणा प्राप्त न हो सके, उसे मै असफल काव्य मानता हूँ । निरुद्देश्य काव्य से तो कागज, स्याही और समय का अपव्यय ही है ।

सत–साहित्य की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है कि उसका काव्य निरुद्देश्य नही होता । पाश्चात्य विचारको की तरह उसके काव्य का लक्ष्य "कला कला के लिए है" यह नही, अपितु कला जीवन के लिए है, यह है । यही कारण है कि संत–साहित्य में स्वान्त.सुखाय के साथ ही बहुजनहिताय और बहुजनसुखाय को महत्त्व दिया गया है । जिससे उसका काव्य हिमालय से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक समान रूप से जन–जन के मन का हृदयहार बना और भूले–भटके जीवन-राहियो के लिये पथ-प्रदर्शक । सुप्रसिद्ध विचारक विलियम जेम्स ने एक स्थान पर सत्य ही लिखा है कि "जब हमें मदद की जरूरत होती है, उस समय हम संत की सहायता पर जितना भरोसा कर सकते हैं, उतना किसी दूसरे पर नही"

महान् कलाकार -पडितप्रवर श्रद्धेय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज ऐसे ही महान् संत-रत्न थे। जिन्होने करीब नौ वर्ष की लघु वय मे सयम-साधना, तप-आधारना के कठोर कंटकाकीर्ण महामार्ग पर वढकर और सद्गुरु के श्री चरणो में रहकर आगम—साहित्य का गहन अध्ययन कर अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया।

उनके काव्य—कला के निखार में आगमिक साहित्य का प्रतिविंब स्पष्ट रूप से झलक रहा है। दो दर्जन से भी अधिक कलाकृतियाँ आज भी विज्ञो के दिल को लुभा रही है। सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता निरभिमानता और स्वाभाविकता का ऐसा जवरदस्त पुट उनके काव्य में विद्यमान है, जिससे साहित्य की वह चिरस्थायी सपत्ति हो गई है।

स्थानकवासी जैन समाज मे अनेक संत कवि हुए है, जो अपनी प्रतापपूर्ण प्रतिभा की तेजस्विता के कारण आज भी साहित्याकाश में नक्षत्र की भाँति चमक रहे है। उनका काव्य भाव, भाषा और शैली सभी दृष्टि से प्रांजल एव प्रौढ है, पर उनकी वे अमर-रचनाएँ पंडितप्रवर कविकुल—भूषण पूज्यपाद श्री तिलोक—ऋषिजी महाराज की तरह न इतनी लोकप्रिय ही वन सकी हैं और न प्रतिक्रमण सूत्र में उन्होने स्थान ही प्राप्त किया है। पूज्यपाद द्वारा निर्मित नमस्कार मंत्र पर 'नमु श्री अरिहत, करमा को कियो अत' आदि पद इतने अधिक लोकप्रिय वने है कि राजस्थान, मध्यभारत, पजाव, यू पी दक्षिण खानदेश और गुजरात सर्वत्र उसकी सुरीली स्वर—लहरी प्रात और साय प्रतिक्रमण में सुनने को मिलती है। यह है कलाकार की कविता का चमत्कार।

उपाध्याय पंडितरत्न श्री आनन्दऋषिजी महाराज की प्रवल प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर स्थानकवासी जैन समाज की ओर से उस महान् कलाकार के चरणारविंदो में श्रद्धा के सुन्दर सुमन समर्पित करने का जो आयोजन किया है, वह स्तुत्य है। कलाकार संत के चरणकमलो में श्रद्धाजली समर्पित करने का अवसर आनेपर यदि मौन रहा जाता है, तो वह गीर्वाणगिराके यशस्वी कवि के शव्दो में वाणी का शल्य है। महापुरुषो के सद्गुणो का उत्कीर्तन करना जीवनोत्कर्ष के लिए आवश्यक ही नही, अनिवार्य है। श्रद्धेय श्री तिलोकऋषिजी महाराज के प्रति सही श्रद्धांजली यही होगी कि हम उनके काव्य का अधिक से अधिक रसास्वादन कर जीवन को आचार और विचार की दृष्टि से उन्नत बनावे।



श्री पूज्यपाद का पुनीत पदार्पण

आत्मार्थी मुनि श्री मोहनऋषिजी महाराज अहमदनगर

भारत की संस्कृति अहिसा, दया, करुणा और अनुकम्पा के रग से रंगी हुई थी। तदपि समय ने पलटा खाया और वह भूमि अहिसा के स्थानपर हिंसक भूमि बन गयी थी। दया करुणा व अनुकम्पा के स्थानपर निर्ममता, क्रूरता और कठोरता ने स्थान ग्रहण किया था। और यज्ञ के लिये लाखो पशु निर्भयता से धर्म के नाम पर काटे जाते थे और पवित्र भूमि रक्त की नदी के समान बन गयी थी। विषमता और अज्ञानता का भी साम्राज्य व्यापक रूप से था। स्त्रीसमाज और सेवक-समाज की पशु के तुल्य गणना की जाती थी। रास्ते मे चलते समय उनके कानो मे यदि भूल से भी वेदके शब्द पड जाते तो उनको अक्षम्य अपराधी मानकर कठोर दंड दिया जाता था। ऐसे विषम युग मे भगवान् महावीर का जन्म हुआ और उन्होने अहिसा का और स्त्री-पुरुष समान है, मानव-मानव समान है इसका व्यापक प्रचार किया और सम्यक् ज्ञान दर्शन और चारित्र का प्रचार किया। वैसे ही दक्षिण प्रान्त में जैन व्यापारी वर्ग आर्थिक दृष्टि से आये थे। किन्तु सद्गुरु के अभाव से हजारो की सख्या में वे अजैन जैसा जीवन व्यतीत करते थे। जू लिख, खटमल, मच्छर, सर्प और विच्छू आदि जीवो के प्रति उनकी करुणा बुद्धिने क्रूरता का रूप धारण किया था। वैसे समय में पूज्यपाद ने इस प्रात में पदार्पण किया और सत्य धर्म का प्रसार किया। जिसके फलस्वरूप जैसे वटबीज मे से विशाल वट-वृक्ष बन जाता है। वैसे पूज्यपाद की परम्परा ने विस्तृत विराट रूप धारण किया। आज ये पक्तियाँ अहमदनगर क्षेत्र में लिखी जा रही है कि जो प्रात-स्मरणीय पूज्यपाद की शाखा—प्रशाखा के रूप में श्रमण-सघ के शिरोमणि उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म० ठा. ८ और २९ सतियाँ विराजमान है। इतना विशाल समुदाय इस एक क्षेत्र में है विद्यमान और धर्मप्रचार का क्षेत्र—विस्तार भी पूज्यपाद की मंगल भावना के अनुसार महाराष्ट्र, मैसूर, वरार, खानदेश और मध्यप्रदेश, बेंगलोर, कर्णाटक, सम्पूर्ण मालवा, मेवाड, मारवाड, पजाब, सौराष्ट्र, गुजरात-तक उनके शिष्य और शिष्याओ ने धर्म—प्रसार किया है और कर रहे है। यह सब-श्रेय पूज्यपाद को अर्पण है।

ऋषि वरेण्य

प० मुनि श्री श्रीमल्लजी महाराज पूना,

मानव-समाज में आज यदि सुसस्कारिता है, नैतिकता है, धार्मिकता है, तो उसका सारा श्रेय विभिन्न युगो में उत्पन्न होनेवाले उन महान् सन्तो को है, जिन्होने मानव-जाति के उत्थान के लिए अपना जीवन अर्पित किया है। अपने संयमी जीवन द्वारा, सत्य-पूत उपदेशो द्वारा एव सत्साहित्य द्वारा जिन्होने मनुष्य के समक्ष महान् आदर्श उपस्थित किया है और मानव जाति को सुसस्कृत बनाकर ससारपर महान् उपकार किया है। ऐसे महान् उपकारक सन्तो में पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज अपना अनोखा स्थान रखते है।

पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० बीसवी सदी के प्रारभ मे इस धरती पर आये और केवल छत्तीस वर्ष का छोटासा समय इस दुनिया में व्यतीत करके अन्तर्धान हो गये। महान् विभूतियाँ अल्प काल में ही अपने प्रकाशसे धरा को आलोकित और समाज को चमत्कृत कर देती है।

श्री ऋषिजी म० अपने समय में एक महामुनि थे, महर्षि थे, जितने उच्च कोटि के वे साधक थे-उतने ही उच्च कोटि के कवि भी थे। जैनागम एवं जैन कथा-ग्रथो मे इतस्तत बिखरे हुए विभिन्न आख्यानो को उन्होने कविता की भाषा मे प्रस्तुत किया और समाज को नवजीवन का सन्देश दिया। लगभग ७० हजार पद्यो की रचना उन्होने अपने छोटे से जीवन-काल में की है।

वास्तव मे देखा जाय तो कविता का सम्बन्ध बाह्य वस्तुओ के साथ उतना नही है। जितना कवि के हृदय की अनुभूति के साथ है। हृदय की अनुभूति बढ-कर जब सगीतमय होकर बाहर निकलने लगती है तो उसका नाम कविता हो जाता है।

पूज्यपादश्री में अनुभूति की प्रबलता थी। महापुरुषो में अनुभूति का होना आवश्यक है। धर्माचार्य, कवि, राष्ट्रनायक, समाज-सुधारक, दार्शनिक, साहित्यकार आदि सबमें यही अनुभूति काम करती है और भिन्न-भिन्न रूप धारण कर के प्रकट होती है।

कवि में यह कविता बन जाती है। धर्माचार्य में सयम, त्याग और तपस्या का रूप धारण करती है। राष्ट्रनेता में त्याग तथा बलिदान के रूप में प्रकट होती है। दार्शनिक मे वह गभीरता का रूप धारण करती है और साहित्यकार में कला के उद्गम का स्रोत बन जाती है। हमारे पूज्यपाद महाराजश्री में यह कविता,

सयम, वाणी एव तपस्या आदि अनेक रूप मे प्रकट हुई है। उनकी कविताओ का समूह उन्ही के प्रशिष्य उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म० के समीप आज भी उपलब्ध है।

श्री तिलोकऋषिजी महाराज स्वाध्यायप्रिय संत थे। अपने अप्रमत्त भाव को सुस्थिर बनाने के लिए वे स्वाध्याय मे रत रहते थे। शास्त्रो मे स्वाध्याय को नदनवन के सदृश माना है। अकुशल निमित्त के कारण जब मनुष्य व्यग्र हो जाता है, तब वह व्यग्रता दूर करने के लिए सुदर बगीचे का आश्रय लेता है। इसी प्रकार सयमी साधक भी प्रमत्त भाव के निमित्त से जब उसका मन व्यग्र हो जाता है, तब वह स्वाध्याय रूप नदनवन का आश्रय लेता है। स्वाध्याय के द्वारा वह नवीन-नवीन ज्ञान प्राप्त करता रहता है और अपनें जीवन मे उस ज्ञान का उपयोग करता जाता है। सामान्य व्यक्ति पुस्तको में लिखी बातो का अपने मस्तिष्क में ठूस लेता है और समय आने पर उन्हे उगल भी देता है, परन्तु अपने जीवन में नही उतारता। सतपुरुष ऐसा नही करते। वे स्वाध्याय से जो सीखते है। उसे अपने जीवन मे उतारने का प्रयत्न करते रहते है। इस प्रकार के स्वाध्याय से जीवन सस्कारसपन्न और पवित्र बनता है। प्रमादजन्य व्यग्रता नष्ट होकर अप्रमत्त भाव मे स्थिरता आती है और अकुतोभय (निर्भय) बनने लगता है। "सव्वओ अप्पमत्तस्स नत्थि भय" अप्रमत्त को कही भी भय नही है। इस स्थिति को स्वाध्याय द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

हमारे वदनीय महर्षि इसी निर्भय अवस्था को स्वाध्याय के द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। स्वाध्याय के लिये जिन आगमो की आवश्यकता होती थी, जिन ग्रन्थो की उन्हे उपयोगिता मालूम होती थी, उन्हे वे स्वयं ही लिखते थे।

साधु अपना सामान स्वय ढोते है। प्रवास-काल मे अधिक सामान न ढोना पडे और स्वाध्याय के लिये आवश्यक ग्रन्थ भी उपलब्ध हो जाये, इसी दृष्टि से जैन साधु सूक्ष्म सुदर कलात्मक ढंग से लिखते थे। लिखने की कला मे ये महामुनि बहुत ही प्रवीण थे। उन्होने अनेक शास्त्र स्वय लिखे है, उनके द्वारा लिखित जैनागमो एव कई ग्रन्थो की प्रतियाँ वर्तमान में भी प्राप्य है। वे लिखने में इतने कुशल थे कि न केवल उनका दायाँ हाथ बल्कि बाँया हाथ भी चलता था।

स्वाध्याय के द्वारा ज्ञान और क्रिया का सुदर समन्वय ऋषिजी म० अपने जीवन मे ला रहे थे। ज्यो ज्यो विचार और आचार की शुद्धता उनके जीवन में प्रकट होती थी, त्यो त्यो, भगवान् महावीर के तत्त्वज्ञान एवं आचारपद्धति पर

उनकी निष्ठा स्थिर होती जाती थी, और "सभीजीवकरु शासनरसी" यह भावना बल पकडती जा रही थी। अपनी इस भावना को सफल बनाने के लिये ऋषिजी म० ने उग्र विहार प्रारभ किया था।

श्रमण संस्कृति में पदयात्रा को अधिक महत्त्व प्राप्त है। उग्रविहारी होना श्रमण का कर्तव्य बताया गया है। चातुर्मास के अतिरिक्त किसी भी स्थान पर २९ उनतीस दिन से अधिक ठहरना साधु के लिये निषिद्ध है। पदयात्रा का सब से बडा लाभ आध्यात्मिक विकास है। पैदल' यात्रा से ज्ञानवृद्धि में भी बहुत सहायता मिलती है। पदयात्रा से प्राप्त लाभ का वर्णन करते हुये सत विनोबा लिखते है कि--

"मेरी उम्र पैसठ वर्ष की है, इस समय भी मै बारह मील चलने के बाद कोई थकान महसूस नही करता हूँ। यह मेरे स्वास्थ्य का लक्षण है। मैने भारत-माता के मन्दिर की प्रदक्षिणा (पदयात्रा) का प्रारम्भ जबसे किया है, तबसे मेरा शारीरिक स्वास्थ्य तो सुधरा ही है, साथ ही मानसिक स्वास्थ्य भी सुधरा है। मेरी स्मरण शक्ति भी तेज हुई है। पहले एक श्लोक कठस्थ करने में मुझ दस मिनट लगते थे। आज कल दो मिनट में ही याद कर लेता हूँ।"

इस प्रकार पद-यात्रा में अनेक लाभ है। चारित्र-रक्षा की दृष्टि से भी एक नियत स्थान पर न टिककर पैदल भ्रमण करना साधु के लिये आवश्यक है। अधिक समय तक एक स्थान पर टिके रहने से मोह की जागृति एव वृद्धि होने का भय रहता है। इस दृष्टि मे जैन शास्त्रो मे साधु के लिये विहार आवश्यक माना गया है।

हाँ, तो हमारे पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज उग्रविहारी थे। उन्होने गाव-गाव और नगर-नगर घूम घूम कर जनता तक मानवता का संदेश पहुँचाया। छोटे २ देहातो में भगवान् महावीर के सदेश को सुनाने मे उन्हे बहुत संतोष होता था। वे ही महान् मुनिवर थे, जिन्होने सर्वप्रथम महाराष्ट्र की धरती पर पदार्पण किया। महाराष्ट्र की जैन जनता उन्हे अपने बीच पाकर कृतकृत्य हो गई। जो लोग जैन सस्कारो को भूले जा रहे थे, उन लोगो में फिर से जैनत्व जागृत करने की बलवती साधना उन्होने प्रारभ की। सिर्फ वडे बडे नगर में ही उन्होने पदार्पण नही किया, बल्कि छोटे-छोटे देहातो में भी पहुँचकर कष्टो को झेलते हुए, परीषहो को सहन करते हुए उन्होने धार्मिक क्रांति का शंखनाद फूंका।

वे एक सच्चे संत थे। संत पुरुष ससार के अकारण बधु होते है। निःस्पृह सेवक होते है। मनुष्य की आकृति में मनुष्यता का बीज बोनेवाले कुशल माली होते है। नीति और धर्म के महान शिक्षक होते है। संसार के कल्याण के लिए वे रत रहते है। भयकर से भयकर कष्ट भी जगत् के उद्धार के लिये वे सहन करने को तत्पर रहते है। मनुष्य का निर्माता कोई भी हो, परंतु मनुष्यता का निर्माता तो सत ही होते है। इस प्रकार ससार का अपार उपकार करनेवाले सतो मे पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० का स्थान अक्षुण्ण है।

संतो का जीवन एक ऐसा सागर है, जिसमें असंख्य मोती भरे रहते है। जो जितना गहरा गोता लगाता है वह उतने ही अनमोल मोती प्राप्त कर सकता है। ऋषिजी म० के जीवनसागर में भी अनेक सद्‌गुणरूपी मोती बिखरे हुए है।

उनके जीवन का गहरा अध्ययन करके उन सद्‌गुणो को अपने जीवन में अपनाने का प्रयत्न करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाजली हो सकती है।

ससार में रोज कितने प्राणी जन्म लेते है और मरते है। जन्म और मरण का यह सिलसिला अनवरत अबाध गति से बहता रहता है, चलता रहता है। पर संसार के पटल पर कुछ ऐसे ही व्यक्तियो के नाम अकित होते है, जो स्वपरहित-साधना में, मानवता की सेवा में अपना सर्वस्व लगा देते है। ऐसे ही महापुरुषो के बलिदान की गाथाओ से इतिहास गौरवान्वित होता है। सत पुरुष ही ससार के चक्र की धूरि है। जिस पर यह सारा चक्र घूम रहा है। ऐसे महामहिम सत को हम नतमस्तक होकर अपनी भावाजलियाँ अर्पित करे, यह स्वाभाविक ही है। हम महापुरुषो के विचार-प्रवाह को अनवरत गतिशील रहने दे। उसे किसी घेरे में परकोटे मे या पररूढी मे बाधकर न रखे, वह प्रवाह जहाँ भी जायगा, पवित्रता, शाति और आनद का संचार करेगा।

हम श्री तिलोकऋपिजी महाराज को श्रद्धाजली अर्पित करते समय इस बात का स्मरण रखे कि-कही हमारे स्वार्थ का पोपण करनेवाली भावनाएँ प्रकट न हो जायें। पंथ-सप्रदाय इत्यादि के बंधनो से ऊपर उठकर जो परम सत्य है, जो ऊंचा आदर्श है, उसे स्वीकार करके उसके अनुरूप अपने जीवन को चलाने का प्रयत्न करे। इससे वढकर ऋपिजी म० के अभिनंदन में और क्या किया जा सकता है?

मंत्री मुनिजी हजारीमलजी म० के शिष्य

प. मुनि-मिश्रीमल्ल (मधुकर) जी म, मेडता

जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु अवश्यंभाविनी है। परन्तु मृत्यु के बाद भी स्मरण उसीका किया जाता है, जिसने ससार को किंचिदपि प्रकाश दिया हो।

स्वर्गीय पूज्यपाद प्रवर पंडित श्री तिलोकऋषिजी महाराज एक ऐसे ही संसार को प्रकाश देनेवाले महात्मा पुरुप थे। अपने अल्पतम जीवन-काल में जो उन्होंने साधना की, उसका आभास उनकी रचनाओं से मिलता है।

सिर्फ ३६ वर्षका उनका जीवन–काल था। करीव १० वर्ष की आयु मे उन्होने संयम ग्रहण किया था और वे अपनी दीक्षा के २६ वे वर्ष के आसपास अपनी इस देह से विमुक्त भी हो गये थे।

इतनी अल्प अवस्था मे स्व-निर्मित उनकी रचना और कलाकृतियो को देखने से ऐसा लगता है कि वे सदा जागरूक रहनेवाले पुरुप थे।

साधना का जीवन ऐसा ही तो होना चाहिये। उठते-वैठते वातचीत करते और विश्राम के समय भी कुछ नया सीखने की और नया लिखने की सतत प्रवृति वनाये रखना ही तो सत-जीवन की जागृत अवस्था है।

स्वर्गीय पूज्यपाद म० श्री जी का स्थूल शरीर तो आज नही है, परन्तु उनका यश शरीर आज भी उन लोगो के स्मरण-पट से कभी दूर नही हो [illegible] जिन्होंने उनकी रचनाओ का अमृत-पान किया है।

वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण-सघके उपाध्याय श्री [illegible] ऋपिजी महाराज उनकी शिष्य-परम्परा मे है। वे श्री तिलो[illegible] दीक्षा-शताव्दी के अवसर पर उनके स्मृति-ग्रन्थ की योजना [illegible] इस प्रयास के अवसर पर स्वर्गीय पूज्यपाद श्री ति[illegible] कमलो में अपनी श्रद्धाजली सर्पापित करता हूँ।

लेखको या आलोचको में से कुछ का कहना है कि Art for Art,, अर्थात् कला केवल कला के लिए है, पर भारतीय साहित्यकारो ने इस विचार का स्वागत नही किया। उनके मतानुसार काव्य, कविता अथवा साहित्य के उद्देश्य आचार्य मम्मट के निम्नोक्त शब्दो मे निहित है --

काव्य यशसेऽर्थकृते, व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य परनिर्वृतये, कांता-संमततयोपदेशयुजे ॥१॥

अर्थात् काव्य के उद्देश्य है, यश, अर्थलाभ, व्यवहारज्ञान, पापक्षय, स्वपर आनद तथा माधुर्यपूर्ण उपदेश। उन उद्देश्यों में अर्थलाभ तो जैन साधुओ के लिये अनुद्देश्य ही है। शेष सभी उद्देश्य प्रस्तुत कवि की लेखनी से प्रस्फुटित कविता परिपूर्ण कर रही है। यश की कहानी तो मै पहले ही कह चुका हूँ। स्व पर आनद का जहा तक संबध है, वहाँ कवि श्री जी एक प्रकार के प्रवाह मे बहने की दुर्बलता से सदा बचते रहे है। क्यो कि कविता के क्षेत्र में स्वपर आनद के नामपर कुत्सित तथा अमर्याद अश्लीलता की एक बाढसी आती रही है। जिसे देखकर दुःखितमना उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर मौलाना हाली को कहना पडा कि "गुनाहगार वॉ छुट जायेंगे सारे जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे" अर्थात् कविता के साथ दुर्विचारो का विष भर कर जो अन्याय कवियो के हाथों हुआ है, उसे मौलाना अत्यत घृणित दृष्टि से देखते है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज सदा इस बाढ से बचकर रहे हैं। उन्होने जो कुछ लिखा, उसमें स्व-पर आनंद तो था ही, पर साथ २ "शिवेतर क्षतये" का भी उस मे पूरा पूरा ध्यान रखा गया है। मै तो यहा तक कह सकता हूँ कि उनका काव्य भक्ति-काव्य की सुदीर्घ परंपरा में कलश चढाने के समान रहा है। भले ही जैन कवि होने के कारण हिंदी साहित्य समीक्षको ने इस ओर ध्यान न दिया हो पर इस से उनका काव्य महत्व-हीन नही हो जाता। उनके रचना-कौशल को देखकर कोई भी सहृदय कवि उल्लसित हुए विना न रहेगा। एक दो नमूने देखिये —

यह संसार स्वपन सो है जन, जैसो है बीजलीरो झबकारो।
जीरन पत्र कान गजको फुनि, वादल छाय संध्यासे उजारो ॥
इंद्र-धनुष्य ध्वजा जिम चंचल, अंबूकी लेर प्रपोट विचारो।
कहत तिलोक यो रीत खलक की, धार सुपंथ को आतम तारो ॥१॥

वैराग्य भावना से ओत-प्रोत इस पद्य में कितनी स्वाभाविकता तथा समरसता है। इसी प्रकार एकत्व-भावना का विश्लेषण करते हुए कवि कहते है कि

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज
और उनका काव्य–कौशल।

लेखकः–—व्या० वा० मुनि श्री मदनलालजी म० के सुशिष्य
पं मुनि श्री रामप्रसादजी महाराज

अपने आठ वर्ष के बचपन से ही जिस जैन कवि से मेरा परिचय है, वे है श्री तिलोकऋषिजी महाराज और वह परिचय भी किसी अन्य माध्यम से नही है, प्रत्युत उनकी कविता ही उनकी एकमात्र परिचायिका रही है। जिस प्रकार सूर्य अपनी सहस्र-सहस्र किरणो के द्वारा यत्र तत्र सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। उसी प्रकार कवि भी अपनी कविता के द्वारा जन-जन मे व्याप्त हो जाता है। "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू" के अनुसार कवि वह है जो मनो-वेग से दौड लगाता हो, अग–जग के प्रत्येक विषय पर परितोभावेन छा जाता हो तथा स्वय अपनी अस्तित्व का प्रसार करनेवाला हो।

स्थानकवासी समाज में सहस्रो ही नही, लाखो भक्त जन ऐसे होगे जिन्हे प्रतिदिन के नित्य-कृत्यो के बीच कविता के माध्यम से प्रस्तुत कवि का पुनीत सपर्क प्राप्त होता होगा। पंचपद-वदना लिखकर कवि ने अपना इतना सुदर परिचय दिया है कि और कोई परिचय जानने का कौतूहल शेष नही रह जाता। उनके भौतिक चरित्र का चित्र न मुझे खीचना है, न मैं खीच सकता हूँ और न मैं ऐसा करना आवश्यक ही समझता हूँ। उसके दर्शन तो अभिनन्दन-ग्रन्थ के अन्यान्य पृष्ठो पर यत्र तत्र विखरे विवरणो में स्वत सुलभ है। पर मुझे उनका आध्यात्मिक जीवन एक विचित्र सयोग से भरा-पूरा सा लगा है। जिसने उन्हे एक प्रकृति-सिद्ध कवि का रूप दे डाला है। कवि जो कुछ स्वयं होता है, वही अपनी कृति में प्रतिबिंबित हो जाता है। उर्दू साहित्य के एक तलस्पर्शी लेखक का कहना है कि "खुद मुसव्विर बोलता है बैठकर तस्वीर में,, चित्रकार स्वयं चित्र मे बैठकर बोलता है। यह सब मेरे उपर्युक्त कथन का शब्दातर या अनुवाद मात्र है। प्रस्तुत कवि के काव्य मे पद-पद पर वे अनुभूतियाँ देखने को मिलती है, जिनसे हमें यह मानने को बाध्य होना पडता है कि वे एक विरक्त सगहीन तथा सहज भाव के सत थे। जीवन की सारी शक्तियाँ मात्र स्व-पर-कल्याण में लगाना ही किसी मानव को महामानव या अतिमानव बना देता है। उनका काव्य-प्रणयन इसी दिशा में हुआ है।

कवि की कसौटी कविता है, तथा कविता की कसौटी है उसके उद्देश्य। उद्देश्य क्या हो, इस बात पर सभी विचारक एकमत हो, ऐसा नही है पाश्चात्य

लेखको या आलोचको मे से कुछ का कहना है कि Art for Art , अर्थात् कला केवल कला के लिए है, पर भारतीय साहित्यकारो ने इस विचार का स्वागत नही किया। उनके मतानुसार काव्य, कविता अथवा साहित्य के उद्देश्य आचार्य मम्मट के निम्नोक्त शब्दो में निहित है --

काव्य यशसेऽर्थकृते, व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य परनिर्वृतये, कांता-संमततयोपदेशयुजे ॥१॥

अर्थात् काव्य के उद्देश्य है, यश, अर्थलाभ, व्यवहारज्ञान, पापक्षय, स्वपर आनद तथा माधुर्यपूर्ण उपदेश। उन उद्देश्यो में अर्थलाभ तो जैन साधुओ के लिये अनुद्देश्य ही है। शेष सभी उद्देश्य प्रस्तुत कवि की लेखनी से प्रस्फुटित कविता परिपूर्ण कर रही है। यश की कहानी तो मै पहले ही कह चुका हूँ। स्व पर आनद का जहा तक संबध है, वहाँ कवि श्री जी एक प्रकार के प्रवाह मे बहने की दुर्बलता से सदा बचते रहे है। क्यो कि कविता के क्षेत्र में स्वपर आनद के नामपर कुत्सित तथा अमर्याद अश्लीलता की एक बाढसी आती रही है। जिसे देखकर दुःखितमना उर्दू के सुप्रसिद्ध शायर मौलाना हाली को कहना पडा कि "गुनाहगार वाँ छुट जायेंगे सारे जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे" अर्थात् कविता के साथ दुर्विचारो का विष भर कर जो अन्याय कवियो के हाथो हुआ है, उसे मौलाना अत्यत घृणित दृष्टि से देखते है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज सदा इस बाढ से बचकर रहे है। उन्होने जो कुछ लिखा, उसमें स्व-पर आनंद तो था ही, पर साथ २ "शिवेतर क्षतये" का भी उस मे पूरा पूरा ध्यान रखा गया है। मै तो यहा तक कह सकता हूँ कि उनका काव्य भक्ति-काव्य की सुदीर्घ परंपरा में कलश चढाने के समान रहा है। भले ही जैन कवि होने के कारण हिंदी साहित्य समीक्षको ने इस ओर ध्यान न दिया हो पर इस से उनका काव्य महत्व-हीन नही हो जाता। उनके रचना-कौशल को देखकर कोई भी सहृदय कवि उल्लसित हुए विना न रहेगा। एक दो नमूने देखिये --

यह संसार स्वपन सो है जन, जैसो है वीजलीरो झबकारो।
जीरन पत्र कान गजको फुनि, बादल छाय संध्यासे उजारो ॥
इंद्र-धनुष्य ध्वजा जिम चंचल, अंबूकी लेर प्रपोट विचारो।
कहत तिलोक यो रीत खलक की, धार सुपंथ को आतम तारो ॥१॥

वैराग्य भावना से ओत-प्रोत इस पद्य में कितनी स्वाभाविकता तथा समरसता है। इसी प्रकार एकत्व-भावना का विश्लेषण करते हुए कवि कहते है कि

एकलो ही आयो अरु एकलो ही जासी जीव,
आयो मुट्ठी बाध के पसार हाथ जायगो।
महल अटारी पट सारी तात मात नारी,
धन-धान आदि कछु साथ नही आयगो॥
स्वारथ सगाई जग अत समय कौन तेरो,
धरम आराध भाई संकट पुलायगो।
भावना एकत्व ऐसी, भाई नमिराज ऋषि,
कहत तिलोक भावे सो ही सुख पायगो॥

इस प्रकार की कविताओ से जो भाव विशुद्धि होती है, उसी से शिवेतर-क्षतये अर्थात् पापोका क्षय हो सकता है और बडे २ कवियो की कविता मे यह उद्देश्य तिरोहित सा ही दिखता है। कला की दृष्टि से भी हमारे कवि पीछे नही रहे है। अभिव्यक्ति कला के साथ साथ उनका-रचना कौशल भी द्रष्टव्य है। प्रस्तुत काव्यकी अनुप्राम छटा तो देखिये-

तीन लोक इंद्र तुम्ही अहमिद्र जगदीश,
शिव सुख कद अरविंद के समान हो।
शीतल जो चद पुण्य खंदत् सुगध श्वास,
त्रिशला के नद चंद आनंद के स्थान हो॥
छोड सब छद फद, करम निकंद किये,
वंदत नरेंद्र सुर इंद्र जग भान हो।
मै तो मतिमंद पर छंद माही बंध रह्यो।
तिलोक जो अलि मकरंद भगवान् हो॥

कवि तथा कविता दोनो की महानता इन पद्यो से स्पष्ट हो रही है। जैन शास्त्रो मे धर्म-प्रभावना के कई प्रकार है। उन में कविता भी एक है अर्थात् धार्मिक प्रेरणा देनेवाली कविता लिखकर कोई साधक, साधक होने के साथ साथ प्रभावक भी हो सकता है। जिस प्रभावना के द्वारा परोत्कर्ष की तरह आत्मोत्कर्ष भी पूर्णरूपेण सध सकताहै। इस प्रकार कविता के सर्वोच्च उद्देश्य की सिद्धि करने वाले सयमी कवि के बारे मे आज जो अभिनदन ग्रथ उपनिबद्ध किया जा रहा है, यह एक अभिनदनीय कार्य है। हम इस की हृदय से सफलता चाहते है।

जीवन के कलाकार की स्मृति में

पं श्री नगीनचंद्रजी म० श्री विनयचंद्रजी म०

सत, जीवन का सच्चा कलाकार है। जीवन और जगत् को परखने की उसके पास नई दृष्टि है। दुनिया में जो अशिव है कुरूप है, उसे मिटाकर उसमे शिवत्व स्थापित करना, संत का काम है। वह भविष्य-द्रष्टा है। मानव के अन्दर जो शिवत्व सोया पडा है, सत की अतर्दृष्टि उसे देखती है। बाहर की कुरूपता की अवहेलना कर वह उसके शिवत्व को जगाता है। इस लिए संत सच्चे अर्थो में युगद्रष्टा और युग-निर्माता होता है।

विद्वद्रत्न, कवि श्री तिलोक ऋषिजी म० भी एक प्रतिभावान् संत थे। उनमे जीवन और जगत् को परखने की क्षमता थी। एक सच्चे श्रमणोचित तप और त्याग की आप प्रतिमूर्ति थे। आज उस महापुरुष को दीक्षा लिए शताब्दी पूरी हो रही है, इस लिये उपाध्याय प० श्री आनंद ऋषिजी म० के तत्त्वधान में ऋषीश्वर का स्मृति-ग्रथ प्रकाशित हो रहा है। यह प्रयत्न सुन्दर है। किंतु कोई भी महापुरुष स्मृति-ग्रथो पर जीवित नही रहते, उनके कार्य स्वयं स्मृति-ग्रंथ है।

हम देखते हैं, ऋषीश्वर की प्रतिभा आज जीवित है। आप की काव्यशक्ति आज भी जनता के कठ में बसी हुई है और इसी लिए भावुक श्रावक–गण प्रति–क्रमण के समय पच पदो की वन्दना में ऋषीश्वर द्वारा निर्मित स्तुतिपरक काव्यो का पाठ प्रतिदिन करते है। सभी स्तुति करने वाले पाच पदो की स्तुति में भीग उठते है, यह उनकी प्रतिभा का परिचायक है।

शताब्दी गुजरी, पर जनता ऋषीश्वर को भूल न सकी। प्रतिदिन स्तुति करते समय उस महापुरुष को भी स्मृति–पथ में ले आती है।

इसके अतिरिक्त ऋषीश्वर द्वारा निर्मित चित्रकाव्य शीलरथ, ज्ञान कुजर आदि उनकी प्रतिभा का परिचय देते है। ऐसे प्रतिभाशाली महापुरुष की शताब्दी-स्मृति में मैं भी अपनी श्रद्धाजली अर्पित करताहूँ।

शास्त्रज्ञ, तिथि–निर्णायक समिति के सदस्य वयोवृद्ध पं० रत्न मुनि श्री कस्तूरचंदजी म०

पिबंति नद्य. स्वयमेव नाम्भ, स्वयं न खादति फलानि वृक्षा ।
नादंति शश्यं खलुवारिवाहा परोपकाराय सतां विभूतयः ।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज का जन्म सवत् १९०४ चैत्र कृष्ण ३ को रतलाम मे हुआ था। आपकी गुरू से ही धर्म की प्रबल भावना थी।

आपकी मातुश्री नानूबाई का लक्ष्य भी इस तरफ था। मातुश्री की दीक्षा लेने की भावना होने पर आपने तथा आपकी भगिनी हीराबाई ने एवं आपके ज्येष्ठ बंधु श्री कुवरमलजी ने भी संवत् १९१४ माघ कृष्ण प्रतिपदा के रोज प० रत्न स्वामीजी श्री अयवंताऋषिजी म० के समीप रतलाम में दीक्षा अंगीकार की, । आपश्री प्रखर बुद्धिमान् थे। अठारह वर्ष की उम्रमें आपश्री शास्त्र—पारंगत हो गये थे। आप अक्षर-चित्रकारी-कला में पूर्ण निपुण थे। ग्राम ग्राम में विहार एवं चानुर्मास करके जनता को सद्धर्म का मार्ग दिखाया और अच्छी तरह जैनधर्म का प्रचार किया। आपकी विद्वत्ता एव कवित्वशक्ति अनोखी थी। आपके बनाए हुए कितने ही ग्रन्थ समाज के लिए एक निधि के रूप में मौजूद है। प्रतिक्रमणसूत्र मे आपके छद (काव्य) नित्य चितन मनन मे आते है।

आपका संवत १९४० श्रावण कृष्ण द्वितीया के रोज अहमदनगर मे स्वर्गवास होने से समाज को बडी भारी क्षति पहुची। ऐसे आदर्श त्यागी पूज्यपाद मुनिराज की दीक्षा-शताब्दी पर मै श्रद्धाजली अर्पित करता हूँ और समस्त सघ से निवेदन करता हूँ कि पूज्यपाद महाराज के बताये हुए सच्चे रास्ते पर चलकर धर्मोद्योत करे। पूज्य श्री हुक्मचंदजी म० के तत्कालीन पट्टधर पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज ने भी अपने मुख से आपकी बहुत तारीफ की थी।

॥ ऋषिपुंगव ॥

गुरुदेवस्याज्ञया रचयिता-जैन मुनि वल्लभेंदु "प्राज्ञ-किंकर."

श्री—— ऋषिसम्प्रदायेऽस्मिन्, संजाता बहुसाधव

तेषु सुप्रसिद्धोऽभूदयवन्ताऋषिपुगव ॥

त्रि—— लोकस्तस्य चैवासीत् सुशिष्यो भव्यवल्लभः।

लो—— क चाल्पवयस्येव, त्यक्त्वाऽशुश्रमणोऽ भवत् ॥

क—— विश्रेष्ठ पुनश्चित्रे, चित्रकोत्तमलेखक।

कोविद सर्वशास्त्रेषु, त्रिलोको ऋषिवल्लभः॥

ऋषि—— सर्वगुणैर्युक्तो, नास्ति संप्रति सन्मुखे।

जी——वितस्सोऽ पि देहेन, यशसा विद्यते भुवि ॥

त्रिलोकवर्तिन ज्ञान, लभेयुरिति कामये।

एतच्छ्रद्धाजली भक्त्या, समर्पयामि नम्रत ॥

शुभ भवतु।

बिंदु में सिंधु

पं मुनि श्री हस्तिमलजी महाराज, कनकपुर

गु— ल ज्यों लुढाई गंध,
ण— यरी रतनपुरी।
सा— ता सुगमे पितु–मा,
ग— र्वं गाला ज्ञानसे।
र— जत सम उज्ज्वल,
पू— ण्य आपका असंख्य,
ज— स फैला चहूँ दिशि,
पा— ली वृत्ति ध्यानसे ॥
द— क्षिणी समाज पर,
श्री— मान्‌का उपकार,
ति— रण मात्रन खूव,
लो— लाभ जवानमे।
क— ये कहांतक "हस्ती"
ऋ— णी हे जेन समाज,
षि— ण भी न भूल सके,
जी— त होगा गानमे ॥१॥

जय तेजस्वी तिलोक

रचयिता–श्री उमेश मुनिजी म० "अणु"

महि-मण्डलमें पावन, भारत के मानस–सा मालव प्रान्त,
धर्म-धाम था रतलाम कभी, नर-पुगव क्रीडा–स्थल कान्त।
जिसकी गलियो में खेला था, किलक तिलोक चंद्र शिशु शान्त,
अयवताऋषि से सुनवाणी, वही हुये वे लघुऋषि दान्त ॥१॥

नानू मा हो शिव-अभिलाषी, साथ हुई पुत्री तज मगपन,
छोड सगाई कटि बाधी जव–'तिलोक' ने विलस उठा वचपन।
मध्यम भ्राता कुँवरमल्ल भी, आमन्त्रित–से झट करे गमन,
वेद चद्र निधि भू हायनमे, माघ कृष्णा प्रतिपद् दुखदमन ॥२॥

वालकऋषि थे आगम–धुनमे, सतरह सुत्त किये कण्ठस्थ,
अर्थ रमा रग–रगमें जिनके, सुदर भाव हुए अतस्थ।
कायोत्सर्ग स्थित हो त्रिकालमे, दो घटिका तक अंतर्लीन,
प्राप्त ज्ञानमे रमते मुनिवर, ज्यो गज कज वन मे तल्लीन" ॥३॥

उनके कवि ने ली अगडाई, शुभ मन का करने सन्धान,
अत लेखनी कर पकडाई करके उत्तम भाव–विधान।
सर्जन–लेखन–चित्रण को कर, निज साधन का सुदर दोल,
आत्म–रमण में झूला करते, होकर नव–नव हर्ष–विभोर ॥४॥

तप–सयम से भावित आतम, अभय लाघते विपिन पहाड,
विचरे विस्तृत भूपर दक्षिण, मारवाड, मालव, मेवाड ।
अमृत-सी मधु-वाणी सुनकर, नाचे जन–जनके मन-मोर,
गाव–गाव मे नगर–नगर मे, लाते थे शुभ भाव–हिलोर ॥५॥
'रेखराज, 'ज्ञानचद्र' 'मोखम' 'छगन' 'उदय' पूज्यो का प्यार,
विचरण करते दर्शन करके, पाया उनसे मोद अपार ।
पूज्य–भक्ति मे, शिष्य–प्रीति मे, परम कुशल थे दक्ष उदार,
ज्ञानी, ध्यानी, शिक्षा-दानी, मौनी का था जीवन-सार ॥६॥
गगन वेद निधि शशि संवत्मे, पाया अशुभ स्वप्न–संकेत,
"वाबोरी" से चले "नगर" को, पथ मे रमते ध्यान–निकेत ।
शिरो–वेदना प्रगटी न मिटी, हाय ! दिये चल पावन प्राण,
वृथा दीप कर अक्षर ज्योतित, करने पूर्ण अनंत प्रयाण ॥७॥
जय जय ऋषिवर ज्योति–धन ! जिन श्रुत के नव ओक !
जिनवर–पंथ–प्रशस्तकर ! कवि–कुल–तिलक तिलोक ॥८॥

श्रद्धा–सुमन–सप्तक

मुनीन्द्रमुक्ता सुशिष्य मुनि रूपचन्द्र जैन.

दोहा

सम्यक् शासक ज्ञान के, लभ्य परम प्रतिबोध ।
सुगतदेव आज्ञा व्रती, तिलोकऋषि अनिरोध ॥ १ ॥

छप्पय

श्री–श्रुतदर्शनज्ञान-भान सो पलाग्यो भारी ।
ति–लभर ना उर मान-कविकुल–भूषण जहारी ॥
लो–भित सुगत पथ-कत थे कवित कला के ।
क–र-पटु थे कमनीय-सदन थे सुमत सलाके ॥
ऋ–ण वदेसुव सुवायवा-रूप-चूप उर ठान करु ।
षि–ण खेर ना जश दियो-लियो लाभ भल ऋषिवरु ॥२॥

मनहर छंद

ईश अवराधक जू साधक सुसत्यता के,
बाधक असत्यबोध-मादक महान् के।
विद्या अनुरागी ठागी भेद-भाव त्यागी ऐसे,
विज्ञ बडभागी जो विरागी मिथ्या ज्ञान के ॥
सुधारु सुचारु गति देश प्रति गति मति,
अति दत्त-चित्त हित-चिंतक जहान के।
कविकुल-कमल-अमल ग्रंथ रचकर,
रवि रूप बन ऋषि गये सुर धाम के ॥ ३ ॥

दोहा

गच्छ स्वच्छ 'लव' ऋषिजी को, तिन में तिलक समान।
उपाध्याय आनन्द का दादागुरु दिल ठान ॥ ४ ॥

भू—आपे तिय-भाल-भल-वर शोभा को धाम।
'रूप' रटो भल भाव से, नामी जग वो नाम ॥ ५ ॥

जन्म चार-चवदे सयम, स्वर्गरोह चालीस।
तरुणपने ही तिर गये, सरव आयु छत्तीस ॥ ६ ॥

उपाध्याय आनदऋषि, ग्रथ रच्यो अभिनद।
श्रद्धा सुमन सप्तक जडू, आनी मन आनंद ॥ ७ ॥

तिलोक त्रयोदशी

ले.—पं० मुनि श्री लालचदजी महाराज

(१)

* माल वह्यो तुम धर्म को, तीन × रत्न ललाम।
बिरुद जनम- भू को वह्यो, मालव पुनि रतलाम ॥

(२)

अथवंता आगे हुआ, दोय मुनि जिन सूत्र।
पण तद्वत् गुरु आपके, हुए वीर के पुत्र ॥

---

* मालं वहति इति मालव। × सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रमय सुन्दररत्न (रतलाम)

(३)

जिन आगम को अति-जटिल *चतुरनुयोग विचार।
कर्यो सरल कविता करी, धन तिलोक अनगार ।।

(४)

श्वेत पीत दिक्पट त्रयहि, जैन तिलोक कहाय ।
ऋषि तिलोक कविता वसी, सब ही के मुख माय ।।

(५)

गुण ठाणे छट्ठे कियो, जदपि आप रहवास ।
तो भी नही आने दियो, प्रमाद ने निजपास ।।

(६)

लेखन कवन पाठन पठन, कर्यो अप्रतिम आप ।
दे प्रतिबोध साधू-सती, प्रगट तास प्रताप ।।

(७)

दीक्षा वर्ष* छवीस में, †छवीस सो शुभ काम।
साधि समय की सफलता, कियो अर्थयुत नाम ।।

(८)

भक्तो को अच्छे लगे, हर समय ही आप ।
स्वर्णिम वलय बधाइ दे, धर्मप्रेम-प्रताप ।।

(९)

उगणीसे चौके जनम, चालीसे दिविवास ।
रहे आप छत्तीस १सम, संसार से उदास ।।

(१०)

अहमदनगर श्रावण असित वार रवि तिथि वीज ।
तन औदारिक तजवरी, अमर देह की रीझ ।।

(११)

अनि मुक्तक त्रैलोक्य को, उतर्यो रतन एमेस ।
आनंद करे अहर्निश, जो तमु करे प्रशस ।।

द्रव्यानुयोग, च[illegible]ण करणानुयाग, धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग ये चारो अनुयोग,
† छवीस वर्ष दीक्षा पाली १ सम=बराबर अर्थात् ३६ के अक जैसे। सम= वर्ष ३६ जिये।

(१२)
उपाध्याय आनद की, शिरोधार्य कर आण ।
परिचय पूर्व प्रमाण वलि, दो हजार मतराण ॥
(१३)
अमरावती चौमास में, स्वामि "चाद मुपसाय ।
रची "तिलोक त्रयोदशी" श्रमण "लाल" मुखपाय ॥

श्रमण-संस्कृति का सजग नेता

पं. श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री, "साहित्य रत्न"

श्रमण-सस्कृति त्याग, वैराग्य और तपप्रधान है। जो विकारो का विनाश कर विचारों का विकास करती है, राग को नष्ट कर त्याग को बढाती है, विकृति को हटाकर संस्कृति को उद्‌बुद्ध करती है। इस सस्कृति के मूल मे भोग नही योग है, राग नही त्याग है, ममता नही समता है, वासना नही साधना है, भौतिकता नही आध्यात्मिकता है। जिन सत सत्पुरुषो ने इस महान् संस्कृति की संरक्षा की है, उनमे प्रतिभामूर्ति पडित प्रवर श्री तिलोक ऋषिजी म का नाम अत्यत निष्ठा के साथ लिया जाता है। यह एक ऐसी तेजस्वी मूर्ति थी, जिसे भुलाने पर भी भुलाया नही जा सकता।

जिनके जीवन के कण-कण में मन के अणु-अणु में ऋजुता और निष्कपटता थी। ज्ञान और कृति मे आचार और विचार में द्वैत नही था, । जो भी था, सहज था, स्पष्ट था। गीर्वाण-गिरा के यशस्वी कवि ने महात्मा का परिचय देते हुए क्या ही सुदर कहा है –

"मनस्येक वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्" पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म का जीवन एक सच्चे महात्मा का जीवन था। जहा न छल न था, न कपट था, न माया था और न किसी प्रकार का दुराव छुपाव ही था। उनमें ज्ञान था, पर ज्ञानका अहकार नही था। त्याग था, पर त्याग का दर्प नहीं था।

बाल्यावस्था मे ही जिस अंतर्मन मे त्याग और वैराग्य की एक लहर जगी और उस वैराग्य-रस से आप्लावित तन-मन को लेकर सद्‌गुरुवर्य के चरणारविंदो मे पहुंचे और आगार से अनगार बनाने की प्रार्थना की मनो-भावो के सुदर चितेरे संत ने कहा-वत्स! अनगार बनना हँसी का खेल नही है, यह असिधारा

ओर तापो का समूल नाश कर संसारी विषयासक्त जीवो के कल्याण की स्थापना मे दत्त-चित्त होते रहे है वे अपनी सत्यनिष्ठा, आदर्श-चारित्र्य, दूरदर्शिता, इन्द्रिय-निग्रहता, धार्मिकता आदि स्वर्गोपम गुणो से मडित हो जिस देश, काल और समाज में उत्पन्न होते है,उसे प्रशस्त तथा परिमार्जित कर जाते है। हमारे चरित-नायक पूज्यपाद कविकुल—भूषण श्री तिलोकऋषिजी म० सा भी ऐसे ही एक अद्वितीय पुरुप थे।

आपश्री के जीवन का सर्वोत्तम और अधिकाश मार्ग अहिसा, निर्वाण और बासना—हनन की उलझनो को सुलझाने तथा उनका दक्षिण देश में प्रचार करने मे बीता था। दक्षिण देश में सर्वप्रथम आपश्री का पदार्पण हुआ था। यहा यह कहने की आवश्यकता नही कि आपश्री जी ने जहाँ कही अपने चरण रखे है, वहाँ के प्राय सभी नर-नारियो ने आपके सदुपदेशो से लाभान्वित हो कर दु ख-दर्दों मे सदैव शान्ति का अनुभव किया है।

बस! ऐसे ही आपके अनेक गुणो से मुग्ध होकर और यह सोच कर कि ऐसे महामुनि की जीवनी यदि जनता के कर-कमलो मे पहुँचे तो धार्मिकता के साथ देश का उत्थान भी हो सकता है।

पूज्यपाद कविकुलभूपण श्री तिलोकऋषिजी म० सा का जन्म रतलाम शहर मे सं० १९०४ चैत्र वदि ३ बुधवार को हुआ था। सचमुच रत्नपुरी में आप एक अलौकिक रत्नरूप में पैदा हुए। आप ओसवालवंशीय, सुराणागोत्रीय थे। आप के पिता श्री का नाम श्री दुलीचदजी एव माता श्री का नाम श्री नानूबाई था। १० वर्ष की अल्पायु में सवत् १९१४ को आपने रत्नत्रय को ग्रहण किया। पूज्यपाद अनेक गुणालंकृत श्री अयवताऋषिजी म० सा के सुशिष्य बने।

आपश्री ने तपोबल से अल्पावस्था मे दिव्य ज्ञान उपार्जन कर लिया था। आपश्री के अन्दर बडी जबरदस्त कवित्व—शक्ति थी। आशुकवि के नाम से वे प्रसिद्ध थे। आपने अनेक सवैयो की रचना की है। समस्त स्था जैन समाज मे बिना भेद-भाव से आपके द्वारा रचित प्रतिक्रमण के सवैये बोले जाते है।

आपश्री की चित्रकला को देखकर आर्टिस्ट भी चकित हो जाते है। ये प्रसिद्ध चित्र है:—(१) शीलरथ (२) ज्ञानकुजर (३) चित्रालकार काव्य। इनमे आपने सूक्ष्म चित्रकारी का काम किया है।

आपश्री ने सतत शुभ प्रवृत्ति मे संलग्न रहकर अपना जीवन सार्थक बना लिया और ससार में सुयश की सुगन्धी फैला दी। दीक्षा—पर्याय में सयममय प्रवृत्तियो की अच्छी तरह से आराधना की। धन्य है उन के संयममय जीवन को।

स्वर्गस्थ आत्मा को शान्ति मिले यही श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।



—ज्ञान की महत्ता—

मुनि श्री कल्याणऋषिजी महाराज. पिंपलगाव (नासिक)

आहार—निद्रा—भय—मैथुन च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीना पशुभिः समानाः ॥

यह श्लोक काफी प्रसिद्ध हैं और अर्थ भी इसका इतना स्पष्ट है कि लिखने की आवश्यकता नही । इसमें बताया गया हे कि पशु और मनुष्यो मे कोई खास अन्तर नही है । क्यो कि पशु और मनुष्य दोनो की आहार, भय, मैथुन आदि सहज प्रवृत्तियाँ एक समान होती है । हाँ, मनुष्य मे पशु की अपेक्षा धर्म विशेष होता है । इसलिए शास्त्रकारो की दृष्टि से धर्म-विहीन मनुष्य पशु के ही समान है । इस श्लोक द्वारा महाकवि भर्तृहरि ने मनुष्यो को धार्मिक बनने की प्रेरणा दी है । फिर भी जैन धर्म की दृष्टि से विचार कर देखा जाय तो धर्म के साथ मनुष्य मे एक विशेषता और रहती हैं, वह है उसका विवेकयुक्त ज्ञान। यहा यह खुलासा कर देना जरूरी है कि "ज्ञान" शब्द से मेरा आशय है—विचारशक्ति अथवा तर्क ।

भगवान् महावीर ने —

नाण च दसण चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥

इस गाथा के द्वारा जो मोक्ष के चार मार्ग बताये हैं, उनसे ज्ञान को ही सब से पहले गिनाया है । जीवन मे ज्ञान का ठीक उतना ही महत्त्व है, जितना शरीर मे आँखो का । ज्ञान के साथ आचरण भी आवश्यक है । ज्ञान के बिना आचरण करनेवाला पछताता है । भगवान् महावीर ने भी साधको के लिए स्पष्ट रूप से यह घोषणा कर दी है—

"नाणेण विणा न होंति चरणगुणा ॥"

—उत्तराध्ययन २८ । ३०

ज्ञान के बिना चरित्र के गुण नही हो सकते अर्थात् आचरण का फल प्राप्त नही हो सकता ! ज्ञान के बिना होनेवाला आचरण अन्धानुकरण मात्र है । दशवैकालिक सूत्र मे कहा गया है —

जहाँ तक मै समझता हूँ, "तिलोक शताब्दी महोत्सव" के इस विराट आयोजन का एक ही लक्ष्य है—पशुओ की अपेक्षा मनुष्य मे जो विशेषता है, उसकी प्राप्ति! दूसरे शब्दो मे ज्ञान की जो महत्ता है, उसकी स्वीकृति।

– तिलोक- गुरु-गीता –

पं० मुनि श्री हरिऋषिजी महाराज

(तर्ज—मन डोले मेरा मन डोले)

सुन श्रोता गुरू गुण-गीता' तुम गावो सब नर नार रे ॥
यह धर्म की बाजे बाँसुरियाँ ॥टेर॥

दुलीचद के नन्द दुलारे, नानु माँ के प्यारे "गुरुजी
तिलोक ऋषिजी नाम तुम्हारा, पूज्य पाद हमारे" गुरुजी
गुरु ज्ञानी, आतम ध्यानी, करते पर उपकार रे ॥१॥ यह

जगत् मोहिनी कनक कामिनी, तजकर सयम धारे" गुरुजी
सिंह वृत्ति ले पच महाव्रत, निर्मल पालन हारे "गुरुजी
तीनो गुप्ति पाँचो समिति, जीवन का है सार रे ॥२॥ यह

मालव प्रात से विचरत आये, दक्षिण देश सितारे "गुरुजी
नगर पूना और घोडनदी के, तार दिये जन सारे "गुरुने
नैया प्यारी सबकी तारी, जो आया शरण मझार रे ॥३॥ यह

घोडनदी मे रतनचद ओ, रामकुँवर को तारी "गुरुने
माँ बेटी और पिता पुत्र ये, चारो दीक्षा धारी" गुरुसे
ममता त्यागी महा वैरागी, गये तीर सभी ससार रे ॥४॥ यह

चित्रालकार कला तुम्हारी, ज्ञान कुंजर भी भारी "गुरुका
कवि-कुल-भूषण शुद्धाचारी, अनत महिमा धारी "गुरुजी
पडित ज्ञानी तप जप करनी, ऋषि-कुल के है शृंगार रे ॥५॥ यह

सूर्य जैसा प्रखर तेजस्वी, शीतल जैसा चदा "गुरुजी
मिथ्या तिमिर को दूर नसाया, काटा भव-भव-फदा "गुरुने
नर-नारी समकितधारी, सब करते जय जयकार रे ॥६॥ यह

चौवनी भर जगत् में केवल, पैंसठ हाथी निकाले 'गुरुने
श्लोक सात सौ एक पत्र में उन को भी लिख डाले "गुरुने
अष्टौ वानी युगपद ज्ञानी, महाकला भंडार रे ॥७॥

भेद विज्ञान के ज्ञाता गुरुवर, देही व देह पिछाने "गुरुजी
कथनी करनी एक समानी, ज्ञानक्रिया सम ठाने गुरुजी
सम्यक् ज्ञानी सम्यक् करनी, करते है हरबार रे ॥८॥

सर्व कला में धर्म कला यह, प्रभुने श्रेष्ठ बनाई "गुरुवर
नर देह का सार समझ यह, मन वच तन अपनाई 'गुरुने
सिंह-सम गाजे पाखंड लाजे, तप त्याग लही अणगार रे ॥९॥

संवत् उन्नीसे चालीस का था, नगर चौमासा ठाया "गुरुने
पूज्यपादने धर्म-ध्यान का, खूब ही ठाठ लगाया 'गुरुने
श्रावण आया स्वर्ग सिधाया, ये भक्त गले का हार रे ॥१०॥

प्रशिष्य का मै दयालु, अल्पबुद्धि गुन गाया "गुरुका
गुरु-प्रेरना कृपा समझकर, दिल में आनन्द छाया, गुरुजी
मन हर्षाया हृदय उमाया, जाय हरिऋषि बलिहार रे ॥११॥

दीप्तिमान जैन भास्कर

शास्त्रज्ञ पं० मुनि श्री अम्बालालजी म०

विक्रमाब्द की १९ वीं शताब्दी के दीप्तिमान जैन भास्करो की जब गणना की जायगी, तब महामना श्री तिलोकऋषि जी महाराज का नाम भी सादर ग्रहण किया जायगा। इसके बिना वह गणना अधूरी ही रहेगी, यह मेरा दृढ मन्तव्य है।

शैशवावस्था में जब विश्व के शिशु अपनी वात्सल्यमयी माताओ से विविध प्रकार के खिलौने, सुस्वादिष्ट भोजन, रम्य वस्त्र और मनोरमालंकार की याचना करते हुए पाये जाते है। वहाँ शैशव काल मे ही इस वैराग्यधनी रतलाम निवासी दुलीचंद के नन्दन ने, नानूदेवी के लाडले लाला ने अपनी पूज्या जननी से संसार से उपरत होकर आत्म-साधना के पथ का पथिक बनने की अभ्यर्थना की और अन्तमें इस महापुरुष ने उस समय के उत्कृष्ट सन्त श्री अयवन्ता ऋषि जी महाराज के सान्निध्य में भागवती दीक्षा स्वीकार करके अष्टमास अन्त कृतान्तर्गत अयवन्त मुनि की दीक्षा का साक्षात् सदुदाहरण संसार के सामने प्रस्तुत कर दिखाया।

शिवमार्ग के पथिको का अनिवार्य कर्त्तव्य है "ज्ञानार्जन करते हुए निरतिचार रूप से सदाचार का सतत पालन करना" इस महामहिम मुनिपुंगव ने इन दोनो बातो का परिवहन ठीक ठीक अपने जीवन में कर दिखलाया ।

ज्ञानार्जन के रूप मे आपने अनुमानत. १० शास्त्र कण्ठस्थ किये थे । श्रोतृ-समुदाय के बीच में जब आप की मधुरलय-संसिक्त कोकिल स्वर लहरी का गुजन होता था, तब वह स्वर-लहरी केवल जनमन को आह्लादित करने तक ही सीमित नही रहती थी , किन्तु जन-समुदाय को, धार्मिक व्यवहारो को अपनाने के लिये भी अबाध्यरूप से बाध्य करने की क्षमता रखती थी ।

केवल वाणी द्वारा ही वे जन-कल्याणकर उपरत न होगये, वरन् सुदरतम शुद्ध साहित्य भी अपनी लेखनी द्वारा लिखकर उन्होने जनता को दिया है जो आज भी प्रकाशित और अप्रकाशित रूप में उपलब्ध हो रहा है । इनके द्वारा निर्मित साहित्य अधिकतर पद्यमय है । इस मौलिक साहित्य को समाज ने सद्भाव से अपनाया है ।

समाज का मन्द भाग्य कहूँ या दुर्भाग्य कहूँ, जो कि जैन समाज के उदीयमान सुनक्षत्र अधिक समय तक इस भौतिक शरीर में नही रह पाये और ३६ वर्ष की अल्पवय मे ही स्वर्ग सिधार गये ।

यदि यह आत्मोन्मुखी सन्त-सम्राट् समाज मे अधिक दिन रह पाता तो देश में शान्ति की, नैतिकता की, सत्य की और धर्म की सलिलाएँ वहा देना जिसकी कि आज पूर्ण आवश्यकता समझी जारही है ।

अन्त में मै उस परम पुनीत आत्मा का शतश अभिनन्दन करता हुआ कामना करता हूँ कि ऐसी भव्य विभूतियाँ समाज में प्रतिदिन समुत्पन्न होकर जैन धर्म की शुभ्र ज्योति को संसार में प्रसारित करती रहे ।

उज्ज्वल ज्योति

प० मुनि श्री तिलोक मुनि महाराज

जीवन-चरित्र भी साहित्य का एक साकार व जीवित रूप है । उसके अध्ययन से चरित्र-नायक के व्यक्तित्व का सुन्दर ढग से परिचय मिलता है । उनके सद्विचारो तथा निर्मल भावो का दिग्दर्शन ही उनके व्यक्तित्व का यथार्थ परिचय है । निखरी आत्मा के पवित्र गुण उनके जीवन—चरित्र से हमें ज्ञात होते है । वर्तमान व भावी जनता चरित्र-नायक के जीवन की घटनाओ तथा उनके

अनुभवो द्वारा सुगमता से लाभ उठाती है और स्वपर जीवन-की उलझी हुई समस्याओं को सुलझाने तथा अपने कर्तव्य का यथातथ्य पालन करने और विकट से विकट संकटो को हल करने के विशुद्ध उपाय सहज ही उनके जीवन मे मिल जाते है। सयमशील महापुरुषो के जीवन-चरित्र का पठन-पाठन करने से प्राणी बहुत से दुष्कर्तव्यो को त्याग सत्कर्तव्य या सन्मार्ग अपना कर अपने जीवन का कल्याण करते है।

शेर

अय फूल। दुःख तज दे, मिटने का गम न कर तू॥
कर्तव्य जो था तेरा, पूरा वह कर चला तू॥ १॥

परम श्रद्धेय, पूज्यपाद, परम प्रतापी, प्रातः स्मरणीय, स्वर्गीय श्री तिलोक-ऋषिजी म० के परम पुनीत श्रीचरण-कमलो में श्रद्धाजली के रूप में क्या २ लिखूं? यह केवल लिपि-बद्ध करने की चीज नही, अपितु हृदय में अनुभव करने की ही चीज है।

श्री चरित्र-नायक का जीवन एक महान् उज्ज्वल प्रकाशमान दिव्य प्रतीक है। पूज्यपाद म० ने स्वजीवन को ज्ञान व क्रिया के द्वारा भूमडल को देदीप्यमान करके साधुत्व का महान् आदर्श समुपस्थित किया है। अथवा यूँ भी कहना अनुचित न होगा कि वे महापुरुष उस युग में अपनी उपमा वे स्वय ही थे। जैसा कि स्वयंप्रभगणि ने आचार्य की उपमा में कहा है।

जहा ससी कोमुइ-जोग-जुत्तो, नक्खत्त तारागण-परिवुडप्पा।
खे सोहइ विमले अब्भमुक्के, एवं गणी सोहइ भिक्खु मज्झे॥

दशवै अ. ९ उ. १ का १५

यथा शरद्-पूर्णिमा की निशा में निर्मल नभ पर चाँद तथा अनेक तारागणो से परिवृत नक्षत्र महाशोभास्पद होता है, इसी प्रकार गणि भी मुनिवृन्द के मध्य में विराजमान होता हुआ महाशोभा को धारण करता है।

स्वनामधन्य! तिलोकऋषिजी म० मानो त्रिलोकविजयी ही थे। जिनके प्रौढ शास्त्रीयज्ञान, धारणाशक्ति, परम वैराग्य व त्यागमय जीवन से ज्ञात होता है कि सम्यक्त्व की ८ प्रभावना व आठो ही प्रभावक अग आपश्री में विद्यमान थे। आपश्रीजी की कविताशैली भी पूर्ण वैराग्य-रग से परिपूरित है। चतुर्विध संघ की अपूर्व सेवा कर आपश्री ने अपना जीवन आदर्श रूप बनाया। आप का महान् उपकार श्रीसघ कदापि विस्मृत नही कर सकता।

आपश्री जी के अनेकानेक अलौकिक महान् उपकारो का हृदय से आभार मानता हुआ मैं अपनी ओर से उनके पवित्र श्रीचरण-कमलो मे श्रद्धाजली समर्पित करता हूं।

कला का देवता

श्री गणेश मुनि' शास्त्री साहित्य रत्न

सन्त विश्व की एक महान् विभूति है। वे गुमराहियो के लिए प्रदर्शक है। विषमता मे समता का सुमधुर सगीत सुनानेवाले अमर गायक है। वे परमात्मा के सगुण रूप है, धर्म के सन्देश-वाहक है। और सत्य, अहिसा, दया, प्रेम तथा करुणा आदि नव्य भव्य भावनाओ के मूर्त आदर्श है, उनकी प्रतापपूर्ण प्रतिभा से सपूर्ण विश्व आलोकित है।

परम श्रद्धेय पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० अपने युग के सन्तो मे एक अनुपम तथा विशिष्ट सन्तरत्न थे। आपका ओजस्वी व्यक्तित्व जैन समाज के लिए भी गौरव का विषय था। ज्ञान और चरित्र का आपके जीवन में पूर्ण सामञ्जस्य था। कथनी और करणी में एकता थी।

श्रद्धेय श्री तिलोक ऋषिजी म० का जीवन इन दोनो तत्त्वो से अभिन्न था। उसीके फलस्वरूप आप को जैन समाज गौरवान्वित दृष्टि से देखता चला आ रहा है। आप अपने विशिष्ट चरित्र के बल से ही जन-जन के मन-मन पर अपना प्रभाव पूर्ण प्रभाव छोड गये है।

आप जैन सूत्रो के गहरे अभ्यासी तथा गूढ तत्त्वज्ञ थे। आपका प्रबल पाण्डित्य कला के क्षेत्र को पाकर निखर उठा। चित्रकला, लेखनकला, काव्य-कला आदि सभी पर आपका पूर्ण अधिकार था। आपके तेजस्वी व्यक्तित्व से उपरोक्त सभी कलाएँ चमक उठी और शनै शनै उनमे अधिक प्राञ्जलता आती गई।

चित्रकला—भारतीय ललित कलाओ मे चित्रकला अपना प्रमुखतम स्थान रखती है। श्रद्धेय ऋषिजी म० चित्रकला में अत्यंत प्रवीण तथा सिद्धहस्त थे। आपके चित्रो में अद्भुत आकर्षण है। हृदय के अमूर्तभावो को चित्र के माध्यम से मूर्त रूप प्रदान करना सक्षम कलाकार की विशेषता है। चित्र विशिष्ट व्यक्तित्व के पुनीत प्रतीक है। आपके द्वारा निर्मित चित्र आज इतिहास की एक महान सपत्ति है, जो भारतीय कला के महत्व को प्रदर्शित करते है। कलाकारने धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और आगमिक पात्रो को चित्रो में चित्रित कर अपनी मेधा का सुन्दर परिचय दिया है।

जो कार्य उपदेश के द्वारा सहज नहीं होता वह चित्र–अंकन के माध्यम से सहज हो जाता है। जनता की भावना को एक नया मोड देने में चित्रकला भी एक प्रखर वक्ता का काम करती है। इसी भव्य भावना से अभिप्रेरित होकर ऋषिजी म० ने चित्रकला को अपने जीवन में स्थान दिया।

'काव्य–कला' आप के जीवन का प्रमुख क्षेत्र था। कविता करना आपका परम रुचिकर विषय था। कविता के माध्यम से व्यक्ति और समाज का सांस्कृतिक विकास करना आपकी आस्था का मूल केन्द्र–बिन्दु रहा है। कविता–शैली में एक प्रकार निखार तथा एक विशिष्ट प्रकार की प्राञ्जलता है। कविता–शैली के वैशिष्ट्य के कारण ही आप अपना विशिष्ट प्रकार का जैन समाज में स्थान बनाने में समर्थ हो सके हैं।

अलंकारों की भरमार न होते हुए भी आपकी कविता में मधुरता, सरसता प्रासादिकता है। आज आप की कविता को जैन समाज अत्यन्त श्रद्धा के साथ तथा भाव–विभोर होकर गाता हुआ एक अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है।

इस प्रकार कवि-कुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। स्थानकवासी जैन समाज का साहित्य कोष–आपके साहित्य से भी समृद्ध है। युग-युग तक आनेवाली पीढी को आपका साहित्य आम्रेडित करता रहेगा, ऐसी मंगल कामना।



प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद का साक्षात्कार,

विदुषी महासतीजी श्री उज्ज्वलकुंवरजी महाराज अ. नगर

रशियन प्रजा को अपनी वैज्ञानिक शक्ति पर गर्व है, तो अमेरिका के लोगों को अपने वैभव पर। अंग्रेज प्रजा को अपनी जल-शक्ति पर गर्व है तो फ्रान्स अपनी विलासिता तथा चमक–दमक पर फूला नहीं समाता है। परंतु हम भारतवासियों को सब से अधिक गर्व है अपनी संतपरंपरा पर। संत भारतीय संस्कृति के प्राण व आत्मा कहे जायँ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भगवान् ऋषभदेव से लगाकर आज तक अपनी इस पवित्र भूमि में भिन्न २ जाति तथा भिन्न २ पंथों में अनेक संत पुरुष पैदा हुए हैं। इस ही संत-परंपरा में जैन समाज के एक संत–रत्न हैं-पूज्यपाद, प्रातःस्मरणीय, कविवर्य, वैराग्य-विभूति श्री तिलोक-ऋषिजी महाराज।

विश्व पर सतपुरुषो के अनंत उपकार है। संतपुरुष विश्व पर अमृत-वर्षा करने आते है। अपने सपर्क में आनेवाली प्रत्येक व्यक्ति को वे अमृत-पान करा कर के अमर बना देते है। विष को पी कर वे अमृत बाँटते है। इस प्रकार संतो का ससार पर महान् उपकार है। मनुष्य अपने तीन-चार पीढी पहले के मातृपक्ष और पितृपक्ष के दादा-दादी नाना-नानी वगैरह उपकारी पुरुषो के नाम भूल जाता है, उसमे कोई शरम की बात नही है। परन्तु तीर्थंकर, गणधर वगैरह धर्म-सस्थापक एवं प्रचारक जो कि हजारो वर्ष के पहले हो गये है, उनके नाम लोगो को याद है और यदि कोई भूल जाय तो वह उसके लिए शरम की बात है; क्यो कि वे लोकोत्तर पुरुष है और उनका विश्व के ऊपर महान् उपकार है। जिससे उनका नाम प्राय जन्मजात जैन को गर्भवास में ही श्रवण करने को मिलता है। प्रायः प्रात स्मरण में शातिनाथ प्रभु, महावीर प्रभु आदि के नाम लेकर अपने जीवन को धन्य माना जाता है। वर्तमान युग में ऐसे लोकोत्तर महापुरुष प्रात स्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज का नाम इतना सुप्रसिद्ध और सर्वमान्य है। इस बात का प्रमाण एक बात में दिया जाता है। इस समय जैन समाज में अनेकविध विवादास्पद प्रश्न है। जैसे एक प्रश्न है छह कोटी और आठ कोटी सामायिक का। दूसरा प्रश्न है-श्रमणसूत्र और श्रावकसूत्र का। तीसरा प्रश्न है-४और ४० लोगस्स के ध्यान का। चौथा प्रश्न है-संवत्सरी भाद्रपद की या श्रावण की। यह भी बडी उलझन का प्रश्न हो गया है। चतुर्थी और पचमी की संवत्सरी के सम्बन्ध से भी जैन समाज में विवाद चल रहा है। पाँचवाँ प्रश्न है-चौदस का पालन करना या पक्खी का पालन करना इत्यादि भेद-भाव की क्लेशवर्द्धक दिवाले खडी की गई है। ऐसी विवादास्पद विषम परिस्थिति के अदर भी प्राय सब प्रान्त के भिन्न २ मान्यतावाले साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका प्रातःकालीन और सायंकालीन प्रतिक्रमण के समय पूज्य-पाद-रचित पंचपरमेष्ठी की स्तुति के काव्य मधुर स्वर से गा कर के अपने मन और वाणी को पवित्र बनाते है तथा उस मधुर काव्यामृत के पान में तल्लीन हो जाते हैं।

कितने ही आधुनिक विद्वान् कविवर्य मुनिराजो ने पूज्यपाद म० के समान पंच परमेष्ठी के यशोगान के काव्य बनाये है और पूज्यपाद के काव्यो के स्थान पर अपने काव्यो का प्रचार बढा रहे है, तथापि उनको सफलता नही मिल रही है। व्याकरण, पिगल व विद्वत्ता की दृष्टि से उनके काव्य योग्य होने पर भी आतरिक हृदय की भावमय सुदरता की दृष्टि से स्था० समाज ने पूज्यपाद के

काव्यो को ही अपनाये है। प्रतिक्रमण के समय, व्याख्यान के समय इन भाववाही काव्यो को ही श्रेष्ठ माना गया है। यही पूज्यपाद की सर्वमान्यता का प्रमाण है।

श्री पूज्यपाद म० के दीक्षापर्याय के समय को एक शताब्दी जितना दीर्घ समय हो जाने पर भी उनकी काव्य-कला की कुशलता से पंचपरमेष्ठी के गुण-गान के साथ प्राय प्रत्येक संप्रदायी चारो तीर्थ प्रात.समय और संध्यासमय में उनके पवित्र नाम का स्मरण भी कर लेते हैं। उनके वे काव्य इतने भाव-पूर्ण है कि यदि उनका स्थिर चित्त से स्वाध्याय किया जाय तो वे इतने रस को पैदा करते है, कि उससे तीर्थंकरनामकगोत्र की प्राप्ति भी हो सकती है। आज वे द्रव्य शरीर से विद्यमान नही है, फिर भी अपने काव्यमय भाव शरीर से वे अजर-अमर वन गये है और आज इस शताब्दी के प्रसंग पर भी उनके काव्यमय देह के द्वारा उनका साक्षात्कार हो रहा है। मानव--समाज हमेशा उनके काव्यामृत का पान कर के अजर-अमर बने, यही मगल कामना है।

यशस्वी संयमी जीवन

विदुषी महासतीजी श्री सुमतिकुँवरजी महाराज

गगन में सूर्य चमकता है, धरातल दमक उठती है। उद्यान मे वृक्ष पर पुष्प विकसित होते है, आस-पास का वातावरण महक उठता है। मानव--समाज के विशाल प्रागण में ऐसे यशस्वी नर-रत्नो का आविर्भाव होता है, तो जाति, समाज और राष्ट्र का दारिद्रय समाप्त हो जाता है।

आर्यावर्त के इतिहास को इन्ही नर-रत्नो पर विश्वास है और इन्ही पर गर्व है। ऐसी महान् विभूतियो के द्वारा ही आर्य-संस्कृति को पोषण मिलता रहा है। उसकी सफलता के पद--चिन्ह यही सूचित करते है कि जब-जब आपत्तियो में विकट स्थितियो का निर्माण हुआ है--लोगो का मानस अशात हुआ है, ऐसे भयंकर दुःखप्रद समय में उस पर प्रभुत्व पाने का साहसी कदम उठाया हो तो इसी सयममय विचार से और साधुता के उच्चादर्श से ही।

एक ओर भौतिकता का ताण्डव--नृत्य हो रहा है, आकर्षक प्रलोभन के साधन प्रचुर मात्रा में प्रगति कर रहे है, विनाश के तूफानी प्रयोग कोलाहल पैदा कर रहे है तो दूसरी ओर भारत के प्राचीन ऋषि--मुनियो की सरल किन्तु जीवनस्पर्शी एवं हृदयस्पर्शी तथा सुबोध पवित्र व्यावहारिक वाणी अविरत रूप से प्रवाहित है। उसके पिछे क्या भावनाएँ छिपी हुई है? स्वार्थत्याग की पवित्र

दृष्टि और क्षुद्र व्यक्तिगत जीवन का उपहास, जिस के परिणाम में हमारा सामाजिक, धार्मिक, तथा राष्ट्रीय जीवन शाति का प्रतिनिधित्व कर सका है और भविष्य मे भी कर सकेगा।

अपने स्वार्थ में दूसरे का अनर्थ तथा व्यक्तिगतहित मे अन्य के हित की होली की विकारपूर्ण दुष्ट मनोवृत्ति का नाश न हो, तब तक व्यक्ति सामूहिक श्रेष्ठ आदर्श जीवन व्यतीत करने का साकार स्वप्न नही ले सकता। इसी विशुद्ध भावना से प्रेरित होकर भारत में अनेक व्यक्ति हो चुके है। जिनके मंगलमय जीवन के क्षण स्वय प्रकाशित है और दूसरो को भी प्रकाश दे सके है ऐसे प्रवृद्ध व्यक्तियो की श्रेणि में हमारे परम श्रद्धेय कविकुल–भूषण पूज्यपाद श्री तिलोक-ऋषिजी म० का भी श्रेष्ठ स्थान है। जिनके जीवन की मीमासा करते हुए गर्व होता है। वे दृढ अभ्यासी थे। समाज की स्थिति का उन्हे पूर्ण ज्ञान था। तितिक्षा और प्रेम उनके जीवन का गुरुमत्र था। प्रतिभासपन्न काव्यो मे उनकी पवित्र साधुवृत्ति का तेज आज भी स्पष्ट निखर रहा है। किंतु खेद है कि वह अपार काव्यराशि जनता के सामने संपूर्णरूप से प्रकाशित होकर नही आ सकी है। पूज्यपाद महाराजश्री के इस शताब्दी–महोत्सव के पवित्र प्रसग पर उनका अप्रकाशित साहित्य जन-कल्याण की उच्च भावना से प्रकाशित होकर सामने आवे और, उसको हम अपनाएँ तथा उसका सन्मान करे, यही उस आदर्श विभूति को हमारी अत करण पूर्वक श्रद्धाजली होगी।

दुनिया में अनेक प्राणी जन्म लेते है और अत में कुछ दिन जीवन–यापन कर इस लोक से प्रस्थान कर लेते है, किंतु उन्ही का जीवन श्रेष्ठ होता है, जो दूसरो को जीने की कला सिखा सके है। अभिनंदन भी उनका ही किया जा सकता है, जिन्होने जन-जन के जीवन में आदर्श और आदरणीय स्थान प्राप्त किया है, ऐसे महापुरुपो में हमारे चरित-नायक पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म का स्थान आता है, अतएव उनके चरणो में अपनी श्रद्धाजली समर्पित कर धन्यता का अनुभव करती हूँ। कवि की भाषा मे यह विश्व––

यह संसार महासागर है, हम मानव है तिनके।
इधर-उधर से बहकर आये, कौन यहाँ पर किन के? ॥१॥

उस वंदनीय पुनीत चरणो में समर्पित की हुई श्रद्धाजली स्वय धन्यता का अनुभव करती है और भारतमाता ऐसे आदर्श पुत्रो को प्राप्त कर गौरवान्वित होती है। ऐसे महान् पुरुषो ने ही उसे यशस्वी बनाया है।,



एक महान् विभूति.
विदुषी महासतीजी श्री शीलकुँवरजी महाराज
चातुर्मास स्थल—नाथद्वारा

भारतीय संस्कृति में संत-जीवन एक महान् आदर्श के रूप मे माना जाता है। सयम और संस्कृति की धाराओ में प्रवहमान संत-जीवन व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिये वरदान-रूप सिद्ध होता है। आर्य-भूमि भारतवर्ष का इतिहास ऋषि-मुनियो की जीवन-गाथाओ से भरा पडा है। अनेक संत महापुरुषों ने इसी भूमिपर जन्म लेकर अपने जीवन के साधना के पथ पर अग्रसर किया, वहाँ समाज और धर्म को भी अपनी चेतना, आध्यात्मिक प्रतिभा एवं अलौकिक ज्ञान का उन्होने प्रकाश दिया है।

स्थानकवासी समाज का इतिहास ऐसे ही एक दो नही, सैकडो संतो के स्तुत्य जीवन और उनके ज्ञान की अलौकिक प्रभा से भरा पडा है। उन्ही महापुरुषो में से जिन्हे हुए एक शताब्दी पूर्ण हो गई है, वे है "पूज्यपाद कविकुल-भूषण परम श्रद्धेय आदरणीय श्री तिलोकऋषिजी महाराज"

संत स्वय अपने लिये ही नही जीते, किंतु जब तक जीते हैं, तब तक अपने अलौकिक ज्ञान के प्रकाश से भव्यात्माओ के अज्ञान-तिमिरको नष्ट करते हैं और जब इस नश्वर देह को छोड देते है, तब उनके ज्ञान की अमूल्य निधि ही मानव को आध्यात्मिक वृत्तिओ की ओर प्रेरित करती है।

परम श्रद्धेय श्री तिलोकऋषिजी म० ने दश वर्ष की अल्प वय में दीक्षित बनकर थोडे ही काल में जो अध्ययन किया, वह उनकी अद्भुत प्रतिभा का स्पष्ट प्रमाण है। अल्प समय में ही विशाल ज्ञान—राशि का सचय कर उन्होने जैन साहित्य की जो सेवा की है, वह प्रशसनीय है। सिर्फ २६ वर्ष के दीक्षा-काल में आपने जो पद्य-रचनाएँ की है, उनका भाव, भाषा, शैली और वर्णन की दृष्टि से तो महत्त्व है ही, किंतु जो गूढ भाव उन में भरे है और जीवन के आध्यात्मिक उत्थान के निमित्त सरल एव सुबोध भाषा में काव्य रचना कर जो भव्य जीवो को आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित किया है, यह उस महान् कवि की महानता का स्पष्ट परिचायक है।

कवि मुनिश्रीजी ने संसार के प्रचलित त्योहार, रीति-रिवाज, शब्दावली आदि हर विषय पर अध्यात्म-विवेचन कर लोगो को ससार की असारता का उपदेश दिया है। उनके एक एक काव्य पर जितना लिखा जाय कम है। क्या ही अच्छा होता? अगर कविकुल-चूडामणि, समाज-भूषण, परम श्रद्धेय, आध्यात्मिक

जगत् के महान् तत्वज्ञ अपनी वृद्धावस्था के दिनो तक जीवित रहकर समाज और धर्म को अपने ज्ञान का प्रकाश प्रदान करते, तो साहित्य के क्षेत्र में एक बहुत बडा सर्जन का कार्य होता। फिर भी छोटी उम्र मे उन्होने जो साहित्य-सर्जन किया, वह कम नही है। आवश्यकता है उसके अन्वेषण, चितन, मनन, और निदिध्यासन की। आज वे हमारे चर्म-चक्षुओ के समक्ष नही है, किंतु उनके तप और त्याग का उज्ज्वल प्रकाश शताब्दी-काल बीत जानेपर भी उनकी अलौकिक ज्ञान-प्रतिभा का प्रकाश उनकी साहित्य-सेवा से प्राप्त हो रहा है। उनकी स्मृति युग २ तक सयमी जीवन के लिये मगलमय प्रेरणा देती रहेगी।

उस महान् आत्मा की शताब्दी के इस सुअवसर पर हम भावपूर्ण श्रद्धा व्यक्त किये बिना नही रह सकते। लेकिन सच्ची श्रद्धा के पुष्प तो हम उनके गुणो को अपने मे धारण करके ही चढा सकते है। मेरी इस अवसर पर यही कामना है कि उस महापुरुष के उपदेशो को हम अपने में प्रत्यक्ष देखें। इसी भावना से मै श्रद्धा के मधुर क्षणो में उस विराट् आत्मा के प्रति अपनी भावपूर्ण श्रद्धाजली अर्पित करती हूँ।

महासती श्री इन्द्रकुँवर जी म०

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने॥

यह उक्ति उन दुर्लभ वस्तुओ के लिये है, जिनका मूल्य समाज और संसार में सर्वाधिक है।

अहिसा, संयम और तप से अभिभूत व्यक्ति मानवता का देवता होता है। वह साधक अथवा साधु कहलाता है। उसके जीवन का प्रत्येक पहलू सत्य के संशोधन के लिये होता है।

हमारे चरित–नायक पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० सा का जीवन अहिसा, सयम ओर तप का प्रतीक है। **त्रिलोक**—तीन लोक की आसक्ति से विजय पाने की कामनावाले यथा नाम तथा गुण सपन्न—

उनके जीवन के बारे में लिखते समय संत तुलसीदासजी का वह पद्य सहज ही स्मरण हो जाता है कि—

साधु चरित शुभ सरिस कपासू॥

पूज्यपादश्री जी का जीवन अत्यत पवित्र था। उनका व्यवहार स्नेहल एवं हृदय शुद्ध था। उनके जीवन की सफलता का रहस्य था—उनका उदात्त और निश्छल व्यक्तित्व।

वीसवी सदी के प्रारभ मे इस संसार मे आए ९ वर्ष ही हुए थे कि उन्हे अद्भुत वैराग्य की अनुभूति हुई। परिवर्तनशील संसार के उद्यान मे एक सुवासित गुलाव का फूल वनकर उन्होने वातावरण को सौरभान्वित किया।

माताजी के धार्मिक एव आध्यात्मिक संस्कारो के अभिरस का सिंचन उन्हे वाल्यावस्था मे ही मिलता रहा। पति–वियोग होने पर भी वह धार्मिक सम्कार के कारण अपने चार सताना की प्रति-पालना करती हुई ससार की क्षणिकता का–असारता का ज्ञान अपने आत्मजो को दिया करती थी।

अयवता मुनिश्री के सदुपदेश से पति–वियोग से आर्तरौद्र ध्यान न करते हुए वह ज्ञानार्जन में तत्पर रहती थी।

माताजी के इस त्याग का प्रभाव पूज्य श्री जी के हृदय में घर कर गया। उनके धार्मिक सस्कार जागृत हो उठे, जिससे छोटी-सी उम्र मे वे गृहत्याग के लिये विवश हुए। घरवालो द्वारा घर मे रखने की जितनी कोशिशें की जा सकती थी, उतनी कोशिशे की गई, ससार के प्रलोभन दिखाये गए, विवाह का आकर्षण वताया गया, संसार की विशेषताएँ भी समझाई, पर ऋषिजी म० सा० पर कुछ भी असर नही हुआ।

उन्होने अपनी धार्मिक प्रवृत्तियो से घर–भर मे वैराग्य का निर्झर वहा दिया। इससे उनकी माता–वहन–भाई ससार की नश्वरता समझकर एक दिन दीक्षित होने के लिये निकल पडे।

१० वर्ष की छोटी-सी उम्रमें उन्होने सयम के मार्ग पर कदम रखा। उनकी अलौकिक प्रतिभा का यह एक जीवन्त प्रमाण है। उनकी हार्दिक वैराग्य–भावना का यह एक अद्भुत उदाहरण है।

उनका जन्म सवत् १९०४ चैत्र वदि तृतीया रविवार के दिन हुआ और संवत् १९१४ में वे दीक्षित हो गये।

दीक्षितो पर सत्य की साधना के लिये विवेक के पथ को आलोकित रखने का गुरुतर उत्तरदायित्व रहता है। श्री ऋषिजी म ने अपनी वाल्यावस्था मे ही इस उत्तरदायित्व को निभाने की क्षमता अर्जित कर ली थी। उनके रोम–रोम में वैराग्य का रंग इस प्रकार ढल गया था, कि जिसका उल्लेख शव्दो में नही किया जा सकता, परंतु वैराग्य-रस से परिपूर्ण उनकी कविताओ का अध्ययन करने से ही उनका अनुभव किया जा सकता है। **"वैराग्य समस्त श्रेय का मूल है"** वह ज्ञान और क्रिया से अभिषिक्त होता है। जिसने वैराग्य का सवल पा लिया उसके लिये सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश है।

पूज्यपाद श्री एक महान् संत थे । सत-पुरुप अपने जीवन को पारिवारिक दायरे से निकालकर विश्व के व्यापक एव असीम क्षेत्र में ले आते है । सारे विश्व को ही अपना परिवार बना लेते है ।

पूज्यपादश्री सब से पहले जैन मुनि है, जिन्होने अपने जीवन में गुरुसेवा, आत्मसेवा,समाजसेवा को अपने जीवन का ध्येय समझकर मार्ग के कष्ट—उपसर्ग के पहाडो का उल्लघन करके मालवा से महाराष्ट्र में सर्वप्रथम प्रवेश किया। और जनता को महावीर का सदेश सुनाया । आपश्री के प्रयत्न से महाराष्ट्र की जनता मे धर्म—चेतना का सचार हुआ । जैसे—हिमालय के ऊँचे शिखरो से पडता हुआ गगा का प्रवाह शुष्क मैदान में पहुँचकर वहाँ की भूमि को शस्य—श्यामला बनाता है और तमाम प्राणियो को जीवन—दान देता है । उसी प्रकार आपके पदार्पण से युग से सोये पडे लोग जाग उठे और अपने जीवन को धर्ममय बनाने का प्रयत्न करने लगे । आपने अनवरत प्रयत्न करके जनता को साधना का मार्ग दिखाया । अनेको व्यक्तियो के जीवन को बदलने का, ऊन्हे ऊपर उठाने का श्रेय आपको है ।

आपने विद्यार्थी जीवन में १७ शास्त्र कठस्थ कर के जीवन त्यागमय बना कर जन-जन में त्याग-मार्ग का बीजारोपण किया ।

एक बार वे महा-महिम पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० ग्रामानुग्राम विहार करते हुये "कुडगाव" नाम के छोटे से ग्राम मे पधारे। सर्वप्रथम उस महा-मुनि को देखकर ग्रामनिवासियो को एकबार तो कुतूहल-सा हुआ । परंतु ग्रामीण जनता ज्यो ज्यो उस महापुरुष के सत्संग का लाभ लेने लगी, त्यो त्यो उसका आकर्षण बढने लगा । सिर्फ राजस्थानी कुटुब ही नही बल्कि सारा गाँव का गाँव पूज्यश्री का भक्त हो गया ।

पूज्यश्री के उपदेश का एव त्याग का प्रभाव वहाँ के बुधमलजी एव उनके परिवार के ऊपर अधिक रूप से हुआ । "सत्संगतिः कथय कि न करोति पुंसाम्' सत्संगति और सत्साहित्य ही मनुष्य को ऊंचा मार्गदर्शन करा सकता है । इससे ही मनुष्य महान् बन सकता है । उन महापुरुषो के उपदेश एवं सत्सगति से उनके सारे के सारे परिवार ने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया ।

हम देख चुके है कि-पूज्य श्री तिलोकऋषिजी म० ने सत-जीवन की उज्ज्वल ज्योति प्रज्वलित की थी, एक सत की तरह उन्होने अपना जीवन समाज के जीवन को बदलने, उन्नत बनाने एव संस्कारी बनाने मे लगा दिया । आपने भूले—भटके मानवो को रास्ता दिखाने में कभी प्रमाद नही किया । आपश्री के सत्प्रयत्नो का

ही सफल है। महाराष्ट्र में लोगो का जीवन धर्म से संस्कारित है। लोगो का जैन धर्म के प्रति आदर एव सम्मान है, जैनेतर समाज भी जैन धर्म से काफी प्रभावित है। वह जैन सतो के परिचय मे आता रहता है और उनके उपदेशो का लाभ भी उठाता रहता है। जैन मुनि भी अब इस प्रात में विचरने लगे है। लोगो को उनका संपर्क होता रहता है। महाराष्ट्र में जैन संतो के आगमन का रास्ता खोलने एव सुगम बनाने का श्रेय आपको दूं तो अनुचित नही होगा।

हाँ, तो इस महामहिम सत पुरुष ने अपनी साधना की ज्योति से जैन जीवन को सही मार्ग दिखलाया है और आज भी उनकी साधना हमारे लिये प्रकाश-स्तभ है। जिसकी रोशनी में हम भली भाँति अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच सकते है।

इस महापुरुष की साधना–दीक्षा को सौ वर्ष अर्थात् एक शताब्दी पूरी हो चुकी है और आज शताब्दी-दिवस पर उनके त्याग, तप एव आदर्श जीवन का स्मरण करती हुई इस महापुरुष-सत पुरुष के चरणो मे अपनी श्रद्धाजली अर्पण करती हूँ।

विदुषी महासतीजी श्री अमृत कुंवरजी महाराज

सत भारतीय उद्यान के विकसित पुष्प है, जो ससाररूपी उपवन में अपनी सद्वृत्ति-सत्साहित्य-सद्वाणीरूप पराग से अनेक भव्य प्राणीरूप भ्रमरो को अपनी ओर आकर्षित करते है और अपना तन-मन-ज्ञानधन को जगज्जीवों के लिए वितरण कर अनंत उपकार करते है। उनमें से आज अनेक संत इस ससार में नही हैं, किन्तु उनकी यशरूपी सुरभि आज भी विद्यमान है।

खेद की बात है कि इस उपवन का पुष्प खिला ही था और अपनी कोमल पाखुडियो तथा सुमधुर पराग से भ्रमरो को अपनी ओर आकर्षित कर ही रहा था, कि वह कोमल पुष्प सूर्य के प्रचंड ताप से अल्प समय में ही मुरझा गया। लेकिन उसने विकासोन्मुख अपनी जीवन-सुरभि से दिगदिगत को सुरभित किया और वह भी अल्प काल के लिए नही, अपितु कल्पान्त काल तक। यही अपूर्व अद्वितीय पुष्प हमारे चरित्र-नायक, कवि-कुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज है। इन्होने अपने साहित्य-सौरभ को प्राणी-मात्र के लिए वितरण कर थोडे ही समय में स्वर्ग लोक की यात्रा की।

पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० एक प्रतिभा-सपन्न संत थे। इन्होने खेल कूद के समय से ही सयम-मार्ग की ओर प्रयाण किया और थोडे ही समय में अनेक शास्त्रो में पारंगत बन अपनी भावो से परिपूर्ण सुधामय वाणी मे जगत् के जीवो को साधना-मार्ग की ओर प्रेरित किया। आपकी कवित्व–शक्ति कितनी अपूर्व थी,

यह आपके काव्य को पढने से ही अनुमान लग जाता है कि आपका ज्ञान केवल ऊपरी बातो तक ही सीमित नही था, अपितु आपने ज्ञान-सागर में पूर्णरूप मे डुबकी लगाकर अंदर में रहे हुए रत्नो को प्राप्त किया और उसी रत्न को काव्य-चित्र-कला में जड देने से उनकी सुन्दर-छटा अधिक बढ गई। आप के काव्य आगमानुसार-वैराग्य-रस से ओत-प्रोत है। भाषा इतनी सरल, मधुर और गभीर भावो से भरी हुई है कि जिस की रचना-शैली देखकर जिज्ञासु विद्वद्वर्ग दातो-तले अंगुली दबाते है। काव्यो को पढते हुए पाठक तथा श्रोता दोनो उसमें तन्मय हो जाते हैं।

पूज्यपाद महाराज श्री द्वारा रचित अगाध काव्य साहित्य हमारे जीवन को नूतन ज्योति प्रदान करता है और हमारे मन और आत्म बल को वैराग्यमय रसायन से दृढ और बलिष्ठ करता है। आपके गुणो का या अद्भुत कलाओ का वर्णन करना मेरी बुद्धि या शक्ति से बाहर है। इस महाराष्ट्र प्रात में भी धार्मिक प्रचार की दृष्टि से आपका ही प्रथम उपकार है। जिस तरह समुद्र में रहे हुए रत्नो की कीमत बढ जाती है, उसी तरह पूज्यपाद महाराज श्री का दक्षिण देश में पदार्पण होने से उनकी प्रतिष्ठा और प्रतिभा और भी अधिक हो गई और पूज्य गुरुदेव श्री उपाध्याय श्री आनंदऋषिजी महा० जैसे जौहरी मिल जाने पर तो उनकी अमूल्यता की बात ही क्या पूछी जाय? ऐसे अनन्त उपकारी कविकुल-भूषण पूज्यपाद महाराज श्री के पद-पकजो में मेरी श्रद्धाजली सर्मपित करती हूँ।



साहित्य और आदित्य

स्थविरा विदुषी महासती श्री हेमकुँवरजी म०

दुनिया में साहित्य का महत्त्व अधिक है या आदित्य का?

इस प्रश्न का उत्तर देने से पहिले मै इन दोनो शब्दों का अर्थ स्पष्ट कर देना उचित समझती हूँ।

"साहित्य" शब्द का अर्थ है – किसी विशेष कवि या लेखक से सम्बन्ध रखनेवाले सभी ग्रथो और लेखो आदि का समह। जैसे सूर-साहित्य' तुलसी-साहित्य आदि।

'आदित्य' शब्द के भी कोष में देवता 'इंद्र', वामन आदि ग्यारह अर्थ मिलते है, परन्तु मुझे सिर्फ एक ही अर्थ अभीष्ट है, वह अर्थ है-सूर्य।

इन में 'साहित्य' बना है 'सहित' शब्द से, जिस का अर्थ है हित-युक्त, हितकारी, भलाई करने वाला। जिन लेखो या कविताओ से दुनिया की भलाई

हो-कल्याण का मार्ग दिखाई देता हो, सब पाठकों मे सब लोगो का भला करने की भावना जागृत होती हो, वही पूरे अर्थो में 'साहित्य' है। इसी प्रकार यहाँ आदित्य का सीधा अर्थ 'सूर्य' ही समझना चाहिये। अन्य अर्थ नही।

आदित्य का प्रकाश स्थूल अन्धकार को नष्ट करता है तो साहित्य का प्रकाश सूक्ष्म अन्धकार (अज्ञान) को। आदित्य मर्यादित समय तक प्रकाश फैलाता है तो साहित्य निरन्तर। आदित्य का प्रभाव तन पर होता है तो साहित्य का मन पर। साहित्यका प्रकाश सुमधुर होता है, इसलिये सभी साक्षर उसका अवलोकन कर सकते है, लेकिन आदित्य का प्रकाश प्रचण्ड होता है, असह्य होता है, उसका अवलोकन सबके लिये असम्भव-सा है, फिर भले ही कोई साक्षर हो या निरक्षर।

आदित्य सुशोभित होता है ऊपर के आकाश मे और साहित्य सुशोभित होता है-शहरो के ग्रथालयो मे या पाठको के हाथो मे।

आदित्य सरोवर के कमलो को विकसित करता है और साहित्य मानव-समाज के हृदयो को। आदित्य अपने प्रकाश के द्वारा चोर डाकू आदि अन्यायियो को रोकता है दुष्प्रवृत्ति से, साहित्य भी अपने प्रभाव के द्वारा ऐसा ही करता है, फिर भी दोनो में अतर यह है कि आदित्य का कार्य अस्थायी है और साहित्य का स्थायी।

आदित्य का जन्म होता है-पूर्व दिशा में, किन्तु साहित्य का जन्म होता है--साहित्यकार की अपूर्व दशा (उत्कृष्ट भावना) मे।

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि आदित्य की अपेक्षा साहित्य कितना श्रेष्ठ है।

साहित्यकार अपने साहित्य के बल पर अमर हो जाता है। अमर होने के दो ही उपाय किसी पाश्चात्य विचारक ने बताये है। लिखा है.– यदि तुम चाहते हो कि मरते ही भुला न दिये जाओ तो पढने लायक लिखो या लिखने लायक करो।"

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय श्री तिलोकऋषिजी महाराज दोनो उपायो के अवलम्बन से यशस्वी बने है। उन्होने जो कुछ लिखा है, वह पढने लायक है-आश्चर्यजनक प्रतिभा और कलात्मक लेखन-शैली का परिचायक है। "श्री सत्यबोध" नामक ग्रथ के पृष्ठ १४ पर छपा है, कि आप दोनो हाथो तथा दोनो पैरो से लिख सकते थे। आपकी कुल रचनाओ की गाथा-संख्या ७५ हजार के लगभग बताई जाती है। आपने २५ वर्ष ६ महीने और १ दिन संयमी-जीवन बिताया

था, किन्तु इसमें संयमी-जीवन का अधिकाश समय साहित्य की रचना में लगा दिया था।

इसके अतिरिक्त आपका जीवन भी संयत, पवित्र और आदर्श था। ज्ञान का प्रचार करने के लिये आप भारत के कई प्रान्तो में विचरे (घूमे) थे। आप बालब्रह्मचारी थे। आपका उपदेश बडा ही प्रभावशाली होता था। आपकी वाणी बहुत कोमल थी और स्वभाव काफी सरल।

आपके गुणो का विस्तार से परिचय देना तो केवल समर्थ विद्वान् और पूज्यपाद की जीवन-घटना जाननेवालो का ही काम है। मै अल्पज्ञा उनके विषय मे भला क्या लिख सकती हूँ?

शास्त्र-विशारद सुकवि प मुनि श्री अमीऋषिजी म सा का बनाया हुआ एक छन्द लिखकर मैं अपनी लेखनी को विश्रान्ति दूँगी :—

दया के निधान, भव्य जीवन के प्राण औ,
सुजान, ज्ञान-ध्यान में निमग्न, गुणधामी थे।
बालब्रह्मचारी महादुष्कर आचारी-सार,
काव्य-कलाधारी हितकारी, विसरामी थे।
सुधा-सम वाणी मृदु, सबन के साता-दानी,
देय उपदेश जीव तारबे के कामी थे।
"अमृत" रटत, नाम लेत ही कटत पाप,
ऐसे ही प्रतापी श्री तिलोक रिख स्वामी थे॥

कहने का साराश यह है कि दुनिया में आदित्य की अपेक्षा साहित्य का महत्त्व विशेष अधिक है। किन्तु साहित्य से भी साहित्य-निर्माता का महत्त्व विशेष अधिक है। "तिलोक दीक्षा-शताब्दी-महोत्सव" के रूप में एक ऐसे ही साहित्य-निर्माता का अभिनन्दन किया जा रहा है, जिनका शुभ नाम था प्रातस्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज। अपने शिष्या-परिवार के साथ मै भी उन्हे हार्दिक श्रद्धाजली समर्पित करती हूँ।



ऋषि तिलोक

पं० मुनि श्री फूलचंदजी 'श्रमण' (पंजाबी)

तिलोक ऋषि शब्द की व्याख्या

पंजाब संप्रदाय और ऋषि संप्रदाय इन दोनो का मूलस्रोत एक होने से आज तिलोक शताब्दी-अभिनंदन ग्रंथ के लिए अपनी यह श्रद्धांजली भेजकर प्रसन्नता का अनुभव करता हूं। इस अवसर पर मैं उन स्वर्गीय तिलोकऋषिजी महाराज के नाम की व्युत्पत्ति की सार्थकता के रूप में अपने निम्नांकित विचार प्रकट करता हूं।

ऋ गतौ धातु से ऋषि शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है सतत शुभाध्यवसायों में प्रवृत्ति करना, आयुका कोई भी क्षण निष्फल या अशुभ में न प्रवर्ताना ही ऋषि शब्द का विशेष अर्थ है।

दूसरा अर्थ ज्ञानपरक होता है। जैसे कि ज्ञानाराधना में निरंतर अभ्यास करना, वाचना, पृच्छना, पठित विषय का पुनः २ आवृत्ति करना, धर्मकथा करना, अनुप्रेक्षा करना, जिसे वेदांत-भाषा में निदिध्यासन कहते है। पाँच प्रकार की स्वाध्याय चरमान्त श्वास तक करना, सदैव ज्ञान के प्रकाश में रहना इस प्रकार की प्रवृत्ति करनेवाले साधु को ऋषि कहते हैं।

ऋषि का तीसरा अर्थ प्रकाश होता है-जैसे हमारे नेत्र बाह्य प्रकाश की अपेक्षा रखते हैं वैसे ही सम्यक्त्व के प्रकाश में रहकर ही सच्चारित्र की आराधना हो सकती है। सम्यक्त्व आत्मा मे प्रकाश देता है, ज्ञान आत्मा में गुण अवगुण बताता है। अवगुणो को दूर हटाने के लिए जो क्रिया की जाती है वह ही सच्चारित्र है। क्षायिक सम्यक्त्व ही सदैव आत्मा में प्रकाश करता है। उस प्रकाश में रहने वाले मुमुक्षु को ऋषि कहते है। ये तीनो अर्थ जिस मे घटित हो उसे ऋषि कहते है। जब हम ऋषि शब्द को तिलोक शब्दके साथ जोडते हैं तब उसका अर्थ और भी विलक्षण हो जाता है जैसे कि--

१ अधोलोक ऊर्ध्वलोक एव मध्यलोक जो तीनो लोक में अनासक्त है।

२ जो लोकैषणा पुत्रैषणा, और वित्तैषणा इन तीनो का त्यागी है।

३ जो ज़र-जोरू-ज़मीन इन तीनो का त्यागी है।

४ जो मन-वचन और काय गुप्ति से गुप्त है।

५ जो भक्तियोग कर्मयोग ओर ज्ञानयोग इन तीनो योगो का आराधक है।

जो दम, दया दान, इन तीनो में प्रवृत्ति करनेवाला है।

७ जो अहिंसा अनेकान्तवाद और अपरिग्रह इन तीनो का उपासक है।

८ जो निष्कामत्व निर्लोभत्व निर्वैरत्व का आराधक है।

९ जो हेय से निवृत्ति ज्ञेय में वृत्ति, उपादेय में प्रवृत्ति करने वाला है।

१० जो उत्पाद व्यय और ध्रौव्य से ओतप्रोत की मान्यता रखता है।

११ जो आधि व्याधि उपाधि से सर्वथा मुक्त होने के लिये साधना करता है।

१२ जो आधिभौतिक आधिदैविक आध्यात्मिक कष्टो में समता रखता है।

१३ जो ज्ञानपूर्वक इच्छा को क्रियान्वित करता है।

१४ जो साधक, साध्य, साधन ओर साधना विशुद्ध त्रिपुटी का आचरण करता है।

१५ जो तीन कदमो में ही कल्याण करता है जैसे कि पहला कदम धर्म श्रवण दूसरा कदम सम्यकत्व लाभ और तीसरा कदम चारित्र पालन।

१६ जो मनुष्य देवता तिर्यच तीनो का पूज्य है उसे तिलोकऋषि कहते हैं।

इस प्रकार आपके नाम ने ऋषि शब्द के और भी चार चाँद लगा दिये आपने संयम तप की साधना के साथ २ ज्ञानसाधना भी बहुत विलक्षण की है। कवित्व-शक्ति के प्रभाव से सत्यबोध, समरादित्य केवली कथा, श्रेणिक चरित्र इत्यादि लगभग छोटे-बडे १७ से भी अधिक ग्रन्थो के आप रचयिता हुए हैं। आप की कविता सरस, मधुर और अलंकार—पूर्ण होती है। पढने ओर सुननेवालो के अन्त करण मेंआनन्द के साथ २ श्रद्धा और वैराग्य शान्तरस की वृद्धि होती है।

आपने आगमो का अध्ययन मनन चिन्तन निदिध्यासन पूर्वक किया है थोडे काल में इतनी उच्च कोटि की विद्वत्ता यह सिद्ध करती है कि सरस्वती की ओर से आपको सहर्ष वरदान प्राप्त था। आपके बनाए हुए ये ग्रन्थ सदियो तक प्रकाशस्तम्भ बनकर जनता को सन्मार्ग प्रदर्शित करते रहेगे।

जब तक रवि शशि तारे, तब तक गीत तुम्हारे, विश्व रहेगा गाता।

श्री तिलोक-द्वात्रिंशिका

साहित्याचार्य प० श्री माधवानन्दजी शास्त्री

श्री—शोभा वा रमा सा श्रुतवनधिभवा तद्द्वया मेदुरागो ।
याभ्या येनातिरम्य जगदिदमखिल शोभित वोधितञ्च ॥
एका मा यस्य पार्श्वे भवति च चपला पूज्यते कैर्न मोऽत्र ।
ज्ञानश्री भूरिभूतिर्जयतु च भुवने त्रि पुराल्लोककर्षि: ॥ १ ॥

क—ब्रह्मा ब्रह्मरूपो निजपर—समयज्ञानवोधात्मनिष्ठ ।
ससारासारदर्शी पर-हित—निरतो ब्रह्मतेजोऽभिराम: ।
अज्ञानध्वान्तहेलि श्रुतमरससुधापानपुष्टाङ्गयष्टि-
र्जीयात्श्रीसौम्यदृष्टि प्रवरगुरुवरस्त्रि पुराल्लोककर्षि ॥ २ ॥

वि—श्वस्मिन् यस्य विश्वे प्रविलसति यश पूर्णचन्द्राभमच्छम् ।
यातेऽपि स्वर्गधाम्नि प्रतिजनहृदये राजमानोऽधुनाऽपि ॥
चन्द्र क्षीण. कलकी जगति गुरुरसौ सर्वदा भासमान—,
स्तस्मात्तं लोकसिद्धं गुरुवरमहक सादरं साधु वन्दे ॥ ३ ॥

कु—क्षोणि क्षोणिजातैरखिलजनचयै स्तूयमानोऽथ वन्द्य ।
सदग्रन्थाभ्यासचेता यमनियमरतो लेखनाध्वप्रवीण ।
दक्षो वोधेऽखिलाना प्रशमरसतया भावयन्नेकवृत्तिम्,
पश्यन् सर्वं निजाभंजयतु गतमल सद्गुरु श्रेयमेऽत्र ॥ ४ ॥

लग्नो यो नित्यमार्य श्रुतरसविषये येन निर्वाणलब्धि-
स्तत्प्राप्तौ यत्नशाली सुविजितखगणो यो महारातिवर्ग ।
तत्सत्ता यावदास्ते कुत इह विजयी जायते ना हि-कोऽत्र ,
जित्वा तान् यो मुनीशो जगति सुविदितश्चर्षिसंज्ञा सुलेभे ॥ ५ ॥

भू सत्तावाचको यो विलसति वरणी सर्वसत्त्वावधर्त्री ,
सत्त्वाना पालको यस्तदवनविषये वोधयन् प्राणिवृन्दम् ।
संसारेऽस्मिन् विशाले पदविहृतितया चक्रमाणो महात्मा ।
सत्ताधारी व्यगाजत् त्रिककरणतया तम्भजे नित्यमन्त ॥ ६ ॥

षण्णा योऽभाच्च लोके विमलगुणगणै सम्वेजेता रिपूणाम् ,
तज्जेत्रा येन भूम्ना विशदमतितया सहतास्ते कषाया ।
निर्दोषी दिव्यशक्तिर्जिन-वचनसुधापायिनो यत्वनेकान् ,
चक्रे त नौमि पूज्य सुरनरमहित सद्गुरु शुद्धवोधम् ॥ ७ ॥

था, किन्तु इसमें संयमी-जीवन का अधिकाश समय साहित्य की रचना में लगा दिया था।

इसके अतिरिक्त आपका जीवन भी संयत, पवित्र और आदर्श था। ज्ञान का प्रचार करने के लिये आप भारत के कई प्रान्तो में विचरे (घूमे) थे। आप बालब्रह्मचारी थे। आपका उपदेश बडा ही प्रभावशाली होता था। आपकी वाणी बहुत कोमल थी और स्वभाव काफी सरल।

आपके गुणो का विस्तार से परिचय देना तो केवल समर्थ विद्वान् और पूज्यपाद की जीवन-घटना जाननेवालो का ही काम है। मै अल्पज्ञा उनके विषय मे भला क्या लिख सकती हूँ?

शास्त्र-विशारद सुकवि प मुनि श्री अमीऋषिजी म सा का बनाया हुआ एक छन्द लिखकर मैं अपनी लेखनी को विश्रान्ति दूंगी :—

दया के निधान, भव्य जीवन के प्राण औ,
सुजान, ज्ञान-ध्यान में निमग्न, गुणधामी थे।
बालब्रह्मचारी महादुष्कर आचारी-सार,
काव्य-कलाधारी हितकारी, विसरामी थे।
सुधा-सम वाणी मृदु, सबन के साता-दानी,
देय उपदेश जीव तारबे के कामी थे।
"अमृत" रटत, नाम लेत ही कटत पाप,
ऐसे ही प्रतापी श्री तिलोक रिख स्वामी थे॥

कहने का साराश यह है कि दुनिया में आदित्य की अपेक्षा साहित्य का महत्त्व विशेष अधिक है। किन्तु साहित्य से भी साहित्य-निर्माता का महत्त्व विशेष अधिक है। "तिलोक दीक्षा-शताब्दी-महोत्सव" के रूप में एक ऐसे ही साहित्य-निर्माता का अभिनन्दन किया जा रहा है, जिनका शुभ नाम था प्रातस्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज। अपने शिष्या-परिवार के साथ मैं भी उन्हे हार्दिक श्रद्धाजली समर्पित करती हूँ।



ऋषि तिलोक

प० मुनि श्री फूलचंदजी 'श्रमण' (पंजाबी)

तिलोक ऋषि शब्द की व्याख्या

पजाब संप्रदाय और ऋषि सप्रदाय इन दोनो का मूलस्रोत एक होने से आज तिलोक शताब्दी-अभिनदन ग्रंथ के लिए अपनी यह श्रद्धाजली भेजकर प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ। इस अवसर पर मै उन स्वर्गीय तिलोकऋषिजी महाराज के नाम की व्युत्पत्ति की सार्थकता के रूप में अपने निम्नाकित विचार प्रकट करता हूँ।

ऋ गतौ धातु से ऋषि शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है सतत शुभाध्यवसायों मे प्रवृत्ति करना, आयुका कोई भी क्षण निष्फल या अशुभ में न प्रवर्ताना ही ऋषि शब्द का विशेष अर्थ है।

दूसरा अर्थ ज्ञानपरक होता है। जैसे कि ज्ञानाराधना में निरंतर अभ्यास करना, वाचना, पृच्छना, पठित विषय का पुन २ आवृत्ति करना, धर्मकथा करना, अनुप्रेक्षा करना, जिसे वेदात-भाषा में निदिध्यासन कहते है। पाँच प्रकार की स्वाध्याय चरमान्त श्वास तक करना, सदैव ज्ञान के प्रकाश मे रहना इस प्रकार की प्रवृत्ति करनेवाले साधु को ऋषि कहते है।

ऋषि का तीसरा अर्थ प्रकाश होना है-जैसे हमारे नेत्र बाह्य प्रकाश की अपेक्षा रखते है वैसे ही सम्यक्त्व के प्रकाश मे रहकर ही सच्चारित्र की आराधना हो सकती है। सम्यक्त्व आत्मा में प्रकाश देता है, ज्ञान आत्मा में गुण अवगुण बताता है। अवगुणो को दूर हटाने के लिए जो क्रिया की जाती है वह ही सच्चारित्र है। क्षायिक सम्यक्त्व ही सदैव आत्मा में प्रकाश करता है। उस प्रकाश में रहने वाले मुमुक्षु को ऋषि कहते है। ये तीनो अर्थ जिस मे घटित हो उसे ऋषि कहते है। जब हम ऋषि शब्द को तिलोक शब्दके साथ जोडते हैं तब उसका अर्थ और भी विलक्षण हो जाता है जैसे कि--

१ अधोलोक उर्ध्वलोक एव मध्यलोक जो तीनो लोक मे अनासक्त है।
२ जो लोकैषणा पुत्रैषणा, और वित्तैषणा इन तीनो का त्यागी है।
३ जो जर-जोरू-जमीन इन तीनो का त्यागी है।
४ जो मन-वचन और काय गुप्ति से गुप्त है।
५ जो भक्तियोग कर्मयोग और ज्ञानयोग इन तीनो योगो का आराधक है।

जो दम, दया दान, इन तीनो में प्रवृत्ति करनेवाला है।

७ जो अहिसा अनेकान्तवाद और अपरिग्रह इन तीनो का उपासक है।

८ जो निष्कामत्व निर्लोभत्व निर्वैरत्व का आराधक है।

९ जो हेय से निवृत्ति ज्ञेय में वृत्ति, उपादेय में प्रवृत्ति करने वाला है।

१० जो उत्पाद व्यय और ध्रौव्य से ओतप्रोत की मान्यता रखता है।

११ जो आधि व्याधि उपाधि से सर्वथा मुक्त होने के लिये साधना करता है।

१२ जो आधिभौतिक आधिदैविक आध्यात्मिक कष्टो में समता रखता है।

१३ जो ज्ञानपूर्वक इच्छा को क्रियान्वित करता है।

१४ जो साधक, साध्य, साधन और साधना विशुद्ध त्रिपुटी का आचरण करता है।

१५ जो तीन कदमो में ही कल्याण करता है जैसे कि पहला कदम धर्म श्रवण दूसरा कदम सम्यकत्व लाभ और तीसरा कदम चारित्र पालन।

१६ जो मनुष्य देवता तिर्यच तीनो का पूज्य है उसे तिलोकऋषि कहते हैं।

इस प्रकार आपके नाम ने ऋषि शब्द के और भी चार चाँद लगा दिये आपने संयम तप की साधना के साथ २ ज्ञानसाधना भी बहुत विलक्षण की है। कवित्व-शक्ति के प्रभाव से सत्यबोध, समरादित्य केवली कथा, श्रेणिक चरित्र इत्यादि लगभग छोटे-बडे १७ से भी अधिक ग्रन्थो के आप रचयिता हुए है। आप की कविता सरस, मधुर और अलंकार-पूर्ण होती है। पढने और सुननेवालो के अन्त करण मेंआनन्द के साथ २ श्रद्धा और वैराग्य शान्तरस की वृद्धि होती है।

आपने आगमो का अध्ययन मनन चिन्तन निदिध्यासन पूर्वक किया है थोडे काल में इतनी उच्च कोटि की विद्वत्ता यह सिद्ध करती है कि सरस्वती की ओर से आपको सहर्ष वरदान प्राप्त था। आपके बनाए हुए ये ग्रन्थ सदियो तक प्रकाशस्तम्भ बनकर जनता को सन्मार्ग प्रदर्शित करते रहेगे।

जब तक रवि शशि तारे, तब तक गीत तुम्हारे, विश्व रहेगा गाता।

श्री तिलोक-द्वात्रिंशिका

साहित्याचार्य प० श्री माधवानन्दजी शास्त्री

श्री–शोभा वा रमा सा श्रुतघनधिभवा तद्द्वया मेदुरागो ।
याभ्या येनातिरम्य जगदिदमखिल शोभित बोधितञ्च ॥
एका मा यस्य पार्श्वे भवति च चपला पूज्यते कैर्न मोऽत्र ।
ज्ञानश्री भूरिभूतिर्जयतु च भुवने त्रि पुरालोकर्षिः ॥ १ ॥

क–ब्रह्मा ब्रह्मरूपो निजपर–समयज्ञानबोधात्मनिष्ठ ।
समारासारदर्शी पर-हित–निरतो ब्रह्मतेजोऽभिरामः ।
अज्ञानध्वान्तहेलि श्रुतमरससुधापानपुष्टाङ्गयष्टि–
र्जीयात्श्रीसौम्यदृष्टि: प्रवरगुरुवरस्त्रि पुरालोकर्षि ॥ २ ॥

वि–श्वस्मिन् यस्य विश्वे प्रविलसति यश पूर्णचन्द्राभमच्छम् ।
यातेऽपि स्वर्गधाम्नि प्रतिजनहृदये राजमानोऽधुनाऽपि ॥
चन्द्र क्षीण कलकी जगति गुरुरसौ सर्वदा भासमान–,
स्तस्मात्तं लोकसिद्धं गुरुवरमहक सादरं साधु वन्दे ॥ ३ ॥

कु–क्षोणि क्षोणिजातैरखिलजनचयै स्तूयमानोऽथ वन्द्य. ।
सदग्रन्थाभ्यासचेता यमनियमरतो लेखनाध्वप्रवीण. ।
दक्षो बोधेऽखिलाना प्रशमरसतया भावयन्नेकवृत्तिम्,
पश्यन् सर्वं निजाभंजयतु गतमल सद्गुरु श्रेयसेऽत्र ॥ ४ ॥

लग्नो यो नित्यमार्यं श्रुतरसविषये येन निर्वाणलब्धि-
स्तत्प्राप्तौ यत्नशाली सुविजितखगणो यो महारातिवर्ग ।
तत्सत्ता यावदास्ते वुत इह विजयी जायते ना हि-कोऽत्र ,
जित्वा तान् यो मुनीशो जगति सुविदितश्चर्षिसंज्ञा सुलेभे ॥ ५ ॥

भू सत्तावाचको यो विलसति धरणी सर्वसत्त्वावधर्त्री ,
सत्त्वाना पालको यस्तदवनविषये बोधयन् प्राणिवृन्दम् ।
संसारेऽस्मिन् विशाले पदविहृतितया चक्रमाणो महात्मा ।
सत्ताधारी व्यराजत् त्रिककरणतया तम्भजे नित्यमन्त ॥ ६ ॥

षण्णा योऽभाच्च लोके विमलगुणगणै सम्वेजेता रिपूणाम् ,
तज्जेत्रा येन भूम्ना विशदमतितया सहतास्ते कषाया ।
निर्दोषी दिव्यशक्तिर्जिन-वचनसुधापायिनो यत्वनेकान् ,
चक्रे त नौमि पूज्य सुरनरमहित सद्गुरु शुद्धबोधम् ॥ ७ ॥

ण–म्-प्रालंकारकार्थे जगति गुरुरसौ सर्वजीवाभिशोभी,
यद्वाणीदिव्यभूषासुषुमितमनुजा प्राभवन् सर्वदिक्षु ।
विश्वालकारमेन नमत भुवि-जना श्रेयसे साधुभावा ।
ल्लोकाना भूषणं तं सततमहमिह त्वात्मकोशे करोमि ॥ ८ ॥
पूर्णस्त्वं पूर्णबोधस्तत इह विदितं लौकिक सर्वमेतद्,
हेयाहेयप्रयोगे सुविशदमतिना पूर्णताऽदर्शि सम्यक् ।
सम्पूर्णानन्दसिन्धूत्तमकललहरीकेलिमग्नान्तरात्मा
पूर्ण स्या योगिराज! त्वमिह तु भुवने सर्ववाञ्छाऽभिपूर्त्यै ॥९॥
ज्यायान् य साधुवृन्दे समभवदलसः सयमे तात्त्विकी सन्
धर्मोद्धारी प्रबोधी प्रवचनकुशलो येन लोका कियन्त ।
हिंसामार्गान्निरुद्धा जिनप्रथितपथे योजितास्तोषिताश्च ।
ज्ञानद्‌र्ध्यां ज्ञानिनं त नमत भुवि सदा क्लेशमुक्ता भवन्तु ॥१०॥
पाता ध्याता महर्षिर्य इह समभवच्छाशानस्यात्मनश्च ।
यद्वाणीवद्धलोको जिनपतिचरणे स्वात्मभावं व्यधत्त ।
तद्धर्मसेवनेन क्षपितभवभय शुद्धवृत्तिर्बभूव
सर्वाधारो महात्मा सुकृतपथनयी जायता श्रेयसे न ॥११॥
दत्तो येनाञ्जलिः कावुरुमहिममहा-मोह-भूपाय सम्यग्,
दुर्जेयं यञ्च जित्वा व्यलसदतिबलो ज्ञानवैराग्यराज्ये ।
यद्राज्ये सर्वजीवा शिवसदनगता व्यस्मरन् सर्वदौस्थ्य
ज्ञानी त्यागी महर्षिर्भवतु च भवता स्वस्तये सर्वदाऽत्र ॥१२॥
श्री-मान्-श्रीभावजेता क्षणिकफलप्रदा सत्यमेते समरता ।
नो चेत्ते तीर्थनाथा रससकलमहाराज्यसत्ता विहाय ।
स्वीचक्रुस्त्यागमार्गा त्विति विमलधिया यो ललौ दिव्यदीक्षाम् ।
दिव्यात्मा दिव्यशक्तिः प्रभवतु च सदा श्रेयसे प्राणिराशे ॥१३
त्रिर्गुप्तिर्गुप्तिपाली श्रुतपथमतिभश्चाष्टसेवी प्रभावी ।
सौत्रार्थोद्बोधवाग्मी सुप्रभुजिनगवीवर्त्मचारी प्रचारी ।
अक्षोर्जध्वसशक्तिर्विगतभवभय सर्वमान्यो मनोज्ञ ।
सर्वेऽर्च्यो यश्च प्राभूत् सक इह जयतात् त्रि पुरा लोकनाथ ॥१४॥
लोभो य भीतभीतः स्पृशति नच कदा तज्जकोप कुत स्यात्
शान्ताऽऽत्मा शान्तचेता स्वपरजनसम सिद्धसिद्धान्तवेत्ता ।

छेत्ता य संशयानां गुणिगणममितो सर्वधर्मैकभावो ।
जीयाद्दीर्घमनस्वी सकलजननते श्रेयसे नौमि चेडे ॥ १५ ॥

कः कोऽस्यां तादृशोऽस्ति प्रवरगुरुमिमं नैव जानाति विज्ञम् ।
यस्मिन् कस्मिश्च शास्त्रे प्रगतिरिह गुरोः प्राभवद्वर्णनीया ।
शास्त्रज्ञानार्कदीप्त्या प्रहृतजनमनोऽज्ञान-नैशं हि येन ।
सोऽयं श्री भव्यबोधी भवतु च सततं श्रेयसे विश्वभाजाम् ॥ १६ ॥

ऋद्धिर्यस्यास्ति दिव्या प्रविलसतितमामक्षयाऽमेयसंख्या ।
ग्राहं ग्राहं कियन्तोऽतिविपुल धनितं प्राभवन् सा तथाऽपि ।
तेनेदं येन विश्वं प्रकटितविभवं छिन्नदारिद्र्यमूलम् ।
चक्रे तं ज्ञानवंतं भुवि दिवि विदितं सम्भजेऽज्ञानहत्यै ॥१७॥

शिक्षा दीक्षा यदीया विबुधमतिपरा चित्रकाव्यावलोकात् ।
सर्वज्ञेगागमज्ञस्तदभिमतदिशा धीरसंसारसिन्धौ ।
दृष्ट्वाऽनेकान् दयालु पततं इह जनाञ्चक्रिवांस्तीरभाज–
स्तस्मै मे दिव्यकालं त्रिककरणतया स्यान्नमो मौलिपाणे ॥ १८ ॥

जीयाज्जीर्णाक्षवृत्तिर्विगतकलिमलं सिद्धबोधश्चिराय ।
चान्द्री कान्तिञ्जयन्त्या दिशि दिशि स गुरुर्गीयमानेद्धकीर्त्या ।
यत्कीर्त्या नष्टतापा प्रमुदितहृदया भान्ति चाद्यापि मर्त्या–
स्तादृक्षं विश्वबन्धुं क इह नु मनुजो नो भजेत्तं यजेऽहम् ॥ १९ ॥

मन्ये यस्यावतारः समजनि भुवने चित्रकाव्यावनाय ।
चाख्या तेनास्य जाता त्रिजगति विदिता श्रि पुरालोककर्पिः ।
आसन् यस्मिन् गुणास्ते हिमशशिविमला द्योतयन्तोऽभिधानम् ।
तादृक्षानन्तधाम्नो नतिरतिप्रणता पादयोस्तस्य मेऽस्तु ॥ २० ॥

हित्वा कर्मानुबन्धं भवभयजनिदं स्वल्पकर्माभवन् सन् ।
दिव्यात्मालोक-पूज्यो भवभुवननिधिं ज्ञाननावा वितीर्य ॥
दुष्प्राप्यध्यानयोगाद् धृतहृदयजिनं सद्गतिं यो विलेभे ।
सोऽयं भूयान्महात्मा सकलजनिजुषां श्रेयसे पारदृश्वा ॥ २१ ॥

रामाकामाभिलाषा न च मनसि कदा यस्य भूम्न प्रजाता ।
मुक्तीरामाविशुद्धा यमवृत सुखदा नित्यसंगाभिशोभा ।
यत्संगान्नैव भूयो जनिमरणभयं लभ्यते सा च कैश्चि
दाबाल्याद् ब्रह्मदीप्तं गुरुवरमहकं नौमि नित्यं त्रिसन्ध्यम् ॥ २२

जन्मेदं मानव वै बहुसुकृततया लभ्यते बोधहेतु ।
प्राप्येदं ज्ञानमार्गे त्वथ सुकृतपथे साधुसगान्मनीषा ।।
केषाचित्पुण्यभाजा जगति प्रसरति त्रि पुरालोकयोगी ।
तादृक्षो येन बोधात्खविषयकरतिर्नो कृता तेन धन्यः ।।२३।।
सानंद वंशभानुर्जनहृदयतम संहरन् ज्ञानकोस्त्रै ,
सन्मार्गे योजयश्च स्वकमनुजजर्नि सार्थयन् सन्तपोभिः ।
आत्मा चैकः सुदर्शी श्रुतविनिगमकाद् बोधयन् प्राणिवर्गम् ,
रेजे यो दोषमुक्त स च भवतु सदा सद्गुरुर्भूतयेऽस्य ।। २४ ।।
हत्वा देहस्थवैरिव्रजमतिवलभ शान्तिखड्गेन पूर्वं,
निश्शत्रुर्निर्भयात्मा क्षितितलमखिल चंक्रमाण समन्तात् ।
जैनी वाणी पवित्रा प्रतिजननिवहे द्योतयन् युक्तियुक्ताम्,
रेजे यो दोषमुक्त स च भवतु सदा सद्गुरुर्भूतयेऽस्य ।।२५ ।।
व–क्ता योऽपूर्व आसीन् निजपरसमयज्ञान-विज्ञानवेदी ,
वैसम्वादो यदीये वचसि तु विमले क्वापि नाभूदणीयान् ।
येनास्याभ्यर्णमन्ये सुरभितकुसुमे चञ्चरीका इवायन् ,
सोऽय श्रीसर्वमोदी विलसतु भुवने नौमि त मौलिपाणि. ।। २६ ।।
की–तिश्चैका चिरस्था न बत ! तनुरियं, पञ्चभूताश्रितापि,
सा नो यस्यास्ति मन्ये तकजनिरफला निष्कलका यदीया ।
तुर्य्याशा कोणगाऽल वुधकुमुदचय द्योतयंती विभाति,
सोऽय सत्कीर्तिशाली वितरतु च शिव प्राणिना सर्वदैव ।। २७ ।।
ज–न्यं यत् तद्विनाशि प्रथितमिदमहो तेन ये न त्रितापे ,
दैवेन क्वापि जाते तकप्रशमकृतेऽकारि नोपायचिन्ता ।।
प्राभूद्धीरस्वभावी गदनिचयहर धर्ममेक सुमेने ,
धर्मप्रेमी सुधावाङ् मुनिरिह सततं लोकनामाऽस्तु भूत्यै ।। २८ ।।
य–त्नो यस्यार्भभावात्समजनि विपुलो ज्ञानपाथोधिजात्यै ।
लब्ध्वा चिन्तामणि यो बहुसुकृतवसात् कीदृशी लोष्ठकाम्या ।।
पीत्वा ज्ञानामृत यो भवति कथमही क्षारनीरेऽस्य लिप्सा ।
ज्ञानानन्दी मुनीशो निखिलसुखप्रद. शोभता दीर्घमीडे ।। २९ ।।
हो–रेक्षाकार्यकारी क्षणमपि समयो नात्यवाहि प्रमादाद् ।
द्रव्यादिक्षेत्रयोगाच्चतुरमुनिजनैर्लौकिके कार्यगुम्फे ,

कार्या वृत्तिर्जिनोक्ति स्वविमलहृदये धारयन् यस्तथाऽभात् ।
सोऽयं सत्काव्यकारी जयतु पृथुयशाः कारुदाक्षिण्यजेता ॥३०॥
सच्छीलस्यन्दनेऽथो विशदमतितया कौशलं येन दिव्यं ।
चित्रालंकारकाव्ये विबुधमतिपरे ज्ञानमातंगकेऽपि ।
प्रादर्शि श्रौतरीत्याऽखिल–निगमशिरोमूलमन्त्र–प्रकारे ।
व्यालेखि व्यक्तभावः कविकमलरवि सद्गुरुश्चैष जीयात् ॥३१॥
अष्टाग्न्यंकेऽन्दुवर्षे धवलहरिदिने पौरवाम्बोरिमध्ये ।
कर्माक्ष्यंकेन्दुकाब्दे रसशुचिपदकैर्ग्राम साजाऽभिधाने ।
सप्ताग्न्यंकेन्दुवर्षे लघुतमवयसा येन चैते निबन्धा
दृब्धा यान् वीक्ष्य विज्ञा स्ववदनविवरे तर्जनीमानयंते ॥३२॥

॥ इति द्वात्रिंशिका ॥

॥ अथ फल श्रुतिः ॥

त्रिलोकऋषिराजस्य सद्गुणाख्यानपावनाम् ।
द्वात्रिंशिकामिमां भक्त्या यः पठेत्सोऽस्तु सद्रमः ॥३३॥
आनन्दर्षि–महायोगि–वचनाऽमृतपायिना ।
रचितेयं यथाशक्ति–द्वात्रिंशा विज्ञमोदिनी ॥३४॥

॥ ॐ शांतिः ३ ॥

वि स २०१७ नभोमासे बाहुलपक्षे मंदामावास्यायां ।
महाराष्ट्रदेशांतर्गतवाम्बोरीनगरे–समाप्तिमजीगमत् ॥



बद्रिकाश्रमान्तर्गतमनोडा ग्रामवास्तव्य सा. आ पं माधवानन्द शास्त्रिण.

श्रद्धांजलि

अयि सज्जन? ? पाठकवृन्द ? प्राक्तनापूर्वसंस्कारवशतोऽहं परीक्षामहोदधिं समुत्तीर्य अदृष्टाश्रुतपूर्वश्रीजैनधर्मावलम्बिसच्चारित्रशालि श्रीवीतरागपथाभि–दर्शिजैनमुनीन्–अध्यापयितु–अर्बुदारण्यपार्श्ववर्तिन्याः सीरोहीनगर्यां समीप शोभायमानमुण्डारानामग्राममशिश्रियम् । तद्दिनादारभ्याद्यावधि तैरेव सह मरुधर–गुर्जरमालवमेदपाटसौराष्ट्रमहाराष्ट्रादिप्रसिद्ध–पत्तननगरग्रामादिषु पादचारी वा शकटादिविहारी सन् तानेव–पाठयामि । ऐषमे हायने दक्षिणाशाविराजमानरामेश्वर कन्याकुमारीमीनाक्षीगुचीन्द्रमहादेवादिविमलपावनतीर्थानां यात्रां विधाय विधि–प्रेरित इव बीकानैरभिन्नासहरमुनिसम्मेलने ईषत्परिचितानां–शान्तदान्ततितिक्षु–

दयोदधिनिखिलागमतत्त्वपारगामिना सर्वत्र सर्वदा सर्वेषु समानवृत्तीना स्वपर जनसमवायैकचित्तानाम्, सदानन्दप्रफुल्लवदनकमलानाम्, अतिशान्तचेतसाम् सुधा-मधाकारिसदुपदेशानेकभव्यप्राणिप्रतिबोधचातुरीशेमुषीविभ्राजमानानाम्, पूर्वमाचार्य-पद्ममलकृतानाम् तदनु समाजोत्थानहेतुतत्पदपरित्यागेऽपि विकसितमुखारविन्दानाम् पुन सर्वमुनिराजसम्मत्या प्रधानमंत्रिपदविभूषितानाम्, पुनरपि बृहत्साधुसम्मेलनपरामर्शेणैव साम्प्रतमुपाध्यायपदविदितानाम्, चतुर्दिग्विहरणपवित्रीकृतधरामण्डलानाम् महाराष्ट्रकेसरिणाम्, प्रकाण्डविदुषाम् श्री १००८ श्रीमदुपाध्यायानन्दऋषिमहाभागानाम् सविधे अहमदनगरोपकण्ठे वाल्मीकर्षिनामविख्यातवाम्बोरीनगरे प्राजीगमम्। तत्र प्रकृतिसरलाना तेषा सौजन्येन वशीभूत इव तच्छिष्यवर्गं पाठयन् लेखनकार्यञ्च विदधत् सुखेन प्रातिष्ठम् । तत्रैव चातुर्मासप्रसगे श्रीमदुपाध्यायमहाभागानाम् अतिगवेषणया महता परिश्रमेण एकत्रीकृतानाम् श्री १००८ श्री आगमोद्धार—शासनोद्धार—प्रतिप्राणिसमुत्थानकारिणाम् श्रीतिलोकऋषिपावननामसमलंकृतानाम् श्रीतिलोकऋषिवरनिर्मितविविधचित्रविचित्रकाव्यसन्दोहाना वैचित्री दर्शं दर्शं महानन्दसागरे माधवो मज्जनोन्मज्जनमकार्षीत् । तत्रापि ज्ञानकुजरचित्रालंकारकाव्योदिकं लेखनशैली अतिरमणीयलिपिविन्यास स्वल्पे वयसि अतितादृशपरिश्रमञ्च अक्षिलक्ष्यीकृत्य कस्यसहृदयस्य विदुषश्चेतश्श्रोतानि न चमत्कुर्वंति ?

अत पुण्यपत्तन (पूना) पार्श्ववर्ति मनोहरघोडनदीनामपुरवरे जनवरीमासस्य द्वितीयतारिकाया २–१–६१ महता महोच्छवेन भाविनि शताब्दीमहोत्सवे स्वर्गीयजनानन्ददायिना—भूमण्डले च कीर्तिमयकायशरीरेण विराजमानाना श्रीतिलोकर्षिमहाभागाना प्रीतये सादर सविनयं श्रद्धाजलि सत्करकमलयोरर्प्यते ।

मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो, न च धूमयित चिरम्

ले०——भाऊसाहेब श्री. कुंदनमलजी फिरोदिया (अहमदनगर)

प्रात स्मरणीय, पुण्यश्लोक, पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के दीक्षा-शताब्दी का महोत्सव मनाया जा रहा है । इस शुभ अवसर पर आपके चरणो मे श्रद्धाजली अर्पण करने का मौका मुझे मिल रहा है । यह मेरा बडा भाग्य है, ऐसा मै मानता हूँ । पूज्यपाद म०श्री को मैने देखा नही,उनकी पवित्र वाणी श्रवण करने का मुझे प्रत्यक्ष लाभ मिला नही, कारण मेरा जन्म होने के दो वर्ष पूर्व ही आपश्री की जीवन-यात्रा पूर्ण हो चुकी थी ।

तथापि अहमदनगरवासी पुरखाओ से और विशेषत मेरे पिता श्री से आपके बारे में मैने जो कुछ सुना और आपके ग्रथ तथा इतर साहित्य कुछ मैने देखा, उनसे जो श्रद्धा भाव मेरे मन मे पैदा हुए, उनकी ही यह श्रद्धाजली प्रतीक है ।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० को दीर्घ-आयुष्य प्राप्त नही हुआ। आपका ३६ वर्ष में ही देहात हो गया। आपके जीवन का दस वर्ष का काल बाल्यावस्था मे गया। दसवे वर्ष सवत् १९१४ में आपने दीक्षा ग्रहण की। आपके गुरु महाराज का भी आपको आठ वर्ष ही समागम मिला। आपने बाल्य-काल में विशेष शिक्षा पाई हो ऐसा मालूम नही होता। आपमे पूर्वजन्म के सस्कार थे, उससे आपने दीक्षा लेने के बाद आठ अर्ष १९२२ तक गुरुजी के सान्निध्य मे जो शास्त्रो का अभ्यास किया यही आपका शिक्षा-काल कहा जायगा। परन्तु इतने अल्प समय मे आपने जैन तत्त्वज्ञान को पूरा हासिल कर लिया। इसमें आपके पूर्व जन्म के सस्कार ही बहुताश में कारण हो, ऐसा प्रतीत होता है। आप जैन शास्त्रो के पूरे जानकार, तत्त्वज्ञान के अभ्यासी, कवि, चित्रकार और स्थानकवासी जैन समाज के अग्रगण्य-साधु थे। आपने अल्पजीवन मे जो साहित्य-निर्माण किया, उसमे अनेक भव्य-जीव गत सौ वर्षों से प्रभावित होकर अपना जीवन शुद्ध बनाने का प्रयत्न कर रहे है।

दक्षिण देशमे पधारनेवाले आप ही स्थानकवासी प्रथम साधु है। आप इस दक्षिण देश मे नही पधारते और इधर के भविक लोगो को स्थानकवासी जैन धर्म के तत्त्व नही बतलाते तो स्थानकवासी जैन धर्म इधर पनपता कि नही इसमें सदेह है। आपके उपदेश से दक्षिण देश के अनेक स्त्री-पुरुषो ने स्थानकवासी जैन दीक्षा धारण की। गत सौ वर्षो मे जो स्थानकवासी जैन साधु हुए, उनमें आपका स्थान बडा ऊँचा है।

आपके हस्ताक्षर बडे सुदर थे। जिस काल मे मुद्रण-कला इस देश मे प्रकट नही हुई थी उस काल में आपने जो लेखन किया है वह आज भी लोगो के दिल मे आश्चर्य और आह्लाद पैदा करता है।

आपने एक पन्ने पर श्री दशवैकालिक सूत्र पूरा सुदर अक्षरो में लिखा है, वह आपकी कलाकृति है। वैसे ही चित्रकला का अभ्यास नही होते हुए भी आपने स्वय अक्षरमय ज्ञानकुजर, शीलरथ, स्वस्तिक वगैरह चित्र लोगो को धर्म का उपदेश देने निमित्त बनाये, वह देखने का मुझे लाभ मिला। मै यह सब देखकर आश्चर्य चकित हुआ हूँ। आपकी बहुत-सी कला-कृतियाँ पूज्य उपाध्याय श्री आनन्द-ऋषिजी महाराज के पास है। उनकी अच्छी तरह से सार-सभाल होना भविष्य काल के लिये जरूरी है। ये सब चीजें अजायब खाने मे रखने लायक है।

इसके अलावा आपकी अपनी दैनंदिनी स्व-हस्ताक्षर से लिखी हुई आज भी मौजूद है। यह तो सच्चा इतिहास ही उस काल का हो सकता है। ऐसी

दैनदिनी (डायरी) हमारे सब मुनिराज रखेंगे तो वह इतिहास की बडी सहायता करेगी।

अत में यही प्रार्थना करता हूँ कि हमारे स्थानकवासी साधु-साध्वी पूज्यपाद के जीवन से उदाहरण लेगे और उन्होने अल्प-आयुष्य में जीवन की जो ज्योति प्रकट की उससे मार्गदर्शन पाकर समाज का कल्याण करेगे।



कवि-कुल-भूषण

पंडित श्री शोभाचंद्रजी भारिल्ल, ब्यावर

सत विश्व की सर्वोत्तम निधि है, अमूल्य सपत्ति है। इस निस्सार संसार को स-सार अर्थात् सारवान् बनाने का श्रेय यदि किसी को है तो वह सत पुरुष को ही है। सत जगत् की इस मरुस्थली में नदन-कानन है। अज्ञान के अधकार में ठोकरे खानेवाले प्राणियो के लिए प्रकाश-स्तभ हैं। वही त्रिविध ताप से सतप्त जगत् के लिये त्रिपथगा है।

जब कभी ध्यान आता है और सोचने लगता हूँ कि यदि ससार में सत जनों का अविर्भाव न होता तो इसकी कैसी दयनीय दशा होती? मगर नही, अगणित अभिशापो से अभितप्त विश्व को संत के रूप मे एक महान् वरदान भी मिलता है, जिसे पाकर विश्व अपने समस्त दुर्भाग्य को सौभाग्य के रूप मे परिणत कर सकता है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज इसी कोटि के सत थे। भारत के हृदय के समान मालव प्रदेश मे जन्म लेकर उन्होने दूर-दूर तक विचरण किया और आत्म-कल्याण के साथ जन-कल्याण में भी वे पीछे न रहे।

पू श्री तिलोकऋषिजी महाराज "कवि-कुलभूषण" के विश्रुत बिरुद से विभूषित थे। छत्तीस वर्ष जितने अल्प जीवन काल में ही आपने विपुल साहित्य का सर्जन किया। लगभग ७० हजार पद्यो की रचना की। आपकी कवित्व-प्रतिभा अनूठी थी। अध्यात्म एवं वैराग्य-रस की पावनी सरिता प्रवाहित करनेवाली उन की रचनाएँ प. श्री अमीऋषिजी म० की रचनाओ को छोड दें तो, स्थानकवासी परपरा में बेजोड है। इन रचनाओ में से बहुत थोडी ही बा ब्र. पडितरत्न उपाध्याय श्री आनदऋषिजी म० के द्वारा सपादित होकर प्रकाश में आई है। अधिकाश अप्रकाशित ही पडी है। वास्तव में समाज की यह उपेक्षा अक्षम्य है आपने अपनी विशिष्ट कवित्व-शक्ति से समाज का अविस्मरणीय उपकार किया है।

आपकी कुछ रचनाएँ तो इतनी जन-प्रिय और बहु-प्रचलित है कि जन-जन की जीभ पर नाचती है। "कहत तिलोक" की निसर्ग सुदर ध्वनि स्थानकवासी परंपरा के प्रत्येक धर्म-स्थान में प्रतिदिन कर्ण-गोचर होती है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० अपने युग के एक असाधारण मनीषी, वाग्मी, निस्पृह मुमुक्षु महापुरुष थे। उनके जीवन का ज्यो ज्यो परिचय प्राप्त होता है, त्यो त्यो उनके उच्च महान् व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा और आदर का भाव ही उन्नत होता है। आपने अपने अल्प जीवन-काल मे विविध प्रकार के जो विराट् और महत्त्वपूर्ण कार्य किये है, उन्हे देखकर विस्मय हुए विना नही रहता और लगता है कि यह यौगिक शक्ति का ही एक अद्भुत चमत्कार था।

कविकुल-भूपण म० का क्षर देह आज विद्यमान नही है, तथापि उनका अक्षर देह युग-युग तक विद्यमान रहेगा। और धर्म-प्रेमी जनता को पवित्र प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

इस महान् सत की रचनाएं जिस दिन अविकल रूप में प्रकाशित होकर जनता के समक्ष आएँगी, उसी दिन उनकी वास्तविक महिमा का मूल्याकन होगा, उसी दिन समाज उनके गुरुत्तर ऋण से आशिक मुक्ति प्राप्त कर सकेगा। मै उस महान् आत्मा को हार्दिक प्रणामाजलि अर्पित करता हूँ।

श्रद्धेय–वन्दनीय ऋषि–प्रवर

(सूरजचंद सत्यप्रेमी डाँगीजी)

सिद्धि–स्थिति हमारा मुकाम है और साधु-जीवन हमारा मार्ग, यह शाश्वत सत्य है। इसका पूर्ण साक्षात्कार करनेवाले ही सर्वज्ञ, सर्वदर्शी परम पुरुषोत्तम कहलाते है। उन्ही की वाणी निर्ग्रन्थ प्रवचन के नाम से विख्यात है। उस वाणी के जो महान् द्रष्टा ज्ञाता और अधिष्ठाता होते है वे आचार्य कहलाते है और लव-द्रष्टा होते है उन्हे ऋषि कहते है। इसी साधुमार्ग और सिद्धि–स्थिति के लव द्रष्टा एक लवजीऋषि हुए, जिनकी परपरा में हमारे श्रद्धेय वन्दनीय ऋषि-प्रवर त्रिलोकऋषिजी की दीक्षा हुई। उनके प्रति श्रद्धाजलि प्रदान करने के लिये परम पूज्य उपाध्याय श्री आनदऋषिजी प्रभृति ऋषि-गणो की मगल प्रेरणा से समस्त श्रावक समाज इस ग्रथ के रूप मे शताब्दी-अभिनदन समर्पण कर रहा है।

दीक्षा का अभिनंदन सब जीवो के रक्षण का अनुमोदन है। जिससे बडा पुण्य और कोई नही, यह निर्विवाद सत्य है।

सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए भगवया पावयण सुकहियं

भगवत निर्ग्रन्थ–प्रभु के प्रवचन संपूर्ण जीवो के रक्षण रूप दया के लिये ही प्रकट होते हैं। जिनकी माता समिति-गुप्ति अष्टप्रवचनमाता कहलाती है, जो केवल दया पर ही आश्रित है। तीन तीन भवो से लगातार सब जीवो के रक्षण की तीव्र भावना से ही तीर्थंकर का परम पद प्राप्त होता है। जो भगवती दीक्षा का जनक है। उसका अभिनदन सपूर्ण विश्व और विश्वंभर के अभिनदन से भी अधिक कल्याण–कारी है। व्यष्टि का समष्टि के लिये बलिदान ही दीक्षा है और समष्टि मे से उत्तम परमेष्ठि-पद प्राप्त करना ही सिद्धि है। स्वयम 'अव्यय को 'ॐ' अव्यय के लिये' देना दीक्षा है और 'ॐ' अव्यय का 'अर्हम्' अव्यय वन जाना ही साध्य की उपलब्धि है। इस उपलब्धि को जिसने सम्यक् प्रकार से देख लिया उस द्रष्टा के अभिनदन में अनुमोदन करने के लिये 'मै' सम्मिलित हूँ यह इस 'अहम्' का भी सौभाग्य है। यह 'अर्हम्' की दया है।

पूज्यपाद ऋषि-प्रवर के स्वर्गवास के समय तत्कालीन समर्थ आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज ने फर्माया था कि जैन-समाज का सूर्य अस्त हो गया। यह यथार्थ है परतु परमार्थ यह है कि जहाँ न पहुँचे 'रवि' वहाँ पहुँचे कवि। वे कविवर भी थे इसलिये सूर्य से भी अधिक प्रकाशक थे। सूर्य बाहर ही प्रकाश करता है—-इन्द्रियो को। पर वे अदर प्रकाश करने वाले थे मन को और अगर आगे जाकर यह कहूँ तो भी अत्युक्ति न होगी कि जहाँ न पहुँचे 'कवि' वहाँ पहुँचे अनुभवी, यानी अनुभवी आत्मा को जागृत करते है–हमारे ये ऋषि–प्रवर निर्ग्रन्थ मुनिराज होने से अनुभवी भी थे। जो जन-जन की आत्मा को आज भी जागृत कर रहे है। निश्चित है कि वे आज स्वर्ग में है और हम उनके प्रति यह प्रार्थना करते है और प्रार्थना क्या करे? विना ही प्रार्थना किये ये प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे है कि स्वर्ग मे विराजमान होकर भी वे अपने शिष्यो को यह प्रेरणा दे रहे है कि वे जन–जन की आत्मा को जागृत करने के लिये शक्ति के अनुरूप सेवा करते रहे। हमें लिखते हुए आनद होता है कि स्वर्गस्थ शिष्य-रत्न सवश्री रत्नऋषि रत्नत्रय की परम उपासना करने के लिये जीवन भर ज्ञानदर्शन चारित्र्य की जागृति करते रहे और पीछे एक ऐसे शिष्यरत्न को छोड गये जो केवल एक संप्रदाय की आचार्य-पदवी का समर्पण करके भी समस्त संप्रदायो की उपाध्याय पदवी ग्रहण करके ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य का प्रभाव सर्वत्र फैला रहे हैं।

अनेक पद्धतियो से परम-पूज्य-उपाध्याय श्री आनंदऋषिजी महाराज आज भी जिन–प्रवचनो का पठन-पाठन कराने का परम पुण्य कार्य सपन्न कर रहे है। हम सब उसकी तरफ दृष्टि खुली रख कर उनके प्रकाश को झेलने लायक बन जायँ, यही बहुत है।

श्रीमान् पं राधाकृष्ण जी शर्मा, एम् ए, (हिंदी-सस्कृत) बी. ए. बेसिक, साहित्य रत्न, आयुर्वेदाचार्य, प्रधानाध्यापक गवर्नमेन्ट एस टी सी ट्रेनिंग स्कूल बेदला (उदयपुर-राजस्थान) की ओरसे

श्रद्धांजली

मुझे यह जानकर परम प्रसन्नता हुई है कि अल्पायु में ही दीक्षा ग्रहण कर वैराग्य और त्याग के मार्ग पर चलनेवाले, मिथ्यात्वरूपी अंधकार के लिए चंद्रवत्, महागुणवान्, अध्यात्म से ओत-प्रोत, किंतु व्यावहारिक उपदेशो से श्रावको के अज्ञानाधकार को मिटानेवाले, काव्य कला-निधान, धर्म-दीपक, स्वय और अपनी शिष्यावली से आगे भी जैन-जग को आलोकित करते रहने की परपरा स्थापित करनेवाले, बालब्रह्मचारी, अल्प-काल ही में कल्पनातीत अलौकिक कर्मो का सपादन कर देनेवाले, पूज्यपाद, कविकुल-भूषण श्री तिलोक ऋषिजी महाराज के दीक्षा-शताब्दी-समारोह के उपलक्ष में श्री तिलोक शताब्दी अभिनदन ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है। यह प्रकाशन पूज्यपाद के उपकारो के प्रति प्रकाशक की कृतज्ञता प्रकट करने के साथ साथ धर्म-प्रेमी जिज्ञासुओ को भी प्रकाशित करेगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

इस अवसर पर ऐसे विद्वान्, आचारवान्, दयादक्ष, काव्यकर्ता पूज्यपाद के प्रति मेरी ओर से सादर अपनी श्रद्धाजली समर्पित है।

शुजाल्पुरवाले श्री शांतिलालजी जैन वकील मु० राजगढ

पूज्यपाद प्रात स्मरणीय महात्मा श्री तिलोक ऋषिजी महाराज सा० की सौ वर्ष-पूर्व प्रज्वलित दीप-शिखा जैन समाज के ही नही अपितु सघर्ष-सकुल त्रिताप-पीडित मानव समाज के प्रगति-पथको उत्तरोत्तर आलोकित करती रही है। छत्तीस वर्ष की अल्पायु, जहा साधारण बुद्धि के सामाजिक व्यक्ति को अपने स्वल्प विद्याध्ययन और किंचित् गृहस्थाश्रम के लिये भी पर्याप्त नहीं होती, वहा गूढतम शास्त्रीय अन्वेषण और साठ हजार पद्यो की रचना के साथ नाना प्रदेशो मे आगमानुसार उत्कृष्ट क्रियावत साधु-जीवन के सहित विचरण करते हुए सद्धर्मोपदेश द्वारा नाना जीवो को कल्याण-मार्ग में प्रवृत्त करना, पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज श्री की अद्वितीय प्रखर प्रतिभा, उत्कृष्ट साहस और तीव्र मेधा का चमत्कार है।

जिस काल में, आज से सौ वर्ष पूर्व महर्षि ने ज्ञान-प्रसार तथा नाना ग्रंथ-रचना का भीषण कार्य किया; उस समय की कल्पना आज के यत्रबहुल भारत में किया जा सकना दुष्कर है। उस समय न तो राष्ट्रीय-चेतना विकसित हुई थी और

न समाज के विभिन्न वर्गों में सहयोग की प्रवृत्ति ही थी, न विचारो के प्रसारण या पारस्परिक संपर्क-साधना के उपकरण ही इतने प्रचुर थे। मुद्रणकला, समाचार-पत्र यातायात भारत मे अत्यत प्रारभिक स्थिति मे थे। राजपथ भी पूर्णतया निर्धारित नही थे। ऐसे विषम समय में दुर्गम पर्वतीय मार्गो से उत्तर के मालवा से दक्षिण प्रदेश तक की पद-यात्रा जिस महर्षि ने किसी प्रकार से पूर्ण की, उनके अदम्य साहस की तुलना आज कौन कर सकता है? सौ वर्ष के उपरात उनकी यात्रा की लबाई कितने हजार मीलो की रही होगी? उसका गणित लगाकर कौन बता सकता है? सर्वतोमुखी प्रतिभा के द्वारा जिसने कविता, चित्रकला वक्तृता, वादविवाद, तपस्या और क्रियाशील साधु-जीवन को पूर्णतया आच्छादित और आप्लावित किया था, आज ढूढने से भी उसका मिलना दुष्कर है।

स्वर्गवासी महर्षि द्वारा निर्मित काव्याश आज भी जैन समाज के दैनिक आवश्यक अग है और जैन-साधारण उनसे अनेक प्रकारकी प्रेरणा लेते हैं। स्थानकवासी जैन समाज पर उनके जो अनत उपकार है, उनकी पावन स्मृति स्वरूप यदि उनकी अभिनदना की जाय तो यह जैन समाज का स्वय अपने पर ही उपकार होगा। उनके उपदेशो से प्रेरणा लेकर विगत सो वर्षो मे अनेक भव्यात्माओ ने सन्मार्ग ग्रहणकर कल्याण प्राप्त किया होगा और सौ वर्ष के उपरात सकलित रूप में उनकी रचनाओ का प्रकाशन सभवतः और कई-सौ वर्षो तक ज्ञान पथ को आलोकित करता रहेगा, ऐसी आशा किया जाना सर्वथा उपयुक्त होगा।

प्रात स्मरणीय दिवगत महर्षि के वचनामृत का पठन-पाठन का सुयोग जो इस प्रयास के द्वारा मिल रहा है, वह भी उन स्वर्गस्थ आत्मा की अप्रतिहत जन-कल्याण की कृपामयी भावना का ही सुफल है। संतो के जीवन का क्षण-क्षण मंगलप्रद होता है। आज भी यश-कार्य मे विद्यमान तथा कृतियो में साकार महर्षि की दिव्यात्मा अज्ञान का नाश और ज्ञान के प्रसार में सलग्न है और आनेवाली शताब्दियो में भी उसी प्रकार प्रवृत्त रहेगी, इस निश्चल विश्वास के साथ ही यह विनम्र श्रद्धाजलि अर्पित है।



पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज का संक्षिप्त जीवन वृत्त

बालाराम कवि-किंकर, चॉदपोल बाहिर जोधपूर

वीर-छंद,

भव्य भूमि भारत के अंदर, नगर अनूपम है रतलाम,
श्री मालव प्रदेश मे जो है, सब मे बढकर लोक-ललाम
उसी नगर मे राजे देखो, सुख-समृद्धि-सपन्न सु-धाम
ओस वंश-अवतस-सुराणा, दुलीचन्द है जिनका नाम ॥१॥
अर्द्धांगिनी अनूपम जिनकी, पति-भक्ता पदमिनी-सी जान,
अभय जनन में शोभा पाई, नानूबाई सद्गुण-खान ॥
उसी खानसे प्रकट हुआ, यह धर्म-वीर नर-रत्न प्रधान,
करे आज गुन-गान उसी का, बडे मान से सब मतिमान ॥२॥
वेद व्योम निधि चंद्र वर्ष अरु, ऋतु वसंत है सुखद महान्,
चैत्र कृष्ण तिथि जया तृतीया, रोहिणेय शुभवार पिछान ।
उत्तम योग मिले सब आकर, जन्म लिया जब इसने आन,
सुंदर नाम दिया जोतिषि ने, श्री तिलोक शशधर गुन-खान ॥३॥
बालचंद्र सम नित प्रति बढता, लाल अहा! यह बुद्धि विशाल,
पति-वियोग से व्यथित हुई, माता को रखता ये खुशहाल ।
बडे भ्रात है दो पुनि जिसके, एक बहिन भी है सुकुमाल,
किंतु सभी ये एक छत्र-बिन, रहे उनमने तीनो काल ॥४॥

हरिगीतिका छंद

पति-देव गे पर लोक तब, पत्नी स-गर्भा थी सही
इस हेतु उनके साथ में, जाना उचित समझा नही ।
पर हृदय उनके साथ ही, अपना सती ने दे दिया,
संसार से उपराम हो, वैराग्य-रस मन मे पिया ॥५॥

राधेश्याम तर्ज

निज सतति की सेवा करते, नौ वर्ष बीत गे नानू के,
दुष्कर्म सभी जब बीत गये, तब दर्शन भये सु-भानू के ।
शुभ वान मुनी, पुर के बाहिर, अयवता ऋषिवर आये है,
तब संघ जाय सन्मुख बधाय, गुरु को पुर अंदर लाये है ॥६॥

है उगते सूरज–समान, गुरु का मुख-मडल छाज रहा,
हृदयाकित-तम मिथ्यात्विन का, जिसको निहार कर भज रहा।
कर पाठ तिखुत्ता से वदन, श्री सघ सामने बैठ गया,
मुनि-सयम का सुदर स्वरूप, मन में तिलोक के पैठ गया ॥७॥
गुरु देते यो उपदेश अहा, कंचन-सी नर की काया है,
हो, काम-क्रोध-मद-लोभ-विवश, जिसका हम मूल्य घटाया है।
नर–नारायण की जोडी है, यह सूक्ति अहो! हम भूल गये।
बन कर के कर्ता स्वयं आप, रचते है नाटक नित्य नये ॥८॥

वीरछंद

इस नश्वर वैभव को तज के, चले गये नर-वीर अनेक,
किंतु साथ में वे न ले गये, लखो सूत का धागा एक।
जैसी करणी वैसी भरणी, सूक्ति अहा! यह कैसी नेक,
केवल–ज्ञानी की है वानी, रखे भेख की ईश्वर टेक ॥९॥

दोहा

आये मूठी बाध हम, जावे हाथ पसार।
जो शुभ करणी ना करे, तो वैतरणी त्यार ॥१०॥

ताटक छंद

घन से गिरी तप्त लोहे, पै बूंद नाश हो जाती है,
वही बूंद कदली पत्ते पर, मुक्त-रूप लखाती है।
अगर स्वाति-नक्षत्र-मध्य, वह सीप-बीच गिर जाती है,
तो कहिये सन्मित्रो! कैसी, नथ मे वह लहराती है ॥११॥
यही हाल उपदेश-रत्न का जवेरी हो सो पहचाने,
मलयागिरि-चदन की सौरभ, कीच-कीट हा! क्या जाने ?
'तहत वाणि' अरु 'घणी खमा' के नारे सभी लगाते है,
पर वे घर जाते जब देखो, वस्त्र झटक कर जाते है, ॥१२॥
सदुपदेश यो सुन सद्गुरुका, नानूबाई हरषाई,
पुनि तिलोक का मुख, विलोक यो बोली उसके मन-भाई।
अगर हृदय मे तेरे पक्का, रग किरमिची है छाया,
तो गिर जा सद्गुरु-चरणो में, है आज्ञा मेरी जाया ॥१३॥

लावणी

पा हुक्म माता का, श्री तिलोक हरषाया,
अविलंब उठकर गुरुको शीश नँवाया ॥ टेर ॥
कर जोर कहे गुरु देव! अर्ज सुन लीजे,
दीक्षा की भिक्षा करुणा कर द्रुत दीजे।
है समय बडा अनमोल वृथा ही छीजे,
लख सच्चा शिष्य का प्रेम गुरु मन रीझे,
तब अयवंता जयवंता मंत्र सुनाया ॥पा०॥१४॥
दीक्षा की भिक्षा गुरु से ले सुखकारी,
था किया ज्ञान-अभ्यास जिन्होने भारी।
जब देते थे उपदेश अहा! अविकारी,
तब मंत्र-मुग्ध से हो जाते नर-नारी।
है निर्मल यश दुनिया में जिनका छाया ॥पा०॥१५॥
की भव-भय-भजन हेतु विमल जिन करणी,
पुनि एक लक्ष जिनवर-गुण-गाथा वरणी।
शुभ चित्रकला भी जिनकी है मन-हरणी,
तम-मिथ्यात्विन का हरने हित थे तरणी।
गुरु के जीवन का टुक हाल बाल-कवि गाया ॥पा० ॥१६॥

पूज्यपाद श्री की स्मृति मे
विजयनगर व गुलाबपुरा श्री संघ की तरफ से सादर एवं सस्नेह समर्पित
कतिपय श्रद्धा-सुमन

हे जैन विभूते! आज हम विजयनगर व गुलाबपुरा के स्थानकवासी आपकी पावन स्मृति मे कतिपय श्रद्धा-सुमन प्रस्तुत करना अपना मुख्य कर्तव्य समझते है। वस्तुत आज हमें उस सादगी व तप-त्याग की मूर्ति की स्मृति हो आती है कि जिसने अपनी अपूर्ण दश वर्ष की अवस्था में ही जीवन-निर्माण का प्रारभ बाल ब्रह्मचारी पंडितवर्य गुरुवर्य श्री अयवंता ऋषिजी म० के विचारो से किया और एक मूक साधक व सेवी के रूप मे अपने व्यक्तित्त्व को छिपाते हुए लोक-प्रतिष्ठा से दूर रखा। परतु हीरे मे अंतर्निहित गुणो का प्रकाश लोक-मानस को प्रकाशित एवं प्रभावित किये बिना नही रहता। इसी हेतु आपका व्यक्तित्व प्रात स्मरणीय गुरुजी के सान्निध्य से अधिक तेजोमय और जन-मानस

के आकर्षण का केन्द्रबिन्दु बन गया। आपका व्यक्तित्व वह स्वर्ण है जो श्री अयवता ऋषिजी म० की विचार-ज्वालाओ मे तपा और अंत मे अपने प्रबल तपस्तेज द्वारा दक्षिण प्रात में जैन-ज्योति को जगमगाकर कुंदन बन गया॥

सादगी व त्याग की मूर्ति

मालव देश मे रतलाम शहर की पावन स्थली में इस भव्यात्मा का जन्म हुआ। आप साक्षात् सादगी व तप-त्याग की मूर्ति थे। मुख पर सौम्यतामधुरता, वाणी में वाग्मिता, निश्छलतापूर्वक मिष्टमित-भाषण, स्वभाव में चद्रमा के समान शीतलता समुद्र-सम गाभीर्य और झुकी हुई पलको में एक उच्च योगी-सी प्रतिमा के समक्ष जो कोई भी दर्शनार्थ आता था, तो आप उसे बरवस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे।

सत्य, अहिसा, अपरिग्रहादि शस्त्रो से सुसज्जित आपकी मूर्ति में जैन समाज के लिये सेनापति से अधिक अलबेले सैनिक बने रहने के अतिरिक्त कोई विकल्प नही था। यही एक मात्र कारण है कि आप सत्यकी साधना एव गवेषणा पर जैन शास्त्र की शीर्ष पंक्ति के यशस्वी लेखक और अग्रगण्य कलाकार थे।

जैन समाजके सुयोग्य प्रशासक और कर्णधार

मानव प्रज्ञाके शिल्पी, जीवन दर्शनके गायक, सच्चे साधक, जैन साहित्य-गगनके देदीप्यमान उज्ज्वल सितारे, त्याग-तप के धनी श्री तिलोकऋषिजी म. की अध्यक्षता में सवत् १९२२ से संवत् १९४० की दिनचर्या और चातुर्मास को जो बल मिला, वह अत्यंत ही श्लाघनीय एवं प्रशंसनीय है। आपने इस काल मे अपनी वाक्य-चातुरी, ज्ञान बल तथा शास्त्र-ज्ञातृत्व एवं मधुर अमृत तुल्य वाणीके द्वारा जैन बीजाकुर को पल्लवित और पुष्पित किया, वह किसी से छिपा नही है। प्रवचन के समय लोगो की मत्रमुग्धता, एकाग्रता व शात वातावरण आपके सुयोग्य और सफल प्रशासन का ही सूचक है।

कुशल-लेखक

आप जैन साहित्य के उत्कृष्ट कवि, पडितवर और सुलेखक थे। आप भावी जैन समाज के भाग्य-स्रष्टा ही नही, अपितु भव्य प्रासाद थे। जिसपर जैन समाज को गर्व है और आपके पदचिन्हो का अनुकरण कर अपनी यशो-विजय-पताका दिग्दिगत में फैलाने का सामर्थ्य है। यह बल एक मात्र आपके ही कारण मिल सका है। आपने अदम्य निष्ठा और वेग से जैन साहित्य का सर्जन किया। आप सुविख्यात ओजस्वी लेखक थे। आपको लेखन-कला से उत्कृष्ट प्रेम था। उसका जीता-जागता प्रत्यक्ष उदाहरण स्वरूप आपके हस्त-लिखित अनेक आदर्श

पत्र प. मुनि श्री आनंद ऋषिजी म के पास है। आप उत्कृष्ट महामुनि होने के अतिरिक्त उच्चकोटि के अग्रगण्य चित्रकार भी थे। आपका भगवतीजी शास्त्रानुसार कविता-मय एवं गद्यमय ज्ञान-कुंजर है। जिसमें अवरीश वार-सहित वृहत् हाथी का आकार है। वह अत्यंत ही लाभप्रद एवं सफल चित्रकारिता का आदर्श नमूना है।

आपमें सन समागम करने की अभिरुचि थी तथा गुणग्राहकता आपके रोम २ में प्लावित थी। इसी तरह क्षीर-नीरविवेक के आप पूर्ण ज्ञानी थे। इन्हीं सद्गुणों से सारा जैन समाज आपका आभारी है।

श्री धर्मदास जैन मित्र मंडल रतलाम के मंत्री श्रीमान् लखमीचंद मुणोत की तरफ से श्रद्धांजली

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड (पाथर्डी) की ओर से कविकुल-शिरोमणि पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० सा० का दीक्षा-शताब्दि-समारोह आयोजित किया गया है। यह संदेह से अतीत वास्तविक तथ्य है कि पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० सा० ने अपनी प्रखर कवित्व-प्रतिभा से जैन धर्म के सिद्धांतों का व्यापक प्रसार एवं प्रचार किया है। गूढतम विषयों को कविता द्वारा सुबोध और सुगम बनाया है।

आपकी कविताओं में प्रसाद और प्रवाह का अनुपम पुट पाया जाता है। प्रतिक्रमण के समय वंदना बोलते हुए आपके रचित सवैये बोले जाते है, जो इस बात के प्रमाण है कि आपकी रचनाएँ कितनी लोकप्रिय है। ऐसे शासन-प्रभावक मत-प्रवर का दीक्षा-शताब्दी-समारोह मनाना जैन समाज के गौरव के अनुरूप ही है। हम इस आयोजन की सफलता चाहते हुए कवि-कुल-शिरोमणि के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजली समर्पित करते है।

पूज्यपाद श्री की अद्भुत कवि-कल्पना पर प्रकाश

श्री जीवराजजी खिवराजजी कर्नावट बी. ए एल एल बी. वकील, अहमदनगर

पूज्यपाद श्री १००८ श्री तिलोकऋषिजी महाराज का जन्म रतलाम मालवा प्रान्त में वीर संवत् १९०४ मिति चैत वद ३ को हुआ। पुण्य कर्म के उदय से पूज्यपाद श्री को बाल्य-काल में वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने संवत् १९१८ मिति माघ वद १ के दिन भागवती दीक्षा अंगीकार की। पूर्व जन्म के सुसंस्कार के कारण आपश्री ने अपनी छोटी अवस्था में ही बहुत से सूत्र कंठस्थ कर लिये थे। बाल्यावस्था से ही आप में अलौकिक शक्ति थी। दैनदिन कार्यक्रम, पडिलेहना, प्रमार्जन, त्रिकाल काउसग्ग, ध्यान, व्याख्यान आदि कार्यों में व्यतीत

समय को छोडकर जो शेष समय पूज्यपाद श्री को मिलता था, उसमे आपश्री ग्रंथ की रचना करते थे। आपश्री ने लगभग साठ-सत्तर हजार श्लोक-प्रमाण ग्रथ पद्य रूप मे निर्मित किये। इसके अलावा आपश्री ने अनेक कलात्मक कृतियो का निर्माण किया। इन सब को देखकर मानव-मति कुठित-सी हो जाती है। आपश्री के उन ग्रन्थो में से बहुत से ग्रंन्थ अभी तक अप्रकाशित है-जिन्हे प्रकाशित करने का कार्य पूज्य उपाध्यायजी श्री आनंदऋषिजी महाराज साहब की प्रेरणा से हो रहा है। यह बडे सौभाग्य की बात है।

आपश्री ने जो ग्रन्थ निर्माण किये, वे सब समाज के लिए आदर्श रूप है। 'चेतन कर्म का झगडा, कर्म पच्चीसी, अध्यात्मफाग, आदि काव्य पढते समय पाठकगण और श्रोतृवृन्द तल्लीन हो जाते हैं। चेतन कर्म का झगडा इस पद्य मे आपश्री ने धार्मिक-वृत्ति से धर्म की अदालत मे चेतन-कर्म का झगडा पेश किया है। चेतन के पीछे अनादि-काल से कर्म-तस्कर लगा हुआ है, उससे छुटकारा पाने के लिए अनंत ज्ञान-दर्शनधारी जगत्पति प्रभु मुनसब के सामने चेतन अपनी अर्जी पेश करता है। उसकी साक्षी के लिये वह पाँच समिति, तीन गुप्ति इन आठ गवाहो को हाजिर करता है। अदालत में चारो तीर्थ जुटे हुए है। चेतन का बयान सुनकर विवेकरूपी चपरासी को कर्म मुद्दई को पुकारने की आज्ञा होती है। कर्म अदालत में उपस्थित होकर अपना बयान सुनाता है और चेतन का कथन असत्य है, यह कहकर उसकी साक्षी के लिये पच-प्रमाद को हाजिर करता है और चेतन से अपना हरजाना मागता है। तत्पश्चात् चेतन प्रत्युत्तर देकर कर्म से छुटकारा पाने के लिए इन्साफ चाहता है। अदालत का फैसला जाहिर किया जाता है। कर्म का हर्जाना चुकाने के लिए चेतन को आदेश दिया जाता है। चेतन तप, सयम रूपी नाणा देकर कर्मों का सब हरजाना चुकाकर कर्मो से छुटकारा लेता है और प्रसन्न होकर अपने वतन शिवपुर मे चला जाता है। यह सारा आपश्री ने सुदर, सहज और सुलभ रूप मे चित्रित किया है और बडे गहन सिद्धात तत्त्व को अल्प समय में सुलझाया है। आपश्री के ग्रन्थ पढने से धर्म के प्रति सहज ही मे उत्कृष्ट लगन पैदा होती है।

समाज को नवीन रूप से धर्म-मार्ग की ओर लानेवाले ऐसे पूज्यपाद स्व-तिलोकऋषिजी महाराज के चरणो में उनकी दीक्षा-शताब्दी के सुअवसर पर अपनी यह श्रद्धाजली अर्पित करता हूँ।

श्री प. पु. मेहेन्दले, प्रधानाध्यापक श्री नि जैन विद्यालय पाथर्डी

यदि मै दावे के साथ कहूं कि पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज का नामस्मरण भले ही माला फेरने के रूप में न हो, करनेवाले जीवित व्यक्तियो में मै ही अग्रगण्य हूँ तो अनुचित नही होगा। इसका कारण यह है कि मुझे तो प्रतिदिन पूज्यपाद श्री का नामोच्चार अनेक वक्त करना पडता है-क्या खत लिखते समय क्या किसी मीटिंग मे भाषण देते समय, क्या किसी से स्कूल संवन्धी वातचीत करते समय हरएक चीजपर महाराज श्री का नाम अंकित होने से इस नामोच्चार का अच्छा मौका मिलता है। इसीलिए तो मैने उपरिनिर्दिष्ट विधान किया।

मेरा और श्री तिलोक जैन विद्यालय का पहले–पहल परिचय आया पनवेलनिवासी श्रीमान् शेठ रतनचंदजी वॉठिया जी के द्वारा। मेरा और उनका घनिष्ठ परिचय होने से उनके आग्रह से मैने श्रीतिलोक जैन विद्यालय के प्रधानाध्यापक के पदपर सन १९४८ में कार्य करना स्वीकार किया। मुझे न तो पाथर्डी का पता था और न श्री तिलोक जैन विद्यालय का। यहाँ कार्य करने की स्वीकृति देने के वाद अहमदनगर में उपाध्याय मुनि श्री आनंद ऋषिजी म. के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्ही की प्रेरणा से मैने पाथर्डी मे रहना स्वीकार। किया सन् १९४८ में पहले–पहल मेरे सामने स्वर्गीय श्री तिलोक ऋषिजी महाराज की पुण्य तिथि मनाई गई। अनेक वक्ताओ ने उनके संबंध मे भाषण दिये। फिर भी १९५८ तक वैसी जानकारी जो कि हृदय के अन्तःस्थल तक पहुँचकर अपना गहरा प्रभाव अंकित कर दे, न हुई थी। ऐसी अनेक वाते होती है जो कि पढने से उतनी नही मालूम होती है जितनी कि सुनने से। उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महाराज साहव का पाथर्डी में चातुर्मास था। मैने उनसे विननि की कि आप हमें श्री तिलोक ऋषिजी महाराज के वारे मे समझाइये। हम सव अध्यापक उनके आसपास अर्ध वर्तुलाकार वैठ गये। दो-ढाई घंटे कैसे वीते मालुम नही हुआ। पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की चित्र-कला, कवित्व, उनकी दैनदिनी इन सव वातो का मुझपर वहुत वड़ा असर पड़ा। वे इतने कुशल चित्रकार थे कि उन्होने एक रुपये जितनी जगह में १५२ हाथी और चउन्नी भरके अवकाश में ६५ हाथी स्पष्ट रूपसे चित्रित किये है। उन्ही का खीचा हुआ शीलरथ उनकी आध्यात्मिकता एव चित्रकारी के मनोरम सगम का जीवित उदाहरण है। महाराज श्री जी के हस्ताक्षर अत्यंत कलात्मक एव सुदर थे। उन्होने सूक्ष्म एव लेखन कला द्वारा एक पन्नेमें ७५०

श्लोको को लिखने का अद्भुत कार्य किया है। यह लिखावट इतनी साफ सुथरी है कि विना माइक्रोस्कोप के पाठक पढ सकता है। उनके छद उनकी प्रतिभा एवं काव्य-शक्ति के अच्छे परिचायक है, उनका चित्रालंकार काव्य कूट शैली का एक अच्छा नमूना है। इस तरह पद्य-क्षेत्र मे उन्होने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। जिसे देखकर मुझे उनकी तरह बहुत कम आयु प्राप्त होनेपर भी अपने अपने क्षेत्रमे कभी न मिटनेवाला नाम छोड देनेवाले श्री ज्ञानदेव, श्री. आद्य शकराचार्य मराठी के बाल कवि श्री ठोमरे और अग्रेजी के कवि कीटस् इन सब की याद आई! उन सबो मे एक समानता थी कि बहुत ही कम आयु में उन्होने न मिटनेवाला नाम इस जगत पर अकित कर छोड़ा है। पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज ने भी ३६ वर्ष जैसी बहुत ही कम आयु मे कितने ही कष्ट उठाकर अपनी महत्ता का अच्छा परिचय अपनी चित्रकारी और कवित्व-शक्ति द्वारा दिया है। विशेषत उनकी दैनदिनी तो मुझे बहुत ही अच्छी लगी। उसे देखकर अग्रेजी के प्रसिद्ध डायरीकार सॅम्युएल पीप्स की याद आयी। बहुतही थोडी जगह मे विस्तृत व्योरेवार लिखने का ढग और लिखी हुई बाते, दिल को अपने आप खीच लेती है। उसी डायरीसे हमे पूज्यपाद महाराज श्री के बारे मे बहुत कुछ मालूम होता है।

मेरे स्कूल के नाम पर बहुत खत आते है। लोगो की "तिलोक" नामसे पहचान न होने से सुपरिचित 'तिलक' जी के नामसे या 'त्रिलोक' जिस से अक्सर सब परिचित होते हैं, उस नामसे खत आते है। मै ऐसी भूल को जब शुरु मे पढता तो मुझे लगता कि भूल तो जरूर है, पर क्या श्रीतिलोकऋषिजी महाराज ने जैन समाज के लिए लोकमान्य तिलक जैसा काम नही किया है? फिर भूल भी आनंदित कर देती। 'त्रिलोक' में भी ऐसी ही गुदगुदी पैदा करने की क्षमता मुझे महसूस होती थी।

आखिरमे इतना लिखना ही चाहता हूँ कि पू० उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महाराज ने जो यह कार्य अपने हाथमें लिया है इसमें उनकी अपने पुरखो के प्रति होनेवाली असीम श्रद्धा और नितात आदर दिखाई देता है। श्रद्धा-रहित इस बीसवी शताब्दि के लिय यह ग्रथ और ग्रंथ के पूज्य नायक एक चेतना का स्रोत बनेंगे।

जैनश्रमणसंघ—पुरुष के ललाट पर तिलकवत् चमकनेवाले श्रीतिलोक ऋषिजी म० कण्ठगत रत्न के समान प्रकाशमान होनेवाले श्रीरत्नऋषिजी म० और इस जैन श्रमण संघ पुरुष के हृदय में आनद रूप में रहने वाले पूज्य उपाध्याय श्रीआनदऋषिजी महाराज उन सबके चरणोंमें विनीत- — प. पु. मेहेन्दले

कविकुलभूषण पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी महाराजकी जय

श्रीमती सौ निर्मला मेहेन्दले

कवीना भूषण कोऽस्ति कश्चास्त्युत्तमलेखक ।
विख्यातस्तपमा कश्च त्वावाल्यात् क्षितिमण्डले ॥ १ ॥
कुशलश्च चित्रकार क प्रकृत्या शशिसन्निभ. ।
लक्ष्यतत्त्वार्थगभीर कश्चास्त्यष्टावधानिक ॥ २ ॥
भूषण स्वीयवंशस्य भूषणं मुनिसन्ततौ ।
पूज्यश्च पूजनीयाना कोऽस्त्यस्मिञ्जगतीतले ॥ ३ ॥
पावक इव प्रदीप्त: सयमी नियमी च क: ।
दमितावासना. केन कश्चास्ति शास्त्रदर्शक ॥ ४ ॥
श्रीमद्दुलीन्दुपुत्रोऽसौ त्रिलोक इति नामत ।
तिलको धीमना सोऽभूत्सर्वशास्त्रार्थकोविद:
लोकेऽस्मिन् धर्मरक्षार्थं स्वायुर्येनार्पित त्विह ।
कविकेसरिणे तस्मै श्रद्धाञ्जलिमह ददे ॥ ६ ॥
ऋषिराजतिलोकर्षि सर्वागिमार्गदीपक. ।
जीयाद् दीर्घं गुणास्तस्य शक्नुवाकथमल्पधी ॥ ७ ॥
जनाना हितरक्षार्थं स्थापिता पाठशालिका ।
यद्वाचा ऋषये तस्मै श्रद्धाञ्जलिमहं ददे ॥ ८ ॥

'होनहार बिरवान के होत चिकने पात'

'साहित्यरत्न' प० देवेन्द्रकुमार जैन 'सिद्धात शास्त्री' वल्लभनगर (राजस्थान)

जिस महापुरुष के मुखस्रोत से नि.सृत पुण्यसलिला भगवती भागीरथी के समान अव्याहत गति से धवल धारायुत धायमान होती हुई वाग्धारा ने सहस्रों मानवमस्तिष्कों को परम पुनीत किया, अद्यापि जिस महापुरुष की वाग्धारा प्रत्येक के लिये उत्थान एव नि:श्रेयस् की सीढी है, उन परम पूज्यपाद संत-शिरोमणि, कवि-कुल-भूषण, महान् कलाकार चारित्र-चूडामणि १००८ श्री तिलोकऋषिजी म. सा० के संबंध मे मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति का कुछ भी लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। तथापि आनरिक प्रेरणा से प्रेरित हो दो शब्द लिखने के लिये उद्यत हुआ हूँ।

"होनहार बिरवान के होत चिकने पात" इस उक्ति की सार्थकता सिद्ध करते हुए हमारे चरित्र-नायक के हृदय में ९ वर्ष की क्रीडाप्रिय बाल्यावस्था में पूर्व जन्म-सचित वैराग्य उत्पन्न हुआ और इस असार संसार का मोह त्याग, ज्ञान-

दर्शन–चारित्र की आराधना का कठोर सयमपूर्ण मार्ग अपनाकर आपने भागवती दीक्षा अंगीकार की। धार्मिकता, विरक्ति, अनुरक्ति और भक्ति केवल आपमें ही नही, अपितु आपके सपूर्ण परिवार में थी। माता बहन, बडे भाई एव स्वय इस प्रकार चार विभूतियो का एक साथ दीक्षा ग्रहण करना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

दीक्षित होनेपर आपने आगमो का गहन अध्ययन, चितन एव मनन किया। आप आगमो के पारदर्शी वेत्ता एव अध्ययनशील सत थे। संयम . ष्ठ प्रीति एव एकाग्रता रखनेवाले आप इस युग के आदर्श संत थे सौजन्य की मूर्ति, सरलता की प्रतिमा और भद्रता के भडार थे। आपके मुखमडल पर अपूर्व वीतरागता एवं अनुपम प्रशम भाव सदैव लहरात था। आपकी व्याख्यान–शैली बडी ही मधुर, आकर्षक एवं श्रोताओ के अ को स्पर्श करनेवाली थी। आप जहाँ जहाँ विचरते थे वहाँ अपार जनमे.. मेलो के समान उमड पडती थी।

कवित्व-शक्ति का विकास आपमे अद्भुत एवं अलौकिक था। आपके द्वारा रचित कविताएँ संगीतमय, भावपूण एव हृदयस्पर्शी है। उनमें चिरसचित हृदय की गहरी अनुभूति का अनुभव सन्निहित है। आपने सगीत की मधुर अजस्रधारा प्रवाहित कर जन–जीवन को भक्ति और प्रेम के रस मे सराबोर कर दिया। आपके द्वारा लोक–भाषा में रचित काव्यो ने शास्त्रो के मर्म और धर्म को जन–सुबोध बनाया। तत्त्वज्ञान और काव्य से ओतप्रोत आपकी सभी रचनाओ में आत्मिक शान्ति के साथ-साथ विश्वशान्ति के प्रसाद की प्रार्थना दृष्टिगोचर होती है। आपकी इस अद्भुत कवित्व–शक्ति की बदौलत ही आपकी यश–सूरभि सर्वत्र प्रसारित है। आपने अपने जीवन मे लगभग ७५००० कवित्त एवं कविताएँ रच-कर साहित्य का भंडार सुसमृद्ध किया। आपका काव्य-साहित्य मनमोहक एव जीवन सिद्धान्तो का गम्भीर निदर्शक युग–युग तक अमर रहनेवाली कहानी है। धर्म के मर्म का परमार्थ प्रतिपादन करने मे तत्कालीन सत–समाज में आपका प्रमुख स्थान था। छोटे से छोटे विषय का भी आपने अपनी अलौकिक प्रतिभा से सुन्दर सारगर्भित एवं सागोपाग विवेचन किया है। आपकी रचनाएँ अत्यन्त सरस, मधुर एवं प्रसादगुणयुक्त है। वैराग्य और आध्यात्मिकता का अन्तःकरण में झरना बहानेवाली है।

लेखन–कला में आप इतने पटु थे कि सपूर्ण दशवैकालिक सूत्र एक ही पन्ने मे लिखकर अवशिष्ट डेढ इच के भाग मे सपूर्ण आनुपूर्वी अकित कर दी है। जिसे देखकर अच्छे–अच्छे विद्वान् दातो-तले अगुली दबाते है।

चित्रकला के प्रति आपका स्वाभाविक आकर्पण था । जैन श्रमण होने के नाते आपने धार्मिक एव औपदेशिक कथा-प्रसगो के काव्यो को लेकर अपनी अनूठी तूलिका के आधार से ज्ञानकुजर, शीलरथ, चित्रालंकार काव्य आदि अनेकानेक ऐसे बोधप्रद चित्र चित्रित किये है, जिन्हे अवलोकन कर हमारा मनमयूर नाच उठता है ।

पूज्यपादश्रीजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी । प्रचंड साहित्यकार, उद्भट कवि, संयम मे प्रकृष्ट भावनाशील, धर्म एवं सघ के अभ्युदय के लिए अहर्निश तत्पर पूज्यपादश्रीजी की काव्यसुधा का पान कर समाज का मानस मुखरित हो चिर-काल तक अपने को कृतकृत्य मानकर अपना जीवन धन्य समझता रहेगा । आज महाराष्ट्र की भूमि में जो श्वे० स्था० समाज का बगीचा लहलहा रहा है, उसका सर्वश्रेय पूज्यपादश्रीजी को ही है । यदि पूज्यपादश्रीजी की कृपादृष्टि इस भूमि पर न हुई होती तो सम्भवत. आज जो इस भूमि मे धर्म एव ज्ञान की मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही है वह नही होती ।

३६ वर्ष की अल्पायु मे ही सयम-साधना करते हुए अपने भव्य एवं प्रभा-वशाली वक्तव्य द्वारा अनेक भव्य प्राणियो का उद्धार करते हुए आप समाधिमरण पूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुए । आपके त्याग एव वैराग्यमय आचरण की अमिट छाप समस्त श्वे० स्थानकवासी समाज मे युग-युग तक अखड रूप से सुरक्षित रहेगी ।

श्रद्धा के सुमन

पं० विद्याभूषणमणि त्रिपाठी साहित्य–विशारद

विधि हरि हर कवि कोविद-वानी ।
कहत साधु महिमा सकुचानी ।।

अर्थात्---ब्रह्मा, विष्णु, महेश' कवि पडित और स्वय सरस्वती भी साधुओं की महिमा का यथार्थ वर्णन करने में सकुचा जाती है. जब साधुओ की महिमा का यथार्थ वर्णन करने मे संसार की ऐसी २ दिव्य शक्तियो की गति-मति भी कुठित हो जाती है, तब मुझ जैसे अल्पज्ञ और अनुभवहीन व्यक्ति के द्वारा श्री पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० श्री के प्रति साधुतामयी जीवनी को लिखने का साहस करना तो केवल सूरज को दीपक लेकर ढूंढने का ही प्रयास मात्र है । फिर भी स्वान्त सुखाय के नाते आपके गुणगान के लिये, अपनी अन्तरात्मा को उद्धार के सुपथ पर लगाने का अधिकार तो छोटे से छोटे और बडे से बडे सभी को है । बस एक मात्र इसी ध्येय को ध्यान में रखते हुए मैने भी छोटी सी श्रद्धाञ्जली लिखने का साहस किया है ।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि म० ने १० वर्ष की अल्पायु में सयम पथ पर आरुढ होकर मालवा एव महाराष्ट्र आदि प्रान्तो में विचरण कर जो अपनी अलौकिक प्रतिभा का निदर्शन किया है और भूले हुए पथिक को सन्मार्ग पर लगाया है, उसे समाज भूल नही सकता है।

आज भी प्रतिक्रमण के समय "कहत तिलोकरिख" की गूंज जनकर्ण-कुहरो में सुनाई पडती है।

आपने अपनी छोटी अवस्था में १७ शास्त्रों को कण्ठस्थ करके सभी आगमों का सारभूत तत्त्व अपनी कविताओ के अदर चित्रण कर कविकुल–भूषण पद को अलंकृत किया है।

आपश्री में अद्‌भुत विलक्षण कवित्व-शक्ति विद्यमान थी। अध्यात्म एवं वैराग्य से ओतप्रोत उत्कृष्ट भावमय कृतियाँ आपके असाधारण काव्य-चातुर्य का परिचय कराती है। आपने ज्ञानकुजर और चित्रालकार काव्य का निर्माण किया है। यह दोनो कृतियाँ बडी ही चित्ताकर्षक है।

दश अध्ययनो के श्री दशवैकालिकसूत्र को एक ही पन्ने में सुन्दर और सुवाच्य लिपि मे लिख देना यह कला-कौशल की अद्वितीय पराकाष्ठा है।

आपके द्वारा निर्मित शीलरथ को अवलोकन करने से चित्रकला की सीमा दृष्टिपथ मे आ जाती है।

आप उच्च कोटि के सत होते हुए भी उच्च कोटि के कलाकार भी थे।

आपने स्वल्प वय मे जो कार्य किया है और उनकी कला-कृतियो पर जब हम अपनी दृष्टि डालते है तब विस्मायान्वित हुए विना नही रहते।

निस्सन्देह कविकुल-भूषण पूज्यपाद महाराज में असाधारण सामर्थ्य था। उसे कोई उनके जैसा समर्थ पुरुष ही लिपिबद्ध कर सकता है। मै तो इस दीक्षा शताब्दी के पुनीत अवसर पर उनके श्रीचरणो में ये श्रद्धा के कतिपय कुसुम अर्पित करता हूँ।



किशोरीलाल जैन बी ए (आनर्स) एल एल बी एडवोकेट
प्रधान जैन सभा फरीदकोट

कविकुल-भूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के 'दीक्षा-शताब्दी महोत्सव' के शुभ प्रसग पर प्रकाशित होनेवाले "अभिनन्दन-ग्रन्थ" के लिये कुछ लिखना मै अपना अति सौभाग्य समझता हूँ।

जैन सन्यास आत्मसाधना का उच्चतम मार्ग है। यद्यपि इस मार्ग पर चलने में जो घोर शारीरिक कष्ट उठाने पड़ते है, उनको दृष्टि में रखते हुए प्रायः

यह कहा जाता है कि जैन श्रमण तलवार की धार पर चलता है, मगर इस पथ के राही को अपनी प्रगति के साथ जो सम्यग् ज्ञान का प्रकाश और आत्मा की पवित्रता तथा आनन्द की प्राप्ति करने का सुपथ प्राप्त होता है, वह संयम के कष्टो को भुला देता है। इसे ही सयम का रस कहते है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज के शरीर के रोम रोम में और उनकी आत्मा के प्रदेश प्रदेश मे यह सयम-रस बहुलता से बसा हुआ था।

आपश्रीजी एक उच्च कोटि के साधक थे और आपने ससार को साधना का सही मार्ग अपने जीवन से दरसाया। आपके साधनामय जीवन की महानता इस बात से सिद्ध है, कि आपके उस भौतिक शरीर के मौजूद न होने पर भी आपके साधक जीवन की उत्कृष्टता समाज को धर्म के पथ पर चलने के लिए प्रेरित कर रही हैं।

आज ससार भौतिक वातावरण में बडी तेजी के साथ बढ रहा है। आध्यात्मिक अनुभूति से मानव-जीवन बिलकुल शून्य हैं। ऐसी प्रतिपत्ति मे यह भौतिक प्रगति आध्यात्मिक रोशनी के बगैर मार्ग को तय करने में असमर्थ है और मानव की एक गढे मे गिरने की बडी सभावना है। आध्यात्मिक अनुभूति और धार्मिक शिक्षा ही इस भौतिक प्रगति को सफल बना सकते है।

यही सदेश है जो पूज्यपाद महाऋषिजी की पवित्र और संयमी जीवनी से ससार को मिल रहा है।

पूज्यपाद कवि-कुल-भूषण स्वर्गीय श्री तिलोकऋषिजी महाराज के प्रति पाथर्डी श्री संघ की ओर से श्रद्धांजली।

पूज्यपाद कविकुल-भूषण श्री तिलोकऋषिजी म. के इस शताब्दी-उत्सव पर हम पाथर्डीनिवासी परिवार जितनी प्रसन्नता का अनुभव कर रहे है। उतनी प्रसन्नता का अनुभव शायद ही और कोई करता होगा! उन स्वर्गीय ऋषिजी महाराज द्वारा दिये हुए आलोक से आलौकित होकर स्वर्गीय रत्नऋषिजी म ने हमारे ग्राम में तिलोक जैन विद्यालय की स्थापना की हे। उसके बाद परोपकारी स्व. श्री रत्न ऋषिजी म. के पट्ट शिष्य पंडितरत्न उपाध्याय मुनिश्री आनन्दऋषिजी महाराज इस संस्था के आसपास इतनी अधिक सस्थाएँ स्थापित करने में प्रेरक बने हे। पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी म. के उस महान् प्रताप से ही आज हमारा ग्राम सारे भारतवर्ष में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है। मेरी दृष्टि से आपके कारण हमारे गाँव को जितना यश प्राप्त हुआ

है, उतना और किसी को नही। मेरे कुटुब पर तो पिछली तीन पीढ़ियो से उनकी छत्र-छाया रही है। उन्ही की प्रेरणा से मेरे पिता श्री मोतीलालजी गुगले जीवन के अंतिम क्षणो तक श्री तिलोक जैन विद्यालय का कार्य सभाल सके थे। पूज्यपाद श्री के इन अनन्त उपकारो को स्मरण कर मेरा हृदय गदगद हो जाता है। मेरी इतनी शक्ति नही कि उनके गुणो का मैं अपनी वाणी द्वारा वर्णन कर सकूँ।

अत उन श्रद्धेय पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म. के प्रति अपने सारे ग्राम तथा कुटुब की ओर से यह श्रद्धाजली समर्पित करता हूँ।

चुन्नीलाल मोतीलाल गुगले
अध्यक्ष
श्री वर्द्धमान स्था जैन श्रावक सघ पाथर्डी

श्रद्धा के दो शब्द

(पं चंद्रभूषणमणि त्रिपाठी)

पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज के इस दीक्षा-शताब्दी-महोत्सव पर श्रद्धास्वरुप दो शब्द प्रकटकर धन्यता का अनुभव करता हूँ।

उन पूज्यपाद के आलोक के कारण ही अपने स्वर्गीय पिता श्री (वि वा प राजधारी त्रिपाठीजी शास्त्री) के साथ मुझे भारतीय सस्कृति के एक महान् अग जैन दर्शन का अभ्यास करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनकी इस परोपकार वृत्ति से मेरा हृदय अत्यन्त आनंदानुभव कर रहा है।

उन पूज्यपाद श्री के अनन्त उपकारो से उपकृत होने के कारण मुझमें इतनी शक्ति नही कि उनके अमर अक्षर देह को वाणी का रूप दे सकूँ। इस अवसर पर मेरी यही हार्दिक अभिलाषा है कि उनके निरंतर विकास–शील जीवन द्वारा कुछ प्रेरणा प्राप्तकर अपने आपको सफल बना सकूँ। इससे बढकर उनके प्रति और क्या श्रद्धाजलि हो सकती है?

आदर्श कविवर्य ऋषिप्रवर

हम युवकों को एक आदर्श कविवर्य ऋषिप्रवर के दीक्षा–शताब्दी–महोत्सव पर उनके परमपवित्र कर्तव्य-कर्म के प्रति श्रद्धाजली समर्पित करने का सुअवसर प्राप्त हो रहा है और इस उत्सव के प्रसग पर प्रत्यक्ष सेवा का सद्भाग्य मिल रहा है। इसके लिए हम अपने-आपको धन्य समझते हैं।

आज–जैसी बाह्य साधन–सामग्री के अभाव में भी पूज्यपाद कविवर्य ने उस कठिन समय में भगवान् महावीर स्वामी के वचनो को जन-जन तक पहुँचाने में मदद की और सरल, सरस, सुन्दर, काव्यमय शब्दो मे धर्म–क्रियाओं को चैतन्य दिया। इसके लिए हम किन शब्दों में उनका उपकार मानें, यह समझ में नहीं आता। परन्तु हम यह जरूर चाहते हैं कि उनकी दया से आज भी हम मे वह शक्ति आ जाय कि सुसम्पन्न विकसित लोक–भाषाओं का उपयोग कर के हम श्रमण–भगवान् महावीर स्वामी के उपदेशों का विस्तार करने में समर्थ बनें।

भवदीय—

इन्द्रभान पितलिया, सम्पतकुमार गादिया

संयुक्त मन्त्री:—जैन युवक मण्डल, घोडनदी (पूना)

श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के रजिस्ट्रार
पं० बदरीनारायण शुक्ल की ओर से श्रद्धांजली

सायं की स्वर्णिम सुषमा

उषा समीप आती है तब शशि निष्प्रभ हो जाता है, जब सन्ध्या-समय आता है तब रवि भी प्रशान्त हो जाता है, पर **तिलोक** के आलोक की यह अद्भुत विशेषता है—जो जीवन की संध्या में वह और भी निखर उठा है। 'शुक्ल'



श्रद्धा के फूल

दिवंगत पूज्यपाद महाराज श्रीके आलोक से आलोकित
धार्मिक परीक्षा बोर्ड की ओर से

उनके इस दीक्षा शताब्दी महोत्सव पर

सादर समर्पित



श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड
पाथर्डी (अहमदनगर)



पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज की

कलात्मक कृतियों

का

विवेचन

कोड़ बात की वारता, सकल शास्त्र को सार ।

दया, दान दम आत्मा, तिलोकरिख कहे धार ॥

--तिलोक ऋषि

विवेचक

पं. श्री महेन्द्रकुमार जैन

समुद्र-बंध एवं नागपाश-बंध काव्य

— WMWMWM —

बार बार कहुँ तोए सावधान क्यूं न होय,
ममता की पोट सिर, काहे कु धरतु है।
मेरो धन मेरो धाम, मेरो सुत मेरो ठाम,
मेरो पशु मेरो ग्राम, भूल्यो यो फिरतु है॥
तू तो भयो बावरो, विकाय गइ तेरी बुध,
ऐसे अंध कूप ग्रहे, तामें क्यू परतु है॥
सुदर कहत तोए, अजहुँ न आवे लाज,
काज को बिगाड के, अकाज क्यू करतु है॥
संवत् १९२४ वैशाख वदि ३० लि. तिलोक

सामने के फलक मे पाठक एक आकृति देख रहे है। उसे अग्रेजी के डब्ल्यु एव एम को दृष्टि में रखकर उस में सन्निहित सवैये को पढ़ सकते है। जिस समय महाराज श्री की केवल वीस वष की अवस्था थी उस समय उन्होंने वडी कुशलता पूर्वक इस प्रकार के वध में मनहरण छद लिखकर लेखन कला का एक आदर्श उपस्थित किया है।

यह सवैया निर्गुण पथ शाखा के श्रेष्ठ कवि सुदरदासजी द्वारा रचित है। कबीर से प्रारंभ कर हिंदी साहित्य मे जितने सत कवि हुए, उनमे महात्मा सुदरदास ही ऐसे है, जिनकी कि काव्य-कृतियाँ छद-शास्त्र के गुणो से युक्त है। अन्य कवियो की रचना में कही-कही पर छदोभंग आदि दोष दृष्टिगोचर होते है, पर आपकी कविता में कही भी दोष दिखाई नही देता। सुदरदास ने अत्यन्त सरल शब्दो में अपने हृद्गत भाव इस प्रकार व्यक्त किये है।

बार बार कहने पर भी (तू) सावधान क्यो नही होता है? (ससार में परिभ्रमण कराने वाली) ममता या राग की गठरी अपने सिर पर तूने किसलिए रख छोडी है? तू यह मेरा धन है, मेरा यह घर है, मेरा यह पुत्र है, मेरा स्थान है, मेरे पशु है और मेरा यह गाँव है। इस प्रकार, बाह्य वस्तुओ में भूला हुआ है? तुम्हारी यह हालत देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है। तू तो पागल हो गया है और सदसद्विवेकिनी तेरी बुद्धि नष्ट हो गई है। इस प्रकार ससार रूपी अधे कुए ने तुम्हे पकड रखा है, फिर भी जानते-बूझते उसमें प्राण देने के लिए क्यों गिरता है? सुदर कहता है तब भी तुझे अभी तक लज्जा नहीं आती। अपने काम को बिगाड कर अकार्य क्यो करता है? (शास्त्रो में प्रतिपादित जी

ऊपर उठाने वाले क्षमा-मार्दव-आर्जव-शौच-सतोष-तप—त्याग—आकिंचन्य—ब्रह्मचर्य आदि कर्तव्यो को छोड़कर संसार में गिरानेवाले इनसे विपरीत आचरण क्यो करता है ?)

डब्ल्यु और एम की आकृतिवाले जिस बंध में पूज्यपाद श्री ने उपर्युक्त सवैये को लिखा है, उस बध का नाम समुद्र बध है। क्योकि इस छंद मे संसार रूपी सागर का वर्णन है। इसके लिए सवैये के उपयुक्त समुद्र बंध ही उचित हो सकता है। इससे पता चलता है, कि वीस वरस की छोटी-सी अवस्था मे भी महाराज श्री की कितनी पैनी दृष्टि थी ? समुद्र बध के सामने ही उसी पृष्ठ पर एक नागपाश बध काव्य है, इसमे वडी खूबी से भगवान् पार्श्वनाथ के जीवन की घटना का समावेश कर उनकी स्तुति की गई है। नागपाश मे संनिहित सवैया इस प्रकार है—

अमर उद्धरण धीर गभीर, भविक भव पार उतारण
रक्षा करण समद कमठ—तापस—मद—टारण
संकट उरगग वाय सरग पदवी ठवी सरण
विकट कमठ दियो कष्ट सही जलदल विस्तारण
जव नागदेव करुर भये दहल तपविन न गण
सरव दियो त्रिविव विचित्र सही पारस गरु तारण तरण

भगवान् पार्श्वनाथ देवताओ का उद्धार करने वाले, धीर और गंभीर हैं। वे भव्य प्राणियो को ससाररूपी समुद्र से पार उतारने वाले हैं, प्राणीमात्र की रक्षा करने वाले है और मदोन्मत्त कमठ-तापस के मद का हरण करने वाले है। जव सर्प जलती हुई लकडी में संकटग्रस्त था तब उसके अंगो पर नमोक्कार मत्र रूपी पवित्र उपदेश की हवा कर उसे देवलोक की पदवो देकर अपनी शरण में लेने वाले है। सर्प का उद्धार करने पर जव क्रोधी और भयकर कमठ (तापस) ने सारी पृथ्वी पर विपुल जल का विस्तार कर पार्श्वप्रभु को अत्यत कष्ट दिया तब नागदेव (धरणेन्द्र) अत्यत क्रूर हुए, उनकी क्रूरता से उस तापस का समूह दहल उठा। इस प्रकार तारण-तरण भगवान् पार्श्वनाथ गुरु ने अनायास उसे (सर्प को) तीनो प्रकार का सव विचित्र ऐश्वर्य दिया।

भगवान् पार्श्वनाथ का चिन्ह सर्प है। उनकी मूर्ति पर सर्वत्र फन फैलाये हुए सर्प की आकृति दृष्टिगोचर होती है। जब याज्ञिक कमठ लक्कडे जलाकर तप कर रहा था। उन लकडो मे बेचारा, एक सर्प अपनी सर्पिणी के साथ जल रहा था। भगवान् पार्श्वनाथ ने उस ओर तापस का ध्यान आकर्षित कर जलते हुए

हाथी चित्रित कर सब को आश्चर्य मे डाल दिया है। फिर हाथी की आकृति भी कही अस्पष्ट नही, सब स्पष्ट रूप से पृथक्–पृथक् दृष्टि–गोचर हो रहे है।

जिस समय महाराजश्री की केवल बीस सालकी अवस्था थी, उस समय उन्होने सवत् १९२४ वैशाख कृष्ण अमावस्या के रोज इस कृति का निर्माण किया।



सूक्ष्म लिपि में लिखित दशवैकालिक सूत्र पुच्छिस्सुणं (वीर स्तुति) और २५६ ढगला का थोकड़ा

चार मूल सूत्रो में दशवैकालिक सूत्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक दीक्षित साधु को सर्व प्रथम इसका अध्ययन कराया जाता है। जैन साधुओ के आचार–विचार का संक्षेप में इस सूत्र में जिस प्रकार वर्णन किया गया है, अन्य सूत्रो में वह सक्षेप दृष्टिगोचर नही होता। इसका अध्ययन कर नव-दीक्षित साधु आसानी से अपनी शुद्ध चर्या का पालन करते हुए आध्यात्मिक पथ में आगे बढ सकता है। इसीलिए इस सूत्र की जितनी प्रतिलिपियाँ हुई, उतनी अन्य सूत्रो की नही। प्राय प्रत्येक नव-दीक्षित साधु इस सूत्र को कठस्थ करने के साथ इसकी प्रतिलिपि करता है। मुद्रण-कला का विकास होने के बाद तो कई स्थानो से इसके अनेक प्रकाशन प्रकाशित हो चुके है। मुद्रण–युग के पूर्व मुनिवृद तथा लहिये इस सूत्र को अत्यत कलात्मक ढग से सूक्ष्म अक्षरो मे लिखते थे।

सद्गत पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज ने अपने जीवन–काल में अनेक वार केवल स्वात:सुखाय इस सूत्र की प्रति-लिपियाँ की। उनमें से मेरे सामने उनके द्वारा लिखित जो पन्ना उपलब्ध है, वह लेखन-कला में अपना अद्वितीय स्थान रखता है। महाराजश्री ने केवल एक ही पन्ने में तीन कृतियो को लिपिबद्ध कर अपनी सुवाच्य एवं सूक्ष्म लेखन कला का उच्च आदर्श जन साधारण के सामने उपस्थित किया है।

पाठक ऊपर जो पन्ना देख रहे है, वह ९½ इच लबा और ४½ इंच चौडा है। इसके प्रत्येक पृष्ठ में चार खाने है और हरेक खाने में ७८ पक्तियाँ है। दोनों पृष्ठो में कुल आठ खाने है। इन आठ खानो में आपश्री ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से दशवैकालिक सूत्र, पुच्छिस्सुणं (वीर स्तुति) और २५६ ढगला का थोकड़ा लिपिबद्ध किया है। अक्षर अत्यन्त छोटे होने पर भी उनकी गोलाई आदि आदर्श अक्षरो के मोड के अनुकूल है, जिस से अक्षर छोटे होने पर भी मनोयोग देने से पाठक उन्हे पढ सकता है।

सवा दो इंच के इन आठ खानो में उपर्युक्त तीनो कृतियो को इस प्रकार लिपिबद्ध किया गया है।



नाग नागिनी की रक्षा की थी। इतना ही नही, अंतिम अवस्था मे उन्हे नमोक्कार मंत्र का उपदेश देकर देवलोक का रास्ता दिखाया था। भगवान् द्वारा उपदिष्ट नमोक्कार-मत्र से ही वे नरकगामी क्रूर सर्प-सर्पिणी नरक मे नही जाकर देवलोक गये। बाद मे जब कमठ तापस ने बहुत वृष्टि कर पार्श्वनाथ भगवान् को कष्ट दिया था तब उसी देवलोकगामी धरणेन्द्र नाग ने भगवान् पर फन फैलाकर वृष्टि से उनकी रक्षा की थी।

इस प्रकार भगवान् के जीवन के साथ नाग का अभेद्य संबंध है। यहाँ पर भी भगवान् की स्तुति करते हुए उसका नाग-पाश में समावेश करना सर्वथा सगत है। पूज्यपाद श्री सरीखे सूक्ष्म प्रज्ञ की ही ऐसी सूझ हो सकती है।

इस पत्र के द्वितीय पृष्ठ मे एक ओर समुद्र-बंध काव्य है। उसमे निम्नांकित सवैये को उद्धृत किया गया है—

करत कपट सठ धरम करत हठ
धरण म धन दट पच पच मरण।
अथर छ तन धन चलत सजन जन
ममत करत मन न गहत चरण।
समज समज नर धरम परम वर
जगत भमत घर जग गह सरण।
सतव हणत लज अठ दस अघ तज
करम अठ कठ दज तद लह तरण॥

हे शठ! तू संसार में प्रत्येक व्यक्ति के साथ कपट तो करता है, पर धर्म करते समय हठ करता है। अपने एकत्रित किये हुए द्रव्य को पृथ्वी में डाटता है और ससार में पच—पच कर अन्त मे मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। तुम्हारा यह शरीर और धन तो अस्थिर है, केवल सज्जन व्यक्ति द्वारा दिया हुआ उपदेश या उनके द्वारा बताए हुए मार्गानुसार चलने पर होनेवाला पुण्य ही साथ चलता है। तू मन मे सदैव ममता करता रहता है, सत जनो के चरणो को ग्रहण नही करता है। हे मनुष्य! मै तुझे बार-बार समझाता हूँ, इसलिए समझ! समझ! जो श्रेष्ठ धर्म है, केवल उसी का वरण कर। तू गृहरूपी संसार मे कल्पित चित्र बनाकर परिभ्रमण करता रहता है, उसे छोड सजग होकर भगवान् की शरण ग्रहण कर। अहर्निश तू जिन प्राणियो का हनन करता रहता है, उनका हनन करते समय लज्जा का अनुभव कर और ससार में गिरानेवाले अठारह पापो को छोड़। इस प्रकार आठो कर्मो का दहन करने के बाद ही तू इस ससार को तिरकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

यहाँ पर भी ससार में ग्रस्त प्राणी का चित्र चित्रित किया गया है। इस-लिए उक्त सवैये में वर्णित भावो के लिए प्रथम पृष्ठ की तरह समुद्रवध सर्वथा उपयुक्त है।

पाठक थोडी देर के लिए इसमे निहित अर्थ की ओर से ध्यान हटाकर सवैये की शब्द-रचना की ओर ध्यान दे। कही पर भी दीर्घ तथा सयुक्त अक्षर नही है। सब लघु अक्षर है। शब्द भी ऐसे सरल है कि साधारण पढा हुआ व्यक्ति भी इसके भावो को आसानी मे ग्रहण कर सकता है, पढते समय लय-सा बंध जाता है। सुस्वर से गाने पर बार-बार इसे सुनने की इच्छा बनी रहती है। सुनते समय कभी भी चित्त अतृप्त नही होता। 'करत कपट सठ, धरम करत हठ,। 'धरण म धन दट, पच पच मरण'। कितने हृदयहारी मनोहर एवं श्रुति-मधुर शब्द है? अबोध बालक के सामने भी इसे गाने पर वह सब ओर से अपना ध्यान हटाकर केवल इसे ही सुनता रहेगा।

स्व. महाराज श्री की अर्थ दृष्टि की गहनता के साथ शब्दो की रमणी-यता की ओर भी कितनी सूक्ष्म दृष्टि थी? इन पद्यो के चयन में आप श्री की पदके मुख्य तत्त्व गेयत्व की ओर प्रधान दृष्टि रही है, क्यो कि जिन्हे सुस्वर से अच्छी तरह गाया जा सकता है, वे ही चिरकाल तक लोक-समुदाय की जिह्वा-पर स्थिर रहकर प्रत्येक व्यक्ति के हृदय पर अपना अमिट प्रभाव छोड सकते है।

प्रथम पृष्ठ पर अग्रेजी के डब्ल्यू और एम् की आकृति में जिस समुद्र बध काव्य की रचना की गई है, उसके चारो ओर एक-एक रुपये भर जगह छोड-कर उसके आस-पास की जगह को पीत वर्ण से चित्रित किया गया है। उस में से भी दाहिनी ओर के रुपये भर अवकाश में एक स्थान पर अत्यन्त सूक्ष्म रूप से १५२ हाथी चित्रित किये गये है, इतने हाथियो का चित्रण करने पर भी उसका कुछ भाग खाली रह गया है। उसके पास ही दूसरी ओर के उतने ही भाग मे १३६ हाथी चित्रित किये गये है। दाहिनी ओर की तरह बाईं ओर भी उतने ही अव-काश मे एक स्थान पर बडी खूबी से जबूद्वीप का नक्शा निकाला गया है। उसके पास ही जो एक रुपये भर जगह रह गई है उसे ऐसे ही रिक्त छोड दिया गया है।

अभी हमारे देखने में जितने भूचर प्राणी आते है, उनमें हाथी की आकृति ही सबसे बडी होती है। ऐसे विशालकाय हाथी का चित्रण करने मे एक रुपया तो क्या उससे भी अधिक स्थान की अपेक्षा रहती है, पर महाराज श्री ने कल्प-नातीत कौशल से अपनी अद्भुत शक्ति द्वारा इतनी छोटी जगह मे एक साथ इतने

हाथी चित्रित कर सब को आश्चर्य मे डाल दिया है। फिर हाथी की आकृति भी कही अस्पष्ट नही, सब स्पष्ट रूप से पृथक्–पृथक् दृष्टि–गोचर हो रहे है।

जिस समय महाराजश्री की केवल बीस सालकी अवस्था थी, उस समय उन्होने सवत् १९२४ वैशाख कृष्ण अमावस्या के रोज इस कृति का निर्माण किया।



सूक्ष्म लिपि में लिखित दशवैकालिक सूत्र पुच्छिस्सुणं (वीर स्तुति) और २५६ ढगला का थोकड़ा

चार मूल सूत्रो में दशवैकालिक सूत्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक दीक्षित साधु को सर्व प्रथम इसका अध्ययन कराया जाता है। जैन साधुओ के आचार–विचार का संक्षेप में इस सूत्र मे जिस प्रकार वर्णन किया गया है, अन्य सूत्रो में वह सक्षेप दृष्टिगोचर नही होता। इसका अध्ययन कर नव-दीक्षित साधु आसानी से अपनी शुद्ध चर्या का पालन करते हुए आध्यात्मिक पथ में आगे बढ सकता है। इसीलिए इस सूत्र की जितनी प्रतिलिपियाँ हुई, उतनी अन्य सूत्रो की नही। प्राय प्रत्येक नव-दीक्षित साधु इस सूत्र को कठस्थ करने के साथ इसकी प्रतिलिपि करता है। मुद्रण-कला का विकास होने के बाद तो कई स्थानो से इसके अनेक प्रकाशन प्रकाशित हो चुके है। मुद्रण–युग के पूर्व मुनिवृद तथा लहिये इस सूत्र को अत्यत कलात्मक ढग से सूक्ष्म अक्षरो मे लिखते थे।

सद्गत पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज ने अपने जीवन–काल में अनेक वार केवल स्वात:सुखाय इस सूत्र की प्रति-लिपियाँ की। उनमें से मेरे सामने उनके द्वारा लिखित जो पन्ना उपलब्ध है, वह लेखन-कला में अपना अद्वितीय स्थान रखता है। महाराजश्री ने केवल एक ही पन्ने मे तीन कृतियो को लिपिवद्ध कर अपनी सुवाच्य एवं सूक्ष्म लेखन कला का उच्च आदर्श जन साधारण के सामने उपस्थित किया है।

पाठक ऊपर जो पन्ना देख रहे है, वह ९$\frac{1}{2}$ इच लबा और ४$\frac{1}{2}$ इंच चोडा है। इसके प्रत्येक पृष्ठ में चार खाने है और हरेक खाने में ७८ पक्तियाँ है। दोनो पृष्ठो में कुल आठ खाने है। इन आठ खानो में आपश्री ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से दशवैकालिक सूत्र, पुच्छिस्सुणं (वीर स्तुति) और २५६ ढगला का थोकड़ा लिपिवद्ध किया है। अक्षर अत्यन्त छोट होने पर भी उनकी गोलाई आदि आदर्श अक्षरो के मोड के अनुकूल है, जिस से अक्षर छोटे होने पर भी मनोयोग देने से पाठक उन्हे पढ़ सकता है।

सवा दो इंच के इन आठ खानो में उपर्युक्त तीनो कृतियो को इस प्रकार लिपिवद्ध किया गया है।

हाथी चित्रित कर सब को आश्चर्य में डाल दिया है। फिर हाथी की आकृति भी कही अस्पष्ट नही, सब स्पष्ट रूप से पृथक्-पृथक् दृष्टि-गोचर हो रहे है।

जिस समय महाराजश्री की केवल बीस सालकी अवस्था थी, उस समय उन्होने सवत् १९२४ वैशाख कृष्ण अमावस्या के रोज इस कृति का निर्माण किया।



सूक्ष्म लिपि में लिखित दशवैकालिक सूत्र पुच्छिस्सुणं (वीर स्तुति) और २५६ ढगला का थोकड़ा

चार मूल सूत्रो में दशवैकालिक सूत्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक दीक्षित साधु को सर्व प्रथम इसका अध्ययन कराया जाता है। जैन साधुओ के आचार-विचार का संक्षेप में इस सूत्र मे जिस प्रकार वर्णन किया गया है, अन्य सूत्रो मे वह सक्षेप दृष्टिगोचर नही होता। इसका अध्ययन कर नव-दीक्षित साधु आसानी से अपनी शुद्ध चर्या का पालन करते हुए आध्यात्मिक पथ में आगे बढ सकता है। इसीलिए इस सूत्र की जितनी प्रतिलिपियाँ हुईं, उतनी अन्य सूत्रो की नही। प्राय प्रत्येक नव-दीक्षित साधु इस सूत्र को कठस्थ करने के साथ इसकी प्रतिलिपि करता है। मुद्रण-कला का विकास होने के बाद तो कई स्थानो से इसके अनेक प्रकाशन प्रकाशित हो चुके है। मुद्रण-युग के पूर्व मुनिवृद तथा लहिये इस सूत्र को अत्यत कलात्मक ढग से सूक्ष्म अक्षरो में लिखते थे।

सद्गत पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज ने अपने जीवन-काल में अनेक वार केवल स्वातःसुखाय इस सूत्र की प्रति-लिपियाँ की। उनमें से मेरे सामने उनके द्वारा लिखित जो पन्ना उपलब्ध है, वह लेखन-कला में अपना अद्वितीय स्थान रखता है। महाराजश्री ने केवल एक ही पन्ने में तीन कृतियो को लिपिबद्ध कर अपनी सुवाच्य एवं सूक्ष्म लेखन कला का उच्च आदर्श जन साधारण के सामने उपस्थित किया है।

पाठक ऊपर जो पन्ना देख रहे है, वह ९½ इच लबा और ४½ इंच चौडा है। इसके प्रत्येक पृष्ठ में चार खाने है और हरेक खाने में ७८ पक्तियाँ है। दोनो पृष्ठो मे कुल आठ खाने है। इन आठ खानो में आपश्री ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से दशवैकालिक सूत्र, पुच्छिस्सुणं (वीर स्तुति) और २५६ ढगला का थोकड़ा लिपिबद्ध किया है। अक्षर अत्यन्त छोट होने पर भी उनकी गोलाई आदि आदर्श अक्षरो के मोड के अनुकूल है, जिस से अक्षर छोटे होने पर भी मनोयोग देने से पाठक उन्हे पढ़ सकता है।

सवा दो इंच के इन आठ खानो में उपर्युक्त तीनो कृतियो को इस प्रकार लिपिबद्ध किया गया है।

प्रथम अध्ययन	४ ३/८ पंक्ति	द्वितीय अध्ययन	१० ३/८ पक्ति
तृतीय ,,	१४ १/४ पक्ति	चतुर्थ ,,	८२ १/२ पंक्ति
पंचम प्र. उ,	८० १/४ पक्ति	पंचम द्वि. उ.	४२ १/८ पक्ति
षष्ठ अध्ययन	५७ १/८ पंक्ति	सप्तम प्र उ,	५१ १/२ ,,
सप्तम द्वि. उ.	६९ ,,	,, तृ उ	२१ ,,
,, च. उ.	२१ १/४ ,,	अष्टम अध्ययन	१९ १/८ ,,
नवम अध्ययन	२२ ,,	दसम अध्ययन	२७ ,,

यह सारा सूत्र काली स्याही से लिखा गया है। प्रत्येक अध्ययन की समाप्ति होने पर समाप्ति बतलाने के लिए लाल स्याही से लिखा गया है—इति पढमं अज्झयणं सम्मत्तम्। अत मे सारा सूत्र लिख लेने पर लाल स्याही से तीन पंक्तियो में लिखा गया है——

इति भिक्खूण दसम अज्झयणं समत्तं। इति दशवैकालिकसूत्रं समाप्तम्। सवत् १९२८ वर्षे चैत्र शुक्ल ४ शनिवार के दिन लिपिकृत तिलोकरिख मेर नारायणगढ मध्ये।

दशवैकालिकसूत्र समाप्त करने के बाद आपश्री ने अवशिष्ट स्थान मे पुच्छिस्सुणं (वीरस्तुति) तथा २५६ ढगला का थोकडा लिखा है। पुच्छिस्सुणं ४० ३/८ पक्तियो में पूर्ण किया गया है और २५६ ढगला का थोकड़ा समाप्त करने मे केवल ५ १/८ पक्तियो का ही उपयोग किया है।

इसका संकेत मैं पहले ही कर चुका हूँ कि प्रत्येक पृष्ठ मे चार खाने है। और एक-एक खाना २ १/८ इंच का है। दशवैकालिकसूत्र को लिपिबद्ध करने में चार खानो में ५२३ ३/८ पक्तियो का उपयोग किया गया है और खानो की गणना नही कर केवल पृष्ठ की दृष्टि से पक्तियो को देखा जाय तो १३१ पंक्तियो में यह सारा सूत्र लिखा गया है। दशवैकालिकसूत्र की कुल ७५० गाथाएँ है। इन सात सौ पचास गाथाओ को केवल १३१ पंक्तियो में अत्यन्त सुन्दर, सुवाच्य और अकन शैली के अनुरूप पूर्ण आकृति से लिखना अत्यन्त कुशलता का काम है।

आध्यात्मिक दिशा में आगे बढते-बढते जो व्यक्ति अपने जीवन में पूर्ण एकाग्रता साध लेता है- उसके प्रत्येक कार्य में संपूर्णता होती है। किसी में किसी प्रकार की त्रुटि दृष्टिगोचर नही होती। वह यदि बडे अक्षर लिखता है, तो बडे अक्षर भी आँखो को तृप्ति देने वाले होते हैं, उन्हे देखनेवाला व्यक्ति बडे होने पर भी उन्हे देखता ही रहता है। फिर यदि वह छोटे अक्षर लिखता है, तो छोटे अक्षरो में उसकी वही दृष्टि होती है। अक्षरो की छोटाई या बडाई के कारण आकृति आदि में किसी प्रकार का अंतर नही होता।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि महाराज दस साल की छोटी शैशवावस्था मे दीक्षा ग्रहण कर आध्यात्मिक पथ में निरतर आगे बढते रहे। उनमें ऋजुता या सरलता थी। सब पर समान दृष्टि थी। इसलिए प्रत्येक कार्य को मनोयोगपूर्वक करते थे, जिस समय जो काम करते, उस समय अपने आपको भूल जाते। उनकी आत्मा तद्रूप हो जाती थी। इसलिए दूसरे व्यक्तियो द्वारा सर्वथा असाध्य कार्य उनके लिए सरल था। लेखन कला के इस आदर्श के पीछे उनकी आध्यात्मिक उत्क्रातिमूलक संपूर्ण एकाग्रता और योग दृष्टि है। ध्यान योग का विकसित रूप है। धर्म ध्यान की ओर उच्च प्रयाण है। पन्ने के चारो ओर चित्रकार की तरह सुन्दर बोर्डर चित्रित किये गये है।

चित्रालङ्कार काव्य

इस चित्रालकार काव्य में प्रारभ से अत तक कुल छत्तीस पक्तियो में छत्तीस दोहे है। प्रथम पंक्ति मे मंगलाचरण है, द्वितीय पक्ति से पच्चीसवी पंक्ति तक चौईस तीर्थकरो के स्तुति-परक चौईस दोहे है। तदनतर छब्बीसवी पक्ति से तीसवी पंक्ति तक नमस्कार मत्र के पाँच पदो के पाँच दोहे दिये गये है। तत्पश्चात् मोक्षमार्ग के उपादेय ज्ञान, दर्शन और चारित्र की स्तुति करते हुए तेतीसवी पक्ति तक तीन दोहे अकित किये गये है और अंत में चौतीसवी से छत्तीसवी पंक्ति तक देव, गुरु तथा धर्म की स्तुति करते हुए तीन दोहे दिये गये है। धर्मकी स्तुति करते हुए अतिम दोहा इस प्रकार दिया गया है--

जैन धर्म ऐसो अवर, नही रंच सुख ठोर।
णा समरथ अनत नये, तिलोक नमे कर जोर ॥

जैन धर्म के समान अन्य किसी स्थान पर लेश मात्र भी सुख का स्थान नही है। इस धर्म में सतोष को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सतोषी व्यक्ति ही सब प्रकार से सुखी होता है। इसलिये जैन धर्म सतोष रूपी सुख प्राप्ति के लिये सर्वोत्तम साधन है। जैन धर्म के अतिरिक्त अन्य अनत नयो मे एकान्तवादी संप्रदायो मे ऐसा सामर्थ्य नही है। ऐसे धर्म के लिये तिलोकऋषिजी म० हाथ जोडकर नमस्कार करते है--

इस चित्रालंकार काव्य मे जो चौईस तीर्थंकरो की स्तुति दोहा-छद में की गई है, उस स्तुति के अंदर छत्रबध, दुर्गबध, गोमूत्रिका बंधो में नमस्कार मत्र आदि अनेक चीजें निकलती है। इसका अवलोकन कर अनुभवी कविगण और विद्वान् व्यक्ति भी आश्चर्यान्वित हो जाते है। इस काव्य का परिचय इस प्रकार है--

इसके चारो और गो मूत्रिका बध मे तीन प्रकार से नमोक्कार मंत्र के अक्षर आए हुए हैं। पहले पीले वर्ण में "णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूण" ये पाँच पद अंकित किये गये हैं। उसके बाद लाल रग मे नमोक्कार मत्र की महात्म्य सूचक--

एसो पञ्च नमूक्कारो, सव्व पावप्पणासणो।
मगलाण च सव्वेसि पढमं हवइ मगलम् ॥

यह प्रसिद्ध गाथा अंकित की गई है। इस प्रसिद्ध नमोक्कार मत्रके पश्चात् गो मूत्रिका बध में द्वितीय मत्र के रूप में श्री चद्र प्रज्ञप्ति सूत्र के अदर की गाथा दी गई है। वह इस प्रकार है।--

नमिऊण असुर-सुरगरुल भुयंग परिवंदिए गयकिलेसे।
अरिहे सिद्धायरिय उवज्झाय सव्वसाहूए ॥

इस प्रसिद्ध गाथा में भी पाँच पदो की वदना की गई है।

तीसरा मंत्र श्री उत्तराध्यायन सूत्र के बीसवे अध्ययन की प्रथम गाथा का पूर्वार्द्ध है। वह पीत वर्ण में इस प्रकार अकित है--

सिद्धाण णमो किच्चा, संजयाण च भावओ।

इस गाथा में भी सक्षिप्त रूपसे नमोक्कार मंत्र का समावेश किया गया है। इस मे सिद्ध और साधु ऐसे दो पद है। अरिहत और सिद्ध इन दो पदो का सिद्ध में समावेश होता है और आचार्य, उपाध्याय तथा साधु इन तीन पदो का सन्निवेश संयत (साधु) शब्द में होता है। क्योकि प्राणी साधु होने के बाद ही योग्यता संपादन करने के पश्चात् आचार्य, उपाध्याय आदि पद का अधिकारी होता है।

इस चित्रालंकार काव्य मे दोनो ओर नीले रग में दो चौकडियाँ बनाई गई है। उनमें से एक में व्यवहार नय से मोक्ष मार्ग के लिए उपादेय दान, शील, तप, भाव ये अक्षर दिये गये है और दूसरी में निश्चय नय से मोक्ष मार्ग के लिए उपादेय नाण, दंसण, चरित्त ये अक्षर आये हैं। इसी प्रकार श्री मानतुगाचार्य द्वारा रचित भक्तामर स्तोत्र का छव्वीसवाँ श्लोक लाल रंग में पूरा लिखा गया है। वह श्लोक इस प्रकार है --

"तुभ्य नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ,
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्य नमस्त्रिजगत परमेश्वराय,
तुभ्य नमो जिन भवोदधिशोषणाय ॥

प्रथम तो अखिल जैन परंपरा में भक्तामर स्तोत्र का प्रात काल अधिकतर लोग पारायण करते है, क्यो कि इस स्तोत्र मे आदिनाथ भगवान् ऋषभ देव की स्तुति की गई है। इस स्तोत्र में कुल ४४ श्लोक है, कुछ लोग ४८ भी मानते

है। चाहे जो हो, फिर भी स्तोत्र का छब्बीसवाँ श्लोक अत्यन्त मांगलिक माना गया है। क्यो कि इसमे स्तुतिकार श्री मानतुगाचार्य ने बडे आर्तभाव से भगवान् को तीन लोक के दुख हरण करनेवाले, पृथ्वी तल के श्रेष्ठ भूषण रूप, तीनो लोक के परमेश्वर रूप और संसार रूपी समुद्र को शोषण करनेवाले के रूप से चित्रित किया है। इसी लिए इस अत्यत मागलिक श्लोक का पूज्यपाद श्री ने यहाँ पर चयन किया है।

इसके बाद हरे रग मे श्री दशवैकालिक सूत्र की प्रथम गाथा अंकित की गई है,

धम्मो मंगलमुक्किट्ठ, अहिसा संजमो तवो।
देवा वि त नमसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥

उसके पश्चात् इस काव्यालकार के मध्य मे 'ॐ नम सिद्धं' ये अक्षर लाल रंग मे अंकित किये गये है—

शरीर, लोक, पृथ्वी, पर्वत अदि सब लोकालोक मे मध्य का स्थान सर्व श्रेष्ठ माना गया है। वह जितना दृढ होता है, उतनी ही उस वस्तु की स्थिरता रहती है। इसी प्रकार प्रसिद्ध नमोक्कार मत्र मे भी निर्मल एव अखिल ज्ञान स्वरूप आत्मा की दृष्टि से सिद्ध पद का ही अधिक महत्व है। क्योकि ससार मे परि-भ्रमण करनेवाले सब प्राणियों का लक्ष्य सिद्ध पद की ओर रहता है। इसीलिए महाराज श्री ने मत्र के बीज रूप से 'ॐ नमो सिद्ध' पद को इस चित्रालकार काव्य के बिलकुल मध्य मे रखा है, जो सब दृष्टि से सगत है।

इस चित्रालंकार के नीचे दोनो ओर दो छत्र बध है। इनमें पूज्यपाद श्री ने सवत् मिति के साथ अपने नाम का भी उल्लेख किया है। यह चौपाई छद मे इस प्रकार है —

सवत उगनीसे अठावीस जाण,
निश्चय केवली वेण प्रमाण।
रिख पचमी विचितरि अलकार,
तिलोकरिख कहे गुरु उपकार॥

उपर्युक्त चौपाई मे महाराज श्री ने बडी नम्रता से प्रस्तुत कृति के रचना-काल का उल्लेख करने के साथ अपने प्रसिद्ध सप्रदाय का बडा कौशल से निरूपण किया है। इस छद की रचना अत्यन्त सरल होने पर भी भाव की दृष्टि से वह बहुत गभीर है। इसमे प्रथम 'संवत उगनीसे अठाविस जाण' पक्ति मे रचना संवत् का उल्लेख किया है। जिस समय महाराजश्री की केवल चौईस वर्षो की अवस्था थी, उस समय उन्होने इस अद्भुत कृति की रचना की। दूसरी 'निश्चय केवली वेण प्रमाण' पक्ति द्वारा अपनी नम्रता प्रकट की है। केवली

भगवान् सर्वज्ञानी एवं सर्वदर्शी है, उनके वचन ही आप्तस्वरूप होने से निश्चयात्मक हो सकते है। हम छद्मस्थ तथा अल्पज्ञ है, अल्पज्ञ होने पर भी केवली के वचनानुसार किसी वस्तु का निश्चय करते है। यहाँ पर भी उन्होने भगवान् द्वारा उपदिष्ट ज्ञान को ही इस कृति में सन्निहित किया है। तृतीय 'रिखपचमी विचितरि अलंकार' पंक्ति में मास आदि का इस खूबी से उल्लेख किया है कि देख कर आश्चर्य होता है। भाद्र शुक्ल पचमी को ऋषि पचमी पड़ती है। इस सबका उल्लेख करने से छंद की मात्रा आदि मे गड़बड होने की सभावना रहती। इसलिए ऋषि पंचमी शब्दको उपयुक्त स्थानपर रखकर आपश्री ने काव्य कुशलता का अच्छा परिचय दिया है, तथा प्रारभ के रिख शब्द द्वारा एक साथ आपने दो कार्य करने का सफल प्रयोग कर दिखाया है। 'रिख' शब्द द्वारा आपने अपने ऋषि संप्रदाय का भी उल्लेख कर दिया है। साथ साथ इस पंक्ति में प्रस्तुत कृति का नाम-निर्देश भी दिया गया है। अंत मे 'तिलोकरिख कहे गुरु उपकार' नामक पक्ति में इस रचना का सारा श्रेय अपने अपने परमोपकारी गुरु को दिया है। वस्तुत मुझ मे ऐसी कोई चीज नही, जो मै लोक को दे सकू। यह जो कुछ लिख या कह रहा हूँ वह सब अपने गुरु का प्रसाद या उपकार है।

इस कृति की रचना के उल्लेख के साथ महाराजश्री ने इस काव्य को देखने की एक चावी भी बताई है—

प्रथम समूचे पीछे तीर्थंकर चौवीस पंच नोकार ज्ञान-दर्शन-चारित्र तीन कहिये।
देव गुरु धर्म तीनु मिलक छत्तीम हुए, तिनमे नवकार-मत्र तीन भात गहिये।
भक्तामर काव्य एक दशवैकालिक गाथा ॐनम सिद्धं, बीच बीज अक्षर लहिये।
प्रगट समत साल मास पक्ष तिथि सेती केत है तिलोकरिख यत्र सार गहिये ॥१॥ इति

इस प्रकार उत्कृष्ट काव्य रचना कर आपश्री विश्व को अपना ज्ञान-सौरभ दे करके स्वर्ग सिधार गये है। परंतु आपका सुगंधीमय जीवन इन कृतियो में आज भी विद्यमान है इन कृतियो का अवलोकन कर हमारा कर्तव्य है कि गृहस्थ तथा संयत किसी भी दशा मे रह हम अपने समय का पूर्ण सदुपयोग करे। समर्थ श्री रामदासस्वामी का वचन है—"मरावे परि कीर्ति रूपे उरावे" प्राणी मात्र अपने कर्मों के वशीभूत होकर इस संसार में जन्म लेता है। वह जन्म, मृत्यु और व्याधि से पीडित है। इसलिए मनुष्य का अमूल्य जीवन प्राप्त कर उसे सफल बनाना चाहिए। जिस जीवन को जीने के बाद पीछे कीर्ति रूपी सौरभ अवशिष्ट रहे, उसी जीवन को सफल और सार्थक समझना चाहिए।

ज्योतिष–चक्र

हम ऊपर एक अत्यत सुन्दर ज्योतिषचक्र देख रहे है। उसकी रचना के संबंध मे महाराज श्री ने एक दोहा अकित किया है —

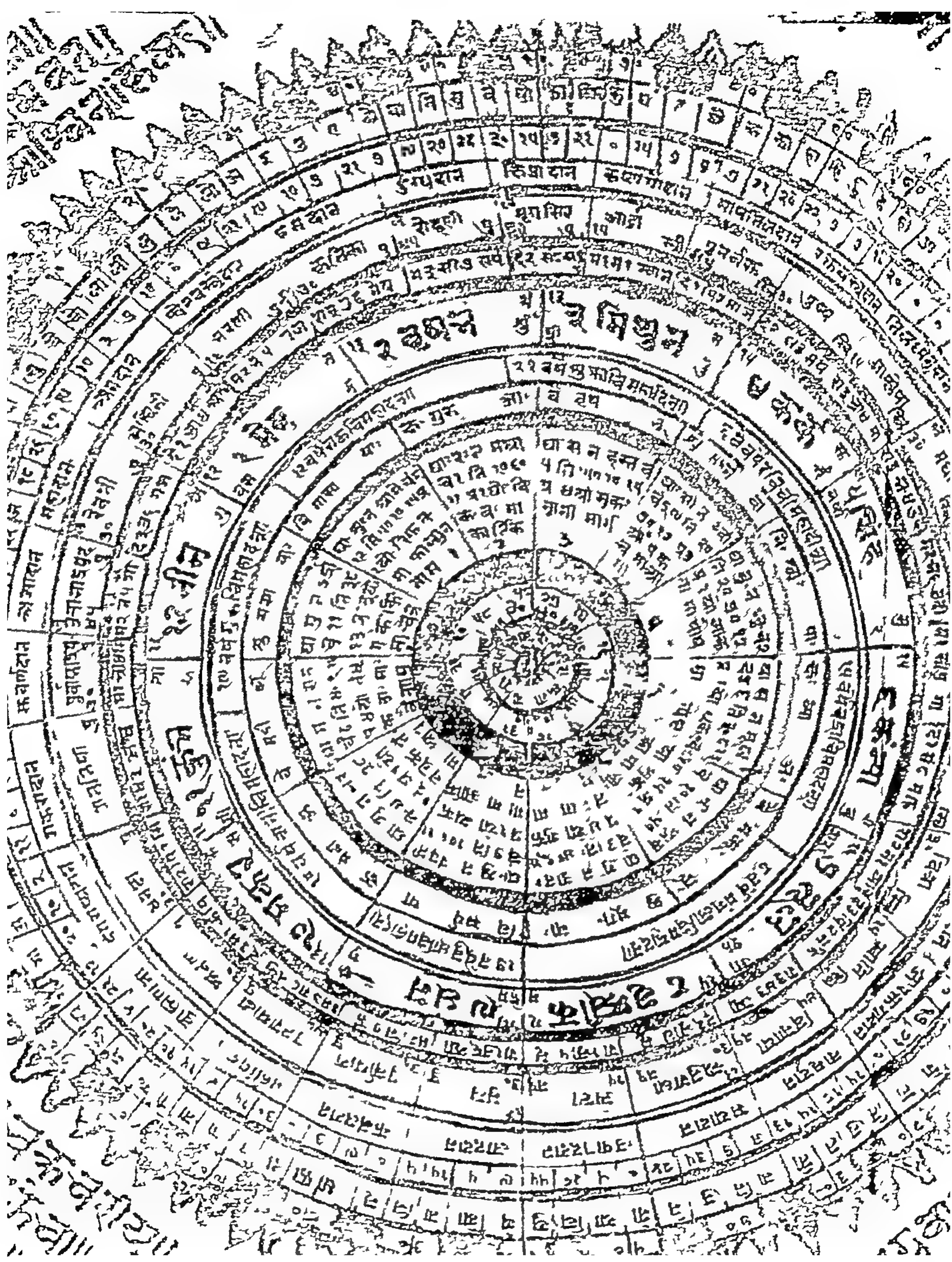
प्राचीन पत्र विलोक के, यन्त्र लिख्यो मनरग।
ज्योतिषचक्रचरिय है, समझे चातुर चग॥

मैने बहुत समय पूर्व के ज्योतिष सबधी प्राचीन पत्र देखकर यह मन को मुग्ध करने वाला यत्र लिखा है। इसका नाम ज्योतिषचक्र है और इसे कोई अच्छा चतुर व्यक्ति ही समझ सकता है।

वस्तुत महाराज साहब ने अपने इस दोहे में उपर्युक्त चक्र के सबंध में जो कुछ लिखा है, वह अक्षरश सत्य है। इस चक्र में ही आपश्री ने ज्योतिष सबधी सब मुख्य अंशो का समावेश कर दिया है। कोई ज्योतिष प्रकाड वेत्ता ही इस चक्रगत सारे विवरण का विवेचन कर सकता है। केवल इस यंत्र का अध्ययन कर कोई सूक्ष्मप्रज्ञ ज्योतिष का इतना अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता है कि वह बडे बडे पडितो से ज्योतिष-शास्त्र के मुख्य अंगो के संबध में चर्चा कर सकता है।

इस ग्रथ का सारा विवरण लिखने से ग्रथ का बहुत अधिक कलेवर बढने की सभावना है। इसलिए यत्रगत सब विषयो पर प्रकाश नही डालकर हुवा केवल प्रत्येक चक्र मे रहे हुए मुद्दो पर थोडा-सा प्रकाश डालकर सतोष करता हूँ।

इस यत्र में कुल बारह चक्र है। बारह चक्रो की आकृति बनाकर उन पर लाल, आसमानी, पीले, हरे और काले रग के कंगूरे बनाये गये है। इसी प्रकार चक्र निकालने के पूर्व बिलकुल मध्य में पीले और लाल रग का वृत्त बनाया गया है। पहले पीले रग की बडी बिंदी दी गई है, उसके ऊपर लाल रंग का घेरा है। उसके बाद ही एक के ऊपर एक इस प्रकार कुल बारह चक्र दिये गये है। इन चक्र में अवकडहा चक्र और घात चक्र इन दोनो चक्रो का सम्मिश्रण है। घात चक्र के नीचे दो चक्र और है, कितना ही परिश्रम करने पर भी उन दोनो के सबध में कुछ जानकारी प्राप्त नही कर सका हूं।



रायण प्रारभ होने के बाद जब दिन बडा होते–होते ९० के अंश पर पहुँचता है उस समय दिन सबसे बडा होता है, तत्पश्चात् वह घटते–घटते ० के चिन्ह पर आ जाता है। तब दिन–रात दोनो एक समान होते है, अर्थात् यदि छ बजे सूर्योदय होता है तो उसका अस्त भी छ बजे होता है। इसी प्रकार रात्रि भी दिन की तरह बारह घटे की होती है। दिन और रात्रि के समान होने पर फिर दिन की तरह रात्रि भी बडी होती–होती ९० के अंशपर पहुँचने पर सब से बडी होती है। तत्पश्चात् पूर्ववत् घटते–घटते जब ० पर आती है तब रात्रि और दिन दोनो समान होते है। चैत्र और आश्विन मास में दिन और रात दोनो एक समान होते है।

बारहवे चक्र के नीचे ग्यारहवे चक्र में किस राशि में जन्म लेने पर कौन से अक्षर होते है, वे दिये गये है। जैसे कि मेष राशिके चु, चे, चो,ला, ली, लू, ले, लो अक्षर होते है। इन अक्षरो के आधार से चुन्नीलाल, चेनराम, चोथमल,लाभचंद, लीलाचंद, लेहरचंद, लोभचंद आदि नाम रखे जाते है। इसी तरह शेष ग्यारह राशियो के नामानुकूल अक्षर अकित है।

ग्यारहवे चक्र के नीचे दसवे चक्र में ऊपर दिये हुए अक्षरो के ठीक नीचे ९, १०, ३, ७, १०, ०, ९, २१ आदि अक दिये गये है। इनका अर्थ यह है, चु अक्षरवाले को रोग होने पर ९ दिन रहता है, चे अक्षरवाले को रोग होने पर १० दिन रहता है, चो अक्षरवाले को रोग होने पर तीन दिन रहता है। इसी प्रकार सब अक्षरो के संबध में जान लेना चाहिए।

दसवे चक्र के नीचे नववे चक्र में नक्षत्रो की दृष्टि से दानादि का वर्णन किया गया है। यथा अश्विनी नक्षत्र में अन्नदान, भरणी नक्षत्र में श्वेत वस्त्र–दान, कृतिका नक्षत्र में हेम (सुवर्ण) दान, रोहिणी नक्षत्र में दुग्धदान, मृगसिरा नक्षत्र में क्षिप्रादान, आर्द्रा नक्षत्र में कृष्ण गो दान का विधान है। चक्र मे लिखी हुई विधि के अनुसार उस नक्षत्र के लिए लिखी हुई वस्तु का दान करने से नक्षत्र गत अनिष्ट दूर हो जाता है। इसी प्रकार अन्य सब नक्षत्रो के ऊपर दिये हुए दान के सबध मे भी जान लेना चाहिये।

नववे चक्र में प्रदर्शित ग्रह की शान्ति के लिए दानादि देने का जो विधान किया गया है, वह स्वयं पूज्यपादश्री का मन्तव्य नही है उन्होने किसी ज्योतिष के प्राचीन पत्र को देखकर इसकी प्रतिलिपि की है।

नववे चक्र के नीचे आठवे चक्र में नक्षत्र, उनके लिग तथा घटिका अंश आदि का यंत्र निर्मित किया गया है। जैसे अश्विनी के खाने में अश्विनी ३० और पु ऐसे तीन सकेत किये गये है, यहाँ अश्विनी से अश्विनी नक्षत्र, तीस

से तीस घटिका अंश और पु से पुल्लिग है। उसके बाद भरणी के खाने मे भी भरणी, १६ और पु का सकेत देखते है। वहाँ भी पहले खाने की तरह भरणी से भरणी नक्षत्र, १६ से सोलह घटिका अश और पु से पुल्लिग का तात्पर्य है। अश्विनी, भरणी की तरह अन्य पच्चीस कोष्टको मे दिये हुए कृतिका, रोहिणी, मृगसिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा आदि नक्षत्रो के सबध में जान लेना चाहिए।

आठवे चक्र के नीचे सातवे चक्र में ऊपर दिये हुए नक्षत्रो के गण, नाडी और योनि दिये हुए हैं। जैसे कि अश्विनी नक्षत्र के ठीक नीचे के खाने में दे १ आ ४ और अश्व देखते हैं। यहाँ दे से देवगण और अश्व से अश्वयोनि का अभिप्राय है। दे और अश्व अक्षर के मध्यवर्ती आ अक्षर के लिए नाडी का सकेत किया है, पर वह हमें सगत प्रतीत नही होता। अनेक ज्योतिषियो को दिखाने पर भी वे इस सबध में अपना स्पष्ट मतव्य प्रकट नही कर सके। नाडी तो तीन प्रकार की होती है। वह है आदि, मध्य और अत्य। पर हम यहाँ नाडीगत अक्षरो की अपेक्षा कुछ भिन्न ही अक्षर देख रहे हैं। संभवत ज्योतिषियो ने आज-कल के पंचागो में देखकर ऐसे ही इस पर अपना अभिप्राय प्रकट कर दिया होगा। अश्विनी नक्षत्र की तरह शेष छव्वीस नक्षत्रो के भी कोष्टक में किये हुए सकेत के अनुसार गण, योनि आदि जान लेना चाहिए।

सातवे चक्र के नीचे छट्ठे चक्र में राशि स्थान, अधिपति और ऋतु का विवरण दिया गया है। यथा मेष राशि के प्रथम यंत्र में मेष, त म. और वसं देखते हैं। यहाँ मेष से मेष राशि, त, से तनु स्थान म से मेष राशि का मगल आधिपति और वस से उस समय वसंत ऋतु होती है। इसी प्रकार शेष ग्यारह राशियो के खाने में दिये हुए यंत्रो के सम्बन्ध में जान लेना चाहिए।

छट्ठे चक्र के नीचे पाँचवे चक्र में सब ग्रहो की महादशा का वर्णन किया गया है। जैसे १२ वर्ष तक राहु की महादशा, २१ वर्ष तक शुक्र की महादशा, छह वर्ष तक रवि की महादशा, पंद्रह वर्ष तक चन्द्र की महादशा, आठ वर्ष तक मंगल की महादशा, तेरह वर्ष तक बुध की महादशा, दश वर्ष तक शनि की महादशा और १९ वर्ष तक गुरु की महादशा होती है। यह चक्र अष्टोत्तरी महादशा के अनुसार बनाया गया है।

पाँचवे चक्र के नीचे चौथे चक्र में प्रत्येक राशि के वर्ण, योनि और तत्त्व दिये हुए है। जैसे मेष राशि का विप्रवर्ण, मत्स्य योनि और वात तत्त्व होता है। शेष ग्यारह राशियो के वर्ण, योनि और तत्त्व भी चक्र में दिये हुए यंत्र से जान लेना चाहिए।

चौथे चक्र के नीचे तीसरे चक्र में घात चक्र दिया गया है। घात चक्र को अंकित करते समय ठीक अवधान नही रहने के कारण प्रत्येक यंत्र का विवरण अगले यंत्र में दिया गया है। जैसे मेष राशि का घात चक्र वृषभ राशि के यंत्र में है, वृषभ राशि का घात चक्र मिथुन राशि के यंत्र में दिया गया है। इस तरह आगे बढते २ मीन राशि का, घात चक्र मेष राशि के यंत्र में दिया गया है। इसीलिये मेष राशि का घात चक्र उस के नीचे दिये हुए यंत्र में नही पढ़कर वृषभ राशि के नीचे दिये हुए यंत्र में पढना चाहिए। इस क्रम से मेष राशि का घात चक्र इस प्रकार होगा-मेष राशि का घात मास कार्तिक, घात तिथि १, ६, ११, घात वार रवि, घात नक्षत्र मघा, घात प्रहर प्रथम, पुरुष घात चंद्र प्रथम, स्त्री घात चंद्र प्रथम है, वृषभ राशि का घात मास मार्गशीर्ष, घात तिथि ५, १०, १५, घात वार शनि, घात नक्षत्र हस्त, घात प्रहर चतुर्थ, पुरुष घात चंद्र पंचम और स्त्री घात अष्टम है। मिथुन राशि का घात मास आषाढ, घात तिथि २, ७, १२ घात वार सोम, घात नक्षत्र स्वाति, घात प्रहर तृतीय, पुरुष घात चंद्र नववाँ और स्त्री घात चंद्र सातवाँ है। इसी प्रकार कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ, मीन आदि छ राशियो के आगे के यंत्र में दिये हुए विवरण से जान लेना चाहिए।

अब अवशिष्ट रह जाते है द्वितीय और प्रथम यंत्र। इन यंत्रो के संबंध में बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं प्रकाश डालने मे सर्वथा असमर्थ हूँ। प्रथम तो ज्योतिष मेरा विषय नही। इस विषय की किसी भी पुस्तक का मैने अभी तक अध्ययन नही किया। ऊपर जो कुछ लिखा गया, वह सब उपाध्याय मुनि श्री आनंदऋषिजी महाराज तथा अन्य ज्योतिषी मित्रो से ज्ञान प्राप्तकर लिखा गया है। अंतिम दो यंत्रो के संबंध मे कुछ जानकारी प्राप्त नही कर सकने के कारण तत्संबंधी ज्ञान प्राप्त करने हेतु मैं अहमदनगर में भी अनेक विख्यात ज्योतिषियो से मिला, पर कोई भी संतोषजनक उत्तर नही दे सका। इस प्रकार इन दो यंत्रो के संबंध में कुछ जानकारी प्राप्त नही होने से मैंने इनके संबंध मे कुछ भी नही लिखा है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज साहब ने पहले ही इस यंत्र के संबंध में अपनी ओर से लिख दिया है— 'ज्योतिष चक्र चरिय है समझे चातुर चंग' इस ज्योतिष चक्र को कोई अच्छा चतुर व्यक्ति ही समझ सकता है। इस लिये इन दो चक्रो मे दिये हुए विवरण के विवेचन करने का भार हम ज्योतिष शास्त्र के निष्णात पंडितो पर ही छोड देते है।

इसी चक्र के दो कोनो में आपश्री ने इस यंत्र की प्रतिलिपि करने के वार, तिथि, संवत् आदि का इस प्रकार उल्लेख किया है— श्री ॥ ६० ॥ ज्योतिष चक्र

छे, संवत् १९२८ आश्विन कृष्ण ६, भृगुवासरे लिपिकृत तिलोकरिख, सहर साहजापुर।

जिस समय महाराज श्री की अवस्था केवल २४ वर्ष की थी, उस समय उन्होने इस यंत्र की प्रतिलिपि की। इस यत्र का अध्ययन कर कोई भी सुज्ञ पाठक अनुमान कर सकता है कि पूज्यपाद तिलोक ऋषिजी महाराज का ज्योतिष विषयक ज्ञान भी कितना अगाध था। हमे आश्चर्य तो इस बात से होता है कि ये अहर्निश अध्ययन- अध्यापन, लेखन, प्रतिलिपि, काव्य- निर्माण, व्याख्यान देना और मुनिजनोचित क्रियाओ में रत रहते थे। इतने कार्यों के बीच आप श्री ने ज्योतिष संबंधी ज्ञान सपादन करने के लिए कहाँ से समय निकाला होगा? आप में एक प्रकृतिदत्त स्वयँ प्रतिभा थी, जिसके बल से किसी के नही सिखाने पर भी केवल स्वय- प्रेरणा से आपने इतने विषयो का ज्ञान सपादन कर लिया।

इस ज्योतिष- चक्र के अतिरिक्त पूज्यपाद महाराज श्री ने सवत् १९२५ फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को मोना (म प्र) में एक ज्योतिष बिषयक नवग्रहो का महान् चित्र भी चित्रित किया है। इस बृहदाकार चित्र मे महाराज श्री ने सक्षेप मे सारे ज्योतिष बिषयक ज्ञान का समावेश कर दिया है, पर जैसा कि मै पहले लिख चुका हूँ। ज्योतिष मेरा विषय नही, साहित्य तथा दर्शन मेरा मुख्य विषय रहा है। प्रारभ से ही मैंने ज्ञान के इस मुख्य अग की उपेक्षा की है। अतएव इस महत्त्वपूर्ण कृति का विवेचन करने में मै अपने आप को असमर्थ पाता हूँ। प्रस्तुत पन्ना उपाध्याय मुनि श्री के पास है। पाठक आप श्री के पास उसका अवलोकन कर सकते है। पाठक उसे देखकर स्व महाराज श्री के ज्योतिष विषयक तलस्पर्शी अध्ययन की कुछ कल्पना कर सकते है। इन चित्रो के अतिरिक्त आपके हस्त—लिखित ऐसे अनेक पत्र प्राप्त हुए है, जिनमें कि इस विषय का विशद एवं स्पष्ट विवेचन किया गया है

पन्नवणा पद ११

पाठक सामने जो पन्ना देख रहे है, वह ९$\frac{7}{8}$ इंच लबा और ढाई इंच चौडा है। इस पन्ने के केवल ५$\frac{7}{8}$ इच लबे और ढाई इंच चौडे भाग में पन्नवणा सूत्र के ग्यारहवे पद में सन्निहित भाषा विषयक—विपय का सक्षेप में सन्निवेश किया गया है। पन्ने के बीच में एक कलाकार की तरह लता का चित्र चित्रित किया गया है, उसपर विकसित पुष्प लगे हुए है और उन पुष्पो पर सुदर लिपि में ग्यारह का अंक दिया गया है। ग्यारह अक के ऊपर पन्नवणा पद अको की तरह ही

लिपि के आदर्शानुरूप सुदर अक्षरो में लिखा गया है। इतने अल्प भाग में भी ऊपरवर्ती लता के आसपास का बहुत-सा भाग खाली है और नीचे अक्षरोको कलात्मक ढग से त्रिकोण रूपमे लिखने के कारण दोनो ओर की जगह छुटी हुई है।

अवशिष्ट थोडी-सी जगह में आपश्री ने सक्षेप में पन्नवणासूत्र के भापा संबंधी विषय को इस खूबी से लिखा है कि उसमें थोडी-सी भी अस्पष्टता नही रही है।

मनुष्य के विचारो के आदान-प्रदान में मुख्य सावन भापा है। भाषा के सवध में अनेक दार्शनिको ने विभिन्न रूप से विचार किया है, पर जैन वाङमय मे भाषा के सवंध में जितनी सूक्ष्मता से विचार किया गया है, वह अन्यत्र दृष्टि–गोचर नही होता। भाषा विषयक जितनी ज्ञातव्य बाते है, उन सव पर इसमें सूक्ष्म दृष्टि से प्रकाश डाला गया है।

भाषा वोलनेवाले प्राणी पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय होते है। ये प्राणी कुल २३९ दो सौ उनचालीस प्रकार से पुद्‌गलो को ग्रहण कर भापा वोलते है। वे २३९ प्रकार के पुद्‌गल किस प्रकार ग्रहण करते है, इस पर ऊपर के फलक में अंकित पन्नवणा पद ११ में प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक प्राणी भाषा को ग्रहण करते समय वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रूप से ग्रहण करता है। वर्ण से ग्रहण करते समय एक गुण काला, दो गुण काला, तीन गुण काला, चार गुण काला, पाँच गुण काला, छ गुण काला, सात गुण काला, आठ गुण काला, नौ गुण काला, दस गुण काला, संख्येय गुण काला, असंख्येय गुण काला, अनंत गुण काला इस प्रकार तेरह बोल से ग्रहण करता है। इसी प्रकार गध रस और स्पर्श भी एक गुण, द्विगुण, त्रिगुण आदि उपर्युक्त तेरह बोलो से ग्रहण करता है। भापा वर्गणा के पुद्‌गलो मे पाँचो प्रकार के वर्ण, दो प्रकार की गंध, पाँचो प्रकार के रस और आठ स्पर्शों में केवल चार प्रकार के स्पर्श होते है। आठ स्पर्शों मे प्राणी केवल शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शवाले भाषा वर्गणा के पुद्‌गल ही ग्रहण करता है। ऊपर कहे हुए एक गुणादि तेरह बोलो का ५वर्ण, २ गंध, ५रस और ४ स्पर्श इन १६ से गुणन करने पर २०८ दो सौ आठ बोल हुए।

जव प्राणी एक गुण काले यावत् अनत गुण रूक्ष भाषा वर्गणा के पुद्‌गल ग्रहण करता है, तो वह एक समय की स्थिति से लेकर यावत् अनत समय स्थिति का उपर्युक्त तेरह प्रकार से ग्रहण करता है। २०८ में इन तेरह वोलो को मिलाने पर २२१ हुए।

इन भाषा वर्गणा के पुद्गलो को भी भाषा बोलने वाला प्राणी स्पर्श किये हुए पद्गलो को ग्रहण करता है अवगाह कर ग्रहण करता है, अनतर अवगाहित ग्रहण करता है, सूक्ष्म और बादर (दोनो प्रकार के भाषा वर्गणा के पुद्गल) ग्रहण करता है, वह ऊर्ध्व, अधो तथा तिर्यक् दिशा के भाषा वर्गणा के पुद्गल ग्रहण करता है, वह आदि मध्य तथा पर्यंवसान (अत) मे इस प्रकार तीनो दिशा के पुदगल ग्रहण करता है,

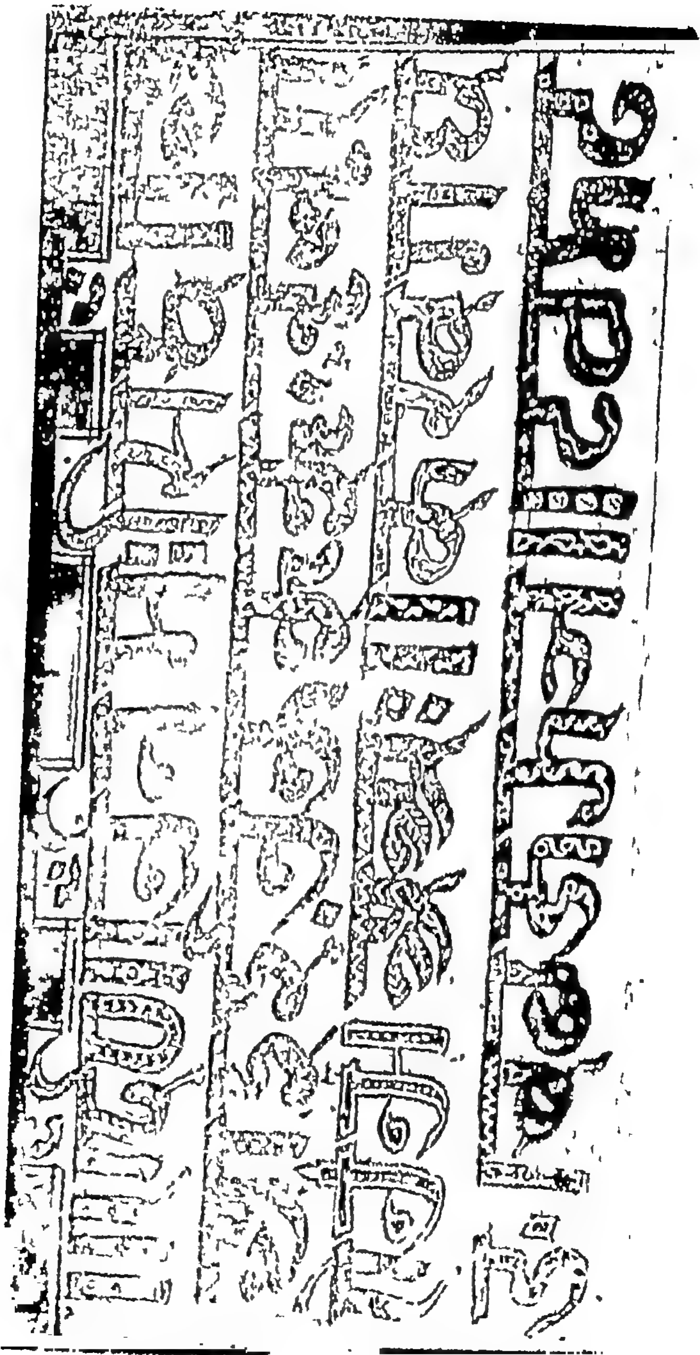
इस प्रकार स्पर्श, अवगाह, अनतर, निरतर, सूक्ष्म, वादर, उर्ध्व, अधो, तिर्यक्, आदि, मध्य और पर्यंवसान इन बारह को उपर्युक्त २२१ दो सौ इक्कीस वोलो मे मिलाने पर २३३ बोल हुए।

इन सब भाषा वर्गणा के पद्गलो को वह विषय सहित ग्रहण करता है विषयसहित होने पर भी वह अनुपूर्वी से ग्रहण करता है, अनानुपूर्वी से नही, इन सव को भी छहो दिशाओ से ग्रहण करता है। क्यो कि भाषा बोलनेवाले जीव लोक के मध्य में होने से वे छह दिशाओ से ही भाषा वर्गणा के पुद्गल ग्रहण कर सकते है, अधिक दिशाओ से नही। इस प्रकार स्पर्शते हुए, अवगाहित, अनन्तर सूक्ष्म, व बादर, उर्ध्व, अधो, तिर्यक्, आदि, मध्य, पर्यंवसान विषय, पूर्ति और नियमा छ दिशा के पुद्गलो को भाषक जीव ग्रहण करते हैं। २३३ में इन छ को मिलाने पर कुल २३९ दो सौ उचालिस बोल हुए।

अत मे V व्ही की आकृति मे इस प्रकार लिखा गया है—संवत् १९२८ पोष सुद २ शुक्रवासर, लिपिकृत तिलोक रिख साहजापूर।

जब श्रमणसंघीय प्रधान मत्री (वर्तमान में उपाध्याय) मुनि श्रीआनद ऋषिजी महाराज सा मेवाड प्रात में विहार कर रहे थे, तब गुलाबपुरा के समीपवर्ती मसूदा नामक ग्राम मे आप श्री की खीचनवाले स्थविर मुनि श्रीमोतीलालजी महाराजसाहब से भेट हुई। उपाध्याय मुनि श्री स्थविर मुनिजी के पास दिवगत श्री तिलोकऋषिजी महाराज द्वारा विरचित उपर्युक्त पन्ना देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने दादागुरु के उस पन्ने की आप श्री ने प्रतिलिपि करनी चाही, तब स्थविर मुनिने उपाध्यायश्री को यह पन्ना दे दिया और इस पन्ने की प्रतिलिपि स्थविर मुनि श्री को देने में आई। एतदर्थ स्थविर मुनि श्री मोतीलालजी महाराज के हम कृतज्ञ है।





वर्तनिका या मातृका पद



अध्ययन प्रारंभ करने के पूर्व प्रथम वर्तनिका अर्थात् स्वर-व्यंजन तथा संयुक्त अक्षरो का ज्ञान एवं अको को जानना अत्यावश्यक है। अध्ययन की दिशा मे प्रगति करनेवाला जब तक उनका ज्ञान प्राप्त नही कर लेता तब तक वह एक कदम भी आगे नही बढ सकता। साक्षर बनने के लिए इनका ज्ञान प्राप्त करना ऊपर चढ़ने के लिए प्रथम सोपान है। साक्षर जीवन की यह बुनियाद है। इसलिये अत्यन्त अध्ययनशील व्यक्ति की भी किसी को साक्षर बनाते समय सर्व प्रथम उन्हे अच्छी तरह सिखाने की ओर दृष्टि रहती है। अक्षरो का जीवन के साथ संबंध है। जिस व्यक्ति के अक्षर जितने अच्छे होते है, उसका जीवन उतना ही लोकप्रिय होता है। इसलिए बडे-बडे महापुरुष सुंदर लेख की ओर बराबर भार देते रहे है।

पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज ने अपने जीवनकाल मे विद्वत्ता की दृष्टि से बडे-बडे आध्यात्मिक ग्रंथो की रचना की पर उनकी दृष्टि मे विद्वत्ता प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम उपयोगी वर्तनिका और अंक ओझल नही रहे। उन्हे किस प्रकार लिखना चाहिये? उनकी गोलाई आकृति और मोड़ कैसी होनी चाहिये? किस प्रकार लिखने से वे आँखो को अधिक सुदर लग सकते है आदि सब विषयो की ओर उनकी सपूर्ण दृष्टि थी। इसी दृष्टि से ऊपर के फलक में उन्होने वर्तनिका की लेखन-कला का एक सर्वांगसुदर आदर्श उपस्थित किया है।

फलक में हम जो लिपि देख रहे है वह मुद्रण युग के पूर्व पत्रो में लिखी जानेवाली शास्त्रीय लिपि है। दसवी शताब्दी के बाद से हमारे मुनिवृद तथा लहिये लिखते समय जिस लिपि का प्रयोग करते रहे है, वे सब प्राय इसी लिपि में लिखते थे। पूज्यपाद तिलोक ऋषिजी महाराज ने भी शास्त्रो में प्रयुक्त इसी लिपि को उपर्युक्त पत्र में अंकित किया है।

अब इन सब अक्षरो पर कला की दृष्टि से अपना विचार प्रस्तुत करता हूँ। पाठक इस फलक का अवलोकन कर जान सकते है कि प्रथम अक्षर जिस रूप से लिखा गया है, कला की दृष्टि से दूसरा उस से सर्वथा भिन्न है। एक ही भात से सब अक्षर नही लिखे गये है। सब की भात भिन्न-भिन्न है। भात में कही पर पुनरुक्ति दोष दृष्टि-गोचर नही होता। यहाँ तक कि अक्षरो में जो आडी-टेढी, लंबी-चौडी, तिरछी या गोल रेखाएँ देखते है, उनमे भी कही साम्य

इन भापा वर्गणा के पुद्गलो को भी भाषा बोलने वाला प्राणी स्पर्श किये हुए पद्गलो को ग्रहण करता है अवगाह कर ग्रहण करता है, अनतर अवगाहित ग्रहण करता है, सूक्ष्म और बादर (दोनो प्रकार के भापा वर्गणा के पुद्गल) ग्रहण करता है, वह ऊर्ध्व, अधो तथा तिर्यक् दिशा के भाषा वर्गणा के पुद्गल ग्रहण करता है, वह आदि मध्य तथा पर्यवसान (अत) मे इस प्रकार तीनो दिशा के पुद्गल ग्रहण करता है,

इस प्रकार स्पर्श, अवगाह, अनतर, निरतर, सूक्ष्म, वादर, उर्ध्व, अधो, तिर्यक्, आदि, मध्य और पर्यवसान इन बारह को उपर्पुक्त २२१ दो सौ इक्कीस बोलो में मिलाने पर २३३ बोल हुए।

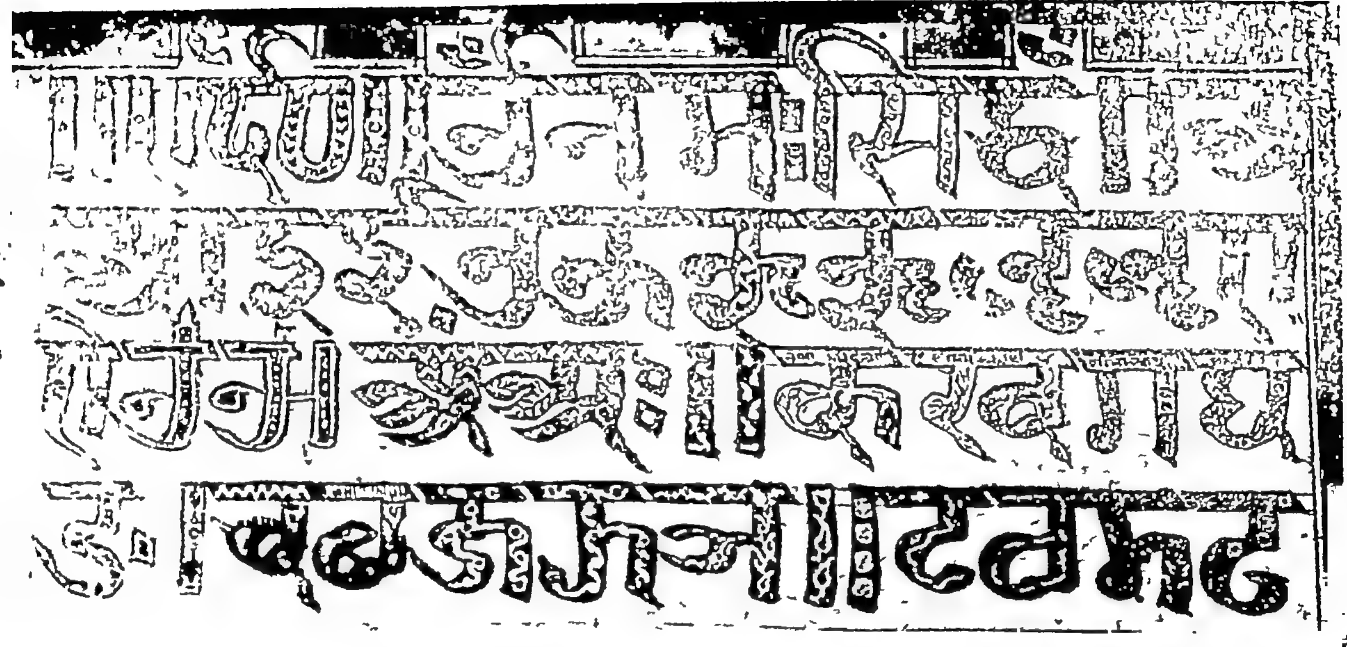
इन सब भापा वर्गणा के पद्गलो को वह विषय सहित ग्रहण करता है विपयसहित होने पर भी वह अनुपूर्वी से ग्रहण करता है, अनानुपूर्वी से नही, इन सब को भी छहो दिशाओ से ग्रहण करता है। क्यो कि भाषा बोलनेवाले जीव लोक के मध्य में होने से वे छह दिशाओ से ही भाषा वर्गणा के पुद्गल ग्रहण कर सकते है, अधिक दिशाओ से नही। इस प्रकार स्पर्शते हुए, अवगाहित, अनन्तर सूक्ष्म, व बादर, उर्ध्व, अधो, तिर्यक्, आदि, मध्य, पर्यवसान विषय, पूर्ति और नियमा छ दिशा के पुद्गलो को भाषक जीव ग्रहण करते है। २३३ में इन छ को मिलाने पर कुल २३९ दो सौ उचालिस बोल हुए।

अत मे V व्ही की आकृति मे इस प्रकार लिखा गया हैं--संवत् १९२८ पौष सुद २ शुक्रवासर, लिपिकृत तिलोक रिख साहजापूर।

जब श्रमणसंघीय प्रधान मत्री (वर्तमान में उपाध्याय) मुनि श्रीआनद ऋपिजी महाराज सा मेवाड प्रात में विहार कर रहे थे, तब गुलाबपुरा के समीपवर्ती मसूदा नामक ग्राम मे आप श्री की खीचनवाले स्थविर मुनि श्रीमोतीलालजी महाराजसाहब से भेट हुई। उपाध्याय मुनि श्री स्थविर मुनिजी के पास दिवगत श्री तिलोकऋषिजी महाराज द्वारा विरचित उपर्युक्त पन्ना देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने दादागुरु के उस पन्ने की आप श्री ने प्रतिलिपि करनी चाही, तब स्थविर मुनिने उपाध्यायश्री को यह पन्ना दे दिया और इस पन्ने की प्रतिलिपि स्थविर मुनि श्री को देने में आई। एतदर्थ स्थविर मुनि श्री मोतीलालजी महाराज के हम कृतज्ञ है।



वर्तनिका या मातृका पद विवेचन पृष्ठ २०२



वर्तनिका या मातृका पद

अध्ययन प्रारंभ करने के पूर्व प्रथम वर्तनिका अर्थात् स्वर-व्यंजन तथा सयुक्त अक्षरो का ज्ञान एवं अको को जानना अत्यावश्यक है। अध्ययन की दिशा मे प्रगति करनेवाला जब तक उनका ज्ञान प्राप्त नही कर लेता तब तक वह एक कदम भी आगे नही बढ सकता। साक्षर बनने के लिए इनका ज्ञान प्राप्त करना ऊपर चढने के लिए प्रथम सोपान है। साक्षर जीवन की यह बुनियाद है। इसलिये अत्यन्त अध्ययनशील व्यक्ति की भी किसी को साक्षर बनाते समय सर्व प्रथम उन्हे अच्छी तरह सिखाने की ओर दृष्टि रहती है। अक्षरो का जीवन के साथ सबंध है। जिस व्यक्ति के अक्षर जितने अच्छे होते है, उसका जीवन उतना ही लोकप्रिय होता है। इसलिए बडे-बडे महापुरुष सुंदर लेख की ओर बराबर भार देते रहे है।

पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज ने अपने जीवनकाल मे विद्वत्ता की दृष्टि से बडे-बडे आध्यात्मिक ग्रंथो की रचना की पर उनकी दृष्टि से विद्वत्ता प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम उपयोगी वर्तनिका और अंक ओझल नही रहे। उन्हे किस प्रकार लिखना चाहिये ? उनकी गोलाई आकृति और मोड़ कैसी होनी चाहिये ? किस प्रकार लिखने से वे आँखो को अधिक सुदर लग सकते है आदि सब विषयो की ओर उनकी सपूर्ण दृष्टि थी। इसी दृष्टि से ऊपर के फलक में उन्होने वर्तनिका की लेखन-कला का एक सर्वांगसुदर आदर्श उपस्थित किया है।

फलक में हम जो लिपि देख रहे है वह मुद्रण युग के पूर्व पत्रो में लिखी जानेवाली शास्त्रीय लिपि है। दसवी शताब्दी के बाद से हमारे मुनिवृद तथा लहिये लिखते समय जिस लिपि का प्रयोग करते रहे है, वे सब प्राय इसी लिपि में लिखते थे। पूज्यपाद तिलोक ऋपिजी महाराज ने भी शास्त्रो में प्रयुक्त इसी लिपि को उपर्युक्त पत्र में अंकित किया है।

अब इन सब अक्षरो पर कला की दृष्टि से अपना विचार प्रस्तुत करता हूँ। पाठक इस फलक का अवलोकन कर जान सकते है कि प्रथम अक्षर जिस रूप से लिखा गया है, कला की दृष्टि से दूसरा उस से सर्वथा भिन्न है। एक ही भात से सब अक्षर नही लिखे गये है। सब की भात भिन्न-भिन्न है। भात में कही पर पुनरुक्ति दोष दृष्टि-गोचर नही होता। यहाँ तक कि अक्षरो में जो आडी-टेढी, लंबी-चौडी, तिरछी या गोल रेखाएँ देखते है, उनमें भी कही साम्य

नही । कटे हुए मोटे वरु से लिखते समय अक्षरो की जैसी मोटाई होनी चाहिए वैसी इन अक्षरो की मोटाई है । पर वे एक कलाकार की दृष्टि से चित्रित करने के कारण संपूर्ण रूप से रोशनाई से परिपूर्ण नहीं है, उन्हे लकीरो के रूप में अंकित कर रोशनाईवाले भाग को अत्यंत कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है । इसी दृष्टि से अब हम उन सब अक्षरो का अवलोकन करे ।

सर्व प्रथम दो लबी रेखाएँ और ए की आकृति लिखकर (ꣻ ।। ए) मगलाचरण लिखा गया है । इसके बाद पुन दो खडी लकीरे अंकित की गई है। प्रथम दो खडी रेखाओ मे तीन फुलडियाँ और फुलडियों के मध्य में नीले रग की दो बिदुएँ है । मध्यवर्ती फुलडियाँ बिलकुल लाल है । ऊपर और नीचे की आकृति मे पहले दो नीले रग की बिदुएँ अंकित कर उनके चारो ओर लाल रंग की फुलडियाँ चित्रित की गई है । उसके बाद ए की आकृति भी पहली दो रेखाओ की तरह ही चित्रित की गई है, पर ध्यानपूर्वक देखने से उनमे थोडा-सा अतर दृष्टिगोचर होता है । पहले की मध्यवर्ती आकृतियो में जहाँ बिदु सपूर्ण है, वहाँ इसमें ऊपर का कुछ भाग रिक्त है और इसके चारो ओर इसी प्रकार लाल रंग की फुलड़ियाँ है । इसके बाद अब हम दँ ० इस रूप में मंगलाचरण देखते है । इस मगलाचरण के प्रथम अक्षर की शिरोरेखा और ऊपर की ए आकृति के मध्य मे एक काली रेखा है । शिरोरेखावर्ती मध्य रेखा के बीच मे दो सफेद बिदुएँ है और मध्यरेखा के आस-पास लाल बिदुएँ है । र् आकृति के पीछे जो चद्रबिंदु है वह लाल एव काली बिदुओ से चित्रित किया गया है । शिरोरेखा के नीचे जो द की आकृति है, उसके मध्य मे दोनो ओर वक्राकार काली रेखा के बीच खाली वक्राकार सफेद जगह है, काली रेखा के आस-पास लाल बिदुएँ है और अक्षर के नीचे का भाग छोटा होने से उसके बीच का हिस्सा खाली है । मगलाचरण मे ही जो आगे ० की आकृति है, इसकी शिरोरेखा के मध्य मे काली खडी लकीरे खीचकर उनके आस-पास लाल बिदुएँ अंकित की गई है । ० अक्षर के मध्य में अंग्रेजी V की आकृति मोटे रूप मे चित्रित कर दोनो कोनो की ओर लाल बिदुएँ दी गई है । निम्नवर्ती मध्य भाग मे काली लकीर के बीच लाल बिदुएँ है । मगलाचरण के बाद पूर्ववत् पुन. दो खडी लकीरे खीची गई है । उनके मध्यवर्ती भाग मे काली रोशनाई के बीच एक सफेद शृंखला की आकृति देखते है । सफेद शृखला के बीच मे छोटी-छोटी काली बिदुएँ दी गई है। उसके बाद अक्षरारम्भ के पूर्व [illegible] ॐ नम. सिद्धं ॥ आता है । पत्र मे ये अक्षर ही पाठक का सबसे

अधिक अपनी ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। ॐ को लिखने में काली, पीली, लाल और नीली इन चार रोशनाइयो का उपयोग किया गया है। इसकी शिरोरेखा तथा अक्षर के मध्य में वक्राकार काली रेखा है, वक्ररेखा के मध्य-मध्य मे सफेद बिन्दुएँ है और रेखा के आसपास का स्थान पीले रग से भर कर थोडे-थोडे अंतर से लाल टीलियाँ दी गई है। न आकृतिवाला मध्यवर्ती भाग कुछ छोटा होने से केवल बडे भाग को काली रोशनाई से ॐ इस प्रकार चित्रित किया गया है। ॐ के ऊपर जो रेफ की आकृति तथा चन्द्रबिन्दु है, उनमें से रेफ के मध्य के हिस्से की काली लकीर के ऊपर और नीचे काली लकीरे बिलकुल पास-पास खीचकर सुदर बनाया गया है और रेफ के पास में स्थित चन्द्रबिन्दु में पीला रग भरकर लाल बिन्दियाँ दी गई है। चन्द्रबिन्दु मे लाल रंग का एक चतुष्कोण भी है। ऊपरवर्ती बिंदी में एक और चन्द्रबिन्दु है।

र्नु के बाद न आता है। न के ऊपर की शिरोरेखा मे चार सफेद बिंदियाँ क्रमश नीले, लाल और पीले रंग की बनी हुई है। बिंदिओं के आस-पास का भाग पीले रंग से भरकर शून्य के ऊपर और नीचे बडे कलात्मक ढंग से काली बिंदियाँ दी गई है। न के काने को चित्रित करने मे और दृष्टि से काम लिया गया है। इसमे भी तीन सफेद बिंदियाँ नीले रग की बनाई गई है। इन बिंदियो के बीच के रिक्त भाग को पीले रग से भरकर पुन मध्यवर्ती भाग में दो सफेद बिंदियाँ और अंकित की गई है। ये बिंदियाँ लाल रग की है। इस भाग के दोनो ओर लकीर के रूप में दो साकल है। न के मध्यवर्ती भाग को दोनो ओर रोमाकार काली रेखाओ से सजाकर प्रारंभ के बडे भाग को एक सफेद बिंदी अंकित कर उसके आस-पास और अनेक सफेद बिंदियाँ चित्रित कर सजाया गया है।

न के बाद हम मः देखते हैं। म की आकृति लेहरिया भातवाले कपडे की तरह है। ऊपर की शिरोरेखा में पहले वक्राकार लाल एव नीली रेखा चित्रित कर उसके आस-पास सफेद बिंदियाँ दी गई है। लकीर एव बिंदियो के आस-पास का हिस्स पीले एव लाल रंग से भरा गया है। नीचे म की आकृति मे दोनो ओर लाल, पीली एव नीली लेहरिया भात है। इन वक्राकार रेखाओ के बीच में सफेद बिंदियाँ है। 'म' के मध्यवर्ती पीले भाग में पाँच काली बिंदियाँ है। 'म' के सामने की दोनो बिंदियो में से ऊपर की बिंदियाँ में श्वेत रग की ॐ यह आकृति बनाकर उसे लाल रंग से पूर्ण करके खाली हिस्से में पीला रग भरा गया है और नीचे की बिंदी में चार चतुष्कोण अकित कर ऊपर की तरह ही उसे लाल एव पीले रग से पूरा गया है।

म के बाद 'सिद्धं' वर्ती सि पर दृष्टि पडती है। उसमें लाल रंगवाली जजीर के बीच नीले रग के अकोडे देकर उनके दोनो और कलात्मक ढग से काली बिंदियां अकित की गई है। स के मध्यवर्ती छोटे हिस्से में पॉच काली बिंदियाँ है। म के प्रारभ मे जो छोटी इ ि मात्रा है। उसकी ओर स की आकृति मे भी कुछ भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इ की मात्रा की मध्यवर्ती साकल केवक्ष वक्राकार लाल रग की नही बनाकर 'म' की उपर की बिंदी मे निर्मित * एक वर्णवाली बनाई गई है। शेष भाग की पूर्ति स की तरह ही की गई है।

सि के बाद 'द्ध' की आकृति देखते है। इस आकृति वाले अक्षर के मध्यवर्ती भाग को काली जजीर के बीच नीले अकोडे देकर उसके आस-पास के रिक्त भाग को पीले रग से भरा गया है और अक्षरो की आकृति वाली लाइनों में दोनो ओर पास-पास अनेक लाल रेखाएँ दी गई है। 'द्ध' के ऊपर चद्रबिंदु है, + वह भी लाल रेखाओ से खचित कर पीले रग से भरा गया है। चद्र की आकृति मे दो काली बिंदियाँ है।

'द्ध' के बाद दो खडी लकीरे '।।' खिची गई है। इन लकीरो के मध्य म काली जजीरो के बीच लाल एवं नीले रग के तीन अकोडे है। तीन अकोडो में भी दोनो जगह बीच का अकोडा लाल है और ऊपर तथा नीचे के अंकोडे नीले एव लाल रग के है। नीले रग के ऊपर लाल रेखा खचित की गई है। लाइनो की आकृति के रूप में बनाई गई इन रेखाओ के अदर की ओर स अक्षर की तरह रोमाकार अनेक काली लाईने खिची गई है और अवशिष्ट भाग पीले रग से भरा गया है।

।। ॐ नम सिद्ध ।। के बाद वर्तनिका या मातृका पद में सर्व प्रथम सिखाये जानेवाले स्वरो पर दृष्टि पडती है। स्वरो में अवर्ण का प्रथम स्थान है।

स्वरो में सर्व प्रथम अ आता है। अ की आकृति 'ऋ' इस प्रकार दी गई है। प्रथम ऊपर की शिरोरेखा मे हम तीन सफेद बिन्दियाँ देखते है। तीनो सफेद बिन्दियो के मध्य मे छोटी-छोटी लाल बिन्दियाँ है, वह भी केवळ एक को छोड शेष सारी रेखा के मध्य में कखरीदार काली लाइन खिची गई है, इस लाइन के मध्य में कुछ-कुछ अतर से केवल एक-एक काली रेखा खीचकर उसके आस-पास अनेक रोएँदार रेखाएँ खिची गई है। अवशिष्ट भाग की पूर्ति पीले रग से की गई है। शिरोरेखा के नीचे जो अ की आकृति है, उसके काने की ओर ऊपर से नीचे की तरफ अंग्रेजी टी की चार उल्टी ⟩ आकृतियां बनाकर अवशिष्ट भाग में काली और आडी काली लकीरे खीचकर शेष भाग को पीले रग से भरा

गया है। अ अक्षर शुरु करने के प्रारम्भिक भाग मे दो अंग्रेजी A की आकृति काली स्याही से बनाई गई है। शेष की पूर्ति इस अक्षर के काने की तरह हो की गई है। अ की आकृति का मुख्य अंश जो कि चूल्हे के रुप में ⥲ इस प्रकार लिखा जाता है, उसके ऊपर के हिस्से में पास–पास अकोडेदार तीन काली विंदियाँ हैं। शेष भाग अ की तरह छोटी–छोटी काली लाइनो से खचितकर पीले रंग से भरा गया है।

अवर्ण में दूसरा आ है। इस अक्षर की शिरोरेखा में भी अ की तरह चार सफेद बिन्दियाँ देकर उनके मध्य मे चार लाल बिन्दियाँ दी गई है। अवशिष्ट भाग में कर-वरीदार या वक्राकार ~~~ लाल रेखा खीचकर वक्र–रेखा के मध्य मध्य मे काली V ध्ही की आकृति बनाकर अवशिष्ट भाग को पीले रग से भरा गया है। उसके मुख्य अग चूल्हे को पीले रंग से भरकर छोटी–बडी अनेक काली रेखाओ से खचित किया गया है। आ के प्रारम्भिक अंश के मध्य में एक सफेद विन्दु के मध्य में लाल विन्दु है। अवशिष्ट भाग आ के मुख्य अश चूल्हे की तरह है। आ अक्षर को सपूर्ण बनानेवाले पहले के वक्र काने के मध्य में तीन सफेद और दो नीली बिन्दियाँ है। सफेद बिन्दियो के मध्य में नीली और नीली बिन्दियो के बीच मे सफेद बिन्दियाँ दी गई है। शेष भाग को पूर्ववत् पीले रग से भरकर काली रेखाओ से खचित किया गया है। आ की पूर्ति के रुप मे लिखे जानेवाले ा काने के मध्य में एक लाल रेखा खीच कर पाँच काली तथा पाँच सफेद बिन्दियाँ दी गई है। सफेद बिन्दियो के मध्य मे लाल बिन्दियाँ है। शेष भाग पहले की तरह रंग से परिपूर्ण है।

'इ ई' इ वर्ण की आकृति बनाने मे अधिकतर काले रग का उपयोग किया गया है। मूलाक्षर अवर्ण को लिखते समय लाल स्याही का उपयोग किया गया है, जब कि इ वर्ण को लिखने मे काले रंग का उपयोग किया है। इ की शिरो-रेखा में दो छोटी–छोटी सफेद बिन्दियो के मध्य में एक–एक और बिन्दी दी गई है। अवशिष्ट सारा भाग लाल रग का है। शिरोरेखा के नीचे ड आकृति मे भी छ सफेद बिंदियो के मध्य में काली बिन्दियाँ देकर शेष भाग ऊपर की तरह लाल रग से भरा गया है। इ की गाँठ के पास अंतिम सफेद बिन्दी के समीपवर्ती सफेद तारक के मध्य में काला चन्द्रबिन्दु है।

दीर्घ ई की आकृति भी ह्रस्व इ की तरह बनाई गई है। उसमे ऊपर की मात्रा के मध्य में लाल अंश के बीच सफेद रिक्त भाग है, इसी तरह ई की ऊपर की शिरोरेखा में भी एक सफेद बिंदी देकर छोटी-सी सफेद लाइन खिची गई है

और ई की आकृति में छींटे दिये हो इस प्रकार पाँच सफेद बिंदियाँ है। सब के ऊपर का सफेद अंग लाइन की आकृति का है। नीचे जो ई की गाठ है, उसमें तारकाकार तिलक के मध्य मे काली रेखा है। शेष भाग ह्रस्व इ की तरह लाल रंग से परिपूर्ण है।

'उ ऊ' उ की आकृति जैन वाङमय मे अंकित नुँ (ॐ) की आकृति से कुछ मिलती-जुलती है। उ के ऊपर की शिरोरेखा के मध्य मे एक लाल रंग की लहरिया है दार रेखा के बीच-बीच में चार श्वेत बिंदियाँ उन बिंदियो की पूर्ति नीले रग से की गई है। प्रत्येक सफेद बिंदी की मध्य में एक-एक अत्यंत छोटी लाल बिंदी देखते है। इस लाल रग की साकल को रोएँदार अनेक काली रेखाओ से खचित किया गया है। शिरोरेखा के नीचे जो 'नु' का भाग है, इसके केवल मध्य भाग को छोडकर शेष भाग शिरोरेखा की तरह ही चित्रित किया गया है। मध्य के भाग में तिलक के आकार की नीले रग की आकृति बनाकर उसके बीच में लाल रंग की बिंदी दी गई है। बिंदी के आस-पास की छुटी जगह सफेद है। तिलक के आस-पास पीले स्थान पर अनेक काली रेखाएँ खिंची गई है।

ह्रस्व उ के बाद दीर्घ ऊ आता है। ह्रस्व उ की अपेक्षा इसके चित्रण में कुछ अन्तर है। दीर्घ ऊ की शिरोरेखा मे ऊपर और नीचे सफेद और लाल रग की तीन तीन अंग्रेजी V वी की आकृति चित्रित की गई है। सफेद रंग की वी की लाइनो को खचित करने में नीले रंग का उपयोग किया गया है। ऊपरवर्ती इन तीन वी की आकृतियो के ऊपर लाल रग की एक-एक और वी की आकृति चित्रित की गई है। नीचे जो लाल रग की वी की आकृति है उसके बाह्य भाग को रोएँदार अनेक काली रेखाओ से खचितकर वी के मध्यवर्ती भाग को पीले रग से भरा गया है। शिरोरेखा के नीचे निर्मित ऊ के लंबाकार भाग के चित्रण करने मे शिरोरेखा की तरह ही काम लिया गया है। उसमें भी तीन सफेद वी की आकृतियाँ चारो ओर नीली रेखाएँ खिंचकर बनाई गई है। वी के ऊपर और नीचे लाल रग की वी की आकृतियाँ बनाकर अवशिष्ट पीले भाग मे सघन काली रेखाएँ खिंची गई है। दीर्घ ऊ का मध्यवर्ती भाग ह्रस्व उ की तरह है और ह्रस्व उ की अपेक्षा दीर्घ ऊ का जो अधिक भाग है, वह भी ह्रस्व और दीर्घ ऊ के मध्यवर्ती भाग की तरह चित्रित किया गया है। केवल नीले रग के तिलक के नीचे एक सफेद बिंदी की नीले रग से पूर्ति कर उसके बीच मे लाल बिंदी दी गई है।

'ऋ ॠ' आज कल मुद्रणयुग में लिखी जाने वाली ऋ की अपेक्षा पाठक इस शास्त्रीय ऋ की आकृति कुछ भिन्न देखते है। पहले ऋ की ऊपर की शिरो-रेखा को नीले रंग से भरकर नील वर्ण के मध्य में सात सफेद बिंदुएँ देकर उसके बीच में एक-एक लाल बिंदी दी गई है। नीचे लंबाकार ऋ की आकृति मे सफेद लना की आकृति चित्रित कर उस पर सफेद पुष्प बनाये गये है। लता के आस-पास भाग नीले रंग से भरकर लबाकार ऋ की रेखा के पास अनेक सफेद बिदियाँ अंकित की गई है। ऋ का मध्यवर्ती भाग शिरोरेखा की तरह बनाया गया है। उसमें भरे हुए नीले रंग के मध्य में अनेक सफेद बिदियाँ है। इसी अक्षर के मध्य मे बाहर की ओर बनी हुई जो चूल्हे की आकृति है, उसमे ऊपरवर्ती सफेद रग के मध्य मे एक छोटी लाल पक्ति है। निम्न भाग में लबाकार ऋ की आकृति मे निर्मित लता की तरह एक छोटी सफेद लता का चित्रण किया गया है। लता मे निर्मित पत्तियो मे छोटी-छोटी दो लाल लाइने है। लता के आस-पास का भाग नीले रग से भरकर उसके मध्य मे लाल लाइन के पास अनेक सफेद रेखाएँ खिची गई है।

ह्रस्व ऋ के बाद दीर्घ ॠ की आकृति पर दृष्टि पडती है। इसमें भी ऊपर खिची हुई शिरोरेखा के मध्य में वक्राकार सफेद शिरोरेखा के प्रत्येक कोने पर एक-एक लाल बिदी देकर शेष भाग को नीले रग से भरा गया है। शिरोरेखा-वर्ती नीलवर्ण मे वक्राकार रेखा के कारण त्रिकोण की आकृति धारण कर रखी है। शिरोरेखा के निम्नवर्ती ऋ के लंबाकार भाग में ऊपर की तरह मध्य में वक्राकार रेखा बनाकर बीच-बीच मे लाल-लाल बिदियाँ दी गई है। अंतर इतना ही है, ऊपर जहाँ अवशिष्ट भाग में नीले त्रिकोण बने हुए है, वहा यहा पर काली बिदिओ के बीच मे सफेद बिदियाँ बनी हुई है। शेष अवशिष्ट भाग की पूर्ति नीले रंग से की गई है। मध्यवर्ती भाग मे काले रग का तिलक बनाकर तिलक के बीच में दो लाल बिदियाँ दी गई है। बाहर की ओर बने हुए मध्यवर्ती भाग को समानाकार लाल, नीली और सफेद इन तीन रेखाओ द्वारा पूर्ण किया गया है।

ऌ ॡ इन दोनो अक्षरो का आधुनिक प्रकाशन युग में प्रचार नही है, केवल प्राचीन शास्त्रो में ही इन दोनो अक्षरो का उपयोग होता था। ह्रस्व ऌ मे प्रथम ऊपर शिरोरेखा में लाल एव हरी रेखाएँ अकित कर उनके आस-पास ऊपर नीचे सफेद और लाल बिदियाँ दी गई है। नीचे जो अक्षर की आकृति है, उसमे भी मध्य में सलग रेखा खचितकर लाइन के आस-पास अनेक काली एव लाल रोएँदार लाइने दी गई है। दीर्घ ॡ के निर्माण में लाल, काले, नीले एवं सफेद

रग का उपयोग किया गया है। ऊपर शिरोरेखा को लाल रग से भरते समय लाल रग के बीच तीन जगह काला रग दिया गया है। नीचे का भाग रगों के अंकन की दृष्टि से अपनी खास विशेषता रखता है। उसमें दो जगह रिक्त सफेद स्थानो के मध्य में नीली बिंदियाँ है। नीचे सफेद तिलकाकृति है।

'ए ऐ' ए के शिरोभाग में लेहरिया भांत की काली और पीली शिरोरेखा है। नीचे दोनो ओर काले वृत्त के बीच सफेद बिंदी बनाकर शेष भाग को काली रेखाओ से खचित किया गया है। ऐ में हम ऊपर शिरोरेखा तथा नीचे दो इस प्रकार कुल तीन उलटी लाल रंग की वी की आकृति देखते है। शेष भाग को अनेक काली रेखाएँ खचितकर पूर्ण किया गया है।

'ओ औ' ओ के उपर की शिरोरेखा तथा मात्रा में केवल एक मोटी काली लाइन है। नीचे भी लाल और सफेद रग की बिंदियां बनाने लिए ऊपर की तरह मध्य में मोटी काली लाइन चित्रित की गई है। और भी ओ की तरह ही चित्रित किया गया है। अतर इतना ही है, नीचे काली लाइन के बीच में दोनो प्रकार की बिंदियाँ नही देकर सफेद बिंदियाँ ही दी गई है।

अ अ। अं के ऊपर की शिरोरेखा में सफेद रग की कंगूरेदार रेखा बनाकर उसके ऊपर और नीचे के भाग को लाल तथा नीले रग से भरा गया है। नीचे का भाग लेहरिया भातवाली लाल, नीली एव सफेद रेखाओ से अंकित है। अ के ऊपर की शिरोरेखा के मध्य मे करवरीदार काली और सफेद रेखाएँ खीचकर उसके ऊपर और नीचे के भाग को नीले रग मे भरा गया है। मुख्य अक्षर की आकृति मे काले और पीले अनेक वृत्त बनाकर बीच में लाल बिंदियाँ दी गई है। अक्षर के मुख्य अश चूल्हे की आकृति को पत्तो का चित्र बनाकर चित्रित किया गया है। सामने को दो नीले शून्यो के बीच दो लाल बिंदियां है।

स्वर लिखने के बाद दो लाइने खीची गई है। इन दोनो मे से एक में लाल एवं सफेद रंग की लता की आकृति बनाकर रिक्त अंश को नीले रग से भरा गया है और द्वितीय पंक्ति के पास-पास दो लाल एव सफेद रेखाएँ खीचकर शेष भाग को नीले रग से भरा गया है।

वर्तनिका में स्वरो के बाद व्यजनो का नबर आता है। व्यजनो में कवर्ग का स्थान सर्व प्रथम है। इनमें पहले के क्रमश क ख ग की शिरोरेखाओ में नमो अरिहताण, णमो सिद्धाण और णमो आयरियाण लिखकर नीचे के भागो को अनेक प्रकार की काली वक्राकार लाइनो से चित्रित किये गये है। घ के ऊपर की शिरोरेखा तथा नीचे के कोने के कुछ हिस्से मे णमो उवज्झायाण

लिखकर शेप भाग को करवरीदार काली एव लाल रेखाओ से चित्रित किया गया है और ङ में नमस्कार मत्र का पचम पद णमो लोए सव्व साहूण लिखकर काली लाल नीली और सफेद रेखाओ एव विदियो से अलंकृत किया गया है ।

इसके वाद चवर्ग प्रारंभ करने के पूर्ण एक खडी रेखा खीच कर ऊपर और नीचे नीली पान की आकृतियाँ वनाते हुए मध्य मे तीन लाल शून्यें दी गई है । मध्यवर्ती शून्य को छोडकर अवशिष्ट दोनो शून्यो को दोनो ओर के पान से मिलाया गया है। चकी आकृति के ऊपर की शिरोरेखा के मध्य में करवरीदार सफेद रेखा वनाकर अवशिष्ट भाग को काले रंग से भरा गया है । नाचे के भाग को पीठमिश्रित लाल रग से भरकर तीनो ओर तीन सफेद त्रिकोण वनाये गये हैं नीचे को छोडकर ऊपर के दोनो त्रिकोणो में नीली बिंदियाँ है। छ के ऊपर की शिरोरेखा मे लंवी अनेक लाल रेखाएँ खीची गई है । नीचे के अक्षर के मूल भाग में राजस्थानी भापा में प्रसिद्ध खोडी वारये की आकृति वनाकर शेप भाग की पूर्ति लाल रग से की गई है । लाल रग मे भी चार सफेद शून्यो के मध्य मे दो काली और दो नीली बिंदियाँ है । लाल रग के मध्य में एक केवल काली शून्य भी है। ज और झ की आकृति में लाल रग के मध्य सफेद और नीले रग की लता वनाई गई है। इन दोनो लताओ में परस्पर कुछ सादृश्य नही । ञ की आकृति मे पूर्ववर्ती दोनो अक्षरो की सरणी अत्यत कलात्मक ढंग मे अपनाई गई है । यहाँ लता मे लगे हुए अनेक प्रकार के पुष्पो पर दृष्टि पडती है। फिर चवर्ग की समाप्तिसूचक दो खडी लकीरे खीची गई है । चित्रण की दृष्टि से इनकी खास विशेषता है ।

यह सारा विवरण लिख लेने पर भी मुझे स्वयं अरुचिकर प्रतीत हो रहा है । इसके वाद भी लगभग छ पृष्ठो मे इसी प्रकार वर्णन किया गया है । अनेक कार्यो में व्यस्त रहनेवाले आज-कल के पाठको में इतना धैर्य कहाँ, जो यह सारा विवरण पढ़ने के लिए समय निकाल सके। इसलिए अवशिष्ट भाग का मुद्रण रोककर उपसंहार पर आता हूँ ।

इस प्रकार वर्तनिका और अकाक्षर लिख लेने के वाद पूज्यपाद श्री तिलोक-ऋषिजी महाराज ने सब के अत में इस पन्ने को लिखने का संवत् तथा अपने नाम का उल्लेख किया है । वह इस प्रकार है—संवत् १९२९ लि०तिलोक रिख। इन सब की आकृति भी ऊपर के अक्षरो की तरह ही वनाई गई है ।

ऊपर प्रत्येक अक्षर के चित्रण में भिन्नता होने पर भी सजातीय तथा समान वर्गीय अक्षरो के अकन में एक ही प्रकार के रगो का उपयोग किया गया है ।

जिससे ऊपर से देखने पर उनमे कुछ सादृश्य प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ पाठक अ, आ, इ, ई, उ ऊ, ऋ ऋ, लृ, लृ, ए, ऐ ओ, औ, अ अः इन अलग-अलग सजातीय स्वरो की आकृति देख सकते है। व्यंजनो के चित्रण में भी यही सरणी अपनाई गई है। फलत क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, और प वर्ग, ये पांचो १ वर्ग अंकन की दृष्टि से अपना अलग-अलग स्थान रखते है। नीचे के शेष अक्षरो मे भी इसी दृष्टि से काम लिया गया है। उन अक्षरो के अंकन में महाराजश्री हमारे सामने एक चित्रकार के रूप मे उपस्थित होते है। इसमें एक योगी की एकाग्रता से काम लिया गया है। जीवन में एकाग्रता को साधे बिना इस प्रकार की आकृतियाँ निकालना अशक्य है।

ऊपर मैंने जो कुछ विवेचन लिखा है, वह महाराजश्री द्वारा लिखित मूल पन्ने को देखकर। उस पन्ने में आपने जिस रूप से चित्रकारी की है, उन्ही रगो के साथ उसका फोटो लिया जाता तो यह सारा परिश्रम सफल होता। फिर भी पाठक पाथर्डी धार्मिक परीक्षा बोर्ड के अतर्गत श्री रत्न जैन पुस्तकालय मे यह प्रति देख सकते है।

१



क ख ग

नोट–पाठक पृष्ठ १९८ के फलक में दी हुई पन्नवणा पद ११ के पीछे के फलक मे अंकित क, ख, ग की आकृति देखकर प्रस्तुत विवरण पढें ।

ऊपर हम वर्तनिका (मातृका पद) और अंको के सम्वध मे बहुत कुछ प्रकाश डाल चुके है। इनके अतिरिक्त पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज द्वारा व्यजनाक्षरो का एक त्रुटित पत्र प्राप्त हुआ है। उसमें क वर्ग के प्रथम केवल क ख ग ये तीन अक्षर अकित है। इन अक्षरो के अकन में पूर्व प्रतिपादित अक्षरो की अपेक्षा भी अत्यन्त सूक्ष्म कलात्मक शैली से काम लिया गया है। आध्यात्मिक साधना मे आगे बढा हुआ कुशल चित्रकार ही इस प्रकार की मजी हुई शैली में चित्रण कर सकता है।

प्रथम क अक्षर के अंकन मे इस कलात्मक ढगसे अक्षर लिखे गये है कि उस मे जैन वाङमय में प्रसिद्ध नमस्कार मंत्र तथा चद्र प्रज्ञप्ति, उत्तराध्ययन और दशवैकालिक इन प्रसिद्ध सूत्रो की तीन विख्यात गाथाओ का समाहार कर लिया है। प्रथम शिरोरेखा मे जो अक्षर अकित किये गये है, उन्हे पढने से चद्र प्रज्ञप्ति सूत्र की यह गाथा अनायास ही ख्याल मे आ जाती है। अक्षर छोटे होने पर भी अत्यन्त स्पष्ट एव सुवाच्य है।

ॐ णमिऊण असुरसुरगरुल भुयगपरिवंदिय गयकिलेसे।
अरिहे सिद्धायरिय उवज्झाय सव्व साहूण ॥ १ ॥ गाथा छे

क अक्षर की प्रथम अर्द्ध गोलाकार आकृति बनाने में जैन परंपरा में प्रतिदिन नाम–स्मरण के समय मंत्र रूप से बोले जानेवाले नमस्कार मत्र का चित्रण किया गया है। वह मत्र इस प्रकार है––

णम्मो अरिहताणं, णम्मो सिद्धाण, णम्मो आयरियाणं, णम्मो उवज्झायाणं, णम्मो लोयसव्वसाहूण

(इस नमस्कार मत्र का जप करते समय हम णम्मो के स्थान पर केवल णमो का ही उच्चारण करते है, पर यहाँ एक हलत 'म्' अधिक लिखा गया है।) क की अर्द्ध गोलाकार आकृति के सामने उससे मिला हुआ जो काना खीचा गया है, उसके अकन मे उत्तराध्ययन सूत्र की इस प्रसिद्ध गाथा का चित्रण किया गया है।

चइत्ता भारह वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
संती संतिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरम्॥

अत में दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की यह प्रथम गाथा दी गई है।–

धम्मो मगलमुक्किट्ठ, अहिसा सजमो तवो।
देवा वि त नमंसति, जस्स धम्मे सया मणो॥

इस अक्षर की लेखन-शैली से ही पाठक समझ सकते है कि लेखन-क्रम के समय भी महाराज श्री का मानस नाम-स्मरण मे कितना मग्न रहता था। नाम-स्मरण के समय वे नमस्कार मत्र का तो जाप करते ही थे, पर उसके साथ शास्त्रो में वर्णित तदुपयुक्त गाथाओ की ओर भी सतत उनकी दृष्टि रहती थी, जैसे की ऊपर शिरोरेखा में चंद्रप्रज्ञप्ति सूत्र की जो गाथा दी गई है। उसमें भी देवता तथा राक्षसो द्वारा वदनीय क्लेशरहित पांच पदो की वदना की गई है। गोलवृताकार क मे जो अक्षर है, वे तो पाँच पदो के रूप में प्रसिद्ध नमस्कार मंत्र ही है। जिनका कि जैन कुल मे उत्पन्न प्रत्येक वच्चा नाम-स्मरण या माला फेरते समय उच्चारण करता है। जैन वाङमय में इस मत्र की महत्ता बहुत अधिक बताई गई है। नमस्कार मत्र के बाद सीधे काने मे अंकित जो उत्तराध्ययन की गाथा है, उसमें भी सिद्ध गति में प्राप्त आतमाओ की स्तुति की गई है और अंत में दशवैकालिकसूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा मे तो जीवन का सार तत्त्व भर दिया है। इसमे सव मगलो मे उत्कृष्ट मगल धर्म को बताया गया है। वह धर्म अहिसा, सयम तथा तप रूप है। जिस प्राणी का चित्त धर्म के इन मुख्य अगो की ओर सतत लगा रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते है। लेखन के समय भी इस प्रकार उनकी कितनी उच्च दृष्टि रहती थी?

इसके बाद कवर्गवर्ती जो दो अक्षर दिये गये है, उनमें तो चित्रकला की पराकाष्ठा कर दी गई है। निरतर इस कला द्वारा नवीन आकृतियो का सृजन करनेवाले कुशल चित्रकार से भी इस प्रकार की आकृतियाँ निकालना कठिन है। इसमे शिरोरेखा तथा नीचे अक्षर की आकृति में भिन्न-भिन्न प्रकार की मछलियों के चित्र बनाये गये है। समुद्र तटवर्ती बबई, मद्रास तथा त्रिवेन्द्रम आदि स्थानों में जो मछलीघर (ओक्युरियम) बने हुए है। उनमें स्थित मछलियो का अवलोकन कर पाठक इनके बारे में कुछ-कुछ अनुमान कर सकते है। यद्यपि इन मछलियों में रंग नही भरा गया है, फिर भी इन्हे देखने से सहज ही पता चल सकता है कि इसमें एक ओर जहाँ सुनहली रग वाली प्रसिद्ध रोहू मछली अंकित की गई है

पुरुषाकार अगोपाग सिद्धातकल्प

वहाँ चादी के रंग की दूसरी मछली भी चित्रित की गई है छोटी-वडी मछलियों के भेद रूप से मत्स्यो की अनेक आकृतियाँ बनाई गई है। कही पर मणि और रत्नमय मछली की भी आकृति है। इसमे पता चलता है कि महाराज श्री का जलवर्ती सामुद्रिक प्राणियो का भी कितना आगाध ज्ञान था। आश्चर्य है, अपने छोटे-से जीवन काल मे आपश्री ने इन जन्तुओ का कब दर्शन किया होगा और फिर उन्हे अपने हृदय-पटल पर अंकित कर इस छोटी-सी आकृति में किस प्रकार अंकित की होगी? सर्वतोमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति ही इस प्रकार मनोमुग्धकारी चित्रण कर सकता है।

ग की आकृती ख की आकृति से और भी अधिक नयनाभिराम है। उसमे तीनो ओर तीन प्रकार की नक्काशी की गई है और प्रत्येक के अंकन में भिन्न भिन्न रंगो का उपयोग किया गया है आजकल कपडो तथा धातु के वर्तनो पर नक्काशी करने वाले पच्चीकार भी इसे देखकर नवीन ज्ञान प्राप्त कर सकते है। मीलो और हाथ-करवे पर बुने हुए कपडो पर जो विविध प्रकार की भाँत आदि देखते है, उनके मालिक भी इस नक्काशी (डिझाईन) को देखकर अपने कपडो पर भाँत निकाल सकते है।

इससे पता चलता है, महाराज श्री का जो ज्ञान था वह कच्चा तथा अपूर्ण नही था। ज्ञान-विज्ञान की जिस किसी शाखा में वे अपना हाथ लगाते, उसे पूर्ण करके ही छोडते थे। अधूरा या अपूर्ण ज्ञान उन्हे असह्य था। जीवन-साधना में पूर्णताकी ओर प्रयाण करने वाले व्यक्ति की ही ऐसी सर्वांगपूर्ण दृष्टि हो सकती है। वस्तुके विवेचन या चित्र के चित्रण के समय उसकी सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग पर दृष्टि रहती है। उनकी दृष्टि से एक भी अंग ओझल नही हो सकता। पूर्णता की ओर सतत गमन करने वाले दिवंगत पूज्यपाद श्री तिलोक-ऋषिजी महाराज द्वारा ही इस प्रकार का श्लाघनीय चित्रण शक्य था।

पुरुषाकार अंग--उपांग सिद्धांत कल्प

पाठक इस पन्ने में एक पुरुष की अत्यन्त कलात्मक आकृति देख रहे है। वह रेशमी धोती पहने हुए है, धोती की किनारी लाल है, इसका अंतिम छोर हरे एवं सुनहरे रंग का है। वह पीत वर्ण वाली भूमिपर स्थित है। पुरुष की बाँहे घुटने तक लंबी है, उसके कंधे उठे हुए है। सामुद्रिक लक्षणो के अनुसार एक पुरुष की जैसी आकृति होनी चाहिए वह आकृति इसमें दी गई है। इसी आकृति में जैन वाङमय में प्रसिद्ध मुख्य आगमो को लिपि-बद्ध किया गया है। बत्तीस आगमो में ग्यारह अंग, बारह उपांग, चार मूल सूत्र तथा चार छेद सूत्र एवं आवश्यक ये बत्तीस सूत्र प्रसिद्ध है।

पाँव से प्रारभ कर शिर तक के सब अंगोपागो में इन बत्तीस सूत्रो को लिखा गया है। सर्व प्रथम पीली वेदिका के ऊपर दाहिनी ओर एँडी के पास आचाराग सूत्र लिखा गया है, उसके पास ही बाईं ओर एँडी के पास सूत्र कृताग सूत्र अकित किया गया है। उसके बाद दाहिनी ओर के घुटने पर स्थानांग और बाईं ओर के घुटने पर समवायाग आता है। घुटने से कुछ आगे बढने पर दाहिनी ओर के उरु पर भगवती सूत्र बाँई ओर के उरु पर ज्ञाता धर्मकथाग लिखा गया है। फिर बिलकुल मध्य में नाभि पर उपासक दशाग सूत्र दिया गया है। उस से आगे बढने पर वक्षस्थल पर अंतगड सूत्र को लिखा हुआ देखते है। फिर गर्दन पर अनुत्तरोववाई मुँहपर प्रश्नव्याकरण और ललाट पर विपाक सूत्र लिपिबद्ध किया गया है।

ग्यारह अगो के बाद उपाग मूल सूत्र तथा छेद सूत्रो को इस प्रकार लिपिबद्ध किये गये है। चित्र मे उववाई सूत्र दाहिने पाँव की अंगुलियो के पास और रायपसेणिय सूत्र बाँये पाँव की अगुलियो के पास देखते है, उसके बाद जीवाभिगम सूत्र दाहिने हाथ के पहुँचे के पास और पन्नवणा सूत्र बाये हाथ के पहुँचे के पास दृष्टिगोचर होता है, तत्पश्चात् जबूद्वीपप्रज्ञप्ति दाहिनी ओर भुजा के पास और बाई ओर की भुजा के पास चद्रप्रज्ञप्ति सूत्र दिखाई देते है। तदनतर दाहिनी ओर के स्कध के पास सूर्य प्रज्ञप्ति और बाई ओर के स्कध के पास निरयावलिया सूत्र पर दृष्टि पडती है। फिर दाहिनी ओर के कान के लोल के पास कप्पवडंसिया और बाये ओर के लोल के पास पुप्फिया सूत्र दिया गया है। उस से आगे बढने पर दाहिनी ओर की आँख के पास पुप्फ चुलिया और बाई ओर की आंख के पास बह्निदसा सूत्र लिखे गये है। बारह उपागो के बाद चार मूल सूत्रो का नबर आता है, उसके लेखन का क्रम इस प्रकार है—

पन्ने पर हम जो पुरुषाकृति देख रहे है, वह एक भव्य मुकुट पहने हुए है। मुकुट के ऊपरी छोर से प्रारंभ कर ललाट तक दाहिनी ओर उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दीसूत्र और अनुयोगद्वार ये चार मूल सूत्र तथा इसी प्रकार बाई ओर दशाश्रुतस्कध, वृहत् कल्प, व्यवहार और निशीथ सूत्र ये चार छेद सूत्र लिप्रिबद्ध किये गये है।

इस पुरुषाकार आकृति के सामने एक नक्शा है। उसमे बत्तीस लाइने तथा बारह खाने है। इस नक्शे में इन बत्तीस सूत्रो के सबध में ज्ञातव्य सब बातो का विवरण दिया गया है। उसमें क्रम से सूत्र नाम, कालिक या उत्कालिक, श्रुतस्कध अध्ययन, उसके बाद तीन खाने ऐसे ही खाली दिये गये है।

और अन्त के चार खानो में से तीन खानो मे निछराय, साधु मख्या और ग्रन्थ की संख्या दिये गये है। वह नक्शा पुरुषाकार अंगोपाग सिद्धात कल्प के सामने ही दिया गया है। पाठक इस नक्शे द्वारा आगम-सवंधी सारा विवरण जान सकते है।

पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की दृष्टि इतनी पैनी थी कि उन की दृष्टि से कोई भी विषय अधूरा नही गुजरता था, वे जिस किसी भी विषय को लेते उस पर सागोपाग रूप से सम्पूर्ण दृष्टि से विचार करते। जैन परपरा केवल श्वेतावर स्थानकवासी परपरा तक ही सीमित नही है। उसकी एक परपरा दिगम्बर सप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। दिगम्बर आम्नाय के अनुसार यद्यपि भगवान् द्वारा प्ररूपित मूल आगम ग्रन्थ लुप्त हो गये, फिर भी वे आगमो के समकक्ष कुछ ग्रन्थ मानते है। जिनका की महत्त्व आगमो के समान ही है, उन ग्रन्थो में जैनधर्म के सब मुख्य सिद्धातो का अच्छी तरह प्ररूपण किया गया है। पूज्यपाद महाराजश्री ने दिगम्बर अम्नाय में प्रसिद्ध उन सब सैद्धातिक ४५ ग्रन्थों के नाम इस पन्ने की पृष्ठ पीठिका में दिये है। इस प्रकार इस पन्ने में महाराजश्री ने श्वेतावर और दिगम्बर आम्नाय मे प्रसिद्ध प्राय सब सैद्धातिक आगमो और ग्रन्थो के नाम दे दिये है। उनकी दृष्टि से उन्होने एक भी ग्रन्थ नही छोडा है। पन्ने में पुरुष की आकृति अकित करके शरीर के अंगोपागो के पास आगम रूप से प्रसिद्ध अग उपाग को लिखने के वाद आपश्री ने अंत में सबसे नीचे इसके निर्माण का इस प्रकार उल्लेख किया है—

इति श्री ॐ ह्री श्री पुरुषाकार अग उपाग सिद्धात कल्प सम्पूर्णम्। संवत् १९३० वर्षे चैत्र कृष्ण १३ तिथौ चद्रवासरे लिपि कृतम् तिलोक रिख शहर आगर मध्ये स्वय आत्मार्थं श्रीरस्तु।

जब पूज्यपाद महाराजश्री की अवस्था केवल छब्बीस वर्ष की थी तव आपश्री ने शरीर के अगोपागो की तरह जैन वाङमय में प्रसिद्ध अंगोपागो को उस-उस स्थान पर बडी खूबी से अकित किये थे। किसी सूक्ष्म द्रष्टा की ही ऐसी दृष्टि हो सकती है। साथ ही इस लेखन का हेतु वताते हुए आपश्री ने यह निर्देश किया है—'स्वय आत्मार्थ' यह सब अपने लिए लिखा है, दूसरे के लिए नही। जिससे जैन-सिद्धात का यह वृहत् सैद्धातिक वाङमय सदैव आपके सामने चित्रवत् उपस्थित रहे और जिस समय आपकी जिस ग्रन्थ को पढने की इच्छा होती उस समय उस आगम या ग्रन्थ को पढकर अपनी ज्ञान-पिपासा शात कर सकते।

पदक की आकृति एवं पृष्ठपीठिका में गूढार्थक दोहे

ऊपर हम जो एक अत्यन्त सुन्दर पदक की आकृति मे युक्त पत्र देख रहे हैं, वह पत्र धर्म प्रेमी सुश्राविका श्रीमती रंभाबाई को स्व, पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज द्वारा लिखा गया है ।

अहमदनगर निवासिनी सुश्राविका रभाबाई का कुछ वर्णन हम पूज्यपाद श्री के जीवन–चरित्र में कर चुके हैं । यह बाई अत्यन्त सरल, उदार एव अह–र्निश धार्मिक क्रियाओ में रत रहती थी । समाज में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान था । पुरुषो की अपेक्षा भी इनकी बातो का विशेष प्रभाव पडता था । अहमदनगर में आज हम जो विशाल धर्म स्थानक देखते है, वह स्थानक इन्ही बाई द्वारा संघ को अर्पण किया गया है । रभाबाई के कोई औरस सतान नही थी । उनके दत्तक पुत्र का नाम चंदनमलजी पितलिया था । चदनमलजी भी अपनी माता की तरह ही उदारचेता थे और अपने समय में अग्रणी श्रावक माने जाते थे । अहमदनगर मे विशाल जैन छात्रालय है, उस छात्रालय की जमीन भी चदनमलजी के सुपुत्रोने (श्री मोतीलालजी झुबरलालजी) अपने पिता के स्मर–णार्थ अपनी ओर से दी है । इन्ही चदनमलजी की सुपुत्री मानककुवरबाई ने पंडिता महासती श्री राजकुंवरजी महाराज के पास भागवती दीक्षा ग्रहण की है ।

जैन धर्म और साधु–सतोके दर्शन में बहुत रुचि होने के कारण श्रीमती रभाबाई प्रतिवर्ष चातुर्मास के दिनो में साधु–सतो के दर्शन के लिए जाया करती थी । दक्षिण प्रदेश में विहार करने के पूर्व जब पूज्यपाद महाराज श्री मालव आदि प्रातो मे विहार कर रहे थे, उस समय भी रभाबाईने उन प्रातो मे जाकर अनेक बार उनके दर्शन किये थे । सत–समागम और धार्मिक ग्रथो का अध्ययन करते–करते उनका जीवन धर्ममय हो चुका था । किसी सत के नगर मे आने के समाचार से उन्हे अत्यन्त प्रसन्नता होती थी । जब पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी महाराज सर्व प्रथम अहमदनगर पधारे, उस समय जिस व्यक्ति ने श्री रभाबाई को यह शुभ सवाद सुनाया, उसे धर्म प्रेमी रभाबाई ने अपने हाथो से सुवर्ण ककण उतारकर बधाई में दे दिया । ऐसी धर्मनिष्ठ उदारचेता सुश्राविका श्रीमती रभा-बाई को यह पत्र पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज द्वारा लिखा गया है । पत्र में इस धर्म प्रेमी बाई की धर्म में और अधिक श्रद्धा बढ़ाने के लिए कहा गया है ।

पहले पहल आप श्री ने हासिये के रिक्त भाग में अपने इस पत्र का प्रत्युत्तर देने के लिए एक दोहे को अकित किया है ।––

का अक्षर है आद में, द अक्षर है अत ।
ते दिज्यो तुम हित धरी, ज्यु आनद उपजे चित ॥

जिसके आदि में 'का' और अत मे 'द' अक्षर है। उस कागज को आप हित रखकर देना, जिससे कि चित्त में आनद पैदा हो। इस दोहे के प्रथम दो पाद अत्यंत सुन्दर काली स्याही से अकित है। इस पत्र में सर्वप्रथम अत्यंत सूक्ष्म काली लाइनो के बीच एक पदक की आकृति चित्रित की गई है। संवत् १९३३ में आज से ८४ साल पहले इस पदक की आकृति वनाई गई है। इन वर्षो मे दुनिया अत्यत द्रुत गति से आगे बढती रही है। पहले के सौ या हजार वर्षो में दुनिया जितना विकास नही कर सकी थी, उतना आधुनिक युग के इन दस वर्षो में किया है। इस अवधि मे आभूषण, चित्र, वस्त्र आदि की निर्मिति में बहुत विकास हो चुका है। पुराने युग की बहुत-सी वस्तुएँ निकम्मी ठहराई जाती है। इसी प्रकार पदको की आकृति में भी बहुत कुछ विकास हो चुका है। फिर भी महाराज श्री ने इसका निर्माण इस ढंग से किया है कि उसकी आकृति आजकल के पदको मे भी दृष्टिगोचर होती है। बहुत बार तो यह भ्रम होता है कि कही महाराज श्री द्वारा लगभग एक सौ वर्ष पहले बनाई हुई इस कृति को देखकर तो लोग आजकल पदक नही बना रहे है? एक भविष्य द्रष्टा अलौकिक पुरुप के द्वारा ही ऐसी रचना संभव है, जिसे देखकर भावी पीढी के लोग उसका अनुकरण कर कृतार्थ होते है। इस पदक की आकृति साधारण नही है। राष्ट्रपति द्वारा देश में विशिष्ट कार्य करने वाले पुरुषो को उनके सम्मानसूचक प्रदत्त पदको में इस प्रकार की विशिष्ट आकृति दृष्टिगोचर होती है। मानो यह पदक महाराज श्री ने उनके द्वारा किय हुए उत्कृष्ट कार्यों के निमित्त प्रदान किया हो।

पदक के अंत में इस पत्र को लिखने का संवत् अंकित किया गया है। सवत् का चित्रण इस प्रकार अक्षरो में किया गया है कि उसमे महाराज श्री न पत्र मे लिखने का वक्तव्यांश लिख दिया है। अक्षर थोडे होने पर से भी सूत्रात्मक है, पर उनसे सुज्ञ पाठक विशद अर्थ निकाल सकता है। अब हम सर्व प्रथम संवत् में अंकित इस पत्र को पढें।

स रभाबाईने धर्म स्नेह वचज्यो। पालज्यो शुद्ध आचार

म दोय अक्षर सरनाम है, जतन करो तुम नीत।
धर्म सनेह वीचार के, लिखियो मने मित ।।

त तत्त्व तत्त्व निरणे करो, छोडो मोह विकार

१ एक घट घालो एक काढो

९ ४ वोल को जोग जब। ता दिन होसी मिलाप

३ छत्तीस अक समान मत होज्यो

३ ६३ अक सिखा रहज्यो नित

संवत् १९३३ के तीनो अक्षर तथा चारो अंको के निर्माण मे महाराज श्री ने पत्रवर्ती जिन जिन वाक्यो से काम लिया है। वे वाक्य उस-उस अक्षर के सामने ऊपर लिख दिये है।

इस पत्रका तात्पर्य स्पष्ट है। सर्व प्रथम किसी मुनिराज द्वारा अपने सग के श्रावक या श्राविका को लिखे जानेवाले धर्म स्नेह की तरह रंभाबाई को धर्म स्नेह लिखा गया है। 'रभाबाई से धर्मस्नेह वच ज्यो'। अपने पत्र मे वे केवल धर्म सदेश लिखकर ही न रह गये है। धर्म स्नेह के साथ शुभ आचारका पालन करने के लिए भार दिया है। अतएव धर्म स्नेह के बाद तुरत आपश्री ने उसी अक्षर मे शुद्ध आचर का पालन करन के लिए उल्लेख किया है 'पाल जो शुद्ध आचार॥' शुद्ध आचार का पालनभी जब तक धर्म का ज्ञान नही होता तब तक नही हो सकता, और न पुन इसी प्रकार की धर्मवृत्ति द्वारा उत्तर दिया जा सकता है। इस लिए 'म' अक्षर में आपश्री ने धर्म की उत्कृष्टता बताकर उसी वृत्ति से प्रत्युत्तर देने के लिए लिखा है।

दो ये लक्षर नाम है, जतन करो तुम नित।
धर्म सनेह विचार के, लिखियो मने मित॥

धर्म ये दो अक्षर ही श्रेष्ठ नाम है, इसकी तुम यत्नपूर्वक रक्षा करना। कदापि धर्म से विचलित मत होना और पुन मुझे प्रत्युत्तर देते समय हे मित्र, मेरी तरह धर्म स्नेह का विचार करके मुझे पत्र लिखना।

संतो एव मुनिराजो की दृष्टि मे विश्व के प्राणी मात्र मित्रवत् होते है। वे 'सत्त्वेषु मैत्री' इस सिद्धात के अनुसार अखिल जगत के प्राणियो के साथ मैत्री भावना रखते है। इस लिये रंभाबाई को उपलक्षण बनाकर यहाँ पर आपश्री ने बाईजी के बहाने सब प्राणियो के लिये मित्र शब्द का प्रयोग किया है।

धर्म की शरण ग्रहण करने के लिए कहकर आपश्री ने तीसरे 'त' अक्षर मे तत्त्वो का निर्णय करके मोह-विकार छोडने लिए लिखा है—'तत्त्व तत्त्व निरणे करो, छोडो मोह विकार। अपने जीवन में सदैव जैन सिद्धात मे प्ररूपित तत्त्वो का ही चितन कर, उपादेय सिद्धातो का निर्णय करना। इन तत्त्वो का निर्णय करना जीवन को नीचे गिराने वाले मोह-विकार आदि छोड देना। मोह-विकार ही ससार बधन के कारण है। इनसे चित्त हटाकर उच्च गुण श्रेणी की ओर प्रयाण करने से जल्दी आत्म-कल्याण होगा।

इस त अक्षर के बाद प्रथम एक के अंक मे अपने जीवन मे आस्रवो से चित्त हटाकर सवर मय जीवन-यापन करने के लिए लिखा गया है। 'एक घट घालो एक काढो।' अपने हृदय में एक का प्रवेश कराओ ओर एक को निकलो।

अर्थात् आस्रव ही ससार में बंधन कारक है और सवर मोक्ष दायक । अतएव अनादि कालसे ससार में परिभ्रमण करानेवाले आस्रवो को अपने हृदय से निकाल कर उनके स्थान पर संवर रखने चाहिए । संयत मनुष्य का जीवन सामायिकमय होता है, पर गृहस्थ-जीवन मे धर्मवृत्ति से जीवन-यापन करनेवाले मनुष्य का जीवन संवरमय होता है।

अपने पत्र में इस प्रकार धर्ममय जीवन यापन करने का सदेश देकर बाद मे ९ के अक मे मिलने की आशा प्रकट की है– 'चार बोल को जोग जब, ता दिन होसी मिलाप । 'अभी तो मै संक्षेप में ही धर्म–सदेश लिख रहा हूँ, पर भविष्य में जब द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव इन चार बोलो का योग होगा । उस दिन साक्षात्कार होगा । पत्र में हृदगत बाते संपूर्ण रूप से नही की जा सकती । मे जो कुछ धर्म–सदेश लिखना चाहता हूँ, वह इस छोटे–से पत्र में संपूर्ण रूप से अंकित नही कर सकता । पर साक्षात्कार होने पर धर्म का विशद विवेचन कर सकूँगा ।

(अंत में ३६ अक में अको द्वारा शत्रु और मित्र के लक्षण बताकर जीवन में सदेव नम्रतापूर्वक रहने के लिए कहा है–'छत्तीस अक समान मत होज्यो, ६३ अक सरखा रहज्यो नित ।' ३६ अंक के मुँह जिस प्रकार विरुद्ध दिशा की ओर रहते है, उसकी तरह तुम अपना व्यवहार मत बनाना, पर ६३ के अंक की तरह सदैव मैत्री भावना से रहना । ६३ अंक के मुँह जिस प्रकार परस्पर एक दूसरे के सामने रहत है, कभी एक दूसरे से विमुख नही होते। उसी तरह तुम्हारा मुँह भी विरुद्ध दिशा की ओर न हो अर्थात् सबको मैत्री-भावना से देखने की साधना कर अहिंसा की उच्चतम श्रेणी पर चढना ।

अत में इस पत्र द्वारा नौ और आठ के पहाडे द्वारा अपने जीवन को नौ के अंक की तरह सदैव एक स्थिति में रखने का भार देकर पुन. धर्म–सदेश दिया है ।—

नव अक सम तुम रखो, प्रीत धर्मनी रीत ।
नव दुणा १८, एक आठ ९ एवं रीत ।।

नौ का अंक चाहे जितनी संख्या से गिनने पर भी सदैव एक स्थिति मे रहता है । कभी वह अपने नौ के स्वभाव को नही छोड़ता । उसी प्रकार तुम धर्म के प्रति अपनी प्रीति रखना । यथा–

९–१–९ = ९
९–२–१८ = १ + ८ = ९
९–३–२७ = २ + ७ = ९
९–४–३६ = ३ + ६ = ९
९–५–४५ = ४ + ५ = ९

इस तरह सख्या से गिनने पर भी नौ ने अपनी पूर्व स्थिति नहीं छोडी है । फिर आठ के अंक के समान होने का आप श्री ने निषेध किया है,
अष्ट अंक सम मत हुवो या कहण हमारी नीत ।
आठ दुणा १६ एक औ छ ७ एवं नीत ॥

हमारे कहने की नीति यही है कि आठ के अंक के समान तुम मत होना। क्योकि आठ का अक सदैव घटता-बढता रहता है । कभी एक स्थिति मे नही रहता । तुच्छ व्यक्ति की ही आठ के अंक जैसी दशा होती है । धर्म मार्ग में निरंतर प्रयाण करनेवाले व्यक्ति मे गाभीर्य होने से उसकी स्थिति समुद्र के समान मर्यादायुक्त होती है । वह अपनी मर्यादा का कभी अतिक्रमण नही किया करता। इसलिये उसकी स्थिति नौ की तरह बताई गई है ।

इस पन्ने के पिछले हिस्से में '१ श्री रीषभजी, २३ श्री पार्श्वजी, २२ श्री नेमजी, इस प्रकार तीन तीर्थंकरो के नाम लिखकर पहले अपने इस पत्र के संबध में एक दोहा लिखा गया है ––

तीन अक्षर से नही लिख सकु मीलणो होसी जब ।
मन-मन की है वारता कहि सुणासुं सब ॥१॥

तीन अक्षरवाले इस कागज में मै अपने हृद्गत सब भाव नहीं लिख सकता । वे तो जब कभी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से मिलने का योग होने पर मिलना होगा तब व्यक्त करूँगा । मन-मन की जो बात है अर्थात् अभी मेरे चित्त में प्राणी मात्र को आध्यात्मिक पथ की ओर अग्रसर करनेवाली अनेक बाते तरगित हो रही है, वे सब उस समय मे कह सुनाऊगा ।

इसके बाद तीन गूढार्थक दोहे लिखकर अत में नौ दोहे लिखे गये है ॥ वे गूढार्थक दोहे इस प्रकार हैं ––

॥र्द०॥ गुढार्थ ॥ दुहरा ॥ दधी 'सुत' रीपु ते' जाणीये ॥ तस रीपु' रीपु ते जाण ॥ कठ छबी, तसु वाहने ॥ लछण सोहै सुज्ञान १ येह जिनराज ने भजो नीत –– ॥ दूहा ॥ सायर सुत, ते जाणी ये । तस । सुत, बलभ, तेह, तस वाहण भक्षण । स्वामेजी ॥ प्रणमे सहु । नर जेह २ ए प्रभु प्रते नीत नमस्कार करज्यो––

॥ दूहा ॥ गिर । पुत्ति । पति । तिलक । तसु । तात । पुत्री को । पत ॥ पिता । भ्रात । नदन कहु वंदन । करस्यो । नीत ॥३॥ ए प्रभु ने नीत जापता रहिज्यो ॥

इन तीनो का अर्थ इस प्रकार है ।

(१) दधीसुत–चन्द्रमा, उसका रिपु राहु, राहु का रिपु–विष्णु, विष्णु का रिपु-रावण, रावण का स्वामी–शिव, उस कठछविवाले शिव का वाहन–वृषभ,

यह वृषभ जिसके चिन्ह रूप से शोभित होता रहता है, ऐसे जिनराज श्री ऋषभदेव भगवान् का नित्य भजन करो।

(२) सायरसुत—चन्द्रमा, चन्द्रमा का सुत-बुध, बुध की वल्लभा-रोहिणी, रोहिणी का वाहन-सर्प, सर्प का भक्षक—गरुड, गरुडका—स्वामी—विष्णु, जिसे कि सब मनुष्य प्रणाम करते है। इस प्रभु के प्रति भी नित्य नमस्कार करना।

(३) गिरि—हिमालय, गिरिपुत्ति—हिमालय की पुत्री—पार्वती, गिरिपुति पति.शिव, गिरि-पुतिपति तिलक—शिव का तिलक—चद्रमा चद्रमा का तात समुद्र, समुद्र पुत्री-लक्ष्मी, लक्ष्मी का पति—विष्णु अर्थात् कृष्ण-पिता भ्रात नदन—पिता वसुदेव और भाई वलदेव को प्रसन्न करनेवाले श्रीकृष्ण। ऐसे कृष्ण को नित्य वंदन करना और ऐसे प्रभु का नित्य स्तवन करते रहना।

इन तीन गूढार्थक दोहो के बाद नौ और दोहे लिखे गये है। वे इस प्रकार है।

नारी वधण वधीया नारी नरने पास। नारी वधन सारसी दूर गति जाय
नीरास इण न्याय से स्त्री पुरुष से जाणो ॥ १ ॥
धनथी धर्म नही नीपजै धन बाध आधार।
कामक माया पोषवै दुर गति देव अवतार ॥ २ ॥
भोग ते कादम सारखो अपवित्र मलीन ए होय।
प्राणीषु ता भोग में नीकाली न सके कोय ॥ ३ ॥
समक्तिदृष्टिद जीवडो पाले कुटुब परिवार।
अतरगत भेंद नहि, जिम धाए खिलावत बाल ॥ ४ ॥
सतगुरु मगत कीजिये सरस वचन सुणो नित।
सवरभाव चित मे धरो- सदा रखो धरम मे चित ॥ ५ ॥
समता सम ससार मे और न दूसरो सुख।
विपता सम इण लोक में नही जगत में दुख ॥ ६ ॥
धर्म प्रीत जग मे भली पाप प्रीत दुखदाय।
धर्म पुगावे शुभ गति पाप नरक ले जाय ॥ ७ ॥
मृग ओपमा जेहने तेह थकी उपजे विकार।
पुर्स स्त्री निरवीकारता तब उतर भवपार ॥ ८ ॥
दोय कपाट ऊपर रहै वत्तीस रहे तिण पास।
तेहना अतिचार पच है। टाल्या मुक्ति में वास ॥ ९ ॥

अर्थः—संसार के अधिकतर लोग स्त्री के वंधन से बंधे हुए है। इसी वंधन से पुरुष के प्रति आसक्ति होने के कारण स्त्री पुरुष के पास रहती हैं पुरुष का स्त्री के प्रति यह बंधन उसे इस लोक से दुर्गति में जानेपर निराश

करेगा। अर्थात् स्त्री के प्रति आसक्ति रखने के कारण वह दुर्गति प्राप्त करेगा। इसी प्रकार स्त्री भी पुरुष के प्रति आसक्ति रखने के कारण दुर्गति प्राप्त करेगी। इस लिए स्त्री और पुरुष किसी को परस्पर एक दूसरे मे आसक्ति नही रखनी चाहिए।

२ धन से धर्म पैदा नही हो सकता है। धन अनेक बाधाओ का आधार है। धन केवल काम मे प्रवृत्त कर माया का पोषण करता रहता है। और वह परलोक मे प्राप्त होनेवाले देवता के अवतार को दूर करता है। धनिक व्यक्ति अत्यधिक आरंभ संभारभ करने के कारण अधिकतर देव गति मे बहुत कम जाते है।

३ भोग कर्दम के समान है। इसे सेवन करनेवाला व्यक्ति अपवित्र तथा मलिन होता है। इस भोगमें निमग्न व्यक्ति को कोई बाहर नही निकाल सकता। सदैव शुद्ध जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति को इन भोगो से दूर रहना चाहिए।

४ सम्यग्दृष्टि जीव संसार में रहकर भी अपने कुटुब परिवार का पालन पोषण करता है। ऐसा मुमुक्षु प्राणी अतर और बाह्य भेद रखें बिना सदैव साम्य अवस्था मे रहता है। जिस प्रकार धाय अनासक्त भाव से शिशु को दूध पिलाती है। उसी तरह वह भी अनासक्त भाव से अपने कुटुब का पालन पोषण करता है।

५ सदैव सद्गुरू की सगति करना चाहिए। उनके पास जाकर नित्य सुदर उपदेशात्मक वचन सुनो। अपने चित्त में सवर भाव रखो और धर्म मे सदैव अपना चित्त लगाये रखो।

६ समता के समान इस ससार मे और कोई दूसरा सुख नही है और विपत्ति के समान इस संसार मे दुःख नही है।

७ संसार मे केवल धर्म के प्रति प्रीति ही भली है। पाप के प्रति जो प्रीति होती है वह दुखदायिनी है। क्योकि धर्म शुभ गति मे पहुँचाता है। पर पाप नरक की ओर ले जाता है।

८ जिसकी मृग से उपमा दी जाती है। अर्थात जिसकी मृगकी आँखो से उपमा दी जाती है। उस मृग लोचनी नारी से विकार पैदा होता है। जब पुरुष और स्त्री इन दोनो का परस्पर एक दुसरे के प्रति निर्विकार भाव होता है तब प्राणी इस ससार रूपी समुद्र से पार उतरता है।

९ मनुष्य के शरीर मे ओष्ठरूपी दो किवाड ऊपर रहते है। और-उन किवाडो के पास बत्तीस दात दात रहते है। उस मुँह से वाणी निकलने पर पांच प्रकार के अतिचार लगते है इन अतिचारो को टालने पर व्यक्ति स्वर्ग मे निवास करता है। उपर मैने सुश्राविका श्री रभाबाई को लिखे हुए पत्रका जो विवेचन किया है वह पत्र शात स्वभावी सतिशिरोमणि श्री रामकुवरजी महाराज की परिवार की सतियो से श्रमण सघीय उपाध्याय मुनिश्री आनदऋषिजी महाराज को प्राप्त हुआ है।

अशोक वृक्ष

(नोट---महाराज श्री द्वारा चित्रित अशोक वृक्ष का चित्र पृष्ठ २१३ पर अगोपाग सिद्धात कल्प नामक फल्क की पृष्ठ पीठिका में दिया गया है। पाठक उस चित्र को देखकर प्रस्तुत विवेचन पढें ।।

जैन वाड्मय में नम्मोक्कार मत्र का सबसे अधिक महत्त्व है । ब्राह्मण परंपरा में जिस प्रकार गायत्री का महत्त्व है, उसी प्रकार वल्कि उससे अधिक इन मत्र का जैन सस्कृति मे महत्त्व है । इसे महामत्र कहते है । जैन कुल में उत्पन्न प्रत्येक वालक प्रतिदिन इसका स्मरण करता है । इस मंत्र मे सर्व प्रथम अरिहतो को नमस्कार किया गया है । इस अवसर्पिणी काल में भगवान् ऋषभ देव से लगाकर भगवान महावीर स्वामी पर्यंत जो चोवीस तीर्थंकर हुए, वे ही उस समय अरिहत कहलाते थे । जो तीर्थंकर होकर तीर्थ की स्थापना करता है वही अरिहंत होता है । शास्त्रो में अरिहंत भगवान् के १००८ गुणो का वर्णन किया गया है और जिस समय वे देशना देते है, उस समय वहाँ देवगण एक भव्य समसरण की रचना करते है। अरिहत भगवान् उस समवसरण मे अशोक वृक्ष के नीचे व्यास–पीठ पर अधिष्ठित होकर अपनी देशना देते है ।

इस कलाकृति में पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज ने शास्त्रो मे वर्णित अरिहंतो के अष्ट महा प्रतिहार्यो में प्रथम प्रतिहार्य अशोक वृक्ष की रचना की है। अशोक वृक्ष के ऊपर एक वेदिका है, वेदिका के दोनो ओर तोरण द्वार की तरह दो स्तभ खडे हुए है, उन दोनो स्तंभो के ऊपर चदोवा तना हुआ है । इसी मंडप मे अरिहंत भगवान् वेदिका पर अधिष्ठित होकर देशना दे रहे है । उनके सामने रजोहरण रखा हुआ है । संप्रदायो की भिन्नता के अनुसार तीर्थ की स्थापना करनेवाले तीर्थंकरो की आकृति में मतभेद हो सकता है। कदाचित् मूर्तिपूजक श्वेतांवर संप्रदाय और दिगंबर संप्रदाय इसमें अपना मतभेद प्रकट करे । पूज्यपाद श्रीतिलोक ऋषिजी महाराजने अपनी संप्रदाय के अनुसार इस आकृति का निर्माण किया है ।

अव हम इस अशोक वृक्ष का निर्माण करने मे जिन भगवान की देशना–रूप अमृतोपम मंत्रो, सूत्रो एवं वाक्यो का उपयोग किया गया है उनका अध्ययन करे । सवसे पहले स्तंभो के ऊपर स्थित चदोवा के ऊपर जो गुवज है, उस गुवज

मे ॐ की रचना की गई है। गुबज के ऊपर नमस्कार मत्र अकित किया गया है। वहा जगह कम होने से इस मंत्र के एकाध अक्षर छूट गये है, वह इस प्रकार है।——

अरिताणं सिद्धाण आयरिया उवज्झाय साहुय, 'अरिताण, मे 'ह' अक्षर छूटा हुआ है, इस मंत्र के ऊपर ॐ अकित है। गुबज के नीचे दो लाइनो में 'नमो अरिहन्त सिध्दसाधुभ्य सकल सिध्दिदायकाय नमामि सदा' इस प्रकार लिखा हुआ है। उसके बाद दोनो स्तभो तथा ऊपरवर्ती चदोबे मे देव, गुरु और धर्म की वंदना की गई है। वह इस प्रकार है— 'देव अरिहंत च नमामि, गुरु निगरंथ च नमामि और दयामय धरम च नमामि।' शब्द भेद होने पर भी ऊपर वणित मडप और गुबजवर्ती अक्षरो द्वारा महामत्र नमस्कार मंत्र का ही चित्रण किया गया है। भगवान् के आसीन होने की वेदिका निर्माण 'परमेश्वराय नमामि सदा' इन अक्षरो द्वारा किया गया है।

अब हम मंडप के दोनो ओर अकित क ख अक्षर की ओर मुडते है। बाईं ओर क अक्षर है। उसमे नमस्कार मत्र, दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा तथा उत्तराध्ययन सूत्र की एक प्रसिध्द गाथा का उत्तराध्दं देखते है। उनका वर्णन पहले अनेक बार हो चुका है। उनका अकन इस प्रकार किया गया है——णमो अरिहंत सिध्द आएरिय उवज्झाय साहुए १, धम्मो मगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो। देववि त नमसति जस्स धम्मे सया मणो ॥१॥

सति सति करे लोय पत्तोगइमणुत्तरं ॥१॥

इसी क अक्षर के मध्यवर्ती काने मे जहां कि दशवैकालक की प्रथम गाथा लिखी गई है वहां नीचे की ओर सं १९३६ लिखा गया है। मडप की दाहिनी ओर ख अक्षर का अंकन किया गया है। इस अक्षर की आकृति क, ख, ग शिर्षक के नीचे वणित ख और ग की आकृति से मिलती—जुलती है, वहां उनका विशद विवेचन कर चुका हूँ। वही पर विवरण पढ़कर पाठक इसके सबंध मे जानकारी प्राप्त कर ले। वहां ख अक्षर में मछलियो का चित्रण किया गया है और ग मे लताओ का। इन दोनो अक्षरो में चित्रित मछलियो तथा लताओ का चित्रण अकेले इस ख अक्षर में है।

समवसरण रचना के बाह्यवर्ती रिक्त भाग मे विविध आकृति में चित्र—कार द्वारा चित्रित चित्रो की तरह ग घ, ङ च छ ज ञ ट ठ ढ ण त द ध इन अक्षरो की आकृति निर्मित की गई है। यहां पर भी प्रत्येक अक्षर के अंकन करने में बडी कुशलता से काम लिया गया है। प्रत्येक अक्षर की आकृति भिन्न-भिन्न ढंग

से बनाई गई है। पाठक फलक में अंकित अक्षरो को देखकर उनकी विशेषता जान सकते है । विस्तार-भय से मै उनका विशद विवेचन नही कर मुख्य विषय पर आता हूँ। सब से पहले अशोक वृक्ष का निर्माण करके उस पवित्र वृक्ष के नीचे मूल भाग में जो चबूतरा बनाया गया है उसपर 'श्री परमेश्वराय नम, मि श्री लिखा है। उसके बाद इस वृक्ष की धड में दशवैकालिकसूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा अकित की गई है । इस गाथा का अकन कर महाराज श्री ने इस वृक्ष को धर्ममय बताया है । तत्पश्चात् धड के ऊपर जहाँ कि डालियाँ प्रारंभ होती है, वृक्ष का वह भाग सब से महत्त्व पूर्ण है। वहाँ उपदेशात्मक वाक्यो द्वारा पत्तियो का चित्रण किया गया है । ये उपदेशात्मक वाक्य अत्यत छोटे होने से पढ़ते ही हृदय को छू लेते है। इनकी हृदय पर सीधी असर होती है । ऐसा प्रतीत होता है –स्वयं भगवान् ही इस पंचम काल में आजकल की जन भाषा में देशना दे रहे है पहले पहल अहिंसा को श्रेष्ठ बताकर हिसा की तुच्छता सिद्ध की गई है। यथा– 'जेणा नीकी छे हिसा फीकी छे' यतना श्रेष्ठ है हिसा तुच्छ है । दशवैकालिकसूत्र के चतुर्थ अध्ययन की सातवी गाथा मे पहले यह पूछा गया है कि किस प्रकार आचरण करने से पाप कर्म का बधन नही होता है––

कह चरे ? कह चिट्ठे ? कह मासे ? कहं सए ?
कहं भुंजंतो भसतो, पावकम्म न वन्धइ ?

वहाँ इसका उत्तर उससे बाद की गाथा में इस प्रकार दिया गया है––

जय चरे जयं चिठ्टे, जय भासे जय सए।
जय भुजतो भासंतो, पावं कम्म न वन्धइ ॥

किस प्रकार चलने, खडे होने, बैठने, सोने, भोजन करने और भाषण करने से प्राणी पाप कर्म को नही बांधता है । इसके उत्तर मे कहा गया है कि यतनापूर्वक चलता हुआ, यतनापूर्वक खडा होता हुआ, यतनापूर्वक सोता हुआ, यतनापूर्वक भोजन करता हुआ और यतनापूर्वक वोलता हुआ प्राणी पाप कर्म मे वद्ध नही होता है । इसलिए यतना रखना अहिसा का चिन्ह है और अयतनापूर्वक आचरण हिसा का द्योतक है । जिस प्रकार कार्य करने से कर्मो का वध नही होता, वही अहिसा है । जयणापूर्वक आचरण करने पर ही प्राणी कर्मो से लिप्त नही होने से अहिसा का पालन करता है ।

उसके बाद दूसरी ओर उसी पत्ती की आकृति में लिखा हुआ है- 'कर जो धरम टूटेगा करम" धर्माचरण करना, जिससे कर्म नष्ट होगे । ससार में धर्म ही एक मात्र तरणोपाय है, धर्माचरण करने वाले व्यक्ति का ही जीवन सार्थक माना जाता है, शुद्ध हृदय से धर्म का पालन करनेवाले व्यक्ति के कर्म तुष में पडी हुई

अग्नि की तरह जल्दी नष्ट हो जाते है। पत्ती की मध्य मे अकित लाल अक्षरो में। 'भ्रमता दमता है।' नामक सूत्रात्मक वाका है। भ्रम अर्थात् किसी प्रकार की शका रखना। भ्रम रखनेवाले व्यक्ति का सदैव दमन होता है,। वह प्रत्येक व्यक्ति से पराजित होता है। क्यो कि शंकाशील व्यक्ति स्वयं शकित होने से अपने सिद्धात पर भी ठीक तरह से विश्वास नहीं कर सकता और अन्य सप्रदाय-वाले व्यक्ति द्वारा अच्छे शब्दो में अपने सिद्धात का प्रतिपादन करने पर तुरंत उस पर विश्वास कर लेता है। फिर दूसरी ओर उसी प्रकार लाल अक्षरो मे 'समता रखता है' सुनहला वाक्य अकित है। समता रखनेवाला व्यक्ति सदैव अपनी आत्मा में रमण करता है, उसकी बाह्य वस्तुओ की ओर दृष्टि नही होती उसी पत्ती में बाँई ओर ऊपर के छोर पर 'धारजो दया आणिजो मया' अकित है। अपने हृदय में दया धारण करना जिस से चित्त सद्भावनाशील होगा। करुणा रखने वाले या अहिंसा का पालन करने वाले व्यक्ति का हृदय भावनाशील होता है। भावुक व्यक्ति सब प्राणियो पर कारुण्य वृत्ति रखकर सतत शुभ कार्यो में रत रहता है। अंत में दूसरी ओर 'होव जो नरम जु टुटेगा करम' लिखकर इस पत्ती की आकृति को पूर्ण किया है। जीवन मे सदैव विनम्र या विनयशील होना चाहिए, विनयशील व्यक्ति शीघ्र ही इष्ट ज्ञान सपादन कर लेता है, वह सब ओर से ज्ञान प्राप्त करने के लिए तत्पर रहता है। ऐसे विनयशील व्यक्ति के कर्म जल्दी नष्ट हो जाते है। विनय या नम्रता बारह प्रकार के तप मे एक प्रकार का तप है। इस विनय रूपी तपश्चर्या से प्राणी कर्म बंध से विरहित होता है।

नीचे भी पहली पत्ती की जैसी आकृति बनाई गई है। उस आकृति के निर्माण में महाराज श्री ने निम्नाकित सूत्रात्मक वाक्यो का उपयोग किया है। 'सेव जो साध के मेटो उपाध के' 'खावजो गम होवे जु सम' 'ताँन में तान है।' 'दान मे मान है।', 'थे देजो साता जु होसी माता'– 'आणी सतोष मीटे सोसता।' इन सब सूत्रात्माक वाक्यो का अर्थ बहुत सरल है। सब से पहले सतो के सान्निध्य में रहने का महत्त्व बताया गया है। 'सेवजी साध के मेटो उपाध के।'

तुम साधुओ का सेवन करना जिससे तुम्हारी सब उपाधियाँ दूर हो जायेगी प्राणी के विकास मे सद्ग्रन्थो का पठन, धर्माचरण आदि का नबर बाद मे आता है। सब से पहले उसके लिए साधुओ की सेवा या सत्सगति आवश्यक है। साधुओ के सान्निध्य में रहनेवाले व्यक्ति को अनायास धर्म का ज्ञान हो जाता है। क्योकि साधुओं की प्रत्येक चर्या धर्म रूप होती है। उनकी चर्या ही आँखे खोल कर देखनेवाले व्यक्ति के लिए धर्म रूप होती है।

उसके लिए उसे स्वतंत्र रूप से धर्म-ग्रथ पढने की आवश्यकता नही रहती। साधुओ की सेवा करनेवाले व्यक्ति की अनायास सब उपाधियाँ दूर हो जाती है। इसके विपरीत असाधुओ के निकट रहने से दिन-रात उपाधियाँ बढती रहती है। कहा भी है--

संगत कीजिये साधु की, हरै और की व्याधि।
ओछी संगत क्रूर की, आठो प्रहर उपाधि॥

साधु सेवा के बाद 'खावजो गम होवे जु सम' लिखा हुआ है। क्रोध के वशीभूत होकर प्राणी अनेक बार ऐसे कृत्य कर बैठता है, जिसके लिए उसे जन्म पर्यंत पश्चात्ताप करना पडता है। क्रोध की उपमा कही-कही पर भूत या पिशाच से दी गई है। पिशाचग्रस्त प्राणी विचार-शून्य होकर ऐसे कृत्य कर बैठता है कि बाद में स्वस्थ अवस्था मे आने पर उसे स्वय अपने पर विश्वास नही होता और कहता है कि क्या ये कार्य मेरे द्वारा किये हुए है! इसी तरह क्रोधी व्यक्ति भी विचार-शून्य होकर जो अकृत्य करता है, क्रोध रूपी भूत के उतरने पर उसे अपने उन कार्यो के लिए पश्चात्ताप होता है। इसलिए जब क्रोध पैदा होने जैसी अवस्था हो, उस समय मौन धारण कर लेना चाहिए, चुप रह जाना चाहिए. मौन धारण करने से चित्त में शान्ति हो जाती है। शान्त जीवन ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है। अत शात जीवन व्यतीत करने के लिए कटु वचन बोलने का अवसर आने पर सदैव मौन का आश्रय लेना चाहिए।

मौन का महत्त्व बतलाने के बाद आपश्री ने 'तान मे तान है, अंकित किया है। इसका अर्थ है--खीचातानी में खीचातानी है। कभी किसी वस्तु के लिए खीचातानी नही करनी चाहिए। खीचातानी करनेवाले व्यक्ति का जीवन सतत सघर्षमय रहता है। खीचातानी कलहमूलक है। इसलिए वैर की वृद्धि करनेवाली खीचातानी से सदैव दूर रहना चाहिए।

वैरमूलक खीचातानी से दूर रहने का उपदेश देकर दान का महत्त्व बताया गया है। दान में मान है' दान, शील, तप भावनारूप चतुर्विध धर्म में दान का प्रथम स्थान है। दानी व्यक्ति सन्मान का पात्र होता है, कजूस व्यक्ति चोरो को उत्पन्न करता है। दानी व्यक्ति की मृत्यु होने पर भी वह अपने यश-रूपी शरीर से जीवित रहता है--'कीर्तिर्यस्य सो जीवति' जिसकी कीर्ति बनी रहती है, ससार में वही जीवित रहता है। उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त करने के लिए सदैव सत्पात्र को दान देते रहना चाहिए।

दान का माहात्म्य वर्णन करने के बाद सब प्राणियो को सुख पहुँचाने के महत्त्व का गान किया गया है--'थे देजो साता जु होसो साता'।, सब प्राणियो

को सुख–शान्ति पहुँचानेवाला व्यक्ति सदैव मस्त रहता है। दुःख पहुँचानेवाले व्यक्ति का हृदय सदैव अशात रहता है। अशात व्यक्ति कभी मस्त नही रह सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को पीडा पहुँचानेवाला व्यक्ति सदैव पीडित व्यक्तियो का शाप प्राप्त करता रहता है। शोषित और पीडित व्यक्तियो का वह शाप उसके चित्त को और अधिक संतापित करता रहता है। इसके विपरीत प्राणि-मात्र को आराम पहुँचानेवाला व्यक्ति सदैव शात रहता है। वह दुख में भी सुख का अनुभव करता है। पीडित व्यक्ति के मुख पर मुसकान की एक रेखा देखकर वह पुलकित हो उठता है। वह सदैव आत्मा की आनदमय अवस्था में विचरण करता है। आत्मा का सहज आनद पाप्त करने के बाद उसका मस्त रहना स्वाभाविक है। अतएव यह लिखना सर्वथा सगत है––

'थे देजो साता जु हो सो माता।'

सब को सुख पहुँचाने के महत्त्व का वर्णन करने के बाद सतोष की स्तुति गाई गई है–"आणो सतोष मिटे सोसता॥" जीवन मे संतोष सुखदायक और तृष्णा दुखदायक होती है। तृष्णा कभी कम नही होती वह सदैव बढ़ती रहती है।

'तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा'।

तृष्णा कभी वृद्ध नही होती, वह सदैव अपनी यौवनावस्था में रहकर निरंतर आगे बढती रहती है। यहाँ तक कि पहले मर्यादित सपत्ति प्राप्त कर लेने पर भी उसे संतोष नही होता। इसलिए अधिक सपत्ति प्राप्त करने की लालसा मे वह मन ही मन जलता रहता है। इसके विपरीत सतोषी व्यक्ति की दृष्टि सदैव नीचे की ओर रहने से अपने पास जो कुछ होता है उसीमें संतुष्ट रहता है। वह निम्न प्राणियो से अपने को अधिक संपन्न देखकर सुखी होता है। कहा भी है––

सतोष परमं सुखम्।

सतोष ही श्रेष्ठ सुख है। संतोषी व्यक्ति के चित्त में तृष्णामूलक दाह नहीं रहता। इसलिए सतोष द्वारा अपने जीवन में अनुभूत इस सूत्र वाक्य का सब को अपने जीवन में पालन करना चाहिए–––(आणो सन्तोष मिटे सोसता। तुम अपने जीवन में सतोष धारण करो जिससे तुम्हारे चित्त को जलानेवाला तृष्णामूलक दाह दूर हो जाय। पत्तियो के चित्रण के बाद सबसे ऊपर जो गुबज की आकृति है, उसके मध्य में "मगलाचरण सूचक" श्री ऐं, ॐ, ह्री, श्री अकित हैं। मगलाचरण के दोनो ओर "बोलो साँच मीटे आँच, तथा जैन मत ऐन ओर फेन। लिखा हुआ है।

पच महाव्रतो मे अहिंसा व्रत का यद्यपि प्रथम स्थान है, पर सत्यव्रत की समता अहिंसा के समकक्ष की गई है। दोनो का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। सत्यव्रत का आचरण किये विना अहिंसा का पालन नही हो सकता। और अहिंसा व्रत का पालन किये विना सत्य का भी पालन नही हो सकता। सत्य वोलनेवाले को वाचा-सिद्धि की प्राप्ति होती है। उस पर जो कुछ मिथ्या दोपारोपण किया जाता है, वह ठहर नही सकता। इसलिए यह लिखना सर्वथा युक्तियुक्त है— "वोलो साँच मीटे आँच" तुम सत्य वोलो जिससे तुम्हारे ऊपर यदि कोई झूठे दोप का आरोप करेगा तो वह मिट जायगा। एक ऐसी कहावत भी है।—

"साँच को आँच नही।"

अन्त में जैन मत की श्रेष्ठता वताई गई है—'जैन मत ऐन और फेन' ससार के सव मतो में जैन मत ही श्रेष्ठ है और सव मत पानी के वुदवुदे के समान है। जैन सिद्धात में प्ररूपित स्याद्वाद सिद्धान्त में विश्व के सव दर्शनो का समावेश हो जाता है।

गुवज के मध्य में लाल अक्षरो में 'दोप न रोस न करणी तरणी' लिखा हुआ है। इन दोनो का अर्थ सरल है। दोप या अपराध करनेवाला व्यक्ति ही अधिक क्रोधी होता है। निरपराधी सदैव शान्त रहता है, जिसके जीवन मे किसी प्रकार दोष नही होता, उसके लिए क्रोध करने का कोई हेतु नही रहता। अपराधी व्यक्ति ही अपने दोष को छिपाने के लिए क्रोध करता है। यह अनेक अनुभवी महापुरुषो के द्वारा अनुभव करने के पश्चात् प्रकट किया हुआ तत्त्व है।

दूसरी ओर है—"करणी तरणी" प्राणी अनत काल से ससार रूपी समुद्र में गोते लगा रहा है। इस समुद्र से पार उतरने के लिए उसे कोई किनारा नही दीखता। केवल तपश्चर्या, ज्ञान संपादन, सयम आदि उसे पार करने के लिए तरणी—नौका रूप है। अहिंसा आदि पंच महाव्रतो का पालन, सयम और तप की साधना करनेवाला इस संसाररूपी समुद्र को जल्दी तिर सकता है। इसलिए इस संसार में "करणी ही तरणी है।"

इस अशोक वृक्ष के चारो ओर वृत्ताकार रूप में अरिहत भगवान् की स्तुति-परक एक सवैया है—

केवल केवल केवली मारग, सर्व गुणागार जो अरिहन्त।
चौतीस अतिसे आप विराजत, पैंतीस वाणी धुणी गरजत॥
जोजन वेण सुणत सवे जन, को होवे श्रावक कोइक संत।
तिलोक रिख कहे रूप अनुपम, दीपत दामणी जामणी कंत॥

अर्थ--सब गुणो के आगर जो अरिहन्त भगवान् है, केवल उन्ही केवल-ज्ञानधारी केवली भगवान् का मार्ग सच्चा है । आप परिषद् में चौंतीस अतिशयो से युक्त होकर विराजमान होते है और पेंतीस गुणो से युक्त आपकी वाणी की गर्जना चारो दिशाओ में होती है । आपकी देशना को एक योजन पर्यन्त सब लोग सुनते है, फिर चाहे वह कोई श्रावक हो या कोई संत हो । तिलोकऋषिजी म० कहते है कि उन अरिहंत भगवान् का रूप अत्यंत अनुपम है । वे रात्रि में यामिनी-कात चन्द्रमा की तरह अपनी परिषद् में सुशोभित होते है ।

चन्द्रमा की किरणे अत्यंत शीतल होने से सब उसकी ओर देखते है, उस ओर देखने से किसी को कष्ट नही होता । उलटा चित्त में आह्लाद पैदा होता है। इसी तरह तीर्थंकर भगवान् की भव्य आकृति भी चित्त को आह्लादित करती है। उनकी ओर देखने से कभी तृप्ति नही होती, सदैव उसके सामने बैठकर उनकी रूप-सुधा का पान करने की इच्छा बनी रहती है ।

अशोक वृक्ष के बाद उपर्युक्त सवैये में जो अरिहन्त भगवान् का स्तवन किया गया है, वह कितना उचित है । क्योकि पहले हम अशोक वृक्ष का जो जो कुछ निरूपण कर चुके है वह सब केवली भगवान् द्वारा प्ररूपित देशना है, अत-एव अशोक वृक्ष के बाद अरिहन्त भगवान् की स्तुति करना सर्वथा उचित है ।

सवैये बाद चारो ओर वृत्ताकार रूप मे एक वल्लरी की रचना की गई है । वल्लरी के बीच में जो पत्तियाँ दी गई है, उन सब में श्री अंकित है । उसके बाद फिर एक उत्कृष्ट सवैया पहले सवैये की तरह लिखा गया है । वह इस प्रकार है--

करत करम कर हरख हरख भर,
भरत बजन अघ भ्रमत जगत वन ।
अधक अरत तस भरत करम बस,
अफल जनम जस तजत धरम धन ॥
दक्ष जन अप्रमत्त, धरत अभय सत,
दत्त ब्रह्म अममन करत करमन,
रचत रतनत्रय भर्मंतम खग सम ।
तप जप व्रत तत परम अचल प्रन ॥

अर्थ--प्राणी प्रसन्न होकर क्रूर कर्म करता रहता है, वह अपने आप में पाप रूपी बोझ भरकर संसार रूपी अटवी में भटकता रहता है । उसके कारण अत्यंत दु.खी हो कर्मो के वशीभूत होकर बार-बार मृत्यु को प्राप्त होता रहता है ।

है। जो व्यक्ति अपने धर्म रूपी धन को छोड़ देता है, उसका इस ससार में जन्म लेना व्यर्थ है। इसके विपरीत वह व्यक्ति दक्ष है, जो अप्रमत्त और निर्भय होकर अपने हृदय में सत्यको धारण करता है। ममतारहित होकर आत्मज्ञान सपादन करने में लीन रहता है, क्रूर कर्मो को नही करता है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यग् चारित्र रूप रत्नत्रय को रचने या प्राप्त करने में रत रहता है, ससार मे पक्षी के समान अनासक्त होकर विहार करता है। जो तपश्चर्या, जप, व्रत और तत्त्वों का ज्ञान सपादन करने के लिए श्रम करता है और जो कोई महती प्रतिज्ञा लेकर उस पर अटल रहता है वही व्यक्ति चतुर है। अशोक वृक्ष के नीचे एक और सवैया अकित है—

खाया पीया खूसी मानी, पापी सेती प्रीती मानी,
काची काची सॉची मानी, मेरी माया जानी है।
जूवानी को जोमी चाले, टेडो टेडो वोले खोटो,
खोटा खोटा किया धधा, अंधा पापी प्राणी है॥
साधू वाणी माने नही, सोची नाही नीकी फीकी,
सुद्धि वुद्धि विना भ्रष्टी, पावे पीड़ा खाणी है।
त्रैलोका की नाका छडी, सील, प्रिया बांधी तडी,
पाणी माहे डूबे डडी, जावा काज ठाणी है॥

अर्थ——यहाँ अहर्निश पाप कर्म में रत रहनेवाले व्यक्ति के लिए कहा गया है। केवल अपने आपका ही भरण-पोषण कर सुखी रहनेवाला व्यक्ति खुश होकर खाता-पीता रहता है, अपने समान पापी व्यक्तियो के पापकर्म से प्रेम करता है, कच्ची अधूरी अप्रामाणिक वातो को सत्य मानता है और ससार में लुब्ध करनेवाली माया को अपनी जानता है, युवावस्था के जोश के कारण वह टेढ़ा टेढ़ा चलता है तथा परमात्मा का डर नही रखकर खोटा-खोटा वोलता है—मिथ्या भाषण करता है। वह काला बाजार करता है। ऐसा पाप करने वाला पापी प्राणी पाप करते समय अधा वना रहता है। वह साधुओ द्वारा दिये हुए उपदेश को नही मानता, अच्छे-बुरे का कुछ भी विचार नही करता। इस प्रकार सुद्धि और बुद्धि के विना चारो ओरसे भ्रष्ट होकर पीड़ा की खान को प्राप्त करता है—ससार में बहुत दुःख प्राप्त करता है। ऐसे व्यक्ति ने ससार से पार उतारने वाले त्रिलोकीनाथ केवली भगवान् की उपदेश रूपी नौका छोड़कर अपने गले में कर्म रूपी प्रिय शिला बाँध रखी है। उसकी डडी पानी में डूब रही है। वह ससार रूपी समुद्र से नही तिर कर उसमें डूब रहा है और यहाँ से जाने के लिए उसने ऐसा अकृत्य ठान रखा है।

ज्ञान-कुंजर

ऊपर हम हाथी के रूप में पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज द्वारा विरचित आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण 'ज्ञान कुजर' की एक अत्यंत मुन्दर आकृति देख रहे है। अपने नाम के अनुरूप यह कुजर ज्ञान से परिपूर्ण है।

केवल लाइनें खीचकर हाथी का स्केच बनाने में ही अत्यत कठिनाई होती है, फिर आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण अक्षरो द्वारा हाथी का चित्रण करने में कितने कौशल का काम है ? यह तो पाठक इसका सूक्ष्म पर्यवेक्षण कर स्वय अनुभव कर सकते है।

हाथी के सब अंगो में सूंड की मुख्यता है। उसकी सारी शोभा सूंड में ही समाई हुई है। इसलिए सबसे पहले चौवीस तीर्थंकरो के नाम लिखकर सूंड की आकृति बनाई गई है। सबके अंत में वर्तमान शासन नायक भगवान् महावीर का नाम है। सूंड के पार्श्ववर्ती कान पर भगवान् महावीर के ग्यारह गणधरो के नाम लिखकर बनाये गये है। तीर्थंकरो के नाम के बाद तुरंत ग्यारह गणधरो के नाम-निर्देश के पीछे गूढ तात्पर्य है। वर्तमान शासन नायक भगवान् महावीर ने समवसरण में या अन्यत्र जो कुछ देशना दी, उसे ग्रहण करने वाले भगवान् के मुख्य शिष्य गणधर थे। वही ज्ञान श्रुतरूप में आज जीवित है। इस हाथी की आँख केवल ज्ञान रूप है। ज्ञान कुजर की आंख केवल ज्ञान के अतिरिक्त दूसरी नही हो सकती।

हाथी के सूंड, मस्तिष्क और कान के बाद एकाएक हमारी दृष्टि उसकी दोनो दतूरो पर पडती है। सफेद होने से वे आकर्षक भी होती है। यहाँ ज्ञान कुजर की धीरज और धर्म ये दो दतूरे है।

सुसज्जित हाथी के ऊपर झूल पडी रहने से वह भाग नही दिखाई देता, पर उसके खुले पांव पर सबकी दृष्टि पडती है। गणधरो द्वारा ग्रथित आचाराग सूत्रकृताग आदि बत्तीस आगमो के नाम लिखकर ज्ञान कुंजर के पांवो की रचना की गई है। इसके पीछे यह तात्पर्य है, जब तक तीर्थंकर और गणधर जीवित थे तब तक इस लोक के प्राणियो को साक्षात् उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता रहता था। उनके निर्वाण के बाद इस पचम काल में गणधरो द्वारा ग्रथित आगम ही एक मात्र तरणोपाय है। तीन पांवो के निर्माण में ही ११ अग, १२ उपाग, ४ छेद सूत्र ४ मूलसूत्र और ३२ वा आवश्यक इन बत्तीस आगमो के नाम समाप्त हो जाते है। अवशिष्ट बचे हुए चतुर्थ पाँव के निर्माण में प्रसिद्ध घटने, बढने स्थिर और चल अचल रूप (घटे आयुष्य, बढे तृष्णा, स्थिर कर्म की

उस सवैये के बाद दोनो ओर सम परिमाण मे लाल लाइने खीच-कर मध्य में पास-पास अनेक सघन काली लाइने खिची गई है। लाइनो के ऊपर "श्री रिसभाय नमामि ऐं" लिखा हुआ है।

यह लिखने के पश्चात् अत मे अत्यन्त सुदर ढग से 'कामी' की आकृति चित्रित की गई है। सूत्र पढते या व्याख्यान देते समय मुनिवृद अगुली के पसीने आदि से सूत्र खराब न हो, इसलिए उनकी रक्षार्थ 'कामी' रखते है। यह कामी पहले सूत्र के पन्ने पर रखकर बाद में उसपर वे अपना अगूठा रखते है। चिर-काल से शास्त्राभ्यास करने के समय 'कामी' का प्रचार होने से इसका निर्माण अत्यत कलात्मक रूप से किया जाता है। यहाँ पर इसके चित्रण में महाराजश्री ने अपनी उत्कृष्ट कला की इतिश्री कर दी है। इसमे चित्रित सुन्दर कामी का अन्यत्र शायद ही कही दर्शन हो। कामी के मध्य में एक दोहा अकित है, वह इस प्रकार है—

क्रोड बात की वारता, सकल शास्त्र को सार।
दया दान दम आतमा, तिलोक रिख कहे धार॥

अर्थ—सब शास्त्रो का सार तथा करोड बात की वात एक ही है कि विचार करनेवाली संज्ञी आत्माओ को दया, दान और दमन करना चाहिए, ऐसा तिलोकऋषिजी म निश्चय कर कहते है।

इस प्रसंग की कथा ब्राह्मण परंपरा के उत्कृष्ट ग्रंथ उपनिषद् और जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण द्वारा विरचित विशेषावश्यक भाष्य के गणधर वाद में है। एक बार असुर, मानव और देव उपदेश ग्रहण करने के लिये ब्रह्मा के पास गये, असुरों के जानेपर ब्रह्माने 'द' कहा, मनुष्यो के जानेपर भी 'द' कहा और देवो के जानेपर भी 'द' का उच्चारण करके उपदेश दिया। तीनो के उपदेश में 'द' अक्षर समान होनेपर भी उन्होने अपने-अपने आचारण के अनुसार 'द' का भिन्न भिन्न अर्थ लिया। असुर अत्यत हिंसा करते है अतएव उन्होने 'द' से दया अर्थ ग्रहण किया, मनुष्योने 'द' शब्द से दान अर्थ ग्रहण किया और अहर्निश भोगो में रत रहनेवाले देवताओ ने 'द' से दमन अर्थ ग्रहण किया। देवताओ ने यह समझा, सतत भोगो में मग्न नही रहकर इंन्द्रियो का दमन करना चाहिए। विशेषावश्यक के गणधरवाद में यही प्रसंग है, पर वह भगवान् महावीर के पास शकित हृदय से आये हुए एक गणधर की शका के निराकारण के प्रसग में आता है।

इस कामी के बाई ओर श्री अक्षरो से अंकित 'र' की आकृति चित्रित की गई है और दाहिनी ओर 'बा' अक्षर की आकृति बनाई गई है। दोनो अक्षरों को मिलाने पर 'रंबा' शब्द बनता है। इस रबाबाई के सम्बन्ध में मै पहले उन्हें

प्रदत्त पत्र का विवेचन करते समय लिख चुका हूँ। वा अक्षर के बाद पूर्व के दोनो अक्षरो की तरह केवल श्री से निर्मित खुली हुई छत्री की भी एक भव्य आकृति है।

कामी के नीचे और रंबा अक्षर के बीच में इस चित्र को चित्रित करने का सवत्, तिथि आदि लिखी गई है। सवत् १९३६ पौष ३० लि० तिलोक रिख देश दक्षिण अहमदनगर मध्ये श्रीरस्तु कल्याणमस्तु।

जिस समय पूज्यपाद श्री तिलोकऋपिजी महाराज की अवस्था केवल बत्तीस साल की थी। उस समय आपश्री ने जैन सिद्धात के अनुसार इस अद्भुत चित्र का चित्रण किया। इस अशोक वृक्ष के द्वारा आपश्री ने जनभाषा में जीवन-विकास का सुन्दर मार्ग बताया है। इसमें दिये हुए सूत्रात्मक छोटे-छोटे वाक्यो, सवैयो और दोहो का निरतर मनन करनेवाला प्राणी कभी असन्मार्ग की ओर नहीं जा सकता।



ज्ञान-कुंजर

ऊपर हम हाथी के रूप में पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज द्वारा विरचित आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण 'ज्ञान कुजर' की एक अत्यंत सुन्दर आकृति देख रहे है। अपने नाम के अनुरूप यह कुजर ज्ञान से परिपूर्ण है।

केवल लाइनें खीचकर हाथी का स्केच बनाने में ही अत्यत कठिनाई होती है, फिर आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण अक्षरो द्वारा हाथी का चित्रण करने में कितने कौशल का काम है ? यह तो पाठक इसका सूक्ष्म पर्यवेक्षण कर स्वय अनुभव कर सकते है।

हाथी के सब अंगो में सूंड की मुख्यता है। उसकी सारी शोभा सूंड में ही समाई हुई है। इसलिए सबसे पहले चौवीस तीर्थकरो के नाम लिखकर सूंड की आकृति बनाई गई है। सबके अंत में वर्तमान शासन नायक भगवान् महावीर का नाम है। सूंड के पार्श्ववर्ती कान पर भगवान् महावीर के ग्यारह गणधरो के नाम लिखकर बनाये गये है। तीर्थंकरो के नाम के बाद तुरंत ग्यारह गणधरो के नाम-निर्देश के पीछे गूढ़ तात्पर्य है। वर्तमान शासन नायक भगवान् महावीर ने समवसरण में या अन्यत्र जो कुछ देशना दी, उसे ग्रहण करने वाले भगवान् के मुख्य शिष्य गणधर थे। वही ज्ञान श्रुतरूप में आज जीवित है। इस हाथी की आँख केवल ज्ञान रूप है। ज्ञान कुजर की आँख केवल ज्ञान के अतिरिक्त दूसरी नही हो सकती।

हाथी के सूंड, मस्तिष्क और कान के बाद एकाएक हमारी दृष्टि उसकी दोनो दतूरो पर पडती है। सफेद होने से वे आकर्षक भी होती है। यहाँ ज्ञान कुजर की धीरज और धर्म ये दो दतूरे है।

सुसज्जित हाथी के ऊपर झूल पडी रहने से वह भाग नही दिखाई देता, पर उसके खुले पाँव पर सबकी दृष्टि पडती है। गणधरो द्वारा ग्रथित आचाराग सूत्रकृताग आदि बत्तीस आगमो के नाम लिखकर ज्ञान कुंजर के पाँवो की रचना की गई है। इसके पीछे यह तात्पर्य है, जब तक तीर्थंकर और गणधर जीवित थे तब तक इस लोक के प्राणियो को साक्षात् उनके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता रहता था। उनके निर्वाण के बाद इस पचम काल में गणधरो द्वारा ग्रथित आगम ही एक मात्र तरणोपाय है। तीन पाँवो के निर्माण में ही ११ अग, १२ उपाग, ४ छेद सूत्र ४ मूलसूत्र और ३२ वा आवश्यक इन बत्तीस आगमो के नाम समाप्त हो जाते है। अवशिष्ट बचे हुए चतुर्थ पाँव के निर्माण में प्रसिद्ध घटने, बढने स्थिर और चल अचल रूप (घटे आयुष्य, बढे तृष्णा, स्थिर कर्म की



॥ऐ॥ धम्मोमंगलमुक्किट्ठ, अहिंसा संजमो तवो, देवा वितं नमंसति, जस्स धम्मे सया मणो॥१॥ जहा दुमस्स पुप्फेसु भमरो आवियइ रसं। न य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं॥२॥ एमेए समणा मुत्ता जे लोए संति साहुणो। विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया॥३॥ वयं च वित्तिं लब्भामो न य कोइ उवहम्मइ, अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा॥४॥ महुकारसमा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया नाणापिंडरया दंता तेण वुच्चंति साहुणो॥५॥ त्तिबेमि इति दुमपुप्फियाम ज्झयणं १ ... नमो सूयस्यामणो भगवी ए लिवीए नमः सर्वज्ञाय



रेखा-वह न तो घटती है और न बढती है और घटने-बढ़ने वाले मन के परिणाम) इन चार वोलो तथा अशोक वृक्षकी कामी में उल्लिखित प्रसिद्ध दोहे से काम लिया गया है। हाथी के चारो पाँव ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप है। हाथी के पहले पांव के मध्य में चउन्नी भर जगह में ६५ हाथियो के चित्र है।

इतने विशाल हाथी की जो छोटीसी पूंछ है, वह ज्ञान–कुजर में निर्दिष्ट तत्त्वो के अनुरूप मिथ्यात्वरूप मक्खियो को उड़ाने के लिए विवेकरूपी पूंछ है।

इसके बाद हमारी ज्ञान-कुजर पर चढने के लिए बनाई हुई निसेनी पर दृष्टि पड़ती है। इस निसेनी का एक डंडा दान, शील, तप, भावना, क्षमा, दया और संतोष रूप है और दूसरा डडा भी दान देना, शील का पालन करना, तप करना, भावना भाना आदि रूप है। निसेनी में लगी हुई पाँच सीढियां अहिंसा-सत्य अस्तेय-ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पांच महाव्रत है।

तदनंतर हाथी पर पडी हुई झूल पर दृष्टि पडती है। इस झूल के एक छोर पर ज्ञान-ध्यान-तप-जप, आदि विषयो से परिपूरित एक सवैया अंकित किया गया है। सवैये से संलग्न करवरी रूप में अकित वीस विहरमानो के नाम है।

इस ज्ञान कुजर को चलानेवाला करुणा, दया, दान, शाति दाति, क्षाति आदि रूप महाव्रत है, उसके हाथ में उपदेश और ज्ञानरूपी अकुश है। अकुश के ठीक सामने जंबूद्वीप का एक नक्शा चित्रित है। महाव्रत के ऊपर देव अरिहत, गुरु–निर्ग्रंथ और केवली प्ररूपित धर्म इन तीन तत्त्वो से परिपूरित छत्री तनी हुई है। इस छत्र की डंडी सम्यक्त्व है।

हाथी पर डाली हुई झूल के ऊपर बैठने के लिए रखी हुई अबाडी के दर्शन होते है। इस अंबाडी के निर्माण में चद्रप्रज्ञप्ति सूत्र की प्रसिद्ध 'नमि–उण असुर-सुर-गरुल भुयग .' गाथा से काम लिया गया है। इस गाथा से सलग्न ॐनम ॐनम ॐनम अकित किये गये है और उसके मध्य के रिक्त स्थान में ॐ ह्री श्री क्ली क्ली ॐ ऊँ ऐं स्वाहा लिखा हुआ है। इस अंबाडी के निम्न भाग मे झूल के ऊपर खति मुत्ति अज्जवे मद्दवे लाघवे रूप धर्म का उल्लेख कर थोडे से रिक्त भाग में कलात्मक रूपसे आठ श्री लिखी गई है।

अंबाडी के ऊपर एक मदिर के प्रकार की आकृति चित्रित है। इस आकृति के तात्पर्य को समझाने के लिए आपश्री ने नीचे के भाग में स्वय इस प्रकार लिख दिया है —'श्री जैनधर्म रूप मदिर को सरणो भवे भवे ममास्तु।' इसके दोनों ओर ज्ञान दर्शन, चारित्र और तपरूप चार स्तभ है। इसके मध्य में प्रतिमाधारी एक मुनिराज की आकृति है। उसके ऊपर उत्तराध्ययन के अठारहवे अध्ययन की एक प्रसिद्ध गाथा है। वह इस प्रकार है——

आकर्षक वर्णन है। मकर सक्राति प्रारंभ होने पर दक्षिणायन से उत्तरायण की ओर सूर्य जाता है, वह काल अर्चिमार्ग या देवयान कहा गया है और कर्क सक्राति प्रारभ होने पर सूर्य के उत्तरायण से दक्षिणायन की ओर गमन करने पर जो समय होता है वह धूम्रमार्ग या पितृयान कहा जाता है। इसमें से उत्तरायण काल में अपनी देह छोडनेवाला श्रेष्ठ योगी परमगति का अधिकारी होता है और दक्षिणायन काल में इस लोक से गमन करनेवाला योगी देवलोक का अधिकारी होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता मे इन दोनो मार्गों का इस प्रकार वर्णन किया है—

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्ति चैव योगिन ।
प्रयाता यान्ति त काल, वक्ष्यामि भरतर्षभ ।।
अग्निर्ज्योतिरह शुक्ल, षण्मासा उत्तरायणम् ,
तत्र प्रयाता गच्छन्ति, ब्रह्म ब्रह्मविदो जना ।।
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः, षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमस ज्योतिर्योगी प्राप्य निवतते ।।
शुक्लकृष्णे गती ह्येते, जगत शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुन ।।

अध्याय ८ श्लोक २३-२४-२५-२६

अर्थ——हे अर्जुन ! जिस काल में–मार्ग से शरीर त्यागकर गये हुए योगीजन पीछे न आनेवाली गति को और पीछे आनेवाली गति को प्राप्त होते है, उस काल को अर्थात् मार्ग को कहूंगा।

इन दो प्रकार के मार्गों में से जिस मार्ग मे ज्योतिर्मय अग्नि (अभिमानी देवता है,) दिन का (अभिमानी देवता है) तथा शुक्लपक्ष का (अभिमानी देवता-है) और उत्तरायण के छ महीनो का (अभिमानी देवता है) उस मार्ग में मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता अर्थात् परमेश्वर की उपासना से परमेश्वर को परोक्षभाव से जानेवाले योगीराज उपरोक्त देवताओ द्वारा क्रम से ले गये हुए ब्रह्म को प्राप्त होते है।

तथा जिसमें धूमाभिमानी देवता है और रात्रि अभिमानी देवता है तथा कृष्ण पक्ष का अभिमानी देवता है और दक्षिणायन के छ महीनो का अभिमानी देवता है, उस मार्ग से मरकर गया हुआ मकाम कर्मयोगी, उपरोक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले गया हुआ देवगति को प्राप्त होकर, स्वर्ग में अपने शुभ कर्मों का फल भोग कर पीछा आता है।

जगत् के यह दो प्रकार के शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गये है। इनमें एक के द्वारा गया हुआ पीछा न आनेवाली

परम गति को प्राप्त होता है और अन्य मार्ग से गया हुआ पीछा आता है अर्थात् जन्म–मृत्यु को प्राप्त होता है।

जैन परपरा के अनुसार कर्म ही प्राणी को अच्छी बुरी गति मे परिभ्रमण करानेवाले है। शुभ कर्मो के उदय से प्राणी उच्च गति को प्राप्त होता है और अशुभ कर्मों के उदय से नीच गति प्राप्त करता है, घाती और अघाती इन आठ कर्मों के विनाश होने पर वह मोक्ष का अधिकारी होता है। इसलिए जैन परपरा के अनुसार कृष्ण पाक्षिक और शुक्ल पाक्षिक जीव का वर्णन अन्य दृष्टि से किया गया है। वहाँ देवप्रधान नही होकर कर्म प्रधान है। स्थानाग सूत्र के प्रथम अध्ययन में उसका इस प्रकार वर्णन है––

जेसिमवड्ढोपोग्गल परियट्टो सेसओ उ ससारो
ते सुक्कपक्खिया खलु अहिए पुण किण्हपक्खिया ।।
संस्कृतच्छाया—येषामपार्धपुद्गलपरावर्तः शेषस्तु ससार ।
ते शुक्लपाक्षिका खलु अधिके पुन कृष्णपाक्षिका ।।१।।

अर्थ––जिन प्राणियो का अपार्ध पुद्गल परावर्त जितना संसार अवशिष्ट रहता है वे शुक्लपाक्षिक होते हैं और इससे अधिक ससार मे परिभ्रमण करनेवाले प्राणी कृष्णपाक्षिक होते है।

ज्ञान कुजर का इस प्रकार अविकल सर्वांगपूर्ण वर्णन करने के बाद ऊपर जो तोरणद्वार बनाया गया है, उसपर एकाक्षरी और द्वयक्षरी कुल चार कवित्त लिखे गये है। प्रथम कवित्त में त अक्षर से काम लिया गया है, द्वितीय एव तृतीय में क्रमश केवल ल और स अक्षर है तथा चतुर्थ कवित्त में केवल घ और र इन दो अक्षरो से काम लिया गया है।

तोरण द्वार के दोनो शिरो पर दो अद्भुत चित्र चित्रित है। उनमे बाईं ओर के चित्र में तीन मछलियो की आकृतियाँ बनाकर उनका केवल एक ही मुँह बनाया गया है और दाहिनी ओर के चित्र में भी दो तोतो का एक ही मुँह है। तोते की आकृति बनाने में उसके रग के अनुरूप हरे रग से काम लिया गया है। इन दोनो आकृतियो को अंकित करने में अध्यात्मप्रधान दोहो से काम लिया है। इन दोनो चित्रो में मछली की आकृति के ऊपर बाल चन्द्रमा का चित्रण किया गया है। इस बालचन्द्र के चित्रण द्वारा मनुष्य की द्वितीया के चन्द्रमा की तरह वृद्धि की कामना की गई है। दूसरी ओर तोते के बाजू में सूर्य का चित्रण किया गया है। उसका यह अभिप्राय है कि भगवान् मिथ्यात्व का अपहरण करने के लिए सूर्य के समान है।

इस फलक में अंकित ज्ञानकुजर के तीनो ओर रिक्त भाग में पीली और लाल रेखा खीचकर दोहे, छद, सवैये, सूत्रो की गाथाएँ' स्तुत्यात्मक श्लोक, थोकडे आदि लिखे गये है। इनमें से पहले बाई ओर दोहा, चौपाई, घनाक्षरी अडिल्ल और दोहा छंद में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि पाँच पदो की वंदना की गई है, इसी प्रकार ऊपर के हिस्से में दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की पाँच गाथाएँ अकित कर उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन की पहली गाथा लिखी गई है और तीसरी दिशा मे दाहिनी ओर श्री मानतुगाचार्य द्वारा विरचित भक्तामर का 'तुभ्य नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ' नामक छब्बी-सवाँ श्लोक, अहिंसाप्रधान एक अनुष्टुप् छद 'यदीये चैतन्ये' नामक महावीरा-ष्टक का प्रथम श्लोक और रूपी-अरूपी का थोकडा लिखा गया है। बाई ओर की रेखा के मध्य भाग में ऊपर से एक सर्प की आकृति चित्रित की गई है। इस चित्र द्वारा जैन परपरा के अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी इन दोनों कालो को समझाया गया है। इनमे से प्रत्येक काल में छः आरे होते है। अवसर्पिणी काल में एक आरे के बाद दूसरा आरा क्रमश छोटा होता जाता है और उत्सर्पिणी काल में अवसर्पिणी काल के विरुद्ध प्रत्येक आरा उत्तरोत्तर बढता जाता है। अवसर्पिणी काल में पहला आरा सबसे बडा होता है। तथा उत्सर्पिणी काल में अतिम आरा सबसे बडा होता है। इसलिए इन दोनो कालो के चित्रण में अवसर्पिणी को क्रमश क्षीयमाण और उत्सर्पिणी को वर्द्धमान बनाया गया है।

सबके नीचे के रिक्त भाग में एक दोहा अंकित किया गया है। वह इस प्रकार है—

ज्ञानी समझे ज्ञान में, अणसमज्यो चित्राम।
तिलोकरिख अनुभव दीसा, समझे सो सीवधाम ।।

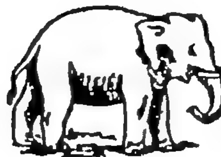
अर्थ—दुनियाँ में दो प्रकार के प्राणी होते है—ज्ञानी और अज्ञानी। ज्ञानी व्यक्ति ज्ञान का संपादन कर तत्त्व को जान लेता है, पर अज्ञानी व्यक्ति बुद्धि के अभाव के कारण चित्र देखकर बाह्यरूप से उस तत्त्व का आकलन करता है। चित्र देखकर भी वह ज्ञानी की तरह उच्च अवस्था को प्राप्त नही कर सकता, पर इन दोनों अवस्थाओ से उत्कृष्ट दशा है—अनुभव दशा। क्योंकि अनुभव दशा मे वह आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करता है, जो व्यक्ति अनुभव दशा प्राप्त कर आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है, वह मोक्षगति को प्राप्त होता है।

इस दोहे के अन्त में 'लिपीकृत तिलोक रिख श्रीरस्तु ऐं नम श्री ।। छ, श्री' लिखा हुआ है। इसी प्रकार अबाडी के सामने भी एक सुन्दर फलक की आकृति बनाकर उसके अंदर 'लि तिलोक रिख' अकित किया गया है और

ऊपर की तरह ज्ञान कुंजर के अगले और पीछे पांवों के मध्य में [illegible] ढंग से सं १९३७ मृगसु १२ देश दक्षिण, घोडनदी नगर लिखा हुआ है।

मालव, मेवाड तथा राजस्थान के बहुत-से भागों में सतत विहार कर पूज्य-पाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज सबसे पहले दक्षिण देश में घोडनदी पधारे थे। घोडनदी में ही आप के पट्टधर मुख्य शिष्य श्री रत्नऋषिजी महाराज और तपस्विनी श्री चम्पाजी म एवं दानमूर्ति महासती श्री रामकुंवरजी महाराज ने दीक्षा ली, उसी घोडनदी का यह सौभाग्य है कि वहाँ पर महाराज श्री ने आध्यात्मिकता से परिपूर्ण इस प्रकार की उत्कृष्ट ज्ञानकुंजर की रचना की। इसकी रचना के समय महाराजश्री की अवस्था केवल ३३ वर्ष की थी, पर तैतीस वर्ष की छोटी-सी अवस्था में आपने इस के चित्रण में जिस अनुभव दशा से काम लिया उसे देखकर आश्चर्य होता है। हाथी के चित्रण में आपश्री ने संक्षेप में सम्पूर्ण जैन सिद्धांत को चित्र द्वारा मूर्तरूप में रख दिया है। इसमें खूबी यह है कि इसे देखकर ज्ञानी व्यक्ति अपने ज्ञान को और अधिक विशुद्ध बनाते हैं और चित्र देखकर ज्ञान प्राप्त करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग् ज्ञान की ओर बढते हैं।

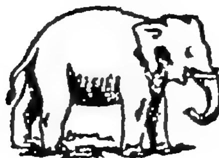
इस ज्ञानकुंजर का विशेष स्पष्टीकरण करने के लिए आज से चार साल पहले नाथद्वारा निवासी विद्वान् श्री राधाकृष्ण शर्मा, एम्. ए वेदान्ताचार्य साहित्य रत्न ने ज्ञान-कुंजर दीपिका नामक एक पुस्तिका लिखी है। उसमें लेखक महोदय ने ज्ञानकुंजर के प्रत्येक अवयव का विशद रूप से विवेचन किया है। एक पुस्तक के विद्यमान होने से मैंने इस पर अपनी तरफ से विशद विवेचन नही किया, उसे नही देखने पर भी विवेचन करने में कही पुनरुक्ति नही हो जाय इसलिए चित्र में अंकित केवल मुख्य अवयवो पर ही प्रकाश डाला है। इस उत्कृष्ट कृति का विशेष अध्ययन करने के लिए पाठक श्री राधाकृष्ण शर्मा द्वारा विरचित ज्ञान कुंजर दीपिका का अवलोकन करे। मेरे लिए यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि श्री राधाकृष्ण शर्मा मेरे प्रान्त के निवासी होने के साथ मेरे गांव के पास रहनेवाले हैं।



ऊपर की तरह ज्ञान कुंजर के अगले और पीछे पांवों के मध्य में अत्यंत कलात्मक ढंग से सं १९३७ मृगसु १२ देश दक्षिण, घोड़नदी लश्कर लिखा हुआ है।

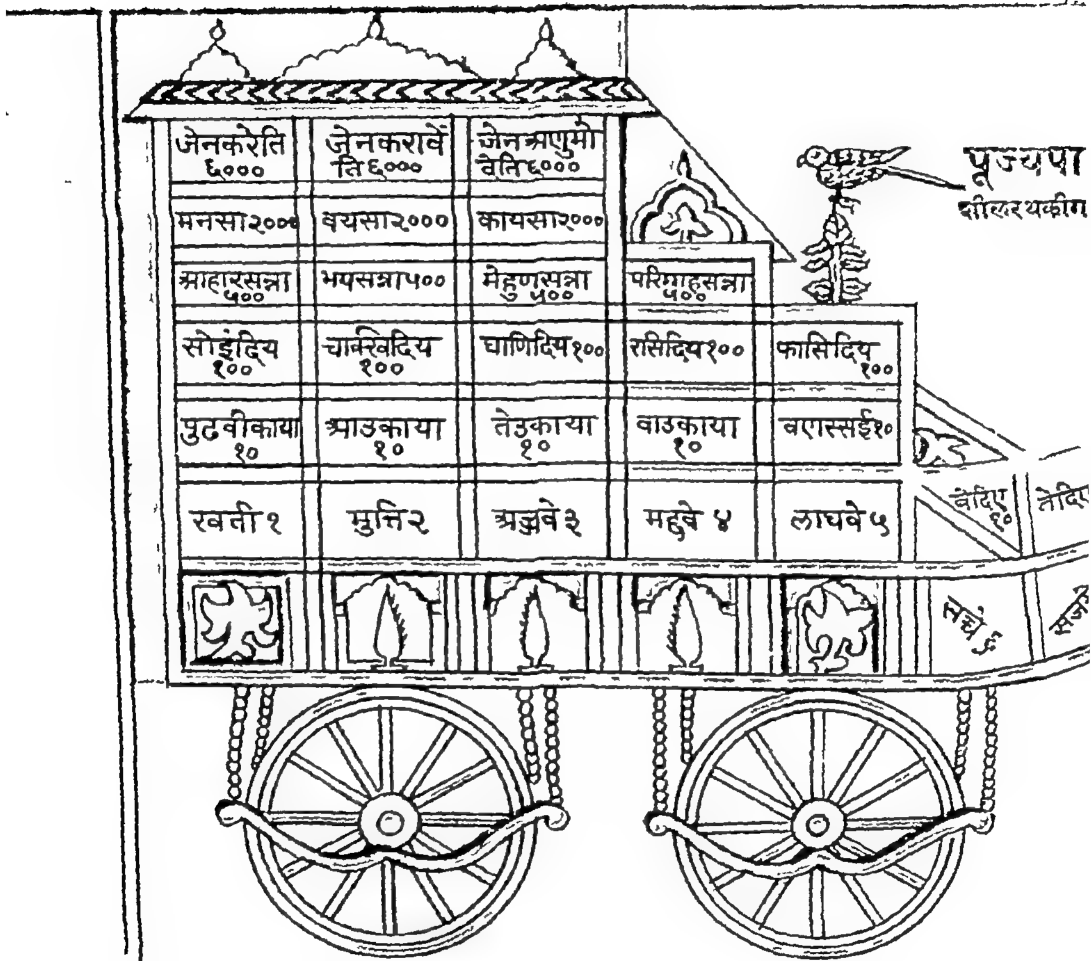
मालव, मेवाड़ तथा राजस्थान के बहुत-से भागों में सतत विहार कर पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज सबसे पहले दक्षिण देश में घोड़नदी पधारे थे। घोड़नदी में ही आप के पट्टधर मुख्य शिष्य श्री रत्नऋषिजी महाराज और तपस्विनी श्री चम्पाजी म एवं शांतमूर्ति महासती श्री रामकुंवरजी महाराज ने दीक्षा ली, उसी घोड़नदी का यह सौभाग्य है कि वहां पर महाराज श्री ने आध्यात्मिकता से परिपूर्ण इस प्रकार की उत्कृष्ट ज्ञानकुंजर की रचना की। इसकी रचना के समय महाराजश्री की अवस्था केवल ३३ वर्ष की थी, पर तैंतीस वर्ष की छोटी-सी अवस्था में आपने इस के चित्रण में जिस अनुभव दशा से काम लिया उसे देखकर आश्चर्य होता है। हाथी के चित्रण में आपश्री ने संक्षेप में सम्पूर्ण जैन सिद्धांत को चित्र द्वारा मूर्तरूप में रख दिया है। इसमें खूबी यह है कि इसे देखकर ज्ञानी व्यक्ति अपने ज्ञान को और अधिक विशुद्ध करते हैं और चित्र देखकर ज्ञान प्राप्त करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग् ज्ञान की ओर बढ़ते हैं।

इस ज्ञानकुंजर का विशेष स्पष्टीकरण करने के लिए आज से चार साल पहले नाथद्वारा निवासी विद्वान् श्री राधाकृष्ण शर्मा, एम्. ए वेदान्ताचार्य साहित्य रत्न ने ज्ञान-कुंजर दीपिका नामक एक पुस्तिका लिखी है। उसमें लेखक महोदय ने ज्ञानकुंजर के प्रत्येक अवयव का विशद रूप से विवेचन किया है। एक पुस्तक के विद्यमान होने से मैंने इस पर अपनी तरफ से विशद विवेचन नहीं किया, उसे नहीं देखने पर भी विवेचन करने में कहीं पुनरुक्ति नहीं हो जाय इसलिए चित्र में अंकित केवल मुख्य अवयवों पर ही प्रकाश डाला है। इस उत्कृष्ट कृति का विशेष अध्ययन करने के लिए पाठक श्री राधाकृष्ण शर्मा द्वारा विरचित ज्ञान कुंजर दीपिका का अवलोकन करें। मेरे लिए यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि श्री राधाकृष्ण शर्मा मेरे प्रान्त के निवासी होने के साथ मेरे गांव के पास रहनेवाले हैं।



शीलरथ

जीवन में शील का अत्यन्त



मन वचन और काय से आरभ नही कराता है और आरभ करते हुए का अनुमोदन नही करता है। प्राणी जो कुछ भी आरभ–समारभ करता है, आहार भय मैथुन और परिग्रह सज्ञा इन चार सज्ञाओ से प्रेरित होकर करता है।

शीलरथ

जीवन में शील का अत्यत महत्त्वपूर्ण स्थान है। शील जीवन की बुनियाद है। शीलवान् व्यक्ति ही अपना चरम विकास कर सकता है। विश्व के प्रायः सब श्रेष्ठ पुरुषो ने शील की महत्ता बताई है। जैन आगमो में तो इसका अत्यत गुणगान किया है।

इसी शील को दृष्टि में रखकर दिवंगत पूज्यपाद तिलोकऋषिजी महाराज ने शीलरथ की रचना की है। व्यावहारिक रथ की तरह इस शीलरथ के भी दो पहिये है, रथ के आगे जीन आदि से कसा हुआ घोड़ा बँधा हुआ है, घोड़े की गर्दन पर धुरा रखी हुई है, रथ की आकृति भी हूबहू असली रथ की तरह है। इस शील के अन्तर्निहित अर्थ को बतलाने के लिए ऊपर ही ऊपर एक गाथा दी हुई है—

शीलरथ की गाथा

जे न करंति निज आहार, सन्ना सोयंदिय।
पुढवीकायारभ खति जुया ते मुणी वदे॥

शीलरथ (शीलवान् व्यक्ति) के कुल १८००० अठारह हजार प्रकार से आरभ करने के पच्चक्खाण बताये गये है। प्राणी जो कुछ भी आरंभ समारंभ करता है, वह तीन करण और तीन योग से करता है। तीन करण के नाम है— करना कराना और अनुमोदन करना। शीलवान् व्यक्ति छ हजार प्रकार से न करता है, छ हजार प्रकार से नही कराता है और छ हजार प्रकार से अनुमोदन नही करता है। व्यक्ति जिन करणो द्वारा आरंभ करता है उसके पीछे योग दृष्टि मुख्य रहती है। योग तीन प्रकार के होते है—मनसा, वयसा और कायसा, मनसा के २००० भेद, वयसा के २००० भेद और कायसा के २००० भेद। कुल मिलाकर ६००० भेद हुए। अर्थात् शीलवान् प्राणी मन से दो हजार प्रकार के आरंभ नहीं करता है। इसी प्रकार दो हजार प्रकार से मन वचन और काय से आरभ कराता है और आरभ करते हुए का अनुमोदन नही करता है। प्राणी जो कुछ भी आरभ—समारभ करता है, आहार भय मैथुन और परिग्रह सज्ञा इन चार सज्ञाओ से प्रेरित होकर करता है।

प्रत्येक सज्ञा पाँच सौ प्रकार की होती है। चारो सज्ञाओ के भेद मिलाने पर कुल दो हजार भेद होते हैं। शीलवान् व्यक्ति चारो संज्ञाओ में किसी संज्ञा से प्रेरित होकर आरभ-समारभ नही करता है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये सब पाणी की कामनाएँ या मानसिक विचार है। कामनाओ की सिद्धि के लिए इन्द्रियो की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है। जब तक इन्द्रियो की प्रवृत्ति नही होती, तब तक उपर्युक्त सज्ञाओ की सिद्धि नही होती। इन्द्रियाँ भी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय रूप से पाँच प्रकार की होती है और प्रत्येक इन्द्रिय के सौ भेद होते है। सौ को पाँचो इन्द्रियो से गुणने पर पाँच सौ भेद हुए। इस प्रकार इन्द्रियो के पाँच सौ भेदो का समाहार प्रत्येक सज्ञा के ५०० मे हो जाता है। शीलवान् व्यक्ति प्रत्येक इन्द्रिय से सौ प्रकार से संज्ञा आदि से पेरित होकर तीन करण और तीन योग से आरभ-समारभ नही करता है। इन्द्रियाँ भी संसार मे परिभ्रमण करनेवाले कर्मनिष्ठ जीव के होती है, असंसारी (सिद्ध) जीव के नही। ससार मे परिभ्रमण करनेवाले जीव दस प्रकार के होते है—पृथ्वीकाय, अपकाय, तेयुकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय और अजीव काय। पृथ्वी आदि प्रत्येक काय के दस दस भेद होते है। दस का उपर्युक्त दस प्रकार के जीवो से गुणन करने पर सौ भेद हुए अर्थात् शीलवान् पाणी दस प्रकार से पृथ्वीकाय आदि का श्रोत्रेन्द्रिय आदि की पवृत्ति कर आहार आदि सज्ञा से प्रेरित होकर तीन करण तीन योग से आरभ-समारभ नही करता है। शीलवान् व्यक्ति निम्नांकित दस प्रकार के धर्मो से मडित होता है। वे ये धर्म है-खति, मुत्ति, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे सच्चे, संजमे, तवे, चियाए और बभचेर। शीलवान् व्यक्ति क्षमाशील होता है, मुमुक्ष होता है, ऋजु होता है, लघु विनीत होता है, मृदु होता है सत्यवादी होता है, सयमशील होता है, तपस्वी होता है, त्यागी होता है, और ब्रह्मचारी होता है।

क्षमाशील, मुमुक्षु, ऋजु, मृदु, विनीत, सत्यवादी, सयमशील, तपस्वी त्यागी और ब्रह्मचारी शीलवान् व्यक्ति पृथ्वीकाय आदि प्राणियो का पाँचो ज्ञानेन्द्रियो द्वारा आहार, भय आदि चारो सज्ञाओ से प्रेरित होकर तीन करण तथा तीन योग से आरंभ-समारभ नही करता है।

रथ में जुटे हुए घोडे के पेट में आपश्री ने बडी खूबी से इस शील रथ के रचने के स्थान, समय, तिथि आदि का निर्देश कर दिया है।

संवत् १९३८ भाद्रपद शुक्ल ११ श्री तिलोकरिख वाबोरी

जिस प्रकार पूज्यपाद श्रीतिलोकऋषिजी महाराज ने शील रथ की रचना की है, उसी तरह सगुण भक्ति परम्परा में रामाश्रयी शाखा के श्रेष्ठ कवि भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने राम चरित मानस में बड़े मनोहर ढग से रामरथ का वर्णन किया है।

लंका काड में राम—रावण का युद्ध हो रहा है। युद्धभूमि में रावण रथारूढ है और राम पैदल खडे हैं। राम को ऐसे ही पैदल खडे देखकर विभीषण के मन में आशका होती है। इस समय राम विभीषण को आत्मा पर विजय प्राप्त करने वाले रथ का स्वरूप इस प्रकार वताते हैं।

रावण रथी विरथ रघुवीरा। देखि विभीषण भयऊ अधीरा।
अधिक प्रीति भा मन संदेहा। वंदि चरन कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ न हि पदत्राना। केहि विधि जितव वीर वलवाना।
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होई सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका।
वल विवेक दम परहित घोरे। छमा, कृपा, समता, रजु जोरे॥
ईश भजनु सहित सारथी सुजाना। विरति चम सतोष कृपाना।
दान परसु वुधि सति प्रचंडा। वर विग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जप नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद विप्रगुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताके।
महा अजय ससार रिपु। जीति सकइ ते वीर॥
जाके अस रथ होई दृढ, सुनहु सखा मतिधीर।

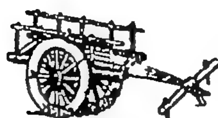
रावण रथ पर आरूढ था और श्रीराम रथ विहीन पैदल खडे थे। राम की ऐसी हालत देखकर विभीषण अधीर हो गया। राम के प्रति अत्यधिक स्नेह होने के कारण उसके मन में सदेह हुआ। उसने श्री रामके चरणो का वदन कर स्नेहपूर्वक कहा। हे नाथ! आप न तो रथ पर आरूढ हैं और न आपके पाँवो में जूते हैं, ऐसी परिस्थिति में आप किस प्रकार उस वीर वलवान रावण पर विजय प्राप्त करेंगे? यह सुनकर कृपानिधान राम ने कहा, हे सखा! सुनो। जिस रथ से जय होती है वह रथ लाओ। वह रथ कैसा है? शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये है, सत्य और शील उस रथ की दृढ ध्वजा या पताका है। वल, विवेक दम और परहित ये चारो उस रथ में जुते हुए घोडे हैं। वे क्षमा, कृपा और समता-रूपी रस्सी से वधे हुए हैं। उस पर ईश्वर भजन रूपी सज्जन सारथी वैठा हुआ

है। व्रत युद्ध मे शरीर पर पहना जानेवाला बख्तर है, सतोष वीर के हाथ में रहनेवाला कृपाण है, दान परसु है तथा बुद्धि प्रचड शक्ति है। सुदर विज्ञान कठिन धनुष है, निर्मल तथा स्थिर मन त्रोण के समान है, शम-यम और नियम उस वीर के कोदड में चढ़ाये जानेवाले अनेक बाण है। विप्र एवं गुरु पूजा उस वीर के शरीर पर रहनेवाला अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का और दूसरा कोई उपाय नही है। हे सखा! जिसके पास ऐसा धर्ममय रथ होता है, उसके लिए रिपुओ को जीतना अत्यंत सरल है। यह संसार रूपी समुद्र महा अजय है, इस पर कोई जय प्राप्त नही कर सकता है। जो इसे जीत सकता है वही वीर होता है। जिसके पास ऐसा दृढ रथ होता है। हे सखा, सुनो वही व्यक्ति बुद्धिमान तथा धीर होता है।

रामचरित मानस के युद्धकाड में वर्णित उपर्युक्त रथ में भी आत्मवर्ती विशेष गुणो का निरूपण किया गया है। पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज ने अपने शीलरथ में क्षमा, मुक्ति, मार्दव, अर्जव, लाघव, सत्य, सयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य आदि जिन दस धर्मो का वर्णन किया है उन दस धर्मों में रामायणवर्ती रामरथ में बताए हुए सब गुणो का समावेश हो जाता है। केवल कथन शैली तथा शब्दो में भेद है, सिद्धात रूप से दोनो ने आत्मा के क्षमा आदि धर्मो के विकास करने की ओर भार दिया है।

गोस्वामी तुलसीदास के रामरथ से मै बचपन से बहुत प्रभावित हूँ। श्री ऋषिजी महाराज ने अपनी चित्रमय शैली में शीलरथ के द्वारा आत्मा के मूल गुणो पर प्रकाश डाला है, गोस्वामीजी ने अपनी उत्कृष्ट काव्य-रचना द्वारा आत्मा के उन्ही सहज गुणो को हमारे सामने रख दिये है। गोस्वामीजी के काव्य में प्रौढता, सहजता एव गाभीर्य है।

शीलरथ की रचना करते समय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज की अवस्था ३४ चौतीस वर्ष की थी।



उपदेशात्मक छंद

उपर के फलक में हम महाराजश्री द्वारा लिखित कुछ उपदेशात्मक छद देख रहे है । ये छद स्वय आपश्री द्वारा विरचित नही है, पर अन्य कवियो के उद्धृत किये गये है । छन्दो के चयन मे भी आपकी कैसी उत्कृष्ट दृष्टि रहती थी, इसका तो हम इनका तात्पर्य पढ कर सहज ही अनुमान लगा सकते है । इससे पता चलता है कि आपश्री मे गुणग्राहता की अदभुत शक्ति थी, जहाँ कही थोडे से भी गुण का दर्शन करते, उसे वे तुरत आत्मसात कर लेते थे और उसे स्वय तक सीमित नही रखकर सबको मुक्त हस्त मे वितरित करते थे । इस फलक में उद्धृत छन्द इस प्रकार है ।—

कहेणा उनकु जो करे कहेन,
करे कहे ना उन क्यो कहना ।
रहेना उन पे हित होत जहा,
न होत नही तहाँ क्यो रहेना ।
वहेना उन पे गुण रित लखे,
रि नाहि लखे तहाँ क्यो वहेना ।
लहना अपना कछु जात नही,
लिखिया है लिलाट मो ही लहना ॥१॥

अर्थ —— उन्ही व्यक्तियो को कुछ कहना चाहिए, जो अपने कहने के अनुसार आचरण करते है । जो हमारे कहने के अनुसार नही चलते है उनको क्यो कुछ कहना चाहिए ? उन्ही व्यक्तियो के पास रहना चाहिए, जहाँ अपने रहने से उनका कुछ हित होता हो, पर जहाँ रहने से कुछ हित नही होता, वहाँ क्यो रहना चाहिए ? उनके पास ही अपने गुणो के प्रवाह को प्रवाहित करना चाहिए, जो गुण की रीति देखते है, पर जो गुण की रीति नही देखते, उनके सामने अपने गुणो का प्रदर्शन करने से क्या लाभ ? वही चीज प्राप्त करना चाहिए, जिससे अपना कुछ नही जाता । इसलिए जो हमारे ललाट या भाग्य में लिखा हुआ है वही प्राप्त करना चाहिए अधिक प्राप्त करने से वह चीज हमारे पास नही ठहरती ।

अपने हित हि तऊ न करे, ता से हित बात करि तो कहा ।
रस रित न जाणे रिसाय चले, अडि के कछु काम लियो तो कहा ।
अतर तो मन अतर हो, मन अतर बात करी तो कहा ।
अब ऐसे अनाडी सो प्रीत करी सो, रही तो रही ना रही तो कहा ॥२॥

अर्थ— जिस व्यक्ति से अपने हित की बात कहने पर भी उसे नही करता है, उससे हित की बात करने से क्या लाभ ? जो व्यक्ति रस की रीति नही जानता है, रस बात कहने पर जो क्रोधित होकर चला जाता है, ऐसे की अडियल टट्टू से अडकर यदि कुछ काम ले लिया जाय तो उससे क्या लाभ ? जिसके मन के अन्दर की बात अंतर में ही रहती है, उस मन से अतर रखनेवाले व्यक्ति से यदि कुछ बात कर ली तो इस प्रकार की बात करने से क्या लाभ ? ऊपर वतलाये हुए दोषों से परिपूर्ण यदि किसी मूर्ख से मैत्री कर ली तो उस मैत्री के रहने या नही रहने से क्या लाभ ? दोनो अवस्था में वह समान है।

गंगनदी परवाह बली, अलि कुभ को नीरो पीयो न पियो।
जिनके हिरदे भगवत वसे तब ओर को नाम लियो न लियो।
कर्म के जोग सुपात्र मिले, तब कुपात्र दान दियो न दियो।
कवि गंग कहे सुण साह अकब्बर, मुरख मित्र कियो न कियो ॥

अर्थ — हे अलि ! जब गंगा नदी का बलवत्तर प्रवाह वह रहा है उस समय घडे का जल पीना या न पीना दोनो समान है। बहते हुए गगा नदी का जल ही पीना चाहिए, जिसके हृदय में भगवान् विराजमान रहते है वे भगवद्भक्त और देवी देवताओ के नाम ले या न ले, दोनो अवस्थाएँ उनके लिए समान है। ऐसे परमात्मा मे लीन होनेवाले भगवत् भक्त के लिए मुंह से अन्य देवी-देवताओ का नाम लेने की आवश्यकता नही। यदि सद्भाग्य से हम सुपात्र मिल जाय, तव बाद में कुपात्र प्राप्त होने पर उसे दान देना या नही देना दोनो समान है। सुपात्र के मिलने पर कुपात्र को दान देने की आवश्यकता नही। कवि गंग कहता है, हे अकबर बादशाह सुनो, मूर्ख व्यक्ति को अपना मित्र बनाना या नही बनाना दोनो समान है। क्योकि मूर्ख व्यक्ति दोनो अवस्थाओ में दु.खदाई होता है।

सज्जन ऐसा कीजिये, डाल सरीखा होय।
सुख में पीछे रहे, दुख मे आगे होय ॥

अर्थ—ऐसे सज्जन व्यक्ति को अपना मित्र बनाना चाहिए जो कि सदैव समय पडने पर डाल के समान होता है। वह सुख के समय तो पीछे रहता है, पर कष्ट आने पर सदैव आगे रहता है। दुःख के समय डाल की तरह अपने मित्र के आगे रहकर स्वय चोटें सहन कर अपने मित्र को बचाता है, पर सुख के समय जिस तरह डाल पीछे बँधी रहती है उसी तरह वह अपने मित्र के सामने नही आता।

मालती को मित्र पुन,
जाचक है जलजऊ को।
करि के कपोलन में तेरो सने बघ है,

ठाकर कहेत रस-रित के जनैया ।
कहा रुप ही पर रिझ हुयो,
ऐसो मति मंद है ।
यह तो अविवेकी प्रित,
रित कु न पालि जाने ।
निस दिन फुल्यो हि फिरे,
विन बध है ।
चित्र के कमल पर विचित्र तू,
भ्रतक (भ्रमत) हा अरे मधुकर अंध ।
या में रस ना सुगध है ।

अर्थ--तूं मालती का मित्र होकर पुन: कमल की याचना करता है और तेरा स्नेह-बंधन तो हाथी के गण्डस्थल से चूनेवाले मद से है । ऐसे अलि से रीति कालीन कवि ठाकुर कहता है ।--हे रस की रीति जाननेवाले अलि, तू इस सुंदर रुप पर ही क्यो मुग्ध हो रहा है । इस प्रकार का तू मति मंद है । यह तो अविवेकी व्यक्ति की रीति है, जो कि प्रीति की रीति को नही पालना जानता है । विना स्नेह बधन के तूं रात-दिन फूला-फूला फिर रहा है । हे अधे मधु-कर, तू विचित्र-चित्र के कमल पर मडरा रहा है । इस चित्र लिखित कमल में न किसी प्रकार का रस है । और न सुगन्धि है ।

वे उपदेशात्मक छंद उद्धृत करने के बाद आपश्री ने लाल अक्षरो में लिखा है--(लि तिलोक रिख) और पन्ने के दाहिनी ओर हासिये में लाल अक्षरो में ही उलटे अक्षरो मे लिखा है--'जो, दी, छो, पा, दि, ज, गु, मा' इसे उर्दू लिपिके अक्षरो की तरह बाईं ओर से पढने पर होता है।-मागु जदी पाछो दीजो। उसके नीचे फिर कुछ अतर से दो लाल अक्षर लिखे हुए है-'जो दि' इन दोनो अक्षरो को बाईं ओर से पढने पर 'दिजो' निकलता है । बाईं ओर से लिखे हुए (मा, गु, ज, दि, पा, छो, दी, जो) इन अक्षरो को देखकर पहले तो मैं देखता ही रह गया । देखते ही अपने स्वभावानुसार पहले कुछ अर्थ नही जान सकने के कारण थोडी देर तक चुपचाप अर्थ के थाह तक पहुँचने का प्रयत्न किया फिर उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज सा ने उन्ही अक्षरो को जब बाईं ओर से पढ़कर बताये तब स्व तिलोकऋषिजी महाराज की चक्कर में डालने वाली इस सूझ के लिए बहुत आश्चर्य हुआ । जिज्ञासा शात होने पर आश्चर्य के साथ सन्तोष होना सहज है ।



पृथक् पृथक् लिखित अक्षर एवं मात्राएँ

सामने के फलक में हम दो ओर समान रेखा में दो अलग-अलग आकृतियां देख रहे हैं। उन्हें ध्यानपूर्वक देखने पर एक ओर केवल मात्राएं तथा अक्षर के काने आदि प्रतीत होते हैं, और दूसरी ओर मात्रा तथा काना आदि से विहीन स्वर तथा व्यंजनाक्षर दृष्टिगोचर होते हैं।

इन दोनो पन्नों को समान रूप से बिलकुल मध्य में मोडकर एकाकार बनाने से अक्षरों की स्पष्ट आकृति दृष्टिगोचर होती है। दो अलग-अलग पन्नो में लिखकर इस प्रकार अक्षरों की आकृति बनाने मे यद्यपि कही–कही पर अक्षरों की आकृति स्पष्ट न हो पाई है। बहुत प्रयत्न करने पर अनुमान से उस अक्षर को जानना पड़ता है, फिर भी यह फलक देखने वाले को आश्चर्य में डालने वाला है। पहले तो इस प्रकार की सूझ होना ही कठिन है। अहर्निश इस प्रवृत्ति में रत रहनेवाले संयमी मुनि को ही ऐसी दृष्टि हो सकती है। इस फलक में उपर्युक्त रीति से लिखे हुए दोहे हिंदी के रीतिकालीन बिहारी वृंद आदि श्रेष्ठ कवियों द्वारा विरचित हैं। इन दोनो पन्नों को मिलाने पर हम ये दोहे इस प्रकार पढ सकते हैं।—

निच निचाई न छोडे, देखो दिल के बीच।
जल, नल बल ऊँचे चडे, अत निच को निच ॥ १॥

अर्थ——अपने हृदय में अच्छी तरह विचार कर देखो कि नीच व्यक्ति कभी अपनी नीचता नही छोडता। सदैव नीचे की ओर बहनेवाला जल नल के ऊपर चढ़ता है, पर अत में वह अपने स्वभाव के अनुसार नीचे की ओर ही बहता है।

जाण से अजाण हो जे, तत लीजे ताणी।
आगलो अगन होवे, आप होजे पाणी ॥ २ ॥

अर्थ——यदि सामनेवाला जानकार हो तो उसके सामने अजान (बिलकुल नही जाननेवाला मूर्ख) बनना चाहिये। इस प्रकार अज्ञान बनकर उस तज्ज्ञ व्यक्ति से तत्त्व जान लेना चाहिये। इसके लिए नीचे दूसरी लाईन में अच्छा उदाहरण दिया गया है। यदि सामनेवाला व्यक्ति अग्नि के समान हो तो स्वयं पानी की तरह शीतल बन जाना चाहिये। पानी के समान शीतल होनेपर सामने वाले व्यक्ति के चाहे जितने क्रोधित होने पर भी हम उससे तत्त्व की सब बातें जान सकते हैं।

मूरख के मुख विम्ब का, निकसत वचन भुयग ।
जिणरी औषध मुन है, जहेर न व्यापे अग ॥३॥

अर्थ —— मूर्ख व्यक्ति के मुँह रूपी बाँबी से सदैव कृष्णसर्प के मुँह से निकलनेवाले विष की तरह कटुक वचन निकलते रहते है। ऐसे व्यक्ति का सामना होने पर उसकी औषध केवल मौन है, जिसमे उसके मुँह से निकलनेवाला वचन रूपी विष हम री देह में व्याप्त नहीं होता।

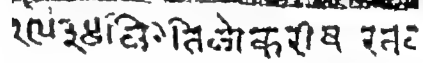
इन तीनो दोहो को उद्धृत करने के बाद लिखा है—— लिपिकृत तिलोक रिख, पूज्यपाद तिलोकऋषिजी महाराज द्वारा लिपिबद्ध किये हुए पन्नों में मैंने अभीतक दो प्रकार देखे है। एक तो वे है, जो स्वय उनके द्वारा विरचित है। और दूसरे उद्धृत। आपश्री ने स्वरचित पन्नो पर लिखा है—— लिखी तिलोकरिख। और अन्य जगह से उद्धृत पन्नो पर 'लिपिकृतं तिलोकरिख' लिखा है।

"पृथक-पृथक लिखित अक्षर एवं मात्राएँ" इस पन्ने को लिखकर आपश्री ने पाठको की वुद्धि की परीक्षा ली है। दोनो पन्नो को समान रूप से मोडकर यदि कोई तीनो दोहे पढने की चेष्टा करेगा तो वह मुँहकी खायगा। पढने के बाद दूसरे दोहे को पढते समय जब तक उस दोहे के अक्षर स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई दें तब तक मात्रावाले पन्ने को अक्षरवाले पन्नो पर सरकाना चाहिए, तभी हम अक्षर अच्छी तरह पढ सकते हैं। तीनो दोहो मे से प्रत्येक दोहे को पढते समय इसी कुशलता से काम लेना पडता है। लिपि-साहित्य के इतिहास में अक्षरो की इस प्रकार की आकृति के कारण इस पन्ने का विशेष महत्व है।

नंद्यावर्त स्वस्तिक

लोक में प्रत्येक शुभ कार्य का प्रारभ करने के पहले मंगल करने की परिपाटी है। व्यवहारिक मार्ग की तरह आध्यात्मिक मार्ग में भी यही परिपाटी है। इसी प्रकार प्रत्येक ग्र थ कर्ता अपने ग्रन्थ को निर्विघ्न समाप्त करने के लिए ग्रन्थारभ में मंगलाचरण करता है। ये मगल स्तुत्यात्मक श्लोक और द्रव्य रूप से दो प्रकार के होते है। स्तुत्यात्मक श्लोक ग्रन्थ के आरभ में लिखे जाते है, कही-कहीं मगल सूचक ॐ या नमस्कार मत्र लिखकर ग्रन्थ का आरंभ कर दिया जाता है।

भगवान् द्वारा प्ररूपित आगमों में द्रव्य मगल का दस प्रकार विधान किया गया है। "अष्टसंख्यानि अष्ट मंगलसंज्ञानि वस्तूनि "जाव दप्पाग, तिइह यावत्करणादिद दृश्य-'नंदिया-वत्तवद्धमाणागभद्दसणकल्मच्छं 'त्ति,,



९३ हाथी विवेचन पृष्ठ २८

मूरख के मुख बिम्ब का, निकसत वचन भुयग ।
जिणरी औषध मुन है, जहेर न व्यापे अग ॥३॥

अर्थ.—मूर्ख व्यक्ति के मुंह रूपी बांबी मे सदैव कृष्णसर्प के मुंह से निकलनेवाले विष की तरह कटुक वचन निकलते रहते है। ऐसे व्यक्ति का सामना होने पर उसकी औषध केवल मौन है, जिससे उसके मुंह से निकलनेवाला वचन रूपी विष हमारी देह में व्याप्त नही होता।

इन तीनो दोहो को उद्धृत करने के बाद लिखा है—लिखितं तिलोक रिख, पूज्यपाद तिलोकऋषिजी महाराज द्वारा लिपिबद्ध किये हुए पत्रो मे मन अभीतक दो प्रकार देखे है। एक तो वे है, जो स्वय उनके द्वारा निर्मित है। और दूसरे उद्धृत। आपश्री ने स्वरचित पत्रो पर लिखा है—लिखी तिलोकरिख। और अन्य जगह से उद्धृत पत्रो पर 'लिपिकृतं तिलोकरिख' लिखा है।

"पृथक-पृथक लिखित अक्षर एवं मात्राएं" इस पत्रे को लिखकर आपश्री ने पाठको की बुद्धि की परीक्षा ली है। दोनो पत्रो को समान रूप से जोड़कर यदि कोई तीनो दोहे पढने की चेष्टा करेगा तो वह मुंहकी खायगा। पढने के बाद दूसरे दोहे को पढते समय जब तक उस दोहे के अक्षर स्पष्ट रूप मे नही दिखाई दें तब तक मात्रावाले पत्रे को अक्षरवाले पत्रो पर सरकाना चाहिए, तभी हम अक्षर अच्छी तरह पढ सकते है। तीनो दोहो मे से प्रत्येक दोहे को पढ़ते समय इसी कुशलता से काम लेना पड़ता है। लिपि-साहित्य के इतिहास मे अक्षरो की इस प्रकार की आकृति के कारण इस पत्रे का विशेष महत्व

नंद्यावर्त स्वास्तिक

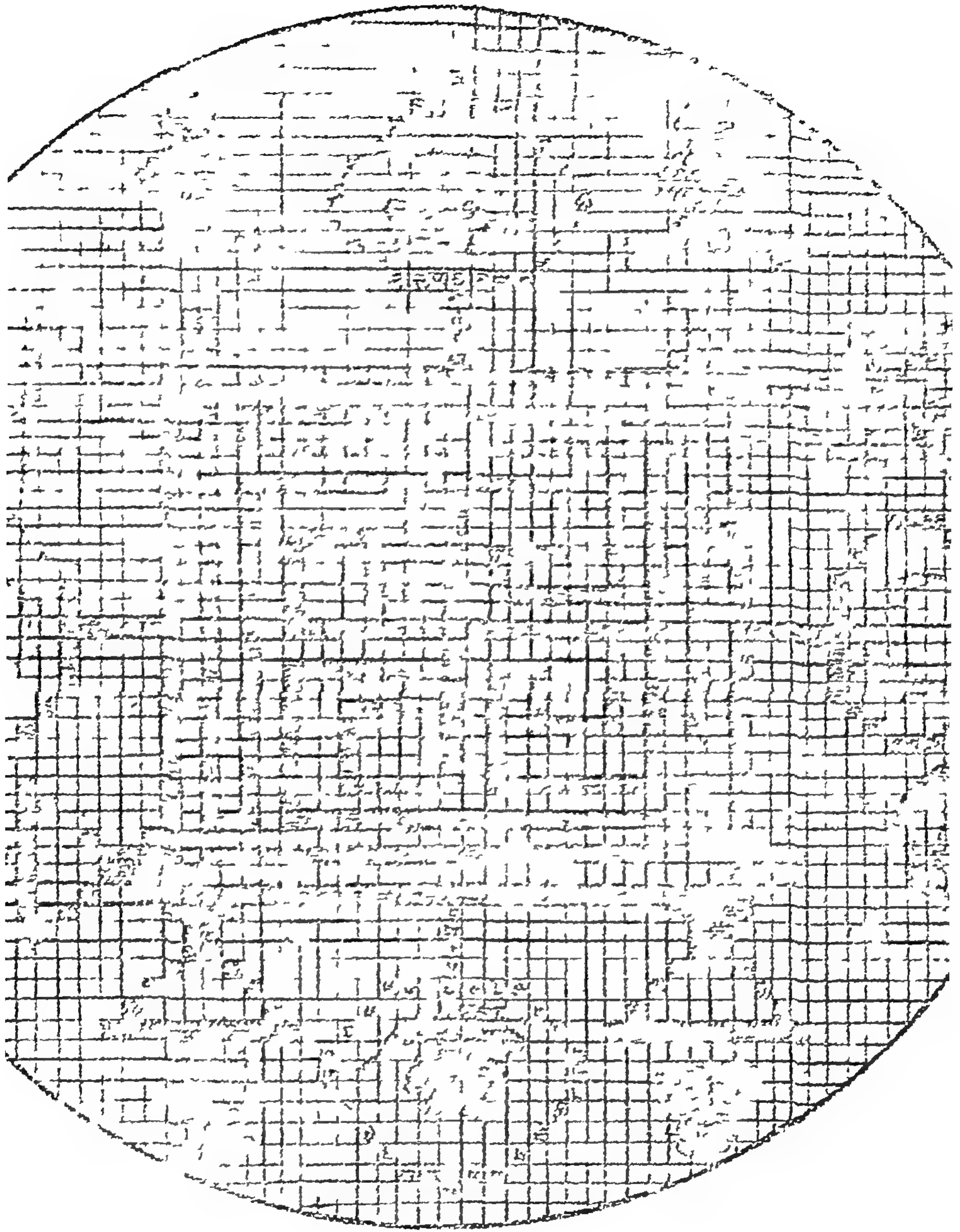
लोक में प्रत्येक शुभ कार्य का प्रारभ करने के पहले मंगल करने की परिपाटी है। व्यवहारिक मार्ग की तरह आध्यात्मिक मार्ग में भी यही परिपाटी है। इसी प्रकार प्रत्येक ग्र थ कर्ता अपने ग्रन्थ को निर्विघ्न समाप्त करने के लिए ग्रन्थारभ में मंगलाचरण करता है। ये मगल स्तुत्यात्मक श्लोक और द्रव्य रूप से दो प्रकार के होते है। स्तुत्यात्मक श्लोक ग्रन्थ के आरभ में लिखे जाते है, कही-कही मगल सूचक ॐ या नमस्कार मत्र लिखकर ग्रन्थ का आरंभ कर दिया जाता है।

भगवान् द्वारा प्ररूपित आगमों में द्रव्य मगल का दस प्रकार विचार किया गया है। "अष्टसंख्यानि अष्ट मंगलसंज्ञानि वस्तूनि "जाव दप्पण" तिइह यावत्करणादिद दृश्य-'नंदिया-वत्तवद्धमाणगभद्दासण कलसमच्छ दप्प..

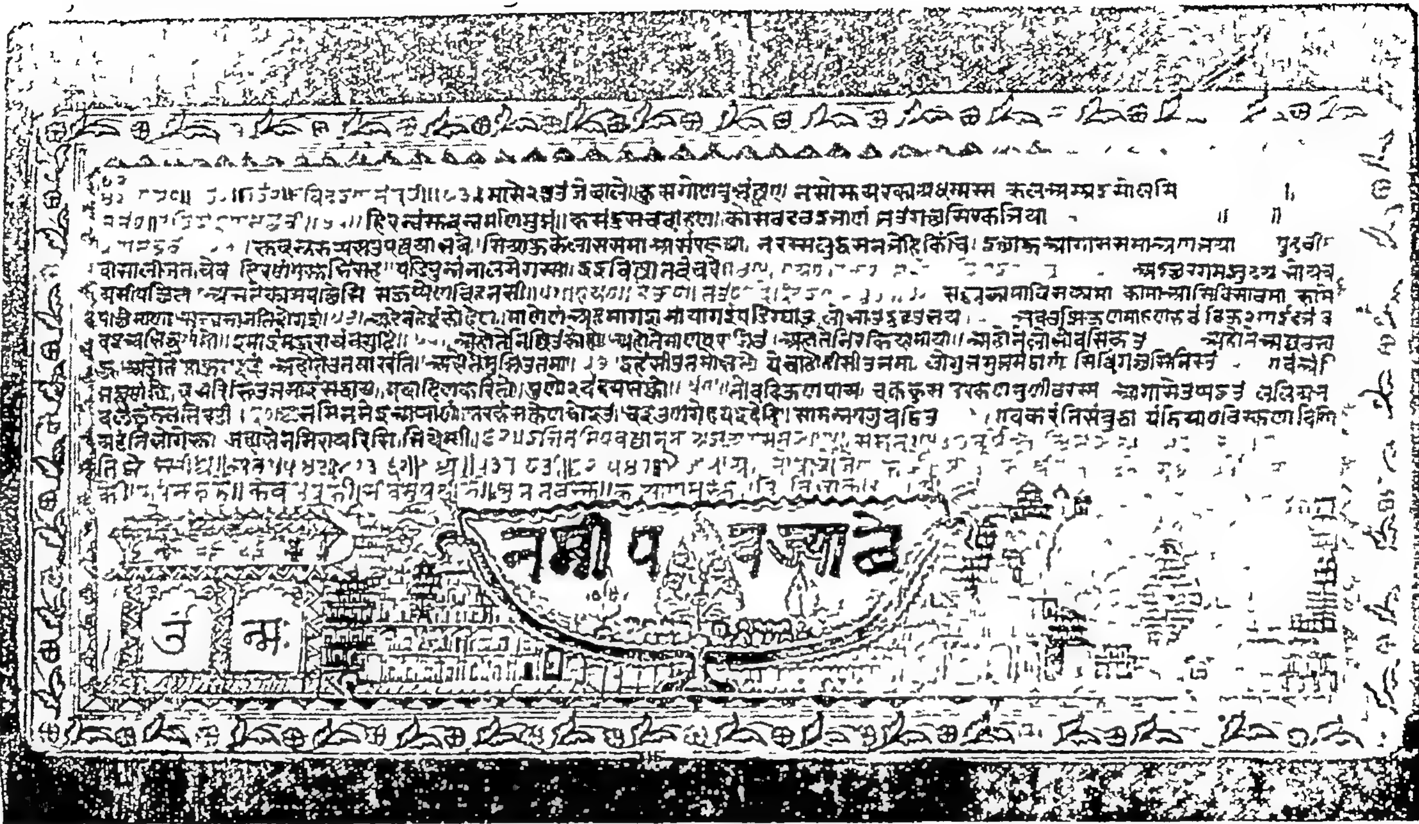
व्याख्या प्रज्ञप्ति ९ शतके ६३ अभयदेवीयावृत्ति २

द्रव्य मगल आठ प्रकार के होते है ।—'नद्यावर्त, वर्द्धमानक भद्रासन, कलश छत्र आदि । ऊपर के फलक में महाराजश्री ने शास्त्र तथा लोक मे सब मे अधिक प्रसिद्ध तथा मगलो मे प्रथम स्थानीय नद्यावर्त मगल की आकृति चित्रित की है। इस द्रव्य मंगल का चित्रण करने के पूर्व आपश्री ने पहले एक लालवृत्त बनाया है । उसके अदर दोनो और समान अतर से ६२ लाइनें खिची है। पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण दोनो ओर से गिनने पर दोनो ओर ६२, ६२ लाइने है । फिर इन लाइनो को दृष्टि में रखकर बडे कलात्मक ढग से नद्या-वर्त आदि मगलो की रचना की गई । उनमें मध्यवर्ती लाल आकृति सुविख्यात नद्यावर्त मंगल की आकृति है । नद्यावर्त मंगल की आकृति बनाकर उसकी दो लाइनो के प्रत्येक छोर पर वेदिका बनाकर उस पर मंगलसूचकसूत्र कलश की स्थापना की गई है । कलश पर फिर मगलात्मक कदली फल तथा श्रीफल रखे हुए है । अवशिष्ट दो लाइनो के अंतिम छोरो पर गमलो में दो-दो आमो से युक्त आम्रवृक्ष की टहनियाँ लगाई गई है। स्वस्तिक, कुभ दर्पण, छत्र आदि द्रव्य की तरह कदली तथा आम्रफल और इन दोनो वृक्ष की पत्तियां भी मंगलरूप मानी गई है । इसीलिए किसी शुभ अवसर पर मडप बनाते समय लोक में तोरणद्वार के रूप मे आम्र तथा केले की पत्तियां वदनवार बनाकर उनके साथ इन दोनो फलो के गुच्छे लगाये जाते है । कही-कही तो द्वार के रूप में सारे केले का झाड ही उखाड कर लगा दिया जाता है। दक्षिण भारत में तो यह परिपाटी बहुत अधिक प्रचलित है । विवाहोत्सव, ध्वज वदन, विद्यालयो के वार्षिकोत्सव आदि अनेक मागलिक अवसरो पर मैंने प्राय सर्वत्र यह दृश्य देखा है । कदली तथा आम्र फल की तरह श्रीफल का भी मगलसूचक द्रव्य के रूप में बहुत महत्त्व है। अट्ठाई आदि बडी तपश्चर्याओ के पच्चक्खाण लेते समय बहुत जगह प्रभावना के रूप में श्रीफल वितरित किये जाते हैं। प्रभावना के समय इनके वितरण करने के पीछे मागलिक दृष्टि है । यहाँ महाराज श्री मगलात्मक केवल नद्यावर्त की आकृति बनाकर ही मौन नही रह गये पर उसे और भी अनेक मगलसूचक द्रव्यो से सुस-ज्जित किया है।

नद्यावर्त स्वस्तिक के चहुं ओर बिलकुल मध्य में छत्र तने हुए है। प्रसिद्ध अष्ट मगलों में छत्र भी एक मगल है, इसका उल्लेख पहले मै व्याख्या प्रज्ञप्ति के उद्धरण द्वारा कर चुका हूँ । छत्र की तो इतनी उत्कृष्ट मागलिकता गिनाई गई है कि उसका स्थान तीर्थंकर भगवान् के अष्ट महाप्रतिहार्यो में एक है। इन



नन्द्यावर्त्त स्वस्तिक विवेचन पृष्ठ २४९



नमिप्रव्रज्या

चारो छत्रो के मध्य में भिन्न भिन्न आकृतियां बनी हुई है। एक ओर दोनो अलग-अलग दिशाओ में सूर्य तथा चन्द्र की आकृति बनाई गई है और दूसरी ओर दोनो दिशाओ मे कदली-फल के वृक्ष लगाये गये है। नद्यावर्त स्वस्तिक की तरह सूर्य, चद्र की भी मंगल रूप से परिगणना की गई है। इन चारो छत्रो में से तीन छत्रो में छत्रवध काव्य लिखे हुए है वे इस प्रकार है---

गगन रमे मही रमे मग्लवास गुण सेव।
सिधु-सुत सम हे कुनण मम गुरुदेव॥

अर्थ---जो आकाश में रमण-विचरण करता है, पर पृथ्वी पर रहने वाले लोगो को अच्छा लगता है और रात्रि के समय नक्षत्रो मे जिसका अग्रवास रहता है तथा जिसके शीतल आदि गुण सेवन करने के योग्य है। कुंदन कवि कहता है, ऐसे समुद्र के पुत्र चन्द्रमा के समान शीतल एवं सतोषी मेरे गुरुदेव है

इसके नीचे के छत्रवध में उत्तराध्यायन सूत्र की यह गाथा लिखी हुई है-

अहो ते अज्जवं साहू अहो ते साहू मद्दव।
अहो ते उत्तमा खंती अहो ते मुत्ति उत्तमा॥

अर्थ-हे मुनि, तुम्हारी आर्जवता, सरलता, को धन्य है, तुम्हारी कोमलता को धन्य है और तुम्हारे उत्तम त्याग को धन्य है

यह उस समय का वर्णन है जब मिथिला के नमि राजर्षि अपना राजपाट वैभव आदि सब कुछ छोडकर उद्यान में ध्यानावस्था में अवस्थित थे, उस समय इद्र ब्राह्मण के रूप में आकर उन्हे अनेक प्रकार से विचलित करने का प्रयत्न करता है, यहाँ तक वह कहता है-तुम इधर ध्यानावस्था में स्थित हो पर उधर सारी मिथिला नगरी जल रही है। इसके उत्तर में श्री नमि राजर्षि यह कहते है-

"मिथिलायां दह्यमानायाँ न मे दहति कश्चन।" मिथिला के जलने पर भी मेरा कुछ भी नही जल रहा है।

नमि राजर्षि को ध्यानावस्था में इतने दृढ देखकर इन्द्र अपने असली वेश में प्रकट होकर उनकी वदना करता है और उनकी प्रशंसा के रूप में उपर्युक्त गाथा का उच्चारण करता है।

तीसरे छत्र में जो छत्रवध दोहा अकित किया गया है, उसमें भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। वह इस प्रकार है।

महितल ते निपनो, कुधातन धात।
लीले वर्णे जिन नमुं, कुनण सदा विख्यात॥

स्पर्श मणि या पारस पत्थर पृथ्वी स्थल से उत्पन्न होकर कुधातुरूप लोहे को सुवर्ण बनाता है -पारस पत्थर का लोहे से स्पर्श होने पर वह अपने लो

रूप को त्यागकर सुवर्ण रूप में परिवर्तित हो जाता है । कुनण कवि कहता है, सदा लोक में विख्यात ऐसे नीले वर्णवाले भी पारस जिनेश्वर को नमस्कार करता हूँ ।

भगवान् पारसनाथ भी इसी महीतल पर उप्रन्न हुए और उन्होने अपनी शात मुद्रा से जलते हुए नाग-नागिनी को उपदेश रूपी सुधा पिलाकर क्रोध से विमुख किया। भगवान् के उपदेश से ही दोनो-नाग-नागिनी तापस के प्रति रहे अपने द्वेष को छोडकर नमोक्कार मंत्र का जाप करते करते स्वर्ग सिधारे।

यहाँ पारसनाथ भगवान् को पारस पत्थर से भी अधिक महत्ता बताई गई है। पारस पत्थर तो केवल जड लोहे को सुवर्ण का रूप देता है, पर पारसनाथ भगवान् अत्यत क्रोधी हिंस्र प्राणी को हिंसा से विमुखकर सद्गति प्रदान करते है।

चतुर्थ छत्र में कोई छत्रवध दोहा या गाथा नही है, वह खाली है।

नद्यावर्त की इस आकृति को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि यह आकृति सभवत अतिम होगी। इसे महाराजश्री अनेक सवैयो, दोहो, गाथाओ और सूत्र वाक्यो द्वारा सजानेवाले थे, इसीलिए आपश्री ने दोनो ओर ६२, ६२ लाइनें खीचकर अनेक खाने बनाये है। प्रत्येक खाने में कुछ न कुछ लिखकर उसकी पूर्ति करनेवाले थे, पर कारणविशेष से यह भव्य आकृति अधूरी ही रह गई। इसमें आपश्री अध्यात्म-ज्ञान से परिपूर्ण कौन से छद आदि लिखनेंवाले थे, इसे या तो आपश्री जानते थे या केवली भगवान् जानते है। इस आकृति के अधूरी होने का अनुमान तो पाठक चतुर्थ छत्र से ही लगा सकते है। क्योकि चारों छत्रो में से केवल तीन छत्र छत्रबंध है। तीनो छत्रो की तरह चतुर्थ छत्र भी छत्र-बध होना चाहिए था।

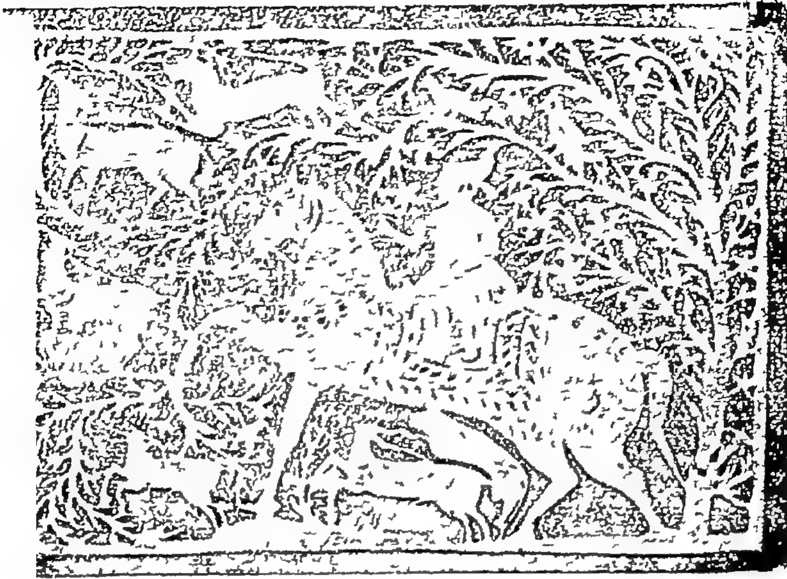
पूर्व की सब कला–कृतियो का अध्ययन करने से मै इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि महाराजश्री में यह अद्भुत विशेषता थी कि वे जिस किसी कार्य को अपने हाथ में लेते उसे सर्वांगपूर्ण करके ही छोडते थे—कभी उसे अधूरा नही रखते, इस कृति के अपूर्ण होने के कारण ही हम इसके अतिम होने का अनुमान करते है। जो कुछ हो, पर इसकी अपूर्णता के कारण हम एक बहुत बडे ज्ञान से वञ्चित रह गये है।

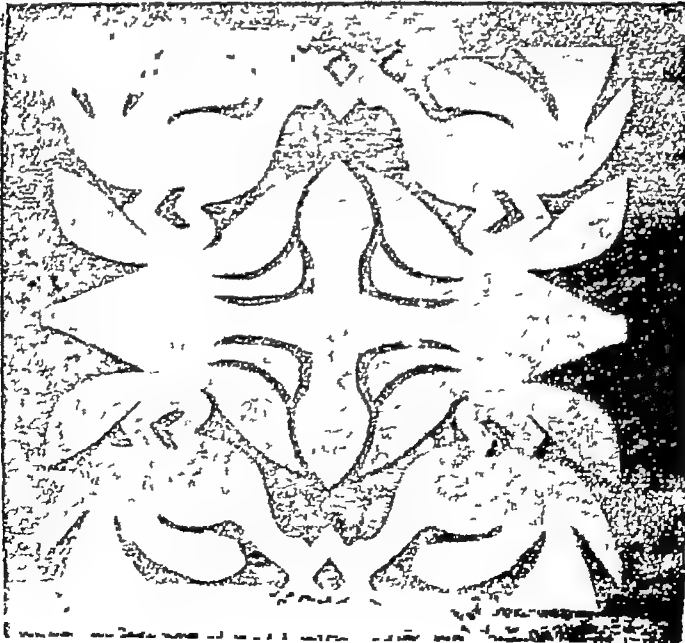


--पाँव द्वारा निर्मित दो अद्भुत कृतियाँ--

दो अश्व और मयूर

सामने के फलक पर दृष्टि पड़ते ही हमारे सामने चलने के लिए सन्नद्ध पाँव उठाये हुए दो बलशाली अश्वो की आकृति उपस्थित हो जाती है। ये दोनों अश्व अच्छी जाति के घोडे की तरह जीन आदि से कसे हुए है। उन्हे चाँदी के





आभूषण पहना कर और अधिक अलकृत किया गया है । उन दोनो अश्वो के बीच में मंगल सूचक अनेक बेलबूटो से सज्जित एक स्तंभ खडा किया गया है, स्तभ के नीचे एक पुष्पाकार वेदिका है ।

प्रथम तो यदि कोई व्यक्ति हाथ से इस प्रकार का चित्र बनाना चाहे तो एकाएक इस प्रकार की कोतरनी करना अशक्य है, पर आश्चर्य की बात तो यह है कि महाराजश्री ने इस चित्र की कोतरनी अपने पाँवो द्वारा की है। सुनते है वे अनेक बार हाथ थक जाने पर पाँवो से भी लिखते थे । अधिकतर देखा जाता है कि यदि दाहिने हाथ से लिखने या कार्य करने का अभ्यास होता है तो प्रयत्न करने पर भी बाये हाथ से उतने सुचारूप से न तो अक्षर लिखे जाते है और न उतने व्यवस्थित रूप से कोई कार्य हो सकता है । फिर पाँव से कार्य करने की बात अलग रही । पाँव का काम तो केवल चलने तक ही सीमित है । अधिक हुआ तो जमीन पर पडी हुई किसी चीज को पाँवो द्वारा इधर-उधर सरका सकते है या खेल के समय फुटबाल आदि भी खेल सकते है । पर महाराजश्री ने अपने पाँवो से इस नयनाभिराम अश्वो की कोतरनी कर के सब को आश्चर्य में डाल दिया है । उन्होने अपने पाँवो से किस प्रकार कैची पकडी होगी और फिर हाथो का उपयोग किये बिना कैसे इसकी कोतरनी की होगी ?

इसी के साथ एक मयूर भी फलक पर अकित है। वह भी पाँवो द्वारा कैंची पकडकर कुतरा गया है। उसकी आकृति भी प्राणि-शास्त्र के अनुरूप सब अगो से परिपूर्ण है ।

पाँवो द्वारा इन दोनो प्राणियो को कोतरने के पीछे महाराज सा०की क्या दृष्टि रही होगी? बहुत सोचने पर मै इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि महाराज श्री की दृष्टि सतत मगलसूचक पदार्थों या प्राणियो पर रही थी। उन्होने प्रत्येक स्थान पर ऐसे ही प्राणियो, द्रव्यो या पदार्थों के चित्र चित्रित किये है जो लौकिक और शास्त्रीय दृष्टि से मगलसूचक माने गये है।

पहले नंद्यावर्त स्वस्तिक का विवेचन करते समय मै अष्ट मागलिक द्रव्यो के सम्बन्ध में कुछ संकेत कर चुका हूँ। इसी तरह स्वप्नशास्त्र की दृष्टि से अश्व भी मंगलसूचक माना गया है, मेरी शैशवावस्था की बात है कि जब मेरी सात-आठ साल की अवस्था थी तब मेरे स्व, पूज्य पितामह श्री पन्नालालजी खटोड ने सामायिक आदि का पाठ कण्ठस्थ करने के साथ कुछ थोकडे भी सिखाये थे। उनमें चौदह बोल का एक थोकडा भी था । जिसमें उन स्वप्नो का फल मोक्ष-सूचक बताया गया है । उन चौदह बोलो में पहला बोल इस प्रकार है—

पहले स्वप्ने हाथी, घोडा ने पलाण करतो। थकेजागे जीव तो तेज भवे ले मोक्ष जाय।

बचपन में इन चौदह बोलो को कण्ठस्थ करने के बाद यह इच्छा रही कि शास्त्रो के अनुसार थोकडे में संगृहीत स्वप्न की तरह मुझे भी सतत ऐसे ही स्वप्न आते रहे। दुनियाँ में अनेक कार्यों में उलझे हुए हमारे जैसे केवल स्वार्थपरायण व्यक्तियो का भी जब अश्व की इस मागलिकता पर इतना दृढ अविचल विश्वास है तब सतत अध्यात्म साधना में रत रहनेवाले महाराज श्री की तो इस सूत्र वाक्य पर न मालूम कितनी असीम श्रद्धा रही होगी, वे मुमुक्षु थे। मोक्ष प्राप्त करना ही उनके जीवन का ध्येय था। वे जो कुछ कार्य करते थे वे सब मोक्षलक्षी होते थे। जिस समय उन्होने पाँव से अश्व को कोतरने का यह दुष्कर कार्य किया, उस समय आपका ध्यान मोक्ष की ओर था और मोक्षसूचक स्वप्नो में सर्व प्रथम दिखाई देनेवाले स्वप्नगत प्राणी का चित्र उसी रूप में चित्रित किया। दूसरे व्यक्ति इस चित्र को देखकर और कुछ कल्पना कर सकते है, पर मैं अपनी भावना और स्वभाव के अनुरूप इस चित्र को देखकर जो कुछ और जैसा समझ पाया हूँ उसे सहज भाव से लिखा है और मेरी दृष्टि से इस चित्र को कोतरने के पीछे महाराजश्री की ऊपर निर्दिष्ट दृष्टि के सिवाय और कुछ नही है।

अश्व की तरह मयूर का भी लोकमानस में कितना स्थान है? यह किसी से छिपा नही। भारतीय जनता के मानस मे घर करनेवाले देवकीनन्दन बालककृष्ण की सब क्रीडाएँ मयूर पिच्छ पर आधारित है। उस नटनागर, माखन-चोर के सिर पर मयूरपख का मुकुट न हो तो वह चित्र अधूरा ही समझा जाता है।

जैन परपरा में दिगबर सप्रदाय के साधु रजोहरण के स्थानपर मयूरपिच्छ रखते है, अपने घरो में मयूरपंख से बने हुए कलात्मक सुन्दर पंखो को रखने की परिपाटी है। इस प्रकार साधुवर्ग और गृहस्थवर्ग दोनो जगह अपनी मागलिकता के कारण मयूर ने अपना स्थान जमा रखा है। अश्व की तरह मयूर भी मंगल—सूचक होने से महाराजश्री ने इस की भी कोतरनी पाँव से बडे कलात्मक ढंग से की है।

पाँवो द्वारा कोतरी हुई इन दोनो कलात्मक कृतियो को देखकर कुछ हाथ-पाँव नही हिलानेवाले अकर्मण्य आलसी व्यक्तियो के मन में शका आ सकती है कि क्या पाँवो द्वारा भी ऐसा कार्य शक्य है? वे प्रत्येक कार्य के लिये कुछ प्रमाण चाहते हें। पर प्रयत्नशील पुरुषार्थी व्यक्ति द्वारा कोई कार्य असम्भव नही। दुनियाँ में आज भी अनेक ऐसे व्यक्ति है, जो पाँवो से भी उतनी ही कुशलतापूर्वक कार्य करते है जितना कि हाथो से।

मैने पडितरत्न उपाध्याय मुनिश्री आनंदऋपिजी महाराज के साथ विचरण करनेवाले मुनिश्री शातिऋषिजी म० सा० के पास से इस प्रकार की जानकारी प्राप्त की है कि लुधियाना मे तीसवर्षीय एक ऐसा व्यक्ति है, जो ऊपर ऊपर से देखने से तेजोहीन प्रतीत होता है, किसी से वातचीत करते समय वह आँख से आँख मिलाकर वातचीत नही कर सकता। वीच में अनेक वार या तो जहाँ तक गर्दन मुड सकती हो उतनी मोडकर दाहिनी ओर देखता है या वाई ओर उसी प्रकार गर्दन घुमाकर टुकर टुकर दूसरी ओर देखता रहता है। उसके हाथ कभी सीधे नही रहते, यहाँ तक कि वह हाथो की मुट्ठियाँ तक सीधी तरह नही वंद कर सकता। इसी प्रकार प्रयत्न से वद की हुई मुट्ठी को खोलने में भी उसे कठिनाई होती है। पर पाँवो से काम लेते लेते उसके पाँव काम करने में इतने अभ्यस्त एव कुशल हो गये है कि देखते ही बनता है। वह अपने पाँवो से भोजन वनाता है, कपडे धोता है, झाडू निकालता है चित्राकन करता है, फूल-पत्ती निकालता है और आवश्यकता पड़ने पर लिखता भी है। उसके इस अद्भुत कौशल को देखकर सव दाँतो-तले उँगली दवाते है।

पं० महासती श्री सुमतिकुंवरजी म० ने भी अपने पजाव के विहार-काल के समय लुधियाना में पूज्य आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज सा० के पास इस व्यक्ति को देखा है।

स्व० पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० मे अपनी सव इन्द्रियो से काम करने की अद्भुत क्षमता थी, इसीलिए वे अपनी अल्पायु में इतना अधिक कार्य कर गये है कि स्थानकवासी समाज में तो उनकी जैसी छोटी आयु में इतना अधिक शास्त्रीय कार्य करने वाले कोई अन्य सत हुए हो तो कम से कम मेरी दृष्टि में तो नही आये। इसी कारण मै आपश्री की कृतियो से इतना अधिक मुग्ध हुआ हूँ।

एक इंच चौडी और एक इंच लम्बी जगह मे ९३ हाथियों का चित्र

पाठक सामने के फलक में एक छोटा-सा चित्र देख रहे है फलगत कागज की लम्वाई और चौडाई पौने दो, पौने दो इंच है। उसका रंग पीला है, उसके ऊपर और नीचे दो काली रेखाएं खीची हुई है, उसके चारो ओर वोर्डर पर दो दो काली रेखाएँ खीचकर अन्दर अंदर लाल रग भरा गया है। तत्पश्चात् समानाकार चतुष्कोण वनाकर वाहर पंक्तियो में ९३ हाथी चित्रित किये गये है। इसमें

पहले की दो पंक्तियो में प्रत्येक पंक्ति में सात-सात हाथियो के हिसाब से चौदह हाथी दिये गये है। तदनंतर नीचे की चार पंक्तियो में से प्रत्येक पंक्ति में आठ-आठ हाथियो के हिसाब से बत्तीस हाथी चित्रित किये गए हैं। इसके बाद सातवीं पंक्ति में फिर सात हाथियो के चित्र दिये गये है। फिर अवशिष्ट पांच पंक्तियों में ऊपर अंकित चार पंक्तियो की तरह प्रत्येक पंक्ति में आठ-आठ हाथी के हिसाब से चालीस हाथी अंकित किये गये है। इस प्रकार कुल मिलाकर ९३ हाथी होते है।

मालूम होता है कि पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज की हाथी पर विशेष दृष्टि थी, क्यो कि ऊपर प्रारंभ से पूज्यपादश्री की जिन जिन कृतियों का विवेचन किया गया है, उनमें मैंने आपश्री की चित्रांकन-शैली में हाथी का ही विशेष वर्णन किया है। पहले-पहल जिस समुद्रबंध और नागपाशबंध का विवेचन कर चुका हूँ, उन मे भी समुद्रबंध काव्य में दाहिनी ओर की करीब करीब भर जगह मे आपश्री ने क्रमश १५२ और १३६ हाथी चित्रित किये है। जैन सिद्धान्त को सक्षेप में चित्ररूप से समझाने के लिए भी आपश्री ने ज्ञानकुंजर का चित्रण किया है और उस ज्ञान कुंजर के पहले पाँव के मध्य में करीबी भर जगह में ६५ हाथियो के चित्र अंकित किये गये है।

प्राणी-सृष्टि में पशुओ में हाथी सब से बडा होनेपर भी सब से अधिक आकर्षक होता है, देशी तथा विदेशी सब इसे देखकर देखते ही रह जाते है। शहरो या गांवो में उसके जानेपर सब लोग उसे देखने के लिए जमा हो जाते हैं। विदेशी लोग तो इसे अपने यहां ले जाकर अजायब घरो में रखते है। हमारे भारत के वर्तमान प्रधान मंत्री पं श्री जवाहरलाल नेहरू ने तो अन्य राष्ट्रों के साथ मैत्री के प्रतीक रूप में रूस जापान आदि देशो में हाथी भेजे है। स्वप्न शास्त्र की दृष्टि से भी हाथी का स्वप्न में दिखाई देना मांगलिक माना गया है। तीर्थंकर या किसी विशिष्ट पुरुष के अवतरित होने के पूर्व उनकी माताएँ स्वप्नावस्था में हथिनी को मुँह मे प्रवेश करती हुई देखती है।

पूर्व मे विवाहादि के प्रसंग पर हाथी का बारात में रहना अनिवार्य माना जाता है। जहाँ हाथी मिल सकता है, वहां दीक्षार्थी-वैरागी का हाथी पर बैठाकर जुलूस निकाला जाता है और वह जुलूस में हाथी पर बैठकर दीक्षा लेने के स्थान पर जाता है। इस प्रकार लौकिक और आध्यात्मिक शास्त्र में हाथी का अत्यंत महत्त्वपूर्ण वर्णन किया गया है। फिर पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज ने जिस रतलाम शहर में जन्म लिया, वह उस समय एक बहुत

बडी रियासत थी। वहाँ हाथियो का बहुत अधिक जमघट था। दशहरा आदि विशिष्ट प्रसंगोपर उनका बराबर प्रदर्शन किया जाता था। दीक्षा लेने के पूर्व महाराजश्री उनका बराबर अवलोकन करते रहते थे। मुझे तो ऐसा लगता है– उस शैशवावस्था में ही हाथी की इस भव्य आकृति ने आपको मुग्ध कर लिया होगा।

दीक्षित होने के पूर्व भी आपने कुछ हाथी चित्रित किये हो तो कुछ आश्चर्य नही। बचपन का यह अभ्यास अवस्था प्राप्त होनेपर और अधिक दृढ़ हुआ होगा और आपने उसी अभ्यास के परिणामस्वरूप मेरी दृष्टिसे इतने अधिक स्थानो पर अगणित हाथी चित्रित किये है।

इतने अधिक हाथियो का अंकन करने के पश्चात् अन्त में चतुष्कोण के नीचे लिखा हुआ है––

संवत १९३४ लि तिलोकरिख रतलाम में।

मध्यभारत से महाराष्ट्र प्रान्त मे पदार्पण करने के पूर्व महाराजश्री ने अपनी तीस साल की अवस्था में अपने जन्म-स्थान रतलाम शहर मे इन हाथियो का चित्रण किया है।

जब पडितरत्न उपाध्याय मुनिश्री आनन्दऋषिजी महाराज धुलिया में विराजमान थे तब पडिता महासती श्री सज्जनकुँवरजी महाराज से यह ९३ हाथियो से चित्रित छोटा-सा चतुष्कोण उपाध्याय मुनि श्री को प्राप्त हुआ है। यह महासतीजी ऋषि सप्रदाय की है। जब महासतीजी ने यह चित्र उपाध्याय श्री जी को दिया होगा, तब उन्होंने कल्पना भी नही की होगी कि क्या भविष्य मे इसका इस प्रकार विवेचन हो सकेगा। सच पूछा जाय तो इसे हाथ मे लेकर लिखने के पूर्व मुझे भी कुछ नही सूझ रहा था कि इसपर क्या लिखूँ? पर एक प्रकार से यह अच्छा ही हुआ कि इसपर प्रकाश डालने के बहाने कल्पना द्वारा पहले विवेचित अनेक कृतियो मे अकित हाथियो के चित्रण के पीछे महाराजश्री की जो भावना रही होगी, उसमें मै तो सदुद्देश्य का दर्शन कर संतोष की सांस लेता हूँ।

अज्ञात रूप से शैशवावस्था में अपने उज्ज्वल अक्षरात्मक देह से आकर्षित करनेवाले पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी महाराज को सादर श्रद्धापूर्वक–

महेन्द्र





卐 विवेचन संपूर्ण 卐



निबन्धसार



श्री
तिलोक दीक्षा-शताब्दी के उपलक्ष्य में
विशिष्ट विद्वानों एवं विचारकों के



विविध वस्तु-विषयक

सारगर्भित निबन्ध



एक तुलनात्मक चिंतन

ध्यान और योग

आचार्य श्री आत्मारामजी म० लुधियाना



भारतीय चिन्तन का मूल केद्र आत्मा है। इस देश की समग्र चिन्तनधारा आत्मा को आधार मानकर गतिशील रही है। अत समस्त आध्यात्मिक विचारकों ने आत्म–चिन्तन पर भार दिया और आत्म–विकास के मार्ग का अन्वेषण करने में अपने सारे जीवन का उत्सर्ग कर दिया। जैन चितको ने भी आत्मा के विकास के मार्ग का अन्वेषण करने में अपनी शक्ति लगाई और उसका स्वरूप दुनिया के सामने रखा। आत्म–विकास के मार्ग को समझने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि आत्मा क्या है? उसका स्वरूप क्या है? किन कारणो से उसका विकास-पथ अवरुद्ध है?

जैन आगमो मे आत्मा को शरीर, इन्द्रिय, एव मन आदि भौतिक पदार्थो से एक स्वतंत्र द्रव्य माना गया है। वह इतना सूक्ष्म है कि पूर्ण ज्ञान-सपन्न व्यक्ति के अतिरिक्त कोई भी उसे देख नही सकता। हां, उसकी अनुभूति अवश्य कर सकता है। इसके अतिरिक्त वह वर्ण, गध, रस और स्पर्श से रहित है अर्थात् अरूपी है। यह सब बाते भौतिक पदार्थों में पाई जाती हैं और आत्मा अभौतिक द्रव्य है। इसलिए वह इन सबसे विहीन है। ऐसे विशुद्ध आत्मा के पतन का कारण है—राग–द्वेष आदि विकारो का ससर्ग। राग-द्वेष से कर्म का बन्ध होता है और कर्म बन्ध के कारण आत्मा संसार में परिभ्रमण करती है। अतः आत्म-विकास का अर्थ है—अभिनव कर्म के आगमन को रोक कर आवद्ध कर्मों का क्षय करना।

इसके लिए भारतीय विचारको ने अनेक मार्गों की कल्पना की है। पातंजल योग दर्शन में कर्म–बन्ध का कारण चित्त–वृत्ति को माना है। इसलिए आत्मा को कर्म बन्धन से मुक्त करने के लिए उन्होने चित्त–वृत्ति के निरोध करने पर जोर दिया और उसे योग कहा। चित्त-वृत्ति को रोकना योग अर्थात् आत्मा को कर्म बन्धन से मुक्त करने का एक मार्ग है।

जैन आगमो में कर्म वन्ध के ५ कारण वताये गये है—

(१) योगश्चित्तवृत्तिनिरोध । –पातञ्जल योगदर्शन, १, २।

(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय और योग इनमें मूल १ मिथ्यात्व, २ कषाय और ३ योग है। अविरति और प्रमाद कषाय के ही विस्तृत रूप है। योग से कर्मो का आगमन होता है और कषाय के कारण उनका वन्ध होता है। वन्ध ४ प्रकार का माना गया है— (१) प्रकृति वन्ध, (२) प्रदेश वन्ध, (३) अनुभाग वन्ध और (४) स्थिति वन्ध। योगो की प्रवृत्ति से कर्म का आत्म-प्रदेशो के साथ सबंध होता है, जिसे प्रदेश-वन्ध कहते है। उसके पश्चात् वे जिस स्वभाव—ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि के होते है तदनुसार उसका वन्ध होता है, जिसे प्रकृति वन्ध कहते है। प्रकृति एवं प्रदेश वन्ध संसार परि-भ्रमण के मुख्य कारण नही है, जब योगो के साथ कषाय का उदय होता है तब उनका अनुभाग एवं स्थितिवन्ध होता है और यह वन्ध ही ससार–परिभ्रमण का कारण है। अनुभाग का अर्थ है— रस। अच्छे एवं वुरे का कटुक एवं मधुर रस का वन्ध कषायो की कटुता एव मधुरता के अनुरूप होता है। यदि प्रशस्त कषाय है, तो उससे शुभ रस का वन्ध होगा और अप्रशस्त कषाय से अशुभ रस का वन्ध होगा। कषाय एकान्त रूप से अप्रशस्त ही नहीं कही जा सकती। जैसे क्रोध वुरा है, पतन का कारण है, परन्तु धर्म एव शील की रक्षा के लिए विना किसी दुर्भावना के किये गए क्रोध को एकान्त रूप से वुरा नही कह सकते। सीता ने अपने शील एव धर्म की रक्षा के लिए रावण को कटु शब्द कहे, परन्तु उसके मन में रावण के प्रति दुर्भाव नही था, केवल अपनी धर्म की रक्षा एवं उसे वुरे मार्ग से हटाने की ही उसकी भावना थी। इसलिए उसका वह आवेश प्रशस्त है। फिर भी कषाययुक्त होने के कारण वह पुण्य–वन्ध का कारण है। उससे निर्जरा नही, वन्ध ही होता है। अत. कषाय से उस प्रदेश एवं प्रकृति बन्ध में मधु या कटुक रस का सचार होता है और उसकी स्थिति का वन्ध भी कषाय से होता है। प्रत्येक आवद्ध कर्म अपने मर्यादित काल में उदय में आता है और फल प्रदान करके नष्ट हो जाता है। इस तरह इन साधनो से आत्मा कर्म से आवद्ध होकर संसार में परिभ्रमण करती है। इसलिए इन्हे आस्रव अर्थात् कर्मों के आनेका रास्ता कहा गया है।

योग भी आस्रव है और वे तीन माने गये है—(१) मन, (२) वचन, और काय। इन में मन की वृत्ति मुख्य मानी गई है। वचन एवं काय की प्रवृत्ति से कर्म-पुद्गलो का आगमन होता है, परन्तु उनका बन्ध परिणामों से होता

है। परिणामो की शुद्धता-अशुद्धता एव तीव्रता-मन्दता के अनुरूप ही उनका बन्ध होता है। इसलिए आगम मे बन्ध परिणामो के अनुसार माना गया है। आत्मा को निष्कर्म बनाने के लिए कर्म-बन्ध के कारण योगो की प्रवृत्ति को रोकने का विधान किया गया है। जिसे आगमिक परिभाषा में 'सवर' कहते है और इसके लिए तीन गुप्ति की साधना बताई गई है— (१) मन गुप्ति, (२) वचन गुप्ति और (३) काय गुप्ति।

इस तरह हमने देखा कि पातंजल योगदर्शन में चित्त के निरोध करने को योग कहा है और जैनागमो में मन, वचन और काय को योग कहा है और तीनो के निरोध को संवर-अभिनव कर्म के आगमन को रोकना कहा है। चित्त-वृत्ति का दोनो में उल्लेख है। जैनागमो के अनुसार कर्म-बन्ध परिणाम मे होता है, अत परिणाम का निरोध करने से आत्मा निष्कर्म बनती है। इस कारण १४ वे गुणस्थान में आरूढ आत्मा सबसे पहले मन के योग का निरोध करती है, उसके बाद वचन और काययोग का निरोध करती है। इस तरह शाब्दिक अन्तर होते हुए भी दोनो का उद्देश्य समान है। अत हम कह सकते है कि चित्त-वृत्ति या मन, वचन और काय योग को गोपने का प्रयत्न करना आत्मा को निष्कर्म बनाने का प्रशस्त पथ है। इससे आत्मा मे संवर होता है, अभिनव कर्मो का आगमन रुकता है।

अभिनव कर्मों का आगमन रोकने के लिए सवर की साधना बताई गई है और पूर्व आबद्ध कर्मों का क्षय करने के लिए तप की साधना का उपदेश दिया गया है। तपस्या कर्म रूपी इधन को जलाने के लिए अग्निरूप है। इस से विकार उपशान्त होते है और विकारो के उपशान्त होने पर योगो में एकाग्रता आती है। योगो की चचलता का मूल कारण विकार है। विकारो के प्राबल्य से मन एवं इन्द्रियाँ इधर-उधर उछल-कूद मचाती हैं। अतः विकारो को शान्त करने के लिए तप की साधना आवश्यक है। गीता में भी कहा है कि आहार का त्याग करनेवाले अर्थात् तप-साधना को स्वीकार करनेवाले व्यक्ति को विकार नही सताते है।[१] विकारो के उपशमन से चित्त में स्थिरता आती है और परिणाम स्वरूप आत्मा स्वस्वरूप के चिन्तन में संलग्न होती है और परस्वरूप से दूर रहने का प्रयत्न करती है। इस तरह तप से वह पूर्व आबद्ध कर्मों को क्षय करती है और एक दिन समस्त पर-पदार्थों से विहीन होकर अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेती है। आगम में बताया है कि साधक ज्ञान से पदार्थों के यथार्थ स्वरूप

(१) वि या विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन। गीता, २, ५

को जानता है, दर्शन से उस परिज्ञात स्वरूप पर विश्वास करता है, चारित्र (सयम–सवर) से अभिनव कर्मों के आगमन को रोकता है और तप से पहले बन्धे हुए कर्मों का नाश करता है। [२]इससे यह स्पष्ट हुआ कि साधक ज्ञान एव दर्शन युक्त चारित्र (सवर) से नये कर्मों के स्रोत को बन्द करता है और तप से पुरातन कर्मों का क्षय करता है।

अत निष्कर्म बनने के लिए संवर के साथ तप की भी आवश्यकता है। तप के दो प्रकार है— (१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। बाह्य तप ६ प्रकार का है— (१) अनशन, (२) औनोदर्य (३) भिक्षाचरी, (४) रस-परित्याग, (५) काया-क्लेश और (६) प्रतिसलीनता। आभ्यन्तर तप के भी ६ भेद है। (१) विनय, (२) वैयावृत्य, (३) प्रायश्चित्त, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान और (६) व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग)। यह तप योगो की चचलता को रोकने या अपने आपको एकाग्र करने का साधन है। योग दर्शन मे भी चित्त-वृत्ति का निरोध करने की साधना बताते हुए तप, स्वाध्याय और प्रणव ॐ या ईश्वर के स्वरूप मे लीन होना बताया गया है। [३]जैनागमो में स्वाध्याय एव प्रणव आत्म एव परमात्म स्वरूप के चिन्तन-ध्यान करने को आभ्यन्तर तप में समाविष्ट किया है। इससे स्पष्ट होता है कि समग्र भारतीय चिन्तन-धारा में तप का महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है।

योगो का निरोध करने के लिए आभ्यन्तर तप सर्वश्रेष्ठ साधन है। ध्यान एव कायोत्सर्ग की साधना से साधक योगो की प्रवृत्तियो का गोपन करने या निरोध करने में समर्थ होता है। धर्म-ध्यान एव शुक्ल-ध्यान के द्वारा साधक राग-द्वेष को क्षय करके चार घातिक कर्मों से अनावृत हो जाता है और १३ वे गुणस्थान में शुक्ल-ध्यान की साधना करते हुए शुक्ल ध्यान के चौथे पाए का चिन्तन करते हुए अवशेष रहे चारो अघातिक कर्मों को क्षय करके निष्कर्म अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इस तरह ध्यान तप की साधना से साधक निष्क-र्मता की ओर बढ़ता है।

हमने यह देखा कि योग का अर्थ चित्तवृत्ति का निरोध करना है और ध्यान का उद्देश्य भी चित्तवृत्तियो को आत्म-चिन्तन में केन्द्रित करना है। इसलिए ध्यान को योग भी कहा जाता है। उस योग विधि को जाननेवाला साधक ही ध्यान या

(२) नाणेण जाणइ भावे, दसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हइ, तवेण परिसुज्झइ।—उत्तराध्ययन, २८ २५

(३) तपस्स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रिया योग।—योगदर्शन, २, १

योग–साधना करने के योग्य है। इसलिए साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह योग्य गुरु के पास योग–साधना की शिक्षा प्राप्त करे। क्योंकि ज्ञान के बिना वह यथार्थ रूप से साधन नही कर सकता। इसलिए आगम में कहा गया है कि साधक को शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरुकुल––गुरु की सेवा में निवास करना चाहिए। गुरु की सेवा मे रहकर ही साधक योगवान् हो सकता है।[1] वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि गुरु-सेवा में रहते हुए साधक योगवानों उपधान तप करनेवाला, प्रिय बोलनेवाला, प्रिय कार्य करनेवाला हो। इन गुण से युक्त साधक शिक्षा प्राप्त करने के योग्य होता है। योगवान् शब्द से वृत्तिकार ने अष्टाग योग भी ग्रहण किया है।[2] जैनागमो में योग शब्द के अर्थ में ध्यान शब्द का प्रयोग मिलता है। योग एव ध्यान दोनो के उद्देश्य की समानता को हम देख चुके है। अत ध्यान या योग की शिक्षा प्राप्त करने के लिए साधक को गुरु की सेवा मे रहना चाहिए।

ध्यान एव योग की शिक्षा प्राप्त करनेवाले साधक को किस तरह का जीवन बिताना चाहिए। इसके सबध में आगम में बताया गया है कि ध्यान की साधना को अल्प आहार करना चाहिए, अल्प पानी पीना चाहिए, अल्प बोलना चाहिए और सुव्रत, क्षमाशील, शान्त और दमितेन्द्रिय होना चाहिए। अधिक भोजन करने से आलस्य अधिक आता है, और उसका अधिकाश समय पदार्थों को लाने एव खाने मे ही बीतता है। इसलिए साधक को अधिक आहार नही करना चाहिए और पदार्थों में आसक्त न होकर विवेकपूर्वक साधना में संलग्न रहना चाहिए।[3]

---

(१) वसे गुरुकुले निच्च जोगव उवहाणव।
पियकरे पियवाई से सिक्ख लद्धुमरिहइ ॥ उत्तराध्ययन ११, १४

(२) स मुनिः शिक्षा लब्धुमर्हति शिक्षायै योग्यो भवति। स इति क.? यो गुरुकुले नित्य वसेत् गुरो पूज्यस्य विद्यादीक्षादायकस्य वा कुले गच्छे सघाटके वा यावज्जीव तिष्ठेत् पुनर्यो मुनिः योगवान् योगो धर्मव्यापार स विद्यते यस्य स योगवान् अथवा योगोऽष्टागलक्षणस्तद्वानित्यर्थ.। पुनर्य साधु उपधानवान् उपधानम् अगोपागादीना सिद्धान्ताना पठनाराधनार्थम् आचाम्लोपवास-निर्विकृत्यादि लक्षण तपोविशेष स विद्यते यस्य स उपधानवान् सिद्धान्ताराधनतपोयुक्त इत्यर्थ। पुनर्य साधु प्रियकर आचार्यादीना हितकारक पुनर्य प्रियवादी, प्रियभाषी एतैर्लक्षणैर्युक्तो मुनि शिक्षां प्राप्तु योग्यो भवति। –उत्तराध्ययन वृत्ति ११, १४

(३) अप्पपिण्डासि पाणासि अप्प भासेज्ज सुवए।
खन्तेभिनिव्वुडे दन्ते वीयगिद्धी सया जए॥
झाण जोग समाहट्टु काय विउसेज्ज सव्वसो।
तितिक्ख परम नच्चा आमोक्खए परिव्वएज्जसि॥
सूत्रकृताग सूत्र, १, ८, २५, २६

इसके पश्चात् उसे अपनी वृत्तियाँ एक पदार्थ पर केन्द्रित करनी चाहिये। ध्यान-साधना के लिए बताया गया है कि साधक को अपनी दृष्टि एवं सब ओर से हटाकर एक पुद्गल पर रखनी चाहिए। साधक को जिस पदार्थ या तत्त्व का ध्यान (चिन्तन) करना है उसे उस समय अपना चित्त, मन लेश्या, अध्यवसाय, तीव्र अध्यवसाय और उपयोग उसमे लगा देना चाहिए। अपने मन, वचन और काय योग को उसको अर्पण कर देना चाहिए। उसी भावना से भावित हो और उसका मन उस चिन्त्य पदार्थ के अतिरिक्त अन्यत्र न जाना चाहिए।[1] कहने का तात्पर्य यह है कि साधक को उस समय तद्रूप बन जाना चाहिए। जैसे पानी में रंग मिलाने पर नमक एवं दूध में डाली हुई मिश्री तद्रूप हो जाती है, उसी तरह साधक को भी तद्रूप हो जाना चाहिए। जैसे अरिहन्त का ध्यान करते समय समस्त विषय विकारो एवं राग-द्वेष से ऊपर उठकर तद्रूप होने का प्रयत्न करना चाहिए और तद्रूप होकर चिन्तन (ध्यान) करनेवाले साधक को उस समय के लिए निश्चय नय से अरिहन्त भी कह सकते है। क्योकि वह ध्यान या चिन्तन के समय तक तद्रूप बनकर चिन्तन कर रहा है।

इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए साधक को अपनी आत्मा को निर्मल बनाना चाहिए। शुद्ध आत्मा ही पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को देखने में समर्थ होती है। इसलिए आगम में कहा गया है कि आत्मा को आत्मा के द्वारा जाने। इसका तात्पर्य यह है कि ज्ञानात्मा से द्रव्य आदि आत्माओ को जाने। ज्ञान की विशुद्धता ध्यान एवं व्युत्सर्ग तप पर आधारित है। अतः इस विषय की जानकारी करने के लिए जिज्ञासुओ को समवायाग सूत्र का १० वा समवाय, दशाश्रुतस्कंध सूत्र की पाचवी चित्त-समाधि दशा, भगवती सूत्र का २५ वा शतक (तप प्रकरण) स्थानाग सूत्र के ४ स्थान में चार प्रकार के ध्यान का वर्णन, उववाई सूत्र में तप का वर्णन और सूत्र कृताग सूत्र के दसवे समाधि अध्ययन का अनुशीलन-परिशीलन करना चाहिए।

इस ध्यान-साधना से आत्मा में ज्ञान का विकास होता है और साधक ज्ञानावरण कर्म को क्षय करके सर्वज्ञ पद को प्राप्त कर लेता है। इसके लिए आगम में बताया गया है कि साधक किन साधनो से केवल ज्ञान पा सकता है और किन साधनो से नही पा सकता। केवलज्ञान प्राप्त कर सकने या न पा सकने के आगम में चार कारण बताए गए है जो साधक (१) बार-बार स्त्री कथा,

---

(१) जे इमे समणे वा समणी वा सावओ वा सावियाओ वा तच्चित्ते, तम्मणे, तल्लेसे, तदज्झवसिए, तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते, तदप्पियकरणे, तब्भावणाभाविए अण्णत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे उभओकालं आवस्सय करेइ, सेत्त लोगुत्तरिय भावावस्सय। अनुयोग द्वार सूत्र (भावावश्यक-प्रकरण) यही पाठ भागवती १, ७ में आता है।

भक्त कथा, देश कथा और राज कथा करता है, (२) विवेकपूर्वक ध्यान एवं व्युत्सर्ग तप की साधना नही करता (३) रात्रि के प्रथम एवं अन्तिम प्रहर में धर्म जागरण नही करता और (४) प्रासुक, एषणीय, अल्प मात्रा के एव सामुदायिक भिक्षा की गवेषणा नही करता, वह केवलज्ञान को नही पा सकता। इसके विपरीत जो साधक (१) बार-बार स्त्री आदि की कथा नही करता, (२) विवेकपूर्वक व्युत्सर्ग तप की साधना करता है, (३) रात्रि के प्रथम एवं अन्तिम प्रहर में धर्म जागरण करता है और (४) प्रासुक. एषणीय, स्वल्प एव सामुदायिक वृत्ति की गवेषणा करता है, वह केवलज्ञान को प्राप्त कर सकता है।[1]

इससे यह स्पष्ट हो गया कि आत्मा को निष्कर्म बनाने के लिए संवर और तप-ध्यान या योग साधना की महती आवश्यकता है। इससे योगो की प्रवृत्तियो का निरोध होता है, विकारो का नाश होता है, जिससे आत्मा में एकाग्रता एव स्थिरता मे अभिवृद्धि होती है और धीरे-धीरे आत्मा कर्म-बन्धन से मुक्त होते-होते एक दिन सर्वथा उन्मुक्त हो जाती है।[2]

---

(१) चउहिं ठाणेहिं णिग्गथाण वा णिग्ग ीण वा असिंस समयसि अइसेसे णाणदमणे समुपज्जिउ कामे वि णो समुपज्जेज्जा त अभिक्खण २ इत्थिकह, भत्तकह, देसकहं, रायकह कहेत्ता भवइ, विवेगेण विउसग्गेण णो सम्ममप्पाणभावेत्ता भवइ, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि णो धम्म जागरिय जागरित्ता भवइ, फासुयस्स एसणिज्जस्स उछस्स सामुदाणियस्स णो सम्म गवेसइत्ता भवइ-इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा जाव णो समुप्पज्जेज्जा। चउहिं ठाणेहिं णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा अइसेसे णाणदसणे समुपज्जिउं कामे समुप्पज्जेज्जा तजहा इत्थिकह,भत्तकह, देसकह, रायकह णो कहेत्ता भवइ विवेगेण विउस्सग्गेण सम्ममप्पाण भावेत्ता भवइ, पुव्वरत्तावरत्त कालसमयसि धम्मजागरिय जागरित्ता भवइ. फासुयस्स एसणिज्जस्स उञ्छस्स सामुदाणियस्स सम्म गवेसइत्ता भवइ, इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गथाण वा णिग्गथीण वा जाव समुपज्जेज्जा। -स्थानाग सूत्र, स्थान ४ उद्देशा २

(२) इस विषय के जिज्ञासुओ को उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९ मे वर्णित मन, वचन और काय गुप्ति तथा मन समाधारणा, वचन समाधारणा एव काय समाधारणा का अध्ययन करना चाहिए।

इसके सिवाय ज्ञानार्णव एव योग शास्त्र (आचार्य हेमचन्द्र तथा योग शतक (आचार्य हरिभद्र) का अनुशीलन करना चाहिए।



सम्यग् दृष्टि, सम्यग् दर्शन और उसकी साधना

लेखकः– पं मुनि श्री श्रीमल्लजी महाराज

संस्कृति का आविष्कार क्यो ?

धर्म, दर्शन और संस्कृति का आविष्कार मनुष्य ने मनुष्य के लिए किया है। भारतीय साधना में जीवन के प्रत्येक अनुष्ठान का केन्द्र–बिन्दु मनुष्य है। धर्म, दर्शन तथा संस्कृति के क्षेत्र में यही प्रयोग आज महत्त्वपूर्ण है, जिसका इष्टदेवता अथवा उपास्य देव मनुष्य है। जिस धर्म–क्रिया का फल साक्षात् इहलोक के मानव जीवन के लिए न हो– जो मनुष्य-जीवन की उपेक्षा करके स्वर्गवासी देवो के जीवन की अभिलाषा करता हो, वह विचार न तो धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के अनुकूल है और न आधुनिक जीवन–पद्धति के अनुरूप ही। विज्ञान, कला, साहित्य और राजनय सब की उपयोगिता की एकमात्र कसौटी मानव का प्रत्यक्ष लाभ और प्रत्यक्ष जीवन है। आज मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विचारो की हल–चल मनुष्य के इसी रूप को पकडने के प्रयत्न में है। जीवन के इस स्वस्थ दृष्टि-कोण से जहाँ एक ओर मानव की प्रतिष्ठा बढी है, वहाँ दूसरी ओर स्वर्ग की ओर उड़नेवाले मनुष्य के विचारो ने धरती की कुशल–मंगल पूछने का नया पाठ भी पढ़ा है, और यह एक बडी बात है, महान् परिवर्तन है।

मनुष्य महनीय है ?

आज के इस जाने–पहिचाने विश्व के समग्र विचारो का मध्य बिन्दु मानव के अतिरिक्त अन्य कुछ नही। विश्व क्षितिज का प्रत्येक नया ग्रह, मानव रूपी मध्य केद्र के चारो ओर ही मँडराता है, उसकी गति–विधि का मूल आधार है–"मनुष्य" जो मनुष्य इतना महनीय है, जो विश्व की परिधि का केद्र है। वह यथार्थ मे है क्या ? क्या हम उसे मिट्टी, पानी, आग और हवा का एक विलक्षण संयोग मात्र मान ले ? क्या वह जल मे से ही उत्पन्न होनेवाला और जल में ही विलीन हो जानेवाला एक नगण्य जल बुद-बुद मात्र कहा जा सकता है ? नही, कदापि नहीं। मनुष्य मात्र वही नही है, जो आपको और हमको दृष्टिगोचर हो रहा है। मनुष्य में कुछ ऐसा तत्त्व भी है जो होकर भी दृष्टिगोचर नही हो पा रहा है। केवल दो-चार स्थूल तत्त्वो के विचित्र सयोग मात्र से ही मनुष्य नहीं बन गया।

मर्त्य और अमृत का सयोग

आत्मवादी दर्शनो की विचार-धारा के अनुसार मनुष्य में "मर्त्य और अमृत का सुदर संयोग है"। उसमें कुछ ऐसा है, जो बार-बार बनता है, बिगडता है, सडता है और मिटता है। परन्तु साथ ही उसमें कुछ ऐसा भी है, जो न जन्मता है, न मरता है, न बुढियाता है, और न कभी गलता-सडता ही है,--"वह चिरन्तन सुन्दर है"। मनुष्य में देह मर्त्य है, और आत्मा अमृत। उसके मर्त्य अश उसको पार्थिव जगत् के साथ बाधे हुए हैं। किन्तु मनुष्य के भीतर ही उसका दिव्य अश भी है। भारतीय दर्शन का यह कथन बडा ही महत्त्वपूर्ण है कि–जब तक मर्त्य और अमृत अशो को ठीक से न समझा जायगा और उनका ठीक से विकास न किया जायगा, तब तक मनुष्य अतृप्त और अपूर्ण ही रहेगा।

भोग-दृष्टि :

भोगवादी मनुष्य केवल अपने भौतिक रूप को ही जानता और पहिचानता है। शरीर का सुख, उसका सुख है। शरीर की पीडा, उसकी पीडा है, शारीरिक ह्रास, उसका ह्रास है। शरीर का विकास उसका विकास है। वह मानता है, कि शरीर सुन्दर है तो वह सुन्दर है। शरीर विकृत है, तो वह विकृत है। भोगवादी मात्र भोग के जाल मे आबद्ध रहता है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु–ये सब मेरे है, और मै उनका हूँ। उक्त पदार्थों का सयोग मेरा अस्तित्व और उनका वियोग मेरा नाश है। मेरा अभाव है, मेरी असत्ता है। भोगवादी अमृत अश का निषेध करता है, और मर्त्य अंश को स्वीकार करता है। भोग, विलास, सुख और काम ये ही हैं–उसके जीवन के ध्येय बिन्दु। इन की प्राप्ति और इनके उपभोग मे ही वह अपने जीवन की सार्थकता समझता है, अपने को कृत–कृत्य मानता है।

आत्म–दृष्टि–आत्म-वादी मनुष्य शरीर की सत्ता का तो निषेध नहीं करता, परतु उसकी विवेक दृष्टि शरीर की दीवार को चीरकर, अन्त स्थित दिव्य अंश के साक्षात्कार के लिए भी उत्कण्ठित रहती है। आत्म-वादी मानव शरीर में स्थित ज्योतिर्मय, एव शुभ्र [1] चिन्मय तत्त्वको पाने के लिए साधना मे रत रहता है। दर्शन और धर्म की मूल-भित्ति आत्मा है। यदि आत्मा है, तो वह है, नही तो नही। यह स्वस्थ दृष्टिकोण है--आत्म-वादी मनुष्य का। भोग, विलास, और काम,–उसके जीवन में रहे, यह बात अलग है, परन्तु इनकी प्राप्ति और इनका उपभोग उसके जीवन का ध्येय नही होता। किन्तुभोग से योग की ओर बढते जाना उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य होता है। वह सदा अन्धकार

[1] अन्त शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्र　मुण्डकोपनिषद् ३—५

से [1]प्रकाश की ओर बढ़ने में विश्वास लेकर चलता है। आत्मवादी देह की उपेक्षा नहीं करता किन्तु देह-विराजित आत्मा की उसके मन में प्रबल अपेक्षा रहती है। शरीर को मारना नही, साधना है। [2]शरीर हमारी धर्म-साधना का मुख्य अंग है। शरीर के बिना केवल शरीरी धर्म कैसे करेगा ?

सम्यक्त्व रत्न—श्रमण साहित्य में—"भोगवादी को मिथ्यादृष्टि और आत्म-वादी को सम्यग्दृष्टि कहा गया है"। श्रमण-धर्म, श्रमण-दर्शन और श्रमण संस्कृति का मूल है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्दृष्टित्व तथा सम्यक्त्व—श्रमण विचार धारा [3]सम्यक्त्वमूलक है। धर्म, दर्शन और संस्कृति का मूल यहाँ पर सम्यक्त्व माना गया है। सम्यक्त्व है तो सब कुछ है, नही तो कुछ नही। श्रावक, श्रावक क्यो है ? श्रमण श्रमण क्यो है ? क्योकि उसके पास सम्यक्त्व रत्न है। बस इसीलिए तो ?

लोक का सार सत्य सत्यदृष्टि, सम्यग्दृष्टि, और सम्यक्त्व—ये तीनो पर्यायवाची शब्द है। इन तीनो को एक शब्द में ही कहना हो, तो "विवेकदृष्टि" रूप से कह सकते है, आत्मवादी की सब से बडी विशेपता है,—सत्य की उपासना, सत्य की साधना और सत्य की आराधना। सत्य उसके जीवन का मूल ध्येय होता है। यदि वह सत्य, अपने शास्त्रो मे है, तो भी अपना है, और यदि पर के शास्त्रो मे है, तो भी अपना है। सत्य सत्य है। उसमें स्वत्व-परत्व की कल्पना और जल्पना ही वस्तुत सब से बडा मिथ्यात्व है, सब से भयकर पाप है। जिस किसी भी आत्म-वादी ने जब कभी भी आत्मा के शुद्ध एव निर्मल स्वरूप को पाया है तो वह [4]सत्य से ही। श्रमण-साहित्य तो इस से भी बढ़कर कहता है कि "सपूर्ण लोक का [5]सार क्या है ? सत्य ! सत्य !! सत्य !!! फिर पूछा गया सत्य क्या है ? उत्तर में बहुत ही बडा रहस्य प्रकट किया गया—[6]सत्य स्वयं भगवान् है, और भगवान् है सो सत्य है।

एक दार्शनिक से पूछा गया—आखिर यह सत्य है क्या ? आचार्य ने शिष्य से कहा—"जो जिन भगवान् ने कहा है, वह सत्य है। क्योकि जो व्यक्तिविशेष क्षीणदोष है वह यथार्थ ज्ञाता एव यथार्थ वक्ता है, उस से जो कुछ भी प्राप्त हुआ वही सत्य है। वह व्यक्तिविशेष फिर भले ही किसी भी देश का और किसी भी काल का क्यो न हो, ? किन्तु श्रमण-सस्कृति केवल सत्य के ज्ञान

---

१ आरोह तमसो ज्योति — वेद। २ शरीर धर्मसाधनम्—कालिदास ३ दसणमूलो धम्मो।
४ सत्येन लभ्य एष आत्मा मुण्डकोपनिषद। ५ सच्च लोगम्मि सारभूयं प्रश्न व्याकरण
६ तं सच्च खु भगवं प्रश्न व्याकरण सूत्र

मात्र से ही सन्तुष्ट नही। वह इससे आगे बढकर कहती है—"सत्य का आचरण भी करो"

क्षुरस्य धारा.--आत्म वादी सत्यदर्शी ही होता है। वह जहां कही भी और जिस किसी भी स्थिति में रहता है, वहां सत्य की खोज करता रहता है, और "जो सत्य की खोज में रहता है उसे किसी एक देश मे आबद्ध नही होना चाहिए"। सत्य श्रेष्ठ है, परन्तु वह सत्य सरल होना चाहिए-- "सरल सत्य संसार की सर्वोच्च वस्तुओ मे से एक है"। सत्यवादी मनुष्य का यह दृष्टिकोण होता है, कि "जब तक जीवन है, सत्य बोलते रहो, और शैतान (असत्य) को पराजित करते रहो"। अर्थात् असत्य को सत्य से जीतते रहो। आखिर—"विजय सत्य की होगी, असत्य अवश्य ही पराजित होगा"। इसमें जरा भी सदेह नही। सत्य अपने आप मे महान् है, परन्तु उसकी साधना उतनी सरल नही है जितनी समझी जाती रही हे। यह तो "क्षुरस्य धारा" है। सत्य का आचरण कांटो पर चलने जेसा हे।

सत्य की कसौटी सत्य के इसी पावन स्वरूप को श्रमण संस्कृति के जोतिर्धर आचार्यों ने सम्यक्त्व, सम्यग् दृष्टि, और सत्य दृष्टि शब्दो से अभिव्यक्त किया है। सम्यक्त्व आत्मा का निजगुण है, निज स्वरूप है। सत्य दृष्टि है, तो श्रावक श्रावक है, और श्रमण श्रमण है। श्रावक के अणुव्रत, और श्रमण के महाव्रत, सम्यक्त्वमूलक होते है। यदि सम्यक्त्व है, तो ज्ञान भी सम्यग् ज्ञान है और चारित्र भी सम्यक् चारित्र है। श्रमण दर्शन मे जीव-जीवन और जगत् की प्रत्येक प्रक्रिया एवं प्रयोग को इसी सम्यक्त्व किंवा सत्यदृष्टि की कसौटी पर कस कर देखा और परखा जाता है।

जीवन विकास के साधन— सत्यशोधक साधक जीव और जगत् के स्वरूप को समझने का प्रयत्न करता है। "मनुष्य ज्ञान से पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धा करता है, चारित्र से उपादेय को ग्रहण करता है, और तप से अपने को शुद्ध बनाता[1] है" जीवन विकास के ये वे अन्तरग साधन है, जो भगवान् महावीर ने अपनी अन्तिम वाणी में बताए है। ज्ञान जीवन मे बडी शक्ति है, वह मानवता का सार है, परन्तु ज्ञान का भी सार है-सम्यक्त्व, आत्म-श्रद्धा, आत्मनिष्ठा। जिसने जीवन मे सम्यक्त्व नही पाया, उसने ज्ञान और चारित्र भी नही पाया,— नही पा सकता। क्योकि सम्यक्त्वहीन का ज्ञान, ज्ञान

१ नाणेन जाणइ भावे, दसणेण य सद्दहे। चरित्तेण निगिण्हेइ, तवेण परिसुज्झइ॥
उतराध्ययन २८। ३५

नही, वह अज्ञान कहा जाता[१] है। सम्यक्त्व-हीन का चारित्र, चारित्र नही,—कुचारित्र कहा जाता[२] है। सम्यक्त्व रूप धर्म के प्रभाव से नीच से नीच मनुष्य भी देव हो जाता है, और मिथ्यात्व रूपी पाप मे ऊँच से ऊँच मनुष्य भी हीन और तुच्छ हो जाता है।[३] श्रमण-साहित्य के अतिरिक्त वेदानुगामी साहित्य में भी सम्यग् दर्शन की महिमा कम नही है। ऋत, सत्य, समत्व आदि शब्दो से उक्त परम तत्त्व को स्वीकृत किया गया है। वैसे तो सम्यग्दर्शन शब्द भी वहाँ उपलब्ध है, परन्तु यत्र तत्र बहुत कम। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है—"अर्जुन! जीवन को शात एव पूत बनाने के लिए समत्व को प्राप्त करने का प्रयत्न करो। समत्व सब से बडा योग है—"समत्व योग उच्यते" मनुसहिता में मनु ने भी उक्त परम तत्त्व को स्वीकार किया है। वे कहते है "जो सम्यग् दर्शन से सपन्न है, वह कर्म से बद्ध नही होता। ससार में परिभ्रमण वही करता है, जो सम्यग्दर्शनविहीन है।[४]

मिथ्यादृष्टि और सम्यगदृष्टि—मिथ्यादृष्टि ससार के काम–भोगो में लिप्त रहकर-ससक्त होकर अपने सच्चे स्वरूप को विस्मृत कर देता है। स्वादुभोजन मधुर पेय, सुन्दर वदन, चमक–दमक के अलकार और भव्य भवन इनमें मुग्ध होकर, वह अपने शाश्वत स्वरूप को भूल बैठता है। जब कि सम्यगृदृष्टि ससार में रहकर भी ससार के हास–विलास से ऊँचा, बहुत ऊँचा रहता है। जल में रहकर भी कमलपत्रवत् जल से ऊँचा रहता है। सम्यग्दर्शन संपन्न मनुष्य में यही कला होती है। ससार है, संसार के पदार्थ भी है, पर वह समझता है,—ये अन्य है, मै अन्य हूँ। मै चेता हूँ, ये जड है। मै नेता हूँ, ये जड है। जिसकी मति सरल है, उसकी गति भी सरल है, उसका शील भी सरल है। क्योकि सरलात्मा, सब को सरल ही समझता है।

मनुष्य की दृष्टि के अनुसार उसकी सृष्टि बनती है और बिगडती है। दिशा के अनुसार उसकी दशा सुधरती और बिगडती है। मै सत् हूँ, मेरी सत्ता है, इतना तो मिथ्यादृष्टि भी समझ सकता है, परन्तु मै चिन्मय हूँ, मै आनन्द-

(१) नादसणिस्य नाण — उत्तराध्ययन २८/३०
(२) नत्थि चरित्त सम्पत्तविहूण — उत्तराध्ययन २८/२९
(३) सम्यग्दर्शन सम्पन्नमपि मातगदेहजम्
देवादेव विदुर्भस्मगूढागारान्तरोजसम् — समन्त भद्र
(४) सम्यक्दर्शन सम्पन्न कर्मभिर्न निबद्धयते
दर्शनेन विहीनस्तु ससारं प्रतिपद्यते — मनु सहिता ६–७४

समुद्रबन्ध काव्य विवेचन पृष्ठ १८६

मय हूँ, यह अनुभूति सम्यग्दृष्टि को तो होती है, पर मिथ्यादृष्टि को कभी नहीं होती। सत्ता तो जड में भी होती है, किन्तु उसमें ज्ञान और आनन्द नहीं होता। सत्, चित् और आनन्द आत्मा त्रयात्मक है। यह दिव्यदृष्टि जिसको मिल गई, वस्तुतः वही सम्यगदृष्टि है। अब सवाल यह रह जाता है कि सम्यग्दृष्टि का व्यवहार कैसा होता है? उसका आचार कैसा होता है? विचार कैसा होता है? वह कैसा सोचता है? और क्या करता है?

प्रशम——सम्यग्दृष्टि विजेता होता है। किसका विजेता? विकारो का। विकार को विचार में बदलने की कला इसके पास में होती है। विकार चार है——क्रोध, मान, माया, और लोभ। सम्यग्दृष्टि उपशम से क्रोध को विनय से मान को, सरलता से वक्रता (माया) को और संतोष से लोभ को जीतने का निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। क्योकि क्रोध, प्रेम का नाश करता है। मान, विनम्रता का विनाश करता है। माया, ऋजुता को क्षीण कर डालती है। लोभ, आत्मा के समग्र सद्गुणो का घात करता है। उक्त चार विकार (कषाय) यदि जीवन भर स्थिर रह जाएँ, अथवा यदि वे वर्ष भर भी जीवन के साथ जुडे हुए रह जाएँ तो वे आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात कर डाल सकते है। अत. इन पर विजय पाना अत्यन्त आवश्यक है। शास्त्र की भाषा में उक्त विकारों की विजय को प्रशम कहते है अथवा उपशम कहते है। श्रमण धर्म की आध्यात्म साधना का यह सार है। शम——का प्राकृत भाषा में सम हो जाता है, जिस का अर्थ होगा—— प्राणिमात्र के प्रति समता भाव। समता और समत्व का अर्थ एक ही है। समत्व की साधना से जीवन सुन्दर, मधुर तथा पावन बनता है। समत्व की साधना बहुत बडी साधना है।

संवेग——सम्यग्दृष्टि मे मोक्षाभिलाषा निरन्तर बनी रहती है। मोक्ष पाना उसके जीवन का लक्ष्य हो जाता है। ध्येय जितना ऊँचा जितना दूर और जितना महान् होगा, साधक उतनी ही तीव्रता के साथ उस ओर बढने का प्रयत्न करता है। संसार की ओर न बढकर मोक्ष की ओर गतिशील होना—सवेग कहा जाता है। वेग का अर्थ है गति, यदि वह नीचे की ओर है, तो वेग है, और यदि वह ऊपर की ओर है, तो सवेग है। सम्यग्दृष्टि मात्र वेग की नही, सवेग की साधना करता है, वह संसार से पराङमुख होकर, मोक्ष के उन्मुख होता है। उक्त ध्येय-निष्ठा को ही शास्त्र में सवेग कहा गया है।

निर्वेद सम्यग्दृष्टि का जीवन वैराग्यमय होता है। भोग, विलास और काय में उसकी अभिरुचि नही होती। उसका जीवन आत्मलक्षी होता है भोगलक्षी नही। सम्यक्त्वी इह लोक संबधी और परलोक सबधी किसी भी प्रकार के भोगो की अभिलाषा नही करता। वह अपनी शक्ति का उपयोग त्याग में करता है, भोग में नही। शास्त्र की भाषा में मोह के उदय को वेद कहते है। वह वेद जिसमें नही है, वह व्यक्ति निर्वेद होता है। निर्वेद अर्थात् वैराग्य-शील जीवन।



अनुकम्पा—सम्यग्दृष्टि कोमल-हृदय का होता है। दूसरे को पीडा और कष्ट में देखकर वह स्वय भी द्रवित हो उठता है। अनुकम्पा, करुणा एव दया जिसमें नही, वह सम्यक्त्वी बन ही कैसे सकता है? सम्यक्त्वी प्राणिमात्र को आत्मवत् समझता है। प्रत्येक जीव में अपनेपन का अनुभव सम्यक्त्वी करता है, और जहाँ अपनत्व की अनुभूति होती है, वहाँ दूसरो का सुख-दुख अपना सुख-दुख हो जाता है। अत किसी भी प्राणी को कष्ट में देखकर, उसके प्रति हृदय में जो संवेदन होता है, और उस सवेदन को लेकर दुखी व्यक्ति के कष्ट को मिटाने का जो प्रयत्न किया जाता है—वह अनुकम्पा है। अनुकम्पा के विना जीवन सशुद्धि कथमपि सम्भव नही है।

आस्तिक्य!— सम्यग्दृष्टि आस्तिक होता है। आत्मा, कर्म, लोक और परलोक में उसकी आस्था होती है। आत्म-निष्ठा, आत्म-श्रद्धा तथा आत्म-विश्वास को आस्तिक्य कहा जाता है। मै चेतन हूँ, जड नही। मै ज्ञानस्वरूप हूँ, पुद्गल नही। मैं नित्य हूँ, मै शाश्वत हूँ, एवं मै चिन्मय हूँ—इस प्रकार के विश्वास को आस्तिकता कहते है। जो आत्मवादी होगा, वह कर्म-वादी, तथा परलोकवादी भी अवश्य ही होगा।

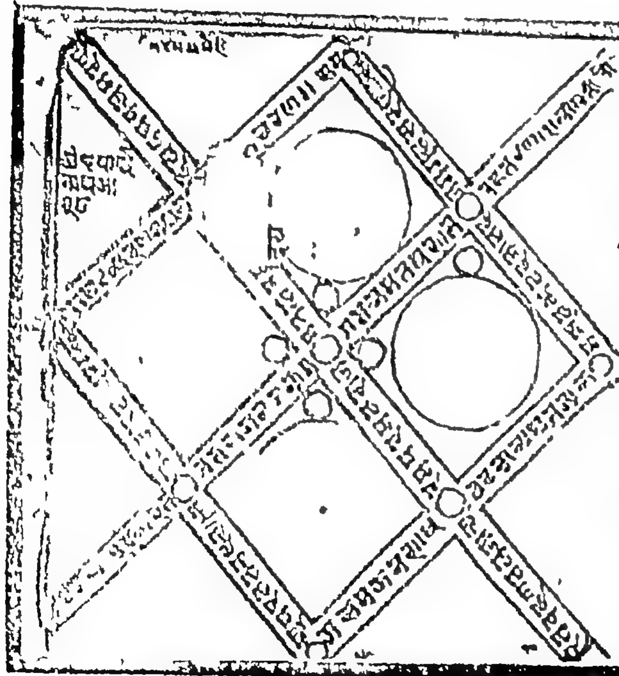
इस प्रकार प्रशम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, और आस्तिक्य—ये पांच लक्षण सम्यग्दृष्टि के है। ये सद्गुण सम्यग्दृष्टि में अवश्य होने चाहिए। उक्त गुणो की अभिव्यक्ति से सम्यग्दृष्टि की पहचान हो जाती है।

सम्यक्त्व के दूषण—सम्यग्दृष्टि साधक समयक्त्व की रक्षा के लिए सतत जागरूक रहता है। जागृति, साधक जीवन का लक्षण है। सम्यक्त्व एक व्रत है। उसको शुद्ध निर्मल और पवित्र रखना—यह साधक का परम कर्तव्य है। शास्त्र में सम्यक्त्व के पांच अतिचार— पांच दोष बताए गए है। शका,

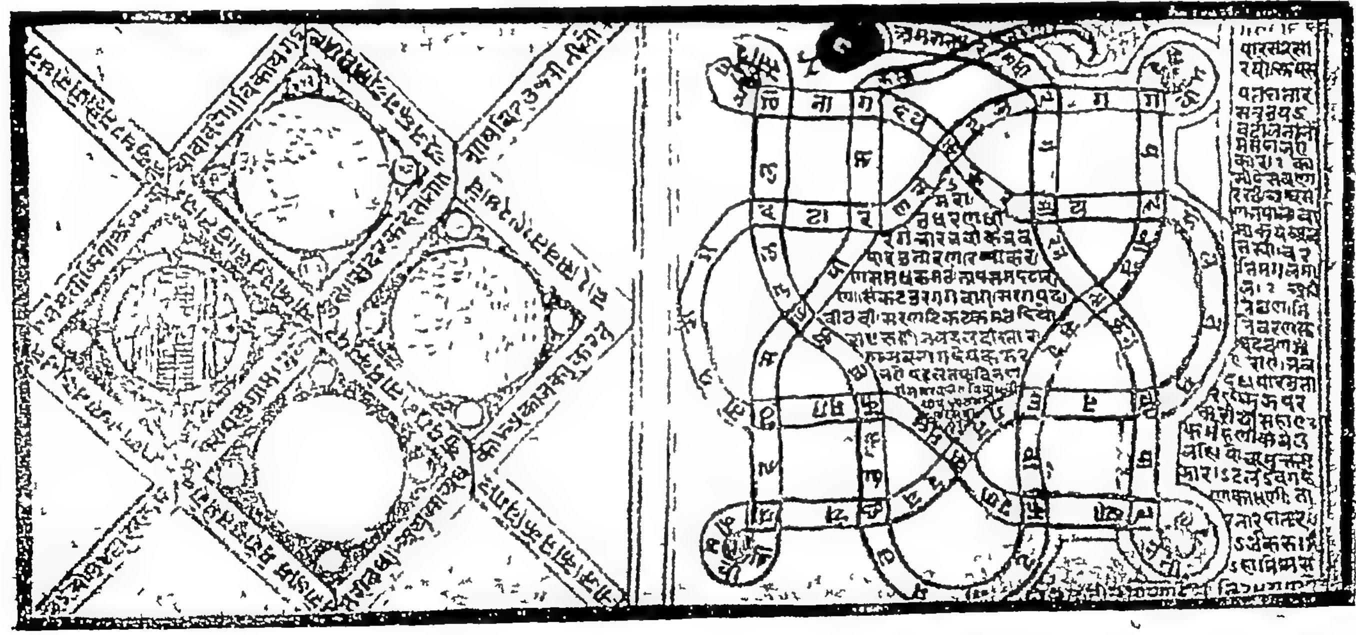
काक्षा, विचिकित्सा, परपाखण्डस्तव, और परपाखण्ड–परिचय । उक्त दोषो के सेवन न करने से सम्यक्त्व गुण निर्मल रहता है। सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए साधन एवं साधना में सशय करना––शका है। साधना करने से परलोक में सुख मिलेगे। यह भोगाभिलाषा, काक्षा। मेरी साधना का जप तप का, मुझे कोई फल मिलेगा या नही––इस प्रकार के सदेह को–फल सदेह को विचिकित्सा कहते है। धर्म–विहीन एव शिथिल आचारवाले व्यक्ति की संगति करना, प्रशसा करना, एव परिचय करना–– परपा[illegible]जता तथा परपाखण्ड परिचय कहाता है। इन्द्रिय-जन्य सुख पराश्रित होने से '[illegible]' क[illegible]ाते है, उन सुखो की आकाक्षा लेकर व्रत–साधना करनेवाले व्यक्ति को "पर पाखण्डी" कहा जाता हैं। पाखण्ड शब्द का अर्थ 'व्रत' भी किया जाता है। पर पाखण्ड इन्द्रियजन्य सुखो तक ही सीमित रहने-वाला,––मिथ्या दृष्टि है अत उसका स्तव एवं परिचय पतन का कारण होता है।

महतो महीयान् सत्य की साधना सब से बडो साधना है, वह "महतो महीयान्" है। सत्य पथ पर चलनेवाला मृत्यु को भी जीत लेता है, वह आत्मा से परमात्मा बन जाता हैं। सत्य की पूर्णता का नाम ही तो भगवान् है। सम्य-क्त्व साधना में सफल व्यक्ति ही व्रत–साधना करके अजर-अमर एव शाश्वतसिद्धि पद को प्राप्त करने में समर्थ होता है। सत्य अनन्त है, व्यक्ति सीमित है। परन्तु जब व्यक्ति सीमाओ को, क्षुद्रताओ को पार करके ससीम से असीम बन जाता है, तब उसका सत्य भी अनन्त हो जाता है। अनन्त में ही अनन्त गुण की अभि-व्यक्ति हो सकती है, उस अनन्त सत्य को नमस्कार है, उस अनन्त सत्य के साधक सम्यक्त्वी को नमस्कार है।





समुद्रबन्ध काव्य विवेचन पृष्ठ १८६



विवेचन पृष्ठ १८४ समुद्रबन्ध एव नागपाशबन्ध काव्य विवेचन पृष्ठ १८५

~ अन्तर का आलोक ~

मन्त्री मुनि, पंडित प्रवर श्रद्धेय श्री पुष्कर मुनिजी म०



जीव यद्यपि अनन्त गुणो की वहुमूल्य समृद्धि से परिपूर्ण है, तथापि उसमें चेतना समृद्धि ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, चेतना की अनिर्वचनीय चिनगारी से प्रस्फुटित ज्ञानालोक पर ही अन्तर्जगत् और वहिर्जगत् के अस्तित्व की अनुभूति अवलम्बित है।

दिवाकर की प्रखर रश्मियाँ जव अस्ताचल के अंक में विलीन होकर विश्रांति करती है और यह जगत् सघन अन्धकार के कृष्णवर्ण आवरण में अन्तर्हित हो जाता है तो प्रतीत होता है, मानो एक प्रकार की सर्वव्यापी शून्यता ने अखिल लोक को निगल लिया है। अशेप नि शेप में समागया है। सर्वत्र नीरवता, जड़ता सुषुप्ति और अनस्तित्व का एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित हो जाता है।

किन्तु वही दिवाकर जव उदयाचल की ओट में उस शून्यता—अपनी करामत का अवलोकन करने के लिए झाकता है तो जगत् में जागृति के प्राणो का अभिनव स्पन्दन हो उठता है। सूर्य की स्वर्णरश्मियो का संसर्ग पाकर सृष्टि पुन प्रकाशमान हो उठती है, उसकी विविधता जैसे लौट आई हो।

यह उस प्रकाश का महत्त्व है जिसे हम बाह्य, जड या पौद्गलिक कहते है। इस प्रकाश के प्रकाश में देखने पर शायद आन्तरिक आत्मिक प्रकाश की महिमा का [illegible]ञ्चित् आकलन किया जा सकता है। ज्ञान के आलोक में ही हम अपने एवं वा[illegible] के अस्तित्व को पहचान पाते है। ज्ञान है तो सब कुछ है, नही है [illegible] भी नही है।

ज्ञान ज्ञेय का सम्बन्ध—

इस कथन का आशय यह न समझिए कि ज्ञेय की सत्ता ज्ञान पर निर्भर [illegible] ज्ञेय अपने स्वरूप में और ज्ञान अपने स्वरूप में स्थित है। एक की सत्ता [illegible] पर अवलम्बित नही है। निवड अन्धकार की स्थिति मे भी पदार्थराशि का [illegible]भाव नही हो जाता। नेत्रहीन पुरुष भले पदार्थों का अवलोकन न कर सके,

तथापि उनका अस्तित्व तो अक्षुण्ण ही है। हम न जाने या अन्यथा जानें, पदार्थ अपने स्वरूप में अवस्थित और अचल ही रहता है। तथापि पदार्थ की अभिव्यक्ति एवं अनुभूति ज्ञान के ही अधीन है। हमें प्रत्येक पदार्थ की सत्ता का आभास-प्रतिभास ज्ञान के विना नही होता। ज्ञान के अभाव में वस्तु की सत्ता, असत्ता से अधिक मूल्य नही रखती।

ज्ञान ज्ञाता का सम्बन्ध --

ज्ञान ही जड़ और जीव की विभाजक रेखा है, इसी कारण ऋषि कहते हैं, "जीवो उवओगमओ" अर्थात् जीव उपयोगमय है। ज्ञान-दर्शन स्वरूप है। ज्ञान गुण की बदौलत ही आत्मा इतर द्रव्यों से भिन्न है। आत्मा ज्ञाता है, इतर द्रव्य ज्ञेय हैं।

आत्मा और ज्ञान मे गुण-गुणी सम्बन्ध है। गुणी आत्मा और गुण ज्ञान है, किन्तु जैन दर्शन कणाद की तरह गुण-गुणी मे एकान्त पार्थक्य स्वीकार नहीं करता। और न एकान्त अभेद ही। एकान्त पार्थक्य मानने पर दोनो का सम्बन्ध घटित नही होता, और एकान्त अभेद मानने से दोनों मे से किसी एक की ही सत्ता रह सकती है। गुणी माना जाय या गुण ही। मगर ऐसा मानने में ही समस्या का समाधान नही होता। जगत् मे गुण के अभाव में गुणी का और गुणी के अभाव में गुण का अस्तित्व नही देखा जाता।

विस्मय का विषय है कि कपिल जैसे दार्शनिक ज्ञान (बुद्धि) को जड़ प्रकृति का कार्य मानते है। उनकी यह मान्यता आत्मा के अस्तित्व का अपलाप करनेवाले चार्वाक दर्शन से मेल खाती है। चार्वाक चार भूतो के अतिरिक्त आत्म तत्त्व को स्वीकार नही करता किन्तु स्वसंवेदनसिद्ध चैतन्य से कैसे इन्कार किया जा सकता है? इस कारण चैतन्य को भूत मानने के लिए विवश है। मगर कपिल के सामने यह लाचारी नही थी। उन्होंने प्रकृति (जडतत्त्व) से सर्वथा पृथक् पुरुष (आत्मा) तत्त्व स्वीकार किया है। फिर बुद्धि को पुरुष का धर्म न मानकर प्रकृति का कार्य स्वीकार करने का क्या रहस्य हो सकता है? संभवत [illegible] की कूटस्थ नित्यता की रक्षा करने के लिए ही उन्हे इस प्रकार की तर्क अनुभव से विरुद्ध कल्पना करनी पडी है।

कुछ भी हो, निश्चित है कि ज्ञान न तो आत्मा से सर्वथा भिन्न या सर्वथा अभिन्न है और न जड का धर्म या कार्य है। उसका आत्मा के साथ गुण-गुणी

तथापि उनका अस्तित्व तो अक्षुण्ण ही है। हम न जाने या अन्यथा जाने, पदार्थ अपने स्वरूप में अवस्थित और अचल ही रहता है। तथापि पदार्थ की अभिव्यक्ति एवं अनुभूति ज्ञान के ही अधीन है। हमें प्रत्येक पदार्थ की सत्ता का आभास-प्रतिभास ज्ञान के विना नही होता। ज्ञान के अभाव में वस्तु की सत्ता, असत्ता से अधिक मूल्य नही रखती।

ज्ञान ज्ञाता का सम्बन्ध--

ज्ञान ही जड़ और जीव की विभाजक रेखा है, इसी कारण ऋषि कहते है, "जीवो उवओगमओ" अर्थात् जीव उपयोगमय है। ज्ञान-दर्शन स्वरूप है। ज्ञान गुण की बदौलत ही आत्मा इतर द्रव्यो से भिन्न है। आत्मा ज्ञाता है, इतर द्रव्य ज्ञेय है।

आत्मा और ज्ञान में गुण-गुणी सम्बन्ध है। गुणी आत्मा और गुण ज्ञान है, किन्तु जैन दर्शन कणाद की तरह गुण-गुणी में एकान्त पार्थक्य स्वीकार नही करता। और न एकान्त अभेद ही। एकान्त पार्थक्य मानने पर दोनो का सम्बन्ध घटित नही होता, और एकान्त अभेद मानने से दोनो में से किसी एक की ही सत्ता रह सकती है। गुणी माना जाय या गुण ही। मगर ऐसा मानने में ही समस्या का समाधान नही होता। जगत् में गुण के अभाव में गुणी का और गुणी के अभाव में गुण का अस्तित्व नही देखा जाता।

च	हु	या	म	कु	थु	ना	थ	जि	न	क	ह्यो	ध	र	म	सु	ध	रा
श्र	ण	त	गु	णा	ग	र	हो	तु	मी	श्र	र	ज	म्मो	रि	हे	स्वा	मे
च	र	ण	न	मु	म	ल्लि	जी	तु	र्य	ता	न्या	छे	हु	मं	त	री	:
श्र	र	ण	मो	सु	नि	सु	व्र	त	को	न	म	त	सु	मं	ग	ल	म
न	मि	ज	ग	नु	त्त	म	सं	त	हे	न	म	त	हे	स	क	ल	सु
ने	मि	सु	व	र	दो	शि	व	व	सु	लु	म	क्षि	ति	मं	ग	ल	सु
पा	र्श्व	ज्झा	ण	श्र	ट	ल	उ	त	म	पा	र	स	ति	का	क	हा	त
द	या	व	सी	द	र	ब	भा	नु	म	ल	गा	त	स	त	श्रा	दे	श
मो	ह	ण	त	भ	गे	चा	र	ग	श्य	जि	के	क	र्म	क	ला	र	ज
नि	रं	ज	ण	वी	त	रा	ग	नी	त	स	र	व	ज्ञा	न	स	म	द
ग	णि	व	र	मो	टा	गु	ण	द्र	से	क्रि	या	भ	ली	नि	र	म	ल
ज्ञा	न	वि	लो	क	न	जा	स	के	दे	श्र	व	र	न	वे	ह्रीं	श्रं	ग
छे	का	ए	न	र	क्ष	क	स	दा	ठा	ण	त	शु	द्ध	गु	ण	सो	य
व	स	त	जा	णे	सो	ज्ञा	न	वी	त	ख	ट	द्र	व्य	को	सु	प्र	मा
द	र	व	भा	व	जि	न	जे	क	ह्या	स	र	व	स	र	धे	प्र	म
तृ	ती	य	सा	ध	न	च	र	ण	को	भ	हा	व्र	त	पा	च	ग	हं
श्र	ष्टा	द	श	हू	दो	ष	च	त	मो	ह	न	शि	व	शि	व	रू	प
ज	न्म	सु	धा	र	ण	पं	थ	शु	द्ध	का	न	स	द्ध	सु	ण	प	मं
जै	न	ध	र्म	ए	सो	श्र	व	र	न	ह्रीं	रं	च	सु	ख	ठौ	र	ण

सवैया।—प्रथम समचे पांछे तीर्थंकर चोवीश पच नोंकारज्ञा
तिनमे नवकार मंत्र तीन भांत गहिये,॥ भक्तामर काव्य एव
प्रगट संमत साल मास पक्ष तिथि सेती केतहै तिलोक रिख यं

प्रातःस्मरणीय परमोपकारी मुनिश्री श्री१००८ श्रीरत्नऋषिजी म
चांदमलजी सोभाचंदजी बोरा पीपलावालोंने यह काव्य प्रकाशित क

है। जब बाह्य ज्ञान की इतनी क्षमता है तो आध्यात्मिक ज्ञान की क्षमता की समता कहाँ मिल सकती है? अतएव कवि ने यथार्थ ही कहा है—

ज्ञानं न किं किं कुरुते नराणाम्?

बाह्य-आन्तरिक प्रकाश—

ज्ञान अन्धकार को नष्ट करके चेतनमय प्रकाश की प्रभास्वर रश्मियाँ विकीर्ण करता है।

सूर्य और चन्द्र प्रकाश के पुञ्ज माने जाते हैं, प्रदीप भी प्रकाश प्रदान करता है। विद्युत् का प्रकाश भी अन्धकार का विनाशक है। परन्तु इस पुद्गलमय प्रकाश में और ज्ञान-प्रकाश में महद् अन्तर है।

नयनहीन मानव को सूर्य, चन्द्र विद्युत् बल्ब और सहस्त्रो प्रदीप भी मिलकर प्रकाश नही दे सकते, क्योकि उसे अपना चेतनमय प्रकाश प्राप्त नही है। अतएव स्पष्ट है कि पौद्गलिक प्रकाश आत्मिक प्रकाश के अभाव में निरुपयोगी है, पंगु है।

पुद्गलमय प्रकाश रूपवान् होने के कारण रूपवान् वस्तुओ को ही प्रकाशित कर सकता है। मगर सब रूपवान् भी उसके दायरे मे नही आते। इस लोकाकाश के प्रदेश-प्रदेश में अवगाढ़ अनन्त, अनन्त परमाणु और बहुत से स्कध (परमाणु पिण्ड) भी ऐसे है, जिन तक पुद्गलमय प्रकाश की पहुँच नही है। इसके अतिरिक्त जगत् केवल पुद्गलो का ही प्रचय तो नही है। छह द्रव्यो में से पुद्गल एक है और पाँच द्रव्य उससे भिन्न है, जिनमें न रूप है, न रस है, न गन्ध है न स्पर्श है। यह अरूपी द्रव्य आशिक रूप से भी पौद्गलिक प्रकाश का गोचर नही है।

पौद्गलिक प्रकाश परावलम्बी और ससीम होने के साथ-साथ अस्थायी भी है। सूर्य सदा उदित नही रहता। चन्द्रमा की भी यही गति है। अन्यान्य प्रकाश भी इसी प्रकार के है, किन्तु ज्ञान प्रकाश की बात निराली है, वह न परावलम्बी है न उसकी कोई निर्धारित सीमा है। जब वह अपने शुद्ध स्वरूप में अभिव्यक्त होता है तो विश्व की समस्त भावराशि भले वह स्थूल हो या सूक्ष्म, रूपी हो अथवा अरूपी, जड हो या चेतन, उसके द्वारा पूर्णरूपेण आलोकित हो उठती है।

जीव के समस्त दु खो का मूल विषमभाव है। विषमभाव से आत्मा की शमपरिणति भग्न हो जाती है और कषाय का दावानल सुलग उठता है किन्तु प्रश्न यह है कि विषमभाव का उद्गमस्थल क्या है? गंभीरतापूर्वक विचार

करनेपर ज्ञात होगा कि मूढ़ता ही विषमभाव की जननी है। जब मूढता का अन्त और ज्ञान का उन्मेष होता है तो वस्तुस्वरूप को यथावस्थित रूप में समझना सभव हो जाता है और तब विषमभाव की भी इति हो जाती है। अतएव कहा गया है कि ज्ञान शमभाव को जागृत करता है, और क्रोधादि कषायो का उन्मूलन कर देता है।

धर्म की आराधना का मूल आधार ज्ञान ही है। शास्त्र कहता है.—

अन्नाणी किं काही
किं वा नाहोइ छेयपावग ॥

अज्ञान के तामस आवरण से आवृत बेचारा अज्ञानी पुण्य-पाप के पार्थक्य ज्ञान से भी अनभिज्ञ रहता है। वह पाप से पृथक् रहकर किस प्रकार पुण्य आचरण कर सकता है?

अमावास्या की निबड अन्धकारमयी रजनी में अरण्य में विचरण करनेवाला पथिक भटक जाता है। कुमार्ग पकडकर किसी गहरे गर्त में गिरता है, या ठोकरे खाता है या कटीली झाडियो में उलझ जाता है। कभी-कभी वह ऐसी राह पकड लेता है जो उसे मजिल तक पहुँचाने के बदले और अधिक दूरी पर ले जाती है। अज्ञानी मनुष्य की धर्माराधना की भी ऐसी ही स्थिति होती है।

कभी कभी अज्ञानी जीव भी कठिन तपश्चर्या करता है, देह-दमन करता है, मास-मास का उपवास करके काया को कृशतर कर लेता है, पचाग्नि तप कर विकारो को भस्म करने की धारणा करता है, परन्तु हन्त! उसका प्रयास ज्ञान के अभाव मे निरर्थक ही सिद्ध होता है। यही नही, अग्निकाय का घोर आरभ और कन्दमूलादि का भक्षण जैसी क्रियाएँ उसे विपरीत ही दिशा मे ले जाती है। जिसे आत्मा-अनात्मा का विवेक नही, आश्रव-सवर की पहचान नही, बन्ध—निर्जरा का भान नही, उसकी साधना का पथ यदि विपरीत दिशागामी हो तो आश्चर्य ही क्या?

श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञान—अज्ञान का अन्तर समझाते हुए कहा है.—

जे आसवा ते परिस्सवा
जे परिस्सवा ते आसवा ॥

आचाराग।

थोडे से शब्दो में कितना विशाल आशय भर दिया गया है! इसी को कहते है— गागर में सागर भर देना।

बहुत बार अज्ञ और विज्ञ पुरुष की बाह्य क्रियाएँ ऊपर-ऊपर से समान दृष्टि-गोचर होती है। परन्तु उनके आन्तरिक रूप और विपाक में आकाश-पाताल से कम अन्तर नही होता। अज्ञ पुरुष कर्मक्षयकारी क्रियाओ को भी कर्मबन्ध का हेतु बना लेता है, जब कि ज्ञानी-पुरुष कर्मबन्ध के कारणो को कर्मक्षय का कारण बना लेता है। निष्कर्ष स्पष्ट है--ज्ञान ही निश्रेयस् के पथ के पथिक के लिए प्रदीपालोक है और ज्ञान ही कल्मष की तिमिर-कालिमा को दूर कर सकता है। अतएव प्रत्येक मुमुक्षु के लिए अनिवार्य है कि जब वह साधना की बीहड़ पग डंडी पर प्रस्थान करने को प्रस्तुत हो तो ज्ञान की मशाल अपने साथ रक्खे।

ज्ञान और सुख--

यद्यपि ज्ञान और सुख पृथक् आत्म-धर्म गिने गये है, तथापि दोनो में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। ज्ञान की कृतार्थता सुख की सम्प्राप्ति मे है और सुख संवेदना से शून्य नही हो सकता। जड़ पदार्थ ज्ञान-शून्य होने के कारण सुख से भी रहित है। सासारिक सुख सातावेदन और दुःख असातावेदन कहलाता है। इसका आशय यह है कि हमारे सुख-दुख एक विशिष्ट प्रकार की वेदना-अनुभूति ही है। ज्ञान और सुख का सम्बन्ध प्रकट करते हुए किसी सन्त ने कहा है--

"ज्ञान सुखो की खान"

मगर एक प्रश्न सामने आता है। एक व्यक्ति आनन्द के साथ अपना काल-यापन कर रहा है। उसे समस्त सुख-सामग्री प्राप्त है। उसके हृदय में किसी प्रकार का शल्य नही है। परदेश में पेढी है विपुल आय है। विनीत परिवार है। अकस्मात् परदेश में स्थित उसके पुत्र के हृदय की गति बन्द हो जाती है और उसका प्राणान्त हो जाता है। डाक-तार कर्मचारियो की हडताल के कारण अव्य-वस्था होने से पांच दिन बाद उस व्यक्ति को अपने पुत्र की मृत्यु का पता चलता है।

जब तक उसे पुत्र की मृत्यु का ज्ञान नही था, वह सुख-चैन में था। ज्ञान होते ही उसका समग्र सुख, सहस्त्रगुणित दुख के रूप मे परिणत हो गया। ऐसी स्थिति में ज्ञान को सुख की खान समझा जाय, या दुख की खान?

अज्ञानवादी इसी प्रकार के तर्क उपस्थित करके ज्ञान की हेयता और अज्ञान की उपादेयता सिद्ध करने का प्रयास करते है। उनके मन्तव्य के अनुसार अज्ञान

ही श्रेयस्कर है। जिन जड़ पदार्थों में लेशमात्र भी ज्ञान नही है वे सब प्रकार की दुःखानुभूति से बचे हुए हैं, उन्हे न चिन्ता है, न शोक है, न खेद है, न उद्वेग है, अपने स्वभाव में मस्त है। किन्तु अज्ञानवादी की यह तर्क वस्तुत अज्ञानप्रसूत ही है।

एक व्यक्ति की मृत्यु का विभिन्न लोगो पर अलग-अलग असर होता है। गाँधीजी ने भारतवर्ष के लिए क्या नही किया? स्वदेश की स्वाधीनता के लिए अपने सुखो का बलिदान किया। घोर से घोर यातनाएँ सहन की। उनकी समस्त शक्तियाँ स्वदेशवासियो के हित के निमित्त ही समर्पित रही। उनके मारे जाने का समाचार फैलते ही न केवल भारतवर्ष, वरन् ससार भर के विचारशील लोग शोक-सागर में निमग्न हो गये। परन्तु तब भी गोडसे जैसी विचारधारा के लोगो ने घी के दिये जलाए।

इन परस्पर विरुद्ध दिशागामी प्रभावो के रहस्य का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी घटना मनुष्यो की विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियों के कारण ही भिन्न-भिन्न प्रकार के असर पैदा करती है। घटना अपने आपमें कोई प्रभाव नही रखती। ऐसा होता तो एक घटना का प्रभाव सभी पर एक-सा होता। पुत्र की मृत्यु का समाचार ज्ञात करके पिता को जो असीम दुःख-वेदना होती है, उसका प्रधान कारण, उसकी पुत्र के प्रति रागात्मक मनोवृत्ति है।

ससार मे प्रतिदिन सहस्त्रो मानव काल की विकराल दाढो में पिस रहे हैं। कौन किसके लिए मातम मनाने बैठता है। मगर जिसका जिसके प्रति अनुराग-मोह है, वही उसके लिए शोक का अनुभव करता है। अतएव स्पष्ट है कि दुःख और शोक मोहजनित है, ज्ञानजनित नही।

ज्ञान और भय—

भय के सम्बन्ध में भी यही समझना चाहिए। जब तक बगल में बैठे सर्प का पता नही चलता, मनुष्य निर्भय रहता है। पता चलते ही वह भय के कारण काँप उठता है और भागना सभव हो तो भाग खडा होता है, किन्तु इस प्रकार की भीति के अन्तस्थल में भी प्राणो का मोह ही छिपा है। मनुष्य चिडियाघर में जाकर भयंकर से भयकर नाग को देखता है, कई बार उसके साथ छेड-छाड़ भी करता है, मगर मन ही मन जानता है कि यह मुझे डंस नही सकता, अतः भयभीत नही होता। नाग का ज्ञान ही यदि भय का कारण होता तो चिडियाघर के पीजरे में बन्द नाग का ज्ञान भी भय उत्पन्न करता।

बहुत बार अज्ञ और विज्ञ पुरुष की बाह्य क्रियाएँ ऊपर-ऊपर से समान दृष्टि-गोचर होती हैं। परन्तु उनके आन्तरिक रूप और विपाक में आकाश-पाताल से कम अन्तर नही होता। अज्ञ पुरुष कर्मक्षयकारी क्रियाओ को भी कर्मबन्ध का हेतु बना लेता है, जब कि ज्ञानी-पुरुष कर्मबन्ध के कारणो को कर्मक्षय का कारण बना लेता है। निष्कर्ष स्पष्ट है—ज्ञान ही निश्रेयस् के पथ के पथिक के लिए प्रदीपालोक है और ज्ञान ही कल्मष की तिमिर-कालिमा को दूर कर सकता है। अतएव प्रत्येक मुमुक्षु के लिए अनिवार्य है कि जब वह साधना की बीहड़ पग डंडी पर प्रस्थान करने को प्रस्तुत हो तो ज्ञान की मशाल अपने साथ रक्खे।

ज्ञान और सुख—

यद्यपि ज्ञान और सुख पृथक् आत्म–धर्म गिने गये हैं, तथापि दोनों में अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। ज्ञान की कृतार्थता सुख की सम्प्राप्ति में है और सुख संवेदना से शून्य नही हो सकता। जड़ पदार्थ ज्ञान–शून्य होने के कारण सुख से भी रहित है। सासारिक सुख सातावेदन और दुःख असातावेदन कहलाता है। इसका आशय यह है कि हमारे सुख–दुःख एक विशिष्ट प्रकार की वेदना–अनुभूति ही है। ज्ञान और सुख का सम्बन्ध प्रकट करते हुए किसी सन्त ने कहा है—

"ज्ञान सुखो की खान"

मगर एक प्रश्न सामने आता है। एक व्यक्ति आनन्द के साथ अपना काल-यापन कर रहा है। उसे समस्त सुख-सामग्री प्राप्त है। उसके हृदय में किसी प्रकार का शल्य नही है। परदेश में पेढी है विपुल आय है। विनीत परिवार है। अकस्मात् परदेश मे स्थित उसके पुत्र के हृदय की गति बन्द हो जाती है और उसका प्राणान्त हो जाता है। डाक-तार कर्मचारियो की हड़ताल के कारण अव्य-वस्था होने से पांच दिन बाद उस व्यक्ति को अपने पुत्र की मृत्यु का पता चलता है।

जब तक उसे पुत्र की मृत्यु का ज्ञान नही था, वह सुख-चैन में था। ज्ञान होते ही उसका समग्र सुख, सहस्त्रगुणित दुःख के रूप में परिणत हो गया। ऐसी स्थिति में ज्ञान को सुख की खान समझा जाय, या दुःख की खान ?

अज्ञानवादी इसी प्रकार के तर्क उपस्थित करके ज्ञान की हेयता और अज्ञान की उपादेयता सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। उनके मन्तव्य के अनुसार अज्ञान

ही श्रेयस्कर है। जिन जड़ पदार्थों में लेशमात्र भी ज्ञान नही है वे सब प्रकार की दुःखानुभूति से बचे हुए हैं, उन्हें न चिन्ता है, न शोक है, न खेद है, न उद्वेग है, अपने स्वभाव में मग्न हैं। किन्तु अज्ञानवादी की यह तर्क वस्तुतः अज्ञानप्रसूत ही है।

एक व्यक्ति की मृत्यु का विभिन्न लोगो पर अलग-अलग असर होता है। गांधीजी ने भारतवर्ष के लिए क्या नही किया? स्वदेश की स्वाधीनता के लिए अपने सुखो का बलिदान किया। जेल में घोर यातनाएँ सहन की। उनकी समस्त शक्तियाँ स्वदेशवासियों के हित के निमित्त ही समर्पित रही। उनके मारे जाने का समाचार फैलते ही न केवल भारतवर्ष, वरन् संसार भर के विचारशील लोग शोक-सागर में निमग्न हो गये। परन्तु तब भी गोडसे जैसी विचारधारा के लोगों ने घी के दिये जलाए।

इन परस्पर विरुद्ध दिशागामी प्रभावों के रहस्य का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी घटना मनुष्यों की विभिन्न प्रकार की मनोवृत्तियो के कारण ही भिन्न-भिन्न प्रकार के असर पैदा करती है। घटना अपने आपमें कोई प्रभाव नही रखती। ऐसा होता तो एक घटना का प्रभाव सभी पर एक सा होता। पुत्र की मृत्यु का समाचार ज्ञात करके पिता को जो असीम दुःख-वेदना होती है, उसका प्रधान कारण, उसकी पुत्र के प्रति रागात्मक मनोवृत्ति है।

संसार में प्रतिदिन सहस्रों मानव काल की विकराल दाढो मे पिस रहे है। कौन किसके लिए मातम मनाने बैठता है। मगर जिसका जिसके प्रति अनुराग-मोह है, वही उसके लिए शोक का अनुभव करता है। अतएव स्पष्ट है कि दुःख और शोक मोहजनित है, ज्ञानजनित नही।

ज्ञान और भय--

भय के सम्बन्ध में भी यही समझना चाहिए। जब तक बगल में बैठे सर्प का पता नही चलता, मनुष्य निर्भय रहता है। पता चलते ही वह भय के कारण कांप उठता है और भागना सभव हो तो भाग खडा होता है, किन्तु इस प्रकार की भीति के अन्तस्थल में भी प्राणो का मोह ही छिपा है। मनुष्य चिडियाघर में जाकर भयकर से भयकर नाग को देखता है, कई बार उसके साथ छेड-छाड भी करता है, मगर मन ही मन जानता है कि यह मुझे डंस नही सकता, अतः भयभीत नही होता। नाग का ज्ञान ही यदि भय का कारण होता तो चिडियाघर के पीजरे में बन्द नाग का ज्ञान भी भय उत्पन्न करता।

अभिप्राय यह है कि ज्ञान दुःख और भय का जनक नही। यही नही वह आनन्द और निर्भयता का अखण्ड स्रोत भी है। जब तक बालक की इन्द्रियो का विकास नही होता वह अबोध रहता है, तब तक माता की गोदी से अलग होते ही डरता और रोता है किन्तु ज्यो-ज्यो उसके ज्ञान का विकास होता जाता है उसमें निर्भीकता आती जाती है। ज्ञान का परमप्रकर्ष होने पर तो मनुष्य में ऐसी निर्भयता आ जाती है कि विकराल से विकराल राक्षस भी उसे भयभीत नही कर सकता। इस सत्य को समझने के लिए हमें अतीत की ओर झांकना चाहिए। गजसुकुमार जैसे अगणित सन्त और कामदेव तथा अर्हन्नक जैसे श्रमणोपासक इस सचाई के मूर्तिमान प्रमाण हैं।

ज्ञान के प्रकाश में शोक, दुःख और भय जैसी वृत्तियो के लिए कोई अवकाश नही। ये वृत्तियां अज्ञान से ही प्रसूत होती है। व्यासजी ने ठीक ही कहा है—

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य मुच्यते महतो भयात।

भागवत, वनपर्व।

प्रज्ञा के प्रासाद पर आरूढ होकर ही मनुष्य भय से छुटकारा पा सकता है।

भय एक प्रकार का मानसिक रोग है। ज्ञान ही इस रोग की सर्वोत्तम दवा है। भारत के प्राचीन राजनीतिज्ञ कौटिल्य का कहना है—

"न ससारभय ज्ञानवताम्"

ज्ञान के प्रखर प्रकाश में विचरण करनेवाले पुरुषो के पास सासारिक भीति नही फटक सकती। क्योकि कहा है —

विज्ञानदीपेन संसारभयं निवर्त्तते।

अर्थात्—ज्ञान के प्रदीप का प्रकाश फैलते ही भय का अन्धकार दूर हो जाता है।

अतीत के उदाहरणो तथा विद्वानो की साक्षियो के रोशनी में यदि हम अपनी बुद्धि से विचार करे तो स्पष्ट हो जायेगा कि दुःख, शोक, सताप और भय को जीतने के लिए ज्ञान ही सर्वोत्तम साधन है।



अपरिग्रह

पं. मुनि श्री. मिश्रीमलजी महाराज मधुकर

अपरिग्रह धर्म है। अध्यात्म जीवन की प्रगतिका एक राजमार्ग है। भगवान् महावीर के धर्म में जो स्थान अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य को मिला है, वही स्थान वहाँ अपरिग्रहको भी मिला है।

एक दृष्टिसे देखा जाय तो महाव्रतो में सर्वत उच्च स्थान अपरिग्रहको ही मिलना चाहिये, क्यो कि अपरिग्रहके बल पर ही जीवनमें अहिंसा, सत्य अस्तेय आदिका अधिक से अधिक प्रसार होता है।

'मेत्ती मे सव्व-भूएसु' यह एक ससार का बहुत बडा सिद्धान्त है। इस सिद्धात को जीवनमें उतारनेकी प्रेरणा अपरिग्रहसे ही मिलती है।

ममता परिग्रह है। ममतामे मुक्ति असभव है। इच्छा के बढनेपर ममता बढती है और इच्छा का निरोध करनेपर समता से मुक्ति मिलती है।

ससारके सभी प्राणी सुख चाहते है। उनकी कल्पना में सुख भौतिक पदार्थो मे है, अत वे उनका सचय करने में रात दिन एक कर देते है। जैसे जैसे लाभ होता जाता है वैसे वैसे उनकी तृष्णा बढती जाती है। 'जहा लाहो तहा लोहो' यह एक अपना सिद्धात है।

अगणित पदार्थो का उपभोग करने पर भी उनकी भोग-तृष्णा शात नहीं होती। वे उस उपभोगमे अतृप्तिका ही अनुभव करते है। फिर भी वे उनका संचय करने मे अहर्निश लगे ही रहते है।

उन्हे सोचना चाहिये कि इन भौतिक पदार्थों का उपभोग करते करते अनन्त-अनन्त जीवन बीत जाने पर भी क्या कभी किसी को कही सुख मिला है? सुख के अभिलाषियो को समझ लेना चाहिये कि सुख भोग में नही, सुख तृष्णा में नहीं, सुख तो इच्छा के निरोध में है।

अपरिग्रह महाव्रत भी है और अणुव्रत भी। इच्छा-निरोध महाव्रत है और इच्छा-परिमाण अणुव्रत।

साधना के दो मार्ग है–महाव्रत और अणुव्रत। अपनी अपनी क्षमता के अनुसार साधक दोनो मे से किसी एक मार्ग को चुन सकता है।

वह अर्जन–उपार्जन करता है, परतु अपनी मर्यादा के अदर रहकर । वह अर्थ का सचय भी करता है, परतु 'वित्तेण ताण न लभे' इस सिद्धात को अपने हृदय में रख कर।

ऐसा आदमी कभी किसी का शोषण नही करता । वह किसीका ग्रास नही छीनता है, प्रत्युत आवश्यकता पड़ने पर अपना ग्रास भी दूसरे को दे देता है । वह किसी को आश्रयहीन नही करता, परन्तु स्वय आश्रय–दाता बनकर धर्म, समाज व राष्ट्र की सेवा करता है ।

जैन संघ मे श्रावक–श्राविकाओ का वर्ग इच्छा–परिमाण व्रत का अधि–कारी माना जाता है ।

परिग्रह पाप है, महापाप है । ससारके समग्र पापो की जड़ यह परिग्रह ही है ।

संग्रह, संचय, तृष्णा, लोभ लिप्सा आदि परिग्रह के ही नामातर है।

परिग्रहके तीन केंद्र है, भूमि भूषण और रमणी ।

आज तक संसारमें जितने युद्ध हुए–हत्याएँ हुई, विध्वस हुआ, विप्लव व हा-हाकार मचा, वे सब परिग्रहके इन केंद्रो में ही तो हुए हैं ।

आज जो भी रिश्वत, चोर-बाजारी नियत–खोटी आदि अवाछनीय प्रवृत्तियाँ यत्र तत्र सर्वत्र चल रही है, उन सबका मूल कारण यह सग्रहकी भावना ही है ।

संसारकी इन विभीषिकाओका अत अपरिग्रहवृत्ति के अभ्यास से ही हो सकता है।

परिग्रह से अपरिग्रह में जाना एक सस्कृति है । इससे आत्मीयता बढ़ती है, एक दूसरेके प्रति बन्धुता के भाव जागृत होते है ।

जिस दिन जन–जन के मानस में अपरिग्रह की भावना, तरंगित होगी उसी दिन विश्व-शातिकी योजना सफल हो सकेगी ।



हाँ, इतना अवश्य है कि साधक चाहे महाव्रती हो या अणुव्रती, दोनों का लक्ष्य एक ही होता है। एक द्रुत गति से अपने लक्ष्य की ओर बढता जाता है तो दूसरा मन्थर गति से अपने लक्ष्य को पकडता है।

जो सत होता है, वह अपरिग्रह महाव्रत को अगीकार करता है। कषायोसे दूर–बहुत–दूर रहना पडता है, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा आदि से किनारा लेना होता हैं। काम-वासना का दमन करना पडता है। अगर वहाँ किसी भी बात की पकड है तो सिर्फ एक सत्य की यथार्थ-वादकी।

इस महाव्रत की साधना करनेवाले सत के हृदयमें किसी भी वस्तु पर ममता नही रहती। वह किसी वस्तु को अपनी नही समझता है। और तो क्या? यहाँ तक कि देहको भी वह अपनी नही मानता। देहके रहते हुए भी वह विदेह होकर रहता है। इसीलिए वह निर्ग्रन्थ है, अकिंचन है।

अपरिग्रह महाव्रती संत कभी किसी भी प्रकार का सग्रह नही करता, न वह किसी को सग्रह करने की प्रेरणा ही देता है, और जो सग्रह करता है उसका वह कभी अनुमोदन भी नही करता है।

ऐसे सत को भी कुछ न कुछ तो चाहिए ही। संत-जीवन के लिए उपयुक्त भिक्षा, पात्र, वस्त्र आदि वस्तुओको वह याचना द्वारा ग्रहण करता है, परन्तु उन पर उसकी मूर्छा नही रहती। उसकी एक अपनी भाषा है। वह कहता है अमुक वस्तु मेरी नही है, यह तो अभी मेरी नेश्राय (आश्रय)में है।

जैन–सघ में साधु व साध्वियो का वर्ग अपरिग्रह महाव्रत को धारण करने वाला होता है।

जो अपरिग्रह महाव्रत को स्वीकार नही करता, उसके लिये इच्छा–परिमाण व्रत है। इस व्रत में इच्छा की सीमा बाधी जाती है। इच्छा–निरोध तक पहुँचने के लिये यह एक सरल मार्ग है।

आवश्यकता के अनुसार इच्छा रखना यह इस व्रत का अर्थ है। इच्छा के आधार पर आवश्यकताओ का निर्माण करने से वे बढ़ जाती है। इसमे जीवन विकृत हो जाता है। विकृत जीवन धर्म से विमुख कर देता है और धर्म विमुख जीवन समाज व राष्ट्र के लिए अहितकर होता है।

इच्छा–परिमाण व्रत को स्वीकार करनेवाले का हृदय दयार्द्र हो जाता है। उसमें संतोष की मात्रा बढ़ती जाती है। व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा वह समाज व राष्ट्र की हित–कामनाको अधिक महत्त्व देता है।

वह अर्जन–उपार्जन करता है, परंतु अपनी मर्यादा के अदर रहकर। वह अर्थ का सचय भी करता है, परन्तु 'वित्तेण ताण न लभे' इस सिद्धान्त को अपने हृदय में रख कर।

ऐसा आदमी कभी किसी का शोषण नही करता। वह किसीका ग्रास नहीं छीनता है, प्रत्युत आवश्यकता पडने पर अपना ग्रास भी दूसरे को दे देता है। वह किसी को आश्रयहीन नही करता, परंतु स्वय आश्रय–दाता बनकर धर्म, समाज व राष्ट्र की सेवा करता है।

जैन सघ मे श्रावक–श्राविकाओ का वर्ग इच्छा–परिमाण व्रत का अधि–कारी माना जाता है।

परिग्रह पाप है, महापाप है। ससारके समग्र पापो की जड़ यह परिग्रह ही है।

संग्रह, संचय, तृष्णा, लोभ लिप्सा आदि परिग्रह के ही नामातर है।

परिग्रहके तीन केंद्र है, भूमि भूषण और रमणी।

आज तक ससारमें जितने युद्ध हुए–हत्याएँ हुई, विध्वस हुआ, विप्लव व हा-हाकार मचा, वे सब परिग्रहके इन केंद्रो में ही तो हुए है।

आज जो भी रिश्वत, चोर-बाजारी नियत–खोटी आदि अवाछनीय प्रवृत्तियाँ यत्र तत्र सर्वत्र चल रही है, उन सबका मूल कारण यह सग्रहकी भावना ही है।

संसारकी इन विभीषिकाओका अत अपरिग्रहवृत्ति के व्यास से ही हो सकता है।

परिग्रह से अपरिग्रह में जाना एक सस्कृति है। इससे आत्मीयता बढती है, एक दूसरेके प्रति बन्धुता के भाव जागृत होते है।

जिस दिन जन–जन के मानस में अपरिग्रह की भावना, तरंगित होगी उसी दिन विश्व-शातिकी योजना सफल हो सकेगी।



जैनागमों में नारी का स्थान

परम विदुषी महासतीजी श्री उज्ज्वलकुमारीजी म०, अहमदनगर

जैनागमो में नारी का क्या स्थान है, यह जानने के लिये भारतीय नारी की व्यापक परिस्थिति क्या है इसका जरा सिंहावलोकन कर लेना जरूरी है। पाशाणकाल से लगाकर वर्तमान स्पूटनीक काल तक भारतीय नारी को अनेक सामाजिक बन्धनो, अमानुषी अत्याचारो, अमानवीय मर्यादाओं, पुरोहित व पंड्याओ के द्वारा खोदी गई गहरी खाइओ, तथा धर्मगुरुओ द्वारा बिछाये गये कटीले मार्ग में से गुजरना पडा।

वस्त्राभूषण की तरह नारी भी एक भोगविलास की निर्जीव चीज ही मानी गई थी। उसे कोई स्वतत्र विचारशक्ति है, मन है या उसे भी कोई इच्छा हो सकती है ? यह वात किसी के ख्याल में भी नहीं आती थी। नारी केवल पुरुपो के भोगका साधन मात्र है यह जड़ मान्यता लोगो के दिमागो में वस गई थी। उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व या स्वतत्र व्यक्तित्व के विकाश की झांकी भी किसी को नही हो रही थी। इस भोग-साधन रूप मानी जाती नारी की दशा यह थी कि क्षत्रिय नरेश रथ भर-भरकर दासियां पुरोहितो को दक्षिणा में देते थे। और अपने दामादो को विवाह के समय रथ भर-भरकर दासियां भेंट देते थे। भारतीय नरेशो के महल देशी और विदेशी नारियो से भरे रहते थे। और मुगल-महलो की संख्या का तो किसी को पता ही नही चलता था।

भारत के वाहर भी नारी के यही हाल थे। चीनी सम्राट् भी अपनी ओर से पालखियाँ भर-भरकर कुमारियां हूण सरदारो को तथा तिब्बती काफलो के सरदारो को व उइगर कबीले के नायको को भेटो में देते थे। चीनी सम्राट् को अपनी प्रत्येक नारी का मुख देखना असभव होता था। रूपवती के सम्पर्क मे ही वह आता था, बाकी की रानियो को सदा शाहीमहल की एक उपेक्षित ईट की तरह जन्मभर सिसकते पडे रहना पड़ता था।

आगे नारी का स्तर और भी नीचे उतरा। जुआरी लोग नारी को दांव पर रखने लगे। नारी के जरा से अपराध का उसे कठोर दड दिया जाता था। अन्य पुरुष के सामने देख लेने मात्र से ही लोग नारी को घर से निकालने के इस तरह नोटिस लगा देते थे कि जिस तरह कि नीलाम आदि माल के लगाते है।

नियत समय पर परित्यक्ता नारी घर के द्वार से धक्का देकर बाहर निराधार अवस्था में निकाली जाती थी और घर का दरवाजा बन्द कर लिया जाता था।

स्त्रियो की यह दयनीय स्थिति थी। पुरुष सैकडो हजारो स्त्रियो को अपनी भोग-सामग्री बना सकता था तब स्त्री एक पुरुष के सिवा दूसरे पुरुष के सामने भी देख ले तो दंड की अधिकारी बन जाती थी।

सती-प्रथा यह नारी विडम्बना की चरम सीमा थी। पति मरने के बाद स्त्री को जबरन पुरुष के साथ जला दिया जाता था। आज की सजग नारी के दिल में सवाल उठता है कि स्त्री के मरने के बाद पुरुष भी किस प्रकार जीवित रह सकता था? उसे भी सतीप्रथा का नियम क्यो नही लागू होता? स्त्रियो की ऐसी विषम हालत चलती आ रही है। अच्छे-अच्छे सात्विक कवियो के मुख से भी ऐसे- ऐसे उद्‌गार निकलते है कि जो स्त्री-समाज के प्रति घृणा बताते है। एक कवि के शब्द है:—

"नागणी सी नारी जाण"

स्त्री को नागिन समझा। पर वास्तव में स्त्री नागिन नही है। नागिन तो पुरुष की वासना है। कवि तुलसीदास भी कह रहे है—

"शूद्र गँवार, ढोल, पशु, नारी, ये सब ताडन के अधिकारी" इस प्रकार स्त्री और पुरुष की आत्मा मे और आत्मा की शक्ति में कुछ भी तफावत न होते हुए भी स्त्रियाँ हमेशा अपमानित होती रही है।

वैदिक परंपरा में नारी को आत्म-विकाश के लिये अवकाश ही नही मिला और न उसे सामाजिक अधिकार ही मिले न धार्मिक भी। वैदिक धर्म-गुरुओ की उद्‌घोषणा थी कि.—

"न स्त्रीशूद्रौ वेदमधीयेतां"

स्त्री और शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नही है। स्त्रियो को कोई भी धर्म-ग्रन्थ पढ़ने का अधिकार नही था। धर्म को श्रवण करने का अधिकार भी नही था और धार्मिक क्रियाकाड भी स्त्रियाँ नही कर सकती थी। स्त्री और शूद्र दोनो समान माने जाते थे।

बौद्ध परंपरा में भी नारी को मुक्त स्थान न मिला। महात्मा बुद्ध ने अनिच्छा से अपने प्रिय शिष्य आनन्द के बहुत आग्रह करने पर नारी को सघ में दीक्षित किया और कहा—आनन्द! सघ वस्तुत. सहस्त्रो वर्षों तक जीवित रहता, परन्तु इसमें नारी के प्रवेश होने से इसकी आयु क्षीण हो जायेगी। और अब यह पाँच सो वर्षों से अधिक नही चल सकेगा। इस प्रकार बौद्ध परंपरा मे भी नारी को मुक्त विहार न मिला।

जैनधर्म मे नारी को खूब महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। जैनधर्म ने नारी के लिये विकाश के सभी मार्ग खोल दिये। जैनधर्म ने गुलामरूप बनी हुई नारी को गौरव दिया। पुरुषों के मन—बहलाव की चीज बनी हुई नारो को मुक्ति दी। भेंट सौगाद में देने की चीज बनी हुई नारी को आत्म-विकाश का मौका दिया। भोग-साधन बनी हुई नारी को भव्यता दी। जडता की प्रतिमूर्ति बनी हुई नारी को चैतन्य दिया। भ० महावीर ने तीर्थ की स्थापना की। उस तीर्थ के चार अंग बनाये। साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका,। इस तीर्थ में जितना महत्त्व साधु को है उतना ही साध्वी को भी है व जितना महत्त्व श्रावक को है, उतना ही महत्त्व श्राविका को भी है। :विश्व के तमाम धर्मों की अपेक्षा साध्वी बनकर आत्मशुद्धि, आत्मकल्याण, तथा आत्म-साक्षात्कार करने का समान अधिकार देकर जैनधर्म ने स्त्रियो की प्रतिष्ठा बढाई है। इस प्रकार स्त्री पुरुष की समानता इस तीर्थ का आदर्श बना। भ० महावीर के इस संघ में पुरुष के समान ही स्थान युग-युग से तिरस्कृत नारी को भी मिला। उन्होंने गुलाम के रूप से बेची हुई चंदना को अपने सघ में लेकर प्रवर्तिनी का स्थान दिया, और सारे श्रमणी सघ का नेतृत्व उस महासती चन्दना को सौपा। इस प्रकार जैनधर्म मे स्त्री-समाज को धर्म का सम्पूर्ण अधिकार दिया गया है।

पुरुष व नारी मे यत्किंचित् भी भेद का भाव जैन शास्त्र मे दृष्टिगोचर नही होगा। आजकल की नारी-व्यवस्था जैसे स्त्री को सब अधिकार देती है। गवर्नर व प्रधानमन्त्री का स्थान तथा एडवर्ड व जॉर्ज का स्थान स्त्रियो को दिया जाता है। उसी प्रकार जैनधर्म ने अवतारी पुरुषो मे, अपने तीर्थंकरो में भी नारी को स्थान दे दिया है। जैनो के चोबिस तीर्थंकरो में १९ वें तीर्थंकर है भगवती मल्लिकुमारी। जिस धर्म ने स्त्री को तीर्थंकर भी बना दिया वह स्त्री को और कौनसा अधिकार नही देगा भला ?

स्त्री की समानता व प्रधानता के उदाहरणों से जिनागम भरे पडे हैं।

इस काल-चक्र मे सब से प्रथम मोक्ष में जानेवाली एक नारी भी थी और वह थी प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भ० की माता मरुदेवी। भगवान् ऋषभदेव के भरत व बाहुबलि सरीखे सौ पुत्र होने पर भी उन्होने सबसे प्रथम अक्षर-ज्ञान व अंकज्ञान अपनी कन्याएँ ब्राह्मी सुन्दरी को ही दिया। ब्राह्मी के नाम से ही लिपि का नाम भी ब्राह्मी लिपि पड गया है। इस प्रकार जैनधर्म ने समानता व उचित स्थान पर प्रधानता भी दी है।

बाहुबलीजी को मानरूपी ऐरावत हस्ति से उतारने के लिये ब्राह्मी सुन्दरी ही गई थी और वे उस काम में सफल भी रही थी। रहनेमी को चारित्र से विचलित होते हुए राजीमती ने ही बचाया था। राजीमती ने उन्हे कहा था "तू चारित्र से विचलित हो इसके बजाय तो तेरा मरना ही अधिक श्रेयस्कर है।" उसके तेजस्वी वचनों को सुनकरके अंकुश से हाथी जैसे वश हो जाता है। वैसे ही रहनेमी चारित्र में स्थिर होगये। रानी कमलावती इक्षुकार राजा से जो शब्द कहती है वे शब्द ही नारी की तेजस्विता को सिद्ध करते है। वह कहती है कि—दूसरे के त्यागे हुए धन को लेना यह तो दूसरे के वमन किये हुए को खाने जैसा है। और दूसरे के वमन किये हुए को खाना यह तो कौवे कुत्ते का काम है। हे राजन्! एक दिन तो तू इन मनोरम कामभोगो को छोड़-कर मरेगा ही। उस समय एक धर्म के सिवा तुझे कोई चीज शरणभूत नहीं होगी। इसलिए धर्म का आचरण कर। इस प्रकार जैनधर्म ने नारी को बहुत अग्र स्थान दिया है। नारी की अंधकारपूर्ण सामाजिक यात्रा में जैनधर्म ने उसके लिये दीपस्तम्भ का काम किया है।

स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी कही जाती है। वह पुरुष का आधा अग है। तो उसे पुरुष के समान ही अधिकार मिलने चाहिये। स्त्री और पुरुष ये दो जीवन-रथ के चक्र है। रथ के दोनो ही चक्र समान होने चाहिए, जो छोटे-बड़े रहेंगे तो जीवन रथ अच्छी तरह से नही चल सकेगा। इसलिये पुरुष के समान ही नारी को भी महत्त्व देने की जरूरत है।

स्त्री शक्ति है। वह अबला नही सबला है। स्त्रियो को जब—जब अपनी शक्ति के विकाश का मौका मिला है तब—तब वे सर्व प्रकार से तेजस्विनी ही दिखाई दी है। वीरता की दृष्टि से स्त्रियो ने 'रण सग्राम' भी खेले है। राज्य-शासन भी कुशलतापूर्वक चलाये है। शिक्षण, विज्ञान, वीरता, विद्वत्ता और राज्यशासन आदि क्षेत्रो में स्त्रियो ने अपनी विशिष्टता दिखाई है सहनशीलता,

त्याग, तपश्चर्या, प्रेम, करुणा, सहानुभूति, सेवा, श्रद्धा और समर्पण में पुरुष कभी भी स्त्री की बराबरी नही कर सकता है।

"जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

माता और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् है। जहाँ स्त्रियो का अपमान होता है, वहाँ नर्क पैदा हो जाता है। जिन कुटुम्बो में बहू बेटियाँ कष्ट पाती है, वह कुटुम्ब नष्ट हो जाता है।

अपने शरीर मे महत्त्वपूर्ण स्थान है नाडी का। नाडी जब तक ठीक ढग से चलती है तब तक आदमी का स्वास्थ्य स्वस्थ रहता है। परन्तु जब नाडी में गडबडी हो जाती है तब स्वास्थ्य भी बिगड जाता है, और कभी-कभी नाडी के ठोके अधिक बढ जायँ तो जिन्दगी भी खतरे में आ जाती है। इस प्रकार नाडी की स्वस्थता, अस्वस्थता पर ही शरीर की स्वस्थता अस्वस्थता का आधार रहा हुआ है।

जो स्थान शरीर में नाडी का है, वही स्थान समाज में नारी का है। नारी सस्कारी होगी तो समाज सस्कारी, बनेगा। नारी अशिक्षित, असस्कारी, और बेसमझ होगी तो समाज वैसा ही बनेगा। नारी की स्वस्थता के ऊपर ही सारे समाज के स्वास्थ्य का आधार रहा हुआ है।

यह बात सब कोई जानते है कि—लोगो को जब धन चाहिये, तब लोग लक्ष्मी की पूजा करते है, कुबेर की नही। विद्या के अभिलाषी लोग विद्या के लिये सरस्वती की पूजा करते है, विद्या गुरु बृहस्पति की नही। शक्ति के उपासक देवी दुर्गा की उपासना करते है, अन्य कोई शक्तिशाली देव की नही। इस प्रकार धन, विद्या और बल के लिये देवियां पूजी जाती हैं, कोई देव नही। इसमें भी स्त्री-पूजा की ही विशेषता दिखाई देती है। देवो के नाम भी देखें तो उनमें भी स्त्रियो को ही प्रथम स्थान है। जैसे कि:—गौरीशंकर, राधाकृष्ण, सीताराम, लक्ष्मीनारायण। पशुवो में भी गाय पूजी जाती है, बैल नही। इस प्रकार सर्वत्र सन्मान ही नजर आता है। मानव समाज में भी वैसा ही स्त्री-सन्मान होना चाहिये।

पति के लिये चारित्र, सन्तान के लिये ममता, समाज के लिये शील, विश्व के लिये दया, तथा जीवमात्र के लिये करुणा प्रदान करनेवाली शक्ति का नाम ही नारी है।

॥ जय हो नारी की ॥

✻ आगम में नारी ✻



विदुषी महासती श्री सुमतिकुँवरजी महाराज

हजारो वर्ष प्राचीन युग मानस की कहानी है। जिस युग मे मानव-समाज के एक वर्ग स्त्री की विचित्र परिभापा की गई थी। वह अनादर की दृष्टि से देखी जाती थी और उसके साथ व्यवहार भी उसी प्रकार किया जाता था। गृह उसका कार्यक्षेत्र था। संतति–सगोपन उसका कर्तव्य था और पति–परायणता उसकी ईश्वरभक्ति थी। साधना के कर्मठ-मार्ग पर चलने का साहस स्त्री में नही, ऐसा माना जाता था। धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन तो दूर किन्तु श्रवण करने मे भी वह अयोग्य एव अपवित्र मानी जाती थी। राष्ट्रीय वीर–वृत्ति एवं आत्मिक पवित्र प्रवृत्तियो से कोसो दूर थी। उसे अपनी शक्ति का भान न हो सका था। शारीरिक शक्ति के साथ विचारो की शक्ति भी क्षीण हो चुकी थी। शक्ति नही मात्र भक्ति ही उसके जीवन का प्रकाशदीप था। पुरुप परमेश्वर यह उसके जीवन का गुरुमन्त्र था। प्रत्येक प्रवृत्ति में पुरुषो का वर्चस्व था। क्योकि तलवार और कलम उसके हाथ के सख्त हथियार थे। इस कारण/स्त्री जाति का स्वतत्र रूप से सामाजिक अथवा आध्यात्मिक विकास नही हो सका। समाज का वह अग कमजोर हो चुका था।

वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो स्त्री और पुरुष दोनो अपने-अपने क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण है, दोनो के योग–सहयोग से ही मानव समाज में शान्ति की स्थापना हो सकती है। किन्तु उस समय चारो तरफ पुरुष का गौरव था। फलस्वरूप समाज का संकुचित वातावरण हो चुका था। इतना होते हुए भी विशेषता इस बात की थी कि स्त्री ने पुरुष के लोखडी पहरे मे अपने को सुरक्षित समझा था। कैदी की जजीरो में सुख की कल्पना की थी। परतत्र जीवन मे सुख की अनुभूति थी परिणाम मे उसका आत्म-पौरुष सुषुप्त हो चुका था। क्रान्ति की भूमिका तैयार हो रही थी।

परन्तु यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जहाँ असहिष्णुता की सकुचितवृत्ति का पोषण होता है, उसका अवश्य पतन होता है। इस नियम के अनुसार उस गोपणमय अधकार के समय भारत के गगन में एक सुवर्ण प्रभात का उदय हुआ था। जिस दिन नारी-जीवन का पराजय विजय में परिवर्तित हुआ था। भगवान्

महावीर ने नारी की शक्ति का आह्वान करते हुए कहा था— "ओ नारी ! तुम्हे यदि अपनी शक्ति पर पूर्ण आत्मविश्वास हो तो तुम किसी भी क्षेत्र में पुरुष से कम नही हो। संपूर्ण स्वातन्त्र्य के द्वार खोलने का अनन्त बल तुममें है। अखंड अविचल शक्ति का स्रोत तुम हो। जो अपने क्षेत्र में संपूर्ण समर्थ है वह विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में समर्थ बन सकता है।

पुन अपनी योग्यता प्राप्त करनी हो तो निष्क्रिय रहने से काम नही चलेगा। तुम्हारी खोई हुई शक्ति कोई लाकर नही देगा। अपने अनन्त पुरुषार्थ से भविष्य का भव्य प्रारब्ध निर्मित करना है। शक्ति की खोज में अविश्रान्त गति से चलना है। जीवन के संग्राम में अपने आप को विजयी बनाना है। उठो ! क्या शारीरिक स्थूल भेद आत्मीय शक्ति को विनष्ट करने में समर्थ है ? नही। यह बाह्य भेद जड़ पुद्गलो की पर्यायें है। सोचो ! निर्णय करो ! तुम्हे तुच्छ समझनेवाले लोगो के शब्दो की अपेक्षा तुम्हारी अपनी आत्मा के शब्द अधिक महत्त्वपूर्ण है। अपनी आत्मा से पूछो ! क्या वह स्वीकार नही करती है कि तुम पुरुष के समान शक्तिसंपन्न हो।" यह सुनते ही हजारो स्त्रियाँ समस्त मानव जाति के कल्याणार्थ ऐश्वर्य-विलासी साधन एव पुरुष के तन्त्र को ठुकराकर संयमी जीवन के कठोर मार्ग पर सत्य की वेदी पर पुरुष की तरह सफलतापूर्वक प्रयाण करने के लिए निकल पडी थी। उन्होने समझा था— कल्याण के लिए अपने जीवन का बलिदान करनेवाला कभी नष्ट नही होता। किन्तु पृथ्वी पर स्वर्ग उतार लाने का श्रेय प्राप्त करता है।

वह महान् आदर्श युग-युग से प्रकाश देते आ रहा है। अनेक ऐसी धर्मनिष्ठा एव कर्तव्यनिष्ठा विभूतियो की जीवन—गाथाएँ हमें आगम में उल्लिखित मिलेगी जिनमें नारी—जीवन का सन्मान है।

उदाहरण के लिए देखिये— रानी कमलावती के जीवन का एक प्रसंग। राजा इक्षुकार के राज्य का एक ब्राह्मण परिवार दीक्षित होने जा रहा है। उसकी समस्त द्रव्य-राशि राज्यभडार में आ रही है। रानी कमलावती को यह सब मालूम होता है। वह स्वय दरबार में आकर इसका विरोध करती है और अपने पतिराज से कहती है, "राजन् ! —

मरिहिसि राय जया तया वा मणोरमे काम गुणे पहाय।
एक्को उ धम्मो नरदेव ताणं न विज्जइ अन्नमिहेह किंची॥

जिसने जन्म लिया है उसे अवश्य काल के गाल में समा जाना है। तुम किस भूल मे हो। ओ नरदेव ! एक धर्म ही आत्मा का सहायक है।"

विचारशील एव विवेकपूर्ण मार्गदर्शन देकर रानी कमलावती राजा को त्याग के मार्ग पर लाने का प्रयत्न करती है।

उसके शब्दो को स्वयं भगवान् महावीर अपने उपदेश में उदाहरण देते है।

इसी प्रकार जैनी श्राविका के द्वारा पूछे गये प्रश्नो का जो आगमो में उल्लेख है उसे देखकर सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भगवान् महावीर के समय में नारी का चित्त कितना चिन्तनशील था।

अकेली आर्या चन्दनबाला पर भगवान् महावीर ने ३६ हजार साध्वियों के नियत्रण का भार सौंपा था, इससे जाना जा सकता है कि नारी की शक्ति या उसके दायित्व के प्रति भगवान् महावीर के हृदय में कितना विश्वास था।

जैनागमो में मल्लीजिन का उल्लेख इस बात का प्रबल प्रमाण है कि एक नारी तीर्थंकर जैसे महान् पद पर भी पहुँच सकती है। उन्होने कहा था कि स्त्री हो या पुरुष, दोनो ही आचार के क्षेत्र मे समान रूप से प्रगति कर सकते है। उदाहरण के लिए--महाव्रत की दीक्षा-विधि, केवल ज्ञान की प्राप्ति निर्वाण आदि किसी भी क्षेत्र में स्त्री और पुरुष के भेद को उन्होने नही माना।

ऐसे उदाहरणो को देखकर यह भलीभाँति जाना जा सकता है कि नारी-जीवन के विषय मे भगवान् महावीर का दृष्टिकोण क्या था।

इतना होते हुए भी आज की परिस्थिति का अवलोकन करते हुए कहना पडेगा कि आगम के टीकाकार एव भाष्यकार भी आस-पास के वातावरण तथा साहित्य की असर से विमुक्त नही रह सकते हैं। मन पर्यव ज्ञान और १४ पूर्व का ज्ञान स्त्री प्राप्त नही कर सकती। दिगंबर सप्रदाय ने तो स्त्री-मुक्ति का भी निषेध किया है। इसका क्या अभिप्राय है ? वर्तमान में भी साधुओ की अपेक्षा साध्वियो का जीवन निम्न कोटि का माना जाता है। जैसे वंदन-व्यवहार। ऐसे अनेक विषय हैं जिनकी स्पष्ट रूप से चर्चा नही की जा सकती, फिर भी वे एक विचारक मानस मे खटकते है।

सोना किसको अच्छा नही लगता ? सभी उसकी इच्छा करते है। किन्तु अग्नि में तपे हुए रक्तवर्ण सोने को हाथ में लेने के लिए कोई तैयार नही होगा। उसी प्रकार सत्य सभी चाहते हैं किन्तु स्पष्ट एवं कटु शब्दो में कहा जाय तो उसे ग्रहण करने के लिए कोई तैयार नही होगा।

"पुरिस जेट्ठा" इसका अर्थ "पुरुष श्रेष्ठ"। ऐसा किया जाता है वास्तव में यह अर्थ की सकुचितता है। जैनधर्म ने किसी व्यक्ति-विशेष के महत्त्व को स्वीकार नही किया। श्रेष्ठता और ज्येष्ठता का मापक यत्र शरीर की बाह्य रचना नही। किन्तु आतरिक गुण है। और आगम में "पुरिस" शब्द का प्रयोग भी आत्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, किसी व्यक्ति-विशेष के अर्थ में नही, जैन-धर्म आत्मधर्म का पक्षपाती रहा है। "पुरिस" शब्द का अर्थ "आत्मा" कर के इस व्यापक अर्थ में ही हम भगवान् महावीर की भावना को सुरक्षित रख सकते है।

दूसरी तरफ आगम में किसी विशिष्ट संयोग के शब्दों के प्रयोग देखकर "आगम भी स्त्री का अपमान करते हैं, उसको हीन दृष्टि से देखते हैं, ऐसा मानना न्याययुक्त नहीं है। उदाहरण के लिए—

"न रक्खसीसु गिज्झेज्जा"

यहाँ "रक्खसी" का अर्थ स्त्री नहीं है जो किया जाता है। वास्तव में साधक की अपनी दुष्ट मनोवृत्ति ही राक्षसी है और वही कर्मबन्ध का कारण है, कोई दूसरा पदार्थ नहीं। निमित्त के आधीन होकर कहना कि स्त्री नर्क का द्वार है, वह कीचड़ है, राक्षसी है, नागिन है।—— ठीक नहीं है।

वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो आगम की पृष्ठभूमि में वैमनस्य एवं ऊँच-नीच की कल्पना से दूर प्रत्येक आत्मा का पवित्र दर्शन प्राप्त होता है। वहाँ नारी-जीवन की निष्फलता का भ्रामक प्रचार एवं प्रसार नहीं, किन्तु सत्य तथ्य जीवन का शुद्ध विश्लेषण है।

वीर-वाणी ने तत्कालीन इतिहास को एक नूतन मोड़ दिया था। नया युग-युग से पुरुष द्वारा शोषित एवं पददलित नारी वर्ग में क्रान्ति का निनाद किया था, जिसका सख्त विरोध हुआ, किन्तु विजय मानपत्र लेनेवालों के आधार पर नहीं, मूक भाव से कर्तव्यपालन करनेवालों के आधार पर ही टिकता है।

इस विषय में कतिपय विद्वानों का अभिप्राय है कि "आगम के पूर्व-काल में भी——गार्गी, मैत्रेयी, सीता, सावित्री, सरस्वती जैसी महिलाएँ अपनी विद्वत्ता एवं चारित्र के बल पर सम्मानित थी। गृह—मंदिर में देवी की तरह पूजी जाती थी। इस विषय में आगम का कोई नवीन भाव नहीं है। उसके उत्तर में कहना है कि "गार्गी आदि जिन स्त्रियों की महत्ता का उदाहरण पेश किया जाता है उन्हें पुरुषों के कारण ही महत्ता प्राप्त हुई है। किसी स्त्री ने स्वतन्त्र रूप से अपने ही आत्म—बल से सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया है ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। भग-वती मल्ली, चन्दनबाला आदि के उदाहरण जैन आगमों से ही जाने जाते हैं। जिनसे भगवान् महावीर की क्रान्तिकारिता स्पष्ट होती है।

कार्य क्षेत्र के अनुसार कार्यकर्ताओं का पृथक्करण हो सकता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि यह नीच है यह ऊँच है। प्राणीमात्र के प्रति प्रेम, सहिष्णुता और सहअस्तित्व का पाठ याद करानेवाला साधक मानव-समाज में क्या विषमता की दीवाल खड़ी कर राग—द्वेष आदि बढ़ा सकता है। कभी नहीं?

इस रूप में आगम नारी के विषय में एक पवित्र भावना को लेकर आये हैं। उसे हम समझने का प्रयत्न करें तो महावीर की क्रान्ति के दीप में सहयोग देने का पवित्र श्रेय प्राप्त कर सकते हैं।

धर्म और विश्व की वर्तमान समस्याएँ

डा इन्द्र चन्द्र शास्त्री अध्यक्ष संस्कृति विभाग इन्स्टीट्यूट ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट
स्टडीज, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रसिद्ध दार्शनिक बर्ट्रेन्डरसल ने विश्व की समस्याओ का विश्लेपण करते हुए उन्हे तीन कारणो में विभक्त किया है। पहिला कारण अज्ञान है। दूसरा अभाव और तीसरा अन्याय। साथ ही यह भी बताया है कि अज्ञान को दूर करना दर्शनशास्त्र का कार्य है और अभाव को दूर करना विज्ञान का। अन्याय के दो प्रकार है। व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति अन्याय और वर्ग का वर्ग के प्रति अन्याय। इनमे से प्रथम प्रकार के अन्याय को दूर करना धर्म का कार्य है और दूसरे को दूर करना राजनीति का। वास्तव में देखा जाय तो इन सभी कारणो के मूल में प्रधानतया स्वार्थवृत्ति ही छुपी रहती है और उसे दूर करना एक-मात्र धर्म का कार्य है।

उदाहरण के रूप में अज्ञान के दो भेद है।

१ ज्ञान का अभाव और २ विपर्यय। विपर्यय भी दो प्रकार का है १ भ्रांतिमूलक अर्थात् जो वस्तु जैसी नही है उसे वैसा समझना। २- भावना-मूलक—अर्थात् जो जैसा नही है उसे वैसा मानना। चन्द्रमा का आकार विशाल होने पर भी हमें वह छोटासा दिखाई देता है। यह भ्रांतिमूलक विपर्यय है।

अपनी साप्रदायिक, जातीय या प्रादेशिक सकुचित वृत्तियो के कारण हम मनुष्य और मनुष्य के बीच दीवार खडी कर लेते है।

तथाकथित धर्मनायको व देशनायको के निर्णयानुसार हमारी मान्य-ताये बदलने लगती है। जो कल मित्र था, आज शत्रु हो जाता है। जो कल अपना था आज पराया हो जाता है। ये मान्यतायें भावनामूलक है।

अज्ञान के उपर्युक्त रूपो में से ज्ञान के अभाव व भ्रांतिमूलक विपर्यय को दूर करना यह दर्शनशास्त्र का कार्य है।

और यह महत्त्वपूर्ण भी है, किन्तु विश्वव्यापी अशाति परस्पर अविश्वास तथा संघर्षो को देखा जाय तो सारा खेल भावनामूलक विपर्यय से ही सम्बन्ध रखता है वास्तव में उस स्तर पर पहुँच कर धर्म और दर्शन एक हो जाते है।

भारत में दर्शन का उद्देश्य केवल अज्ञान-निवृत्ति नही है किन्तु तत्त्वज्ञान या अज्ञान-निवृत्ति के द्वारा निश्रेयस् का साधन है।

दर्शन जिस लक्ष्य पर बुद्धि के रास्ते पहुँचाता है। धर्म उसी लक्ष्य पर भावना या हृदय के रास्ते से पहुँचाता है। ससार मे प्रत्येक व्यक्ति अपने को बुद्धिमान् मानता है और अपने निर्णयो को बुद्धिपूर्ण निर्णय मानता है।

वास्तव में देखाजाय तो बडे २ राजनीतिज्ञों धर्मनेताओ या अन्य प्रकार के जननायको के निर्णयो मे बुद्धि की अपेक्षा भावना का प्राबल्य है। उनके सभी निर्णय राग, द्वेष, अहकार एवं अन्य प्रकार के पूर्वग्रहो से एव मिथ्याभिनिवेशों से सचालित होते है।

संयुक्त राष्ट्रसघ में बडे २ राष्ट्रो के प्रतिनिधि विश्व की समस्याओ को सुलझाने के लिये इकट्ठे होते है। किन्तु वे अपने व पराये के भेद को मिटाने के लिए कभी तैयार नही होते। प्रत्येक समस्या को उसी दृष्टि से देखते है। कहते है परमाणु-युद्ध नही होना चाहिए। किन्तु चाहते है कि उनका अपना राष्ट्र तो बच जाय और दूसरे नष्ट होजायें तो कोई बात नही है।

प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को अविश्वास एव सदेह की दृष्टि से देखता है। ऊपर से हँस कर स्वागत करता है किंतु मन ही मन उसकी पराजय चाहता है। ऐसे वातावरण में शाति की स्थापना स्वप्नमात्र है।

यदि हम इस प्रकार की मनोवृत्ति के मूल कारणो पर विचार करें तो मानवीय अस्मिता एव अहंकार के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देता। अमरीका के राष्ट्रपति पृथ्वी के एक प्रदेश को अपना मानते है, और चाहते है वहां सुख एव सपत्ति की प्रत्येक प्रकार से वृद्धि हो, किंतु उस सीमा को पार करते ही उनकी भावना बदल जाती है। उस सीमा के परवर्ती प्रदेश पर यदि परमाणु बम गिरे तो उन्हे कोई चिंता नही है।

यदि कल वह प्रदेश अमेरीका की अधीनता स्वीकार कर लेता है, तो वह भी चिंता का विषय बन जाता है। इस प्रकार की भेद भावना और उसमें होनेवाले परिवर्तन का कोई वास्तविक आधार नही है। सर्वत्र मानवीय अहंकार या अस्मिता बोल रही है।

इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर प्रसिद्ध इतिहासकार टोयनबी ने लिखा है कि मानवता की सब से बडी समस्या व्यक्ति का अथवा वर्ग का स्व-केंद्रित होना है।

हम स्व के सुख-दुख की चिन्ता करते है एव स्व के विचारो को ठीक मानते है। उस स्व की परिधि किसी की अपने ही शरीर तक है, किसी की कुटुब

तक, किसीकी मोहल्ले या नगर तक, किसी की सम्प्रदाय या पथ तक, किसी की जाति या नस्ल तक, और किसी की राष्ट्र तक।

धर्माचार्य पंथ के आगे नही बढ़ना चाहते और राजनीतिक नेता राष्ट्रीय सीमा के आगे।

विश्व के इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि मानव कल्याण के उद्देश्य से अवतार लेने वाले धर्मोंने सभवतया उपकार की अपेक्षा अपकार अधिक किया है।

यहूदी मानते थे कि भगवान् यहोवा सुख–संपत्ति तथा कल्याण की वृद्धि करते है किन्तु उनकी कृपा के पात्र सभी नही हो सकते। उसके पात्र वे ही होसकते है जो यहूदी जाति में उत्पन्न हुये हो। वे अपने आप को खुदा के चुने हुय बदे मानते थे। परिणामस्वरूप दूसरो को मारने व उनकी सपत्ति को लूटने तथा उनकी स्त्रियो से बलात्कार करने में कोई पाप न समझते थे। उन्होने मिश्र के मूल निवासियो पर जो अत्याचार किये तथा जो जघन्य कृत्य किये उनके सामने राजनीतिक युद्ध भी लज्जित हो जायेंगे।

ईसामसीह ने विश्व-बधुत्व का उपदेश दिया और कहा यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर तमाचा लगाये तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो। यदि तुमसे चद्दर मागे तो अपना कोट भी उतार कर दे दो।

किन्तु तथाकथित अनुयायियो ने तलवार तथा धन के बल पर सारे विश्व को यह पाठ सिखाना चाहा। उन्हे अपने कल्याण की अपेक्षा दूसरे के कल्याण की चिन्ता अधिक रही है। परिणामस्वरूप यहूदियो को उनके मूलस्थान से मार भगाया और तलवार भाले तथा बन्दूके लेकर सैकडो वर्षो तक धर्मयुद्ध के नाम से उनके पीछे पडे रहे।

इसके बाद उसी रंगमच पर इस्लाम आया जो अब तक अपनी पुरानी नीति को भूला नही है। यद्यपि भारतीय इस विषय में सहनशील रहे है और उन्होने धर्म के नाम पर बडे २ युद्ध नही किये फिर भी यह मानना पडता है कि धर्म के नाम पर पारस्परिक विद्वेष यहाँ भी पर्याप्त मात्रा में रहा है।

उसने हमारी राष्ट्रीय शक्ति को जर्जर कर दिया तथा सभी धर्म अपने महान् लक्ष्य से गिरकर बाह्य क्रियाकाड विधिविधान एवं प्रदर्शनो तक सीमित रह गये।

धर्मों का उपर्युक्त इतिहास हमें निराशा की ओर ले जाता है और ऐसा प्रतीत होता है 'कोई शक्ति या संस्था ऐसी नही है,' जो मानवता का त्राण कर सके। किन्तु गहराई से देखा जाय तो उपर्युक्त इतिहास में ही आशा के बीज छिपे हैं। इससे दो बातो का पता चलता है।

पहली बात यह है धर्म भी एक महान् शक्ति है। वह भी मानव-समूह को संगठित करके बडे २ कार्यों के लिये प्रेरित कर सकता है। मनुष्य ने जहां राजनीतिक आर्थिक एवं अन्य स्वार्थों के लिए प्राण दिये हैं उसी प्रकार धर्म के लिये भी दिये हैं।

इसके साथ यह भी सिद्ध होता है कि धर्म के नाद में मनुष्य अपनी ओर जिन परिधियो को खडा करता है वे कल्पित होने पर भी शक्तिहीन नहीं होती। उनमें उतना ही प्रेरणाबल रहता है जितना कौटुम्बिक, जातीय, राष्ट्रीय या अन्य किसी प्रकार की परिधि में। जिस प्रकार उनका उपयोग मानवता के परस्पर विनाश में हुआ है उसी प्रकार स्वपर-कल्याण में भी हो सकता है। आवश्यकता केवल ठीक पथ-प्रदर्शन की है।

दूसरी बात यह है कि धर्म ही एक ऐसा तत्त्व है जो मानवता ही नही समस्त विश्व को एकता या समानता के स्तर पर खडा कर सकता है।

अपने प्रारंभ काल मे धर्म अवश्य संकुचित रहा है। किन्तु धीरे २ विकास करते वह कौटुम्बिक जातीय भौगोलिक एवं राष्ट्रीय सभी सीमाओ को पार कर गया है। जहां वहां एकान्त रूप से मंगलमय बन गया है।

उपनिषदो में धर्म का जो रूप मिलता है, वह मनुष्य की आहंकारिक परिधियो या स्व-केन्द्रितता पर या स्वकेद्रिता को दूर करने पर ही बल देता है। उसका कथन है 'द्वितीयादेव भयं भवति' जब तक दूसरा रहेगा मैं और तूं, स्व और पर की भेदबुद्धि रहेगी, भय बना रहेगा।

जिस दिन सब एक ही आत्मा के रूप मे प्रतीत होने लगेंगे उस दिन कौन किसीसे डरेगा ?

महावीर ने कहा सभी जीव परस्पर समान हैं। जब तुम किसी को मारना चाहते हो तो उसके स्थान पर अपने को मानो। जब किसी को कष्ट देना चाहते हो, पीडा देना चाहते हो तो उसके स्थान पर अपने को रख कर देखो।

बुद्ध ने संसार की सभी आकाक्षाओ एवं अस्मिताओ को नि सार बताकर उनसे ऊपर उठने का उपदेश दिया। उन्होने यह भी कहा-माता जिस प्रकार

अपने एकाकी पुत्र पर स्नेह करती है इसी प्रकार असीम स्नेह सारे विश्व में फैला दो।

क्राईष्ठ ने विश्व-बन्धुत्व के नाम पर समस्त मानव-सेवा का सदेश दिया। उन्होने देश, काल, जाति आदि की किसी परिधि को नही माना उनके इस सदेश मे विश्व-समस्याओ का समाधान सन्निहित है।

आवश्यकता इस बात की है— धर्म के शुद्ध प्रकाश से हम अपने पथ को आलोकित करे और उस पर चलने का प्रयत्न करे। उसे अस्मिताओ की गाँठ में बाँधकर सिर पर ढोये फिरने से कोई लाभ नही है।

वहाँ धर्म, धर्म नही रहता पथ बन जाता है, उसकी प्राण-शक्ति उड़ जाती है और निर्जीव शरीर रह जाता है।

रसल के द्वारा बताये गये तीन कारणो में दूसरा अभाव है। इसका अर्थ है खाने पीने पहिनने रहने आदि जीवन के लिए आवश्यक सामग्री की कमी।

रसल का यह कथन भी ठीक है कि इस सामग्री को अधिक से अधिक परिमाण में प्रस्तुत करना विज्ञान का कार्य है, किन्तु यह अभाव दो प्रकार का है वास्तविक व कृत्रिम। वास्तविक अभाव को दूर करना विज्ञान का काम है, किन्तु कृत्रिम अभाव को अपनी स्वार्थ-वृत्ति से प्रेरित होकर मनुष्य स्वयं खडा करता है और विश्व की वर्तमान समस्याओ में इसी की मुख्यता है। अमरीका में करोडो मन अनाज इसलिए जला दिया जाता है कि उसका भाव न गिरने पाये। दूसरी ओर अनाज की कमी गभीर समस्या बनी हुई है। कुछ वर्ष पहिले बगाल में दुर्भिक्ष पडा और लाखो व्यक्ति भूखे मर गये।

कहा जाता है, व्यापारियो के पास चावलो के गोदाम भरे हुये थे, किन्तु भूखों के पास पैसा न था। यह कृत्रिम अभाव तभी दूर हो सकता है जब मानव आर्थिक एवं राजनीतिक स्वार्थों से ऊपर उठकर मानवता या सर्वात्मता की ओर उन्मुख हो।

यह दशा प्रदर्शित धर्म से ही प्राप्त हो सकती है। पूर्वोक्त कारणो में तीसरा अन्याय बताया गया है। वह दो प्रकार का है व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति, वर्ग का वर्ग के प्रति।

प्रथम प्रकार अन्याय स्वार्थमूलक होता है और दूसरा अस्मिता या अहकारमूल का पहिले को दूर करने के लिये स्वार्थ-भावनाओ से ऊपर उठने की

आवश्यकता है और दूसरे को दूर करने के लिए अस्मिता की परिधि से ऊपर उठना आवश्यक है और ये दोनो ही कार्य धर्म में है।

किन्तु धर्म अपने लक्ष्य को तभी पूर्ण कर सकता है जब वह बाह्य वेष भूषा, क्रियाकाड, विधिविधान, देवी-देवता तथा दूसरे आवरणो से मुक्त होकर अपने उज्ज्वल प्रकाशमय रूप में मार्गदर्शन करे। ऐसा तभी हो सकता है जब हम इसे हिन्दु, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान, यहूदी आदि किसी घेरे मे बन्द न करके उसे अपने मगलमय रूप में उपस्थित करे।

हमें यह मानना चाहिए कि प्रत्येक परम्परा मे मानवहित के लिए उपयोगी तत्त्व विद्यमान है। किन्तु उनके साथ सडाध व विषैले कीटाणु भी मिल गये है।

अपने विचार तथा भावनाओ, मस्तिष्क तथा हृदय, ज्ञान तथा इच्छा दोनों का परिष्कार करने पर ही हम उनके शुद्ध रूप का दर्शन कर सकते हैं।

जैनधर्म में मस्तिष्क के परिष्कार को स्याद्वाद के रूप में और हृदय के परिष्कार को अहिंसा के रूप में प्रगट किया गया है।

धर्मो में भी इन शुद्धियो के विविध मार्ग बताये गये है। वर्तमान धर्मनेताओ पर यह उत्तरदायित्व आ पड़ा है कि वे उन मार्गों का शोधन करे। उन्हे जीवन में उतारे, विशाल मानवसमाज के सामने प्रस्तुत करे। विश्व को प्रलयकर युद्ध की विभीषिकाओ से बचावे।

इस प्रकार धर्म वस्तुत विश्वकल्याण का साधन कर सकेगा।

यह कथन पूर्णतया सत्य है 'धर्म एव हतो हंति, धर्मो रक्षति रक्षित.'। यदि हम धर्म को अपनी अस्मिताओ के सिकंजे में कसकर मार डालेगे तो स्वय भी मर जायेंगे किन्तु, यदि उसे जीवन में उतार कर सच्चे अनुयायी बनकर उसकी रक्षा करेगे तो वह भी हमारी रक्षा करेगा।



जैनधर्म और वर्णाश्रम-व्यवस्था

पं० श्री. शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

बहुतो का खयाल है कि जैनधर्म प्रवृत्ति का प्रतिषेध करके एकान्त निवृत्ति का विधान करता है। किन्तु यह धारणा चाहे किसी भी कारण उत्पन्न हुई हो, तथ्यो पर अवलम्बित नही है। गहराई में उतरकर विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि एकान्त निवृत्ति या एकान्त प्रवृत्ति के लिए कही अवकाश ही नही है। दोनो परस्पर सापेक्ष होकर ही रह सकते है। जीवन एक अविकल और अखंड वस्तु है। वह न अकेली निवृत्ति के बल पर चल सकता है और न अकेली प्रवृत्ति के सहारे। दोनो के समुचित समन्वय पर ही उसका अस्तित्व टिका है और इसी में उसकी कृतार्थता है। इसी कारण जैनाचार्यों का यह सुस्पष्ट विधान है—

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।

चारित्र या सदाचार की समग्रता निवृत्ति और प्रवृत्ति के मेल से ही निष्पन्न होती है। मनुष्य जब अशुभ से—अश्रेयस् से निवृत्त होता है और शुभ-श्रेयस् में प्रवृत्त होता है, तभी वह चारित्रसम्पन्न या सदाचारी कहलाता है। प्रवृत्तिशून्य निवृत्ति अकर्मण्यता है, जीवन से इंकारी है और इसी कारण वह निष्फल है। इसी प्रकार निवृत्तिशून्य प्रवृत्ति यदि सभव हो तो भी वह किसी भी स्थिति में उपादेय और स्पृहणीय नही।

किसी भी धर्म के शास्त्रो का अध्ययन कीजिए। उनमें प्रवृत्ति और निवृत्ति के तत्त्व अवश्य मिलेगे। वस्तुतः जो धर्म मौलिक और स्वतत्र होने का दावा करता है, उसके लिए तो यह अनिवार्य है कि वह वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के समस्त पहलुओ का विवेचन करे और जीवन की प्रत्येक अवस्था सबंधी कृत्यो—अकृत्यो का परिपूर्ण चित्र अंकित करे।

यह सत्य है कि प्रत्येक धर्म के अपने मौलिक दृष्टिकोण होते है, विशिष्ट दर्शन होता है और इस कारण कर्तव्य—अकर्तव्य कर्मो की मीमासा उन्ही के इर्द-गिर्द घूमती है और उसके ब्यौरे की बातो में हमें भिन्नता दिखलाई देती है। यद्यपि उन सब दृष्टिकोणो का तटस्थ रूप से अध्ययन और विवेचन करना

और आचारहीन हो, पवित्र ही है और अमुक वर्ग की सन्तान, चाहे उच्च आचार से सम्पन्न एवं सुसंस्कृत हो, अधम ही है। साथ ही एक वर्ग की उन्नति और प्रगति के समस्त द्वार अवरुद्ध कर दिये गये और उन्हें शास्त्राध्ययन तक के अधिकार से वंचित कर दिया गया। ऐसे-ऐसे विधानों को परिपुष्ट करने के लिए विपुल साहित्य की सृष्टि की गई जिसका प्रभाव अद्यावधि विद्यमान है।

जहाँ तक वर्णव्यवस्था के मूल ध्येय का संबंध है, जैन परम्परा उससे असहमत नहीं है। कोई भी लौकिक विधि-विधान, जिससे व्यक्ति या समाज के समीचीन विश्वास या सदाचार का विघात न हो, जैन परम्परा के लिए निषिद्ध नहीं है। जैनाचार्यों की स्पष्ट घोषणा है—

सर्वं एव हि जैनानां, प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्नो, यत्र नो व्रतदूषणम्॥

जो सम्यग्दर्शन में बाधक नहीं है और जिससे व्रत दूषित नहीं होते हैं, ऐसे सभी विधि, विधान जैनों के लिए प्रमाण है।

किन्तु वर्णव्यवस्था ने जो विकृत रूप ग्रहण किया वह किसी भी निष्पक्ष और विचारशील व्यक्ति को सन्तुष्ट नहीं कर सकता था। कोई भी समभावी विचारक यह सहन नहीं कर सकता कि दुर्गुण सद्गुणों पर हावी हो जाएँ और अहंकार धर्म पर विजय प्राप्त कर ले। यह भी कैसे बर्दाश्त किया जा सकता है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच ऐसी दीवारें खड़ी कर दी जाएँ कि जिससे मानव-जाति का एक वर्ग हीन समझा जाय और अपनी आध्यात्मिक प्रगति से भी वंचित कर दिया जाय? वर्णव्यवस्था में धीरे-धीरे विकार आते रहे और उसकी प्रतिक्रिया के संबंध में भी यही हुआ होगा। किन्तु ज्ञात-इतिहास में भगवान् महावीर ही प्रथम ज्योतिर्धर है, जिन्होंने वर्णव्यवस्था की विकृति के विरुद्ध प्रबल प्रतिक्रिया का सूत्रपात किया और उसके मूल स्वरूप की ओर इंगित किया। उन्होंने बतलाया—

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
कम्मुणा वेसिओ होइ, कम्मुणा हवइ सुद्दओ॥

अमुक जाति की माता के उदर से जन्म लेने के कारण ही कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य या शूद्र नहीं होता, ब्राह्मण अथवा शूद्र होना तो उन-उन कर्तव्य कर्मों पर निर्भर है। अध्ययन—अध्यापन आदि ब्राह्मण-कार्यों को करनेवाला ब्राह्मण

और आचारहीन हो, पवित्र ही है और अमुक वर्ग की सन्तान, चाहे उच्च आचार से सम्पन्न एव सुसंस्कृत हो, अधम ही है। साथ ही एक वर्ग की उन्नति और प्रगति के समस्त द्वार अवरुद्ध कर दिये गये और उन्हे शास्त्राध्ययन तक के अधिकार से वचित कर दिया गया। ऐसे-ऐसे विधानो को परिपुष्ट करने के लिए विपुल साहित्य की सृष्टि की गई जिसका प्रभाव अद्यावधि विद्यमान है।

जहाँ तक वर्णव्यवस्था के मूल ध्येय का सबंध है, जैन परम्परा उससे असहमत नही है। कोई भी लौकिक विधि-विधान, जिससे व्यक्ति या समाज के समीचीन विश्वास या सदाचार का विघात न हो, जैन परम्परा के लिए निषिद्ध नही है। जैनाचार्यो की स्पष्ट घोषणा है--

सर्वं एव हि जैनानां, प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्नो, यत्र नो व्रतदूषणम् ॥

जो सम्यग्दर्शन में बाधक नही है और जिससे व्रत दूषित नही होते हैं, ऐसे सभी विधि,विधान जैनो के लिए प्रमाण है।

किन्तु वर्णव्यवस्था ने जो विकृत रूप ग्रहण किया वह किसी भी निष्पक्ष और विचारणीय व्यक्ति को सन्तुष्ट नही कर सकता था। कोई भी समभावी विचारक यह सहन नही कर सकता कि दुर्गुण सद्गुणो पर हावी हो जाएँ और अहंकार धर्म पर विजय प्राप्त कर ले। यह भी कैसे बर्दाश्त किया जा सकता है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच ऐसी दीवारे खडी कर दी जाएँ कि जिनसे मानव-जाति का एक वर्ग हीन समझा जाय और अपनी आध्यात्मिक प्रगति से भी वंचित कर दिया जाय? वर्णव्यवस्था में धीरे-धीरे विकार आते रहे और उसकी प्रतिक्रिया के सबध में भी यही हुआ होगा। किन्तु ज्ञात-इतिहास में भगवान् महावीर ही प्रथम ज्योतिर्धर है, जिन्होने वर्णव्यवस्था की विकृति के विरुद्ध प्रबल प्रतिक्रिया का सूत्रपात किया और उसके मूल स्वरूप की ओर इगित किया। उन्होने बतलाया--

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
कम्मुणा वेसिओ होइ, कम्मुणा हवइ सुद्दओ॥

अमुक जाति की माता के उदर से जन्म लेने के कारण ही कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य या शूद्र नही होता, ब्राह्मण अथवा शूद्र होना तो उन-उन कर्तव्य कर्मों पर निर्भर है। अध्ययन--अध्यापन आदि ब्राह्मण-कार्यों को करनेवाला ब्राह्मण

१---वर्ण समाज के चार विभाग है, जब कि आश्रम एक ही व्यक्ति के जीवन के चार विभाग है।

२---वर्णव्यवस्था मे कालिक पौर्वापर्य नही है, जब कि आश्रमव्यवस्था मे है। अर्थात् एक व्यक्ति एक साथ चारो आश्रमो का सेवन नही कर सकता। एक के पश्चात् दूसरे का, इस प्रकार क्रम से ही उनका सेवन किया जाता है।

वैदिक परम्परा में आश्रमो सबंधी विपुल साहित्य है। प्रत्येक आश्रम की चर्या का अपनी दृष्टि के अनुसार वहाँ विस्तृत निरूपण किया गया है। जैन दृष्टि से इस सबध में विचार करने से पूर्व वैदिक परंपरा की कुछ जानकारी करा देना उपयोगी है।

वैदिक परम्परा का मन्तव्य है कि मनुष्य अपने जीवन-काल के चार विभाग कर ले और एक-एक विभाग में एक-एक आश्रम की चर्या का शास्त्रोक्त विधि से पालन करे। जीवन के प्रथम चौथाई भाग में ब्रह्मचर्याश्रम में रहे और अखड ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ गुरु के संरक्षण मे विद्या और कला का अभ्यास करे और अगले जीवन की तैयारी करे।

दूसरे भाग मे दारपरिग्रह करके दाम्पत्यजीवन व्यतीत करे और पितृ-ऋण से मुक्त होने के लिये पुत्र उत्पन्न करे।

तीसरे भाग में, जब वालो मे सफेदी आजाय और पौत्र का जन्म होजाय तब पत्नी को पुत्रो के संरक्षण में छोड कर या वह चाहे तो साथ लेकर वन अंगीकार करे।

चौथे भाग में, विकारो पर पूर्ण नियत्रण प्राप्त करके मोक्षमार्ग की आराधना करे।

मनुस्मृति के विधान के अनुसार चारो आश्रमो का क्रमशः ही सेवन करना चाहिए--

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च, मोक्षमिच्छन् व्रजत्यध ॥

—मनुस्मृति ६, ३७

अर्थात् जिसने गुरुकुल म रहकर वेदो का अभ्यास नही किया, गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यो का पालन करते हुए सेवा आदि यज्ञ नही किये, ऐसा पुरुष यदि मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा करता है, अर्थात् मोक्षधर्म की साधना के लिए चतुर्थ—सन्यासाश्रम अगीकार करना चाहता है तो मोक्ष मिलना तो दूर, उसे नरकगति में जाना पडता है।

जब वह निष्णात होकर वापिस लौटा तो उसने दाम्पत्य जीवन में प्रवेश किया। तदनतर अनुकूल निमित्त मिलने पर ससार से विरक्ति पाकर प्रव्रज्या अगीकार की।

इतना होते हुए भी जैनसाहित्य और जैनपरम्परा आश्रमो के उक्त क्रम को अनुल्लंघनीय नही मानती, जिस पर वैदिक ऋषियो ने बहुत बल दिया है। यदि कोई मुमुक्षु गृहस्थाश्रम मे प्रवेश किये बिना ही और पुत्र उत्पन्न किये बिना ही सीधा प्रव्रज्या अगीकार करता है तो जैन परम्परा के अनुसार वह अधिक सराहनीय है।

जैनागमो मे हमें ऐसे अनेक स्थल मिलते है, जहाँ उक्त वैदिक विचार-धारा का निषेध और विरोध किया गया है।

'उसुयार' नगर के पुरोहित के दो पुत्र विरक्त होकर प्रव्रजित होने की अपने पिता से अनुमति माँगते है। पुरोहित वैदिक धर्म का पडित है। वह कहता है—

इमं वय वेयविओ वयन्ति, जहा न होई असुयाण लोओ।
अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते परिट्ठप्प गिहंसि जाया!
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था॥

उत्तराध्ययन १४, ८-९

अर्थात् सर्वप्रथम वेदो का अध्ययन करो, ब्राह्मणो को भोजन कराओ, स्त्रियो के साथ भोग भोगो और जब पुत्र उत्पन्न हो जाय तब उसे अपना उत्त-राधिकारी बना कर पहले अरण्यक (वानप्रस्थ) बनो और फिर मुनि (सन्यासी) बनना, क्योकि वेदशास्त्र के ज्ञाताओ का वचन है कि पुत्रहीन को लोक अर्थात् शुभगति की प्राप्ति नही होती। "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति"।

पाठक देखें कि यहाँ पुरोहित के मुख से वही तथ्य प्रकट किया गया है, जिसका उल्लेख हम मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति के आधार पर पहले कर चुके है। इस पूर्वप्रश्न का शास्त्रकार पुरोहित पुत्रो के मुख से क्या उत्तर देते है, यह भी देखिए--

वेया अहीया न भवंति ताणं,
भुत्ता दिया निन्ति तमतमेणं।
जाया य पुत्ता न हवंति ताणं,
को णाम ते अनुमन्नेज्ज एवं॥

अर्थात्--वेदो का अध्ययन कर लेने से (संयम और तपश्चर्या का आचरण किये बिना) मनुष्य का त्राण नही हो सकता, उसी प्रकार ब्राह्मण-भोजन करा कर भी अन्धकार से नही बचा जा सकता। पत्नी और पुत्र भी दुर्गति से नही बचा सकते। ऐसी स्थिति में कौन इन सब चीजो का अनुमोदन करेगा? पुरोहित पुत्र कहते है--पिताजी,आप भोग भोगने, और पुत्र उत्पन्न करने के पश्चात् प्रव्रज्या अंगीकार करने का परामर्श देते है, किन्तु कौन गारंटी दे सकता है कि तब तक यह जीवन कायम रहेगा ही? कल का यहां तक कि पल का भी तो भरोसा नही है और आप लम्बे भविष्यत् की योजना प्रस्तुत कर रहे है। ऐसी स्थिति में--

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वऽत्थि पलायणं।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया।

उत्तराध्ययन १४-२७

मौत के साथ जिसकी मित्रता स्थापित हो चुकी हो, अथवा जो मृत्यु के आने पर भाग कर बच सकता हो या जिसे न मरने का परिज्ञान हो गया हो, वही कल पर अवलम्बित रह सकता है।

अभिप्राय यह है कि मानव के जीवन की कोई नियत-मर्यादा नहीं है। प्रत्येक उम्र के मनुष्य मृत्यु के ग्रास बनते, प्रत्यक्ष देखे जाते है। ऐसी स्थिति में जो काम भोगो से विभक्त हो चुका हो और प्रव्रज्या ग्रहण की भावना प्राप्त कर चुका हो, उसके लिए तीन के आश्रमो में कालयापन करना क्यो अनिवार्य हो? जो श्रेयस्कर है और कल करने योग्य है, वह आज अकर्तव्य कैसे हो सकता है? यही जैनदृष्टि का अभिप्राय है।

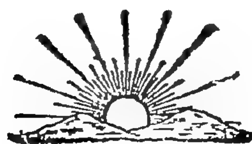
यहाँ एक प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि जब वैदिक ऋषि भी सन्यास (प्रव्रज्या) को सर्वोत्तम धर्म मानते है और भोग को हेय समझते है तो फिर उन्होने पुत्रोत्पत्ति और गृहस्थाश्रम की अनिवार्यता क्यो मानी है? इस प्रश्न के दो उत्तर हो सकते है। प्रथम यह कि वैदिकधर्म में पिण्डदान गृहस्थ का महत्त्वपूर्ण कर्तव्य माना गया है। पुत्र द्वारा प्रदत्त पिण्ड से पितरो की तृप्ति होती है। पुत्र के अभाव में पितरो को पिण्ड नहीं मिल सकता। अतएव पुत्र उत्पन्न करना पितृ-ऋण चुकाना है। दूसरा उत्तर अनुमान पर अवलंबित है। सभव है, भारत वर्ष में महाभारत जैसे युद्ध के कारण पुरुषप्रजा की सख्या में

भारी कमी हो गई हो, जैसी कि प्रथम महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी मे हो गई थी और ऐसी परिस्थिति में राष्ट्र की उस न्यूनता को पूर्ण करने के लिए अथवा किसी काल में अनाथ-सनाथ बढती हुई सन्यासियो की सख्या को और सन्यास ग्रहण की प्रवृत्ति को नियंत्रित करने के लिए इस प्रकार का विधान बनाना पडा हो।

जैनशास्त्रो में ऐसा कोई युगसाक्षेप प्रयत्न दृष्टिगोचर नही होता। वहाँ गृहस्थाश्रम को 'घोराश्रम' कहकर अनुत्साहित करने की युगनिरपेक्ष प्रवृत्ति ही देखी जाती है जो लोकोत्तर शास्त्र की प्रवृत्ति के अनुकूल ही है।

एक प्रश्न और शेष रह जाता है। वह यह कि वैदिक धर्म के वानप्रस्थ और संन्याम नामक दो आश्रमो की तुलना जैन परम्परा में किस प्रकार की जा सकती है? उत्तर यह है कि वैदिक साहित्य में उक्त दोनो आश्रमो की जो चर्या प्रतिपादित की गई है, वह जैन धर्म में प्रतिपादित श्रावक और साधु की चर्या से कई बातो में भिन्न है और उसमें दृष्टिकोण का मौलिक अन्तर भी दिखलाई देता है, तथापि सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उसकी संगति प्रतिमाधारी श्रावक और साधु जीवन के साथ दिखलाई जा सकती है। प्रतिमाधारी श्रावक सासारिक कार्यो से निवृत्त होने पर भी गृहस्थ की कोटि में ही गिना जाता है। इसी प्रकार वानप्रस्थ भी यद्यपि गृह-त्याग कर अरण्य की शरण ग्रहण करता है, तथापि वह यति या प्रव्रजित नही कहलाता। सन्यासाश्रम तो जैनधर्म का साधु-जीवन ही है, यद्यपि दोनो की साधनाविधि एव चर्या में पर्याप्त अन्तर है।

विषय बहुत व्यापक है, अतएव सक्षेप का विचार रखने पर भी कुछ विस्तार हो गया है। आशा है, इससे पाठको को वर्णाश्रम संबधी जैन दृष्टिकोण समझने में सहायता मिलेगी।



साधु-मार्ग—मुक्ति-मंजिल—सिद्धि !

पं० श्री सूरजचन्द्रजी 'सत्य-प्रेमी" (डांगीजी)

मुक्तिमंजिल की सिद्धि करने के लिये अर्थात् सम्पूर्ण स्वातंत्र्यरूप सिद्ध-स्थानकी उपलब्धि के लिये एक ही साधु-मार्ग है, यह निर्विवादरूप से शाश्वत सत्य माना गया है। वह सीधा रास्ता क्या है? इसे जानना, मानना और पालना ही हमारा परम धर्म है।

साधुमार्ग को जानकर उसे मान्य करना और उसीका ध्यानपूर्वक अमल करना ही सम्यक् चारित्र के नाम से प्रख्यात है। वाचकमुख्य उपाध्याय-शिरोमणि अनन्त श्री उमास्वामीजी महाराज के सर्व मान्य मोक्ष-शास्त्रका यह प्रथम सूत्र सर्वत्र प्रसिद्ध है--

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः

अब हमें यह विचार करना है कि क्या जानना? क्या मानना? और क्या पालन करना? जिससे हमारा कार्य सिद्ध हो सके-साधना सफल हो सके।

श्रेय के स्वरूप में निर्ग्रंथ के प्रवचन ही ज्ञेय है, ध्येय है और श्रेय है। इसीलिये निरंतर साधु-मार्ग के लिये उपादेय है। उन्हीं को जानें, मानें और पालें। वचन तो हम सभी बोलते है परन्तु प्रवचन वे ही कहे जा सकते है जो निर्ग्रंथ के हो, जिनके हृदय में रागद्वेष की ग्रंथि है, संग्रह परिग्रह की गांठ है, उनके वचनों का साधु-मार्ग में कोई मूल्य नहीं।

जिनमें राग हो वे दोष नही देख सकते और जिनमें द्वेष हो वे गुण नही देख सकते, गुण और दोष का ठीक ठीक विवेक करने के लिये वीतराग जिनदेव ही एक मात्र समर्थ है। निष्पक्ष निर्ग्रंथ पुरुषोत्तम ही सम्यक् निर्णय करनेवाले शासक है और उनका निर्णय ही साधु-मार्ग कहला सकता है।

'जैनं जयति शासनम्' जिन शासन की विजय ही होनी है। जैन-शासन द्वारा अर्थात् साधुमार्ग द्वारा सभी धर्मों, सभी दर्शनों और सभी समाजोपर ठीक ठीक सुशासन हो सकता है। जो लोग जैन धर्म जैन दर्शन और जैन समाज को अलग समझकर संकुचित भाव फैलाते है वे शासन या न्यायाधीश को वादी, प्रतिवादी या वकीलों के कठघरे में खडा करने का अपराध करते है। जिन्होंने

अपनी इंद्रियों और अपने मनके विकारोंपर विजय प्राप्त किया है—जिन्होंने बुद्धिकी अस्थिरता दूर की है, वे ही दूसरों को बंधन-मुक्त कर सकते हैं। जो खुद बँधा हुवा है वह दूसरों को कभी नहीं खोल सकता।

'मुत्ताण मोअगाण॥'

जो स्वयम् मुक्त हैं वही दूसरों का बंधन छुड़ा सकता है।

कपडों का मैल दूर करने के लिये जैसे साबुन, पानी और धोने की क्रिया आवश्यक है उसी प्रकार मन का मैल दूर करने के लिये भी ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य रूप साधुमार्ग की आवश्यकता है। जिस प्रकार पानी के लिये विना हजारों टन साबुन से भी मैल दूर नहीं हो सकता उसी प्रकार श्रद्धा के विना जिन—प्रवचनों को माने विना हजारों शास्त्रों का प्रवचन सुनने जानने से भी कल्याण नहीं हो सकता। जिस प्रकार विनासाबुन से केवल पानी से ही मैल दूर हो सकता है (चाहे चमक कम ही क्यों न हो) उसी प्रकार विना शास्त्र पढे भी सम्यक् श्रद्धापूर्वक आचरण से बंधन छूट सकता है। परन्तु कपडे धोने की क्रिया अनिवार्य आवश्यक है उसी तरह आचरण की सपूर्ण जरूरत है।

अब हम यह सोचे कि साधु-मार्ग का मुकाम क्या है? आखिर पता लिखे विना इबारत बराबर भी हुई तो भी पत्र भ्रमता फिरेगा। उसी प्रकार जब तक हमे यह मालूम नही है कि हमारी साधना का साध्य क्या है? यानी हमें कहाँ पहुँचना है? तब तक हमारा साधुमार्ग भी चक्कर ही समझना चाहिए। उसको 'साधुमार्ग' कहना ही गलत होगा। बिना पतेका भ्रमता हुआ वह पत्र जिस प्रकार डेड लेटर आफिस (रद्दी के सरकारी टोकरे) में जाता है, उसी प्रकार साध्यरूप सिद्धि या मोक्ष के स्वरूप का पता न हो तो साधुमार्ग की सारी क्रियाएँ रद्द कहना ही ठीक होगा, इसलिये पहले हम निर्णय करले कि हमारी मजिल-मुक्ति क्या वस्तु है, जिसे हमें प्राप्त करना है।

मुक्ति का अर्थ है—छूटना। किससे छूटना? हमको किसने बाँधा है? क्या सचमुच हम बँधे हुए हैं? कहाँ से बँधे हुए है? कबसे बँधे हुए है? यह सब साफ साफ समझे विना कैसे छूटे? किससे छूटें? किस क्रम से छूटें यानी कब छूटें?

अनन्त सन्तो के अनुभवों में से हमें यह एक ही आवाज सुनाई दे रही है कि शुद्ध पारमार्थिक परम निश्चय की दृष्टि से आत्मा शुद्ध-बुद्ध और मुक्त हीं

है। स्वरूपत उसमे बन्धन है ही नही, फिर भी व्यावहारिक पर्याय दृष्टि मे हम स्वय अपनी मिथ्यात्वमयी वैभाविक धारणा से अनादिकाल से बद्ध है। उस मिथ्यात्वमयी धारणा से छूटना ही सम्यग् दर्शन है। जो साधुमाग में प्रथम कदम है। वीतराग जिनदेव के शासन मे द्रव्य, गुण और पर्याय का विचार करके सिद्धान्त का निर्णय करना ही मुक्ति–मजिल और आगे बढना है। गुण और पर्याय के बिना द्रव्य का अस्तित्व ही सिद्ध नही हो सकता। यहां तक कि द्रव्य की सत् सिद्धि के लिए नास्तित्वगुण को भी स्वीकार करके ही यथार्थ बोध किया जा सकता है।

परिवर्तन के बिना एक क्षण के असख्यातवे जितने समय के लिये भी द्रव्य की स्थिति नही मानी जाती अर्थात् समय-समय निरतर अवस्याओ का क्रमिक विकास शाश्वत है। गहना टूटनेपर भी सोना ध्रुव रहता है, पर उसकी अवस्थाएं बदलती ही रहेगी। कडा तोडकर कुडल बनाया गया, परन्तु सोने को छोड़कर कडा और कुडल ये दोनो ही कुछ नही। कडा और कुडल तो आप ले ले और सोना हमें दे दें ऐसा कभी हो सकता है ? कुडल की उत्पत्ति हुई, कडे का नाश हुआ, पर कडे और कुण्डल के उत्पाद और व्यय के समय भी सोना तो ज्यो का त्यो रहा। उसी प्रकार हमारी आत्मा व्यावहारिक पर्याय दृष्टि से अनेक अवस्थाएँ धारण करने पर भी सदा परम स्वभाव में नित्य अवस्थित है।

इस प्रकार ध्रुव आत्मस्वभाव की तरफ दृष्टि डालने से ही हम सार्वत्रिक और सार्वकालिक सब तरह से सपूर्ण निर्भय होकर मुक्ति–मजिल की तरफ सतत प्रगति कर सकते है।

रात होनेपर क्या कभी हम रोते है ? नही। क्यो कि प्रात काल सूर्योदय होने वाला है–यह हमें पूरा विश्वास है। इसलिये काम करना हो तो दीपक लगा लेते है और सूर्योदय की प्रतीक्षा करते है, उसी प्रकार दुख आने पर या मोक्ष मार्ग मे विघ्न की अवस्था आने पर शक्ति के अनुसार पुरुषार्थ का दीपक जलाना चाहिये और यह विश्वास करना चाहिए कि आनन्द का सूर्योदय निश्चय होनेवाला है। क्योकि कोई भी पदार्थ एक अवस्था मे सदा रहता नही है। जिस प्रकार आंखोका नित्य नया शृगार रुचिकर होता है, उसी प्रकार द्रव्य की भी नित्य नई पर्याय रुचिकर होनी चाहिये। उन पर्यायो में अरुचि होना ही राग–द्वेष का जनक है। भोजन के समय केवल मधुर ही मधुर रुचिकर नही होता, उचित

परिमाण में खट्टा, खारा और तीखा भी—यहाँ तक कि ठीक तरह से बनाया हुआ कड़ुए स्वभावका करेला भी अच्छा लगता है, उसी प्रकार आत्मा की पर्यायो में भी एक ही तरह की पर्याय सदा सुन्दर नहीं लग सकती।

एक ही रसका नाटक कभी पसन्द नहीं किया जा सकता। नाटक में करुण रस भी अच्छा माना जाता है। करुण रस का अभिनय देखते-देखते कभी-कभी हम रोने लग जाते हैं। हास्यरस मे हृदय हिलता है—शृगार रस में दिल हिलता है, वीर रस में चित्त फलता—फुलता है और शान्त रस में मन मिलता—जुलता है किंतु करुण रस में अन्त करण पर इतना असर होता है कि मानो वह निचुड रहा हो और उसका सारा मैल धुल रहा हो। नाटक के बाहर आने पर हम कहते है कि आज तो इतना अच्छा अभिनय देखा कि रोना आ गया। उसी प्रकार निर्लिप्त शुद्ध-बुद्ध मुक्त शाश्वत आत्मदृष्टि करने पर घोर से घोर विपत्ति की अवस्था में भी करुण रसामृत के पान का आनन्द लिया जा सकता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण अवस्थाओ में आनन्द लेते हुए आत्मा के त्रैकालिक मुक्त स्वभाव पर दृष्टि जम जाय तो परम सतोष जागृत होता है और धीरे-धीरे निर्मोहता, कैवल्य और सिद्धि की परम शुद्ध अवस्था भी प्रकट हो सकती है।

लिखे हुये अक्षर पोछने से उनका अर्थ पोछा जा सकता है ? नही। इसी प्रकार पर्यायो का उत्पाद व्यय होते रहने से क्या मूल द्रव्य का नाश किया जा सकता है ? कदापि नही।

राजा सोया क्या और जागा क्या ? प्रजा के काम उसकी सत्ता में ही चलते हुये कहलाएँगे, उसी प्रकार आत्मा स्वभाव में रहा तो क्या और विभाव में रहा तो क्या ? उसकी सत्ता के विना कभी नहीं चल सकता। अगर आत्मा अपने शाश्वत स्वभाव को जानता मानता रहे तो उसका विभाव भी वैभव कहला सकता है।

योगेश्वर श्रीकृष्ण की दृष्टि निरंतर त्रैकालिक आत्मस्वभाव को ही जानती-मानती थी, इसलिए उनका सारा विभाव भी वैभव ही कहला रहा है, उसी प्रकार हम भी सम्यग्दृष्टि बनकर अपने शाश्वत मुक्त स्वभाव का भान रखेंगे तो वर्तमान पर्याय की विभाव-दशा में भी वैभव का मजा ले सकेंगे और जन्म—मरण करते हुए भी आनद घनजी के स्वर में स्वर मिलाकर गा सकेंगे——

"अब हम अमर भये न मरेंगे"
या कारण मिथ्यात्व दियो तज अब देह ना धरेंगे।

यही भावना दृढ हुई-सम्यक् हुई–निर्मल हुई कि मुक्ति मंजिल की तरफ मुह हो गया। फिर आप शक्ति के अनुसार जितनी जल्दी चलेंगे, उतनी जल्दी पहुँच सकेंगे'

दूसरा कदम है क्रोध, मान, माया और लोभ के त्याग का विशेष अभ्यास। इसे सागार धर्म कहा जाता है। परिग्रह का सर्वथा त्याग तीसरा कदम है, जो साधुमार्ग में अनगार धर्म कहलाता है। मोह का सर्वथा त्याग चौथा कदम है, जो वीतराग धर्म कहलाता है। अज्ञान का सर्वथा त्याग पाँचवा कदम है जो कैवल्य धर्म कहलाता है, और जब यह साक्षात् अनुभूति हो जाती है कि जड तत्त्वो के साथ हमारा कोई वास्तविक सम्बन्ध नही है, तब छठा कदम धरते ही अयोगी अवस्था आ जाती है और सातवे कदम में मन, वचन और काया की सारी प्रवृत्तियाँ शान्त हो जाती हो तो मुक्ति की मंजिल प्राप्त हो गई।

हमे अपना विवेक कर लेना चाहिए कि हम कहाँ है ? मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग रूप पाँच आश्रवो का परित्याग ही मुक्ति है। झूठी समझका त्याग मिथ्यात्व का त्याग है। दुराचार का त्याग अव्रत का त्याग है असावधानी का त्याग प्रमाद का त्याग है। राग–द्वेष का त्याग कषाय का त्याग है और अन्त मे मन, वचन, काया की सम्पूर्ण प्रवृत्तियो का त्याग योग का त्याग है, जो आत्मा की शुद्ध-बुद्ध पर्याय है।

इस तरह हमे गुणस्थान-क्रम की अन्तिम अवस्था मे योग का त्याग कही नही बताया। विषय, कामगुण कषाय और प्रमाद आदि का त्याग तो स्थान-स्थान पर बताया गया है, पर भोग के त्याग का विधान कही नही। श्री महावीर प्रभु ने अपने उत्तर काल के उत्तर–अध्ययन मे "सल्ल कामा विस कामा कामा आसी–विसोवमा" शब्द फरमाये है, पर "सल्ल भोगा विसं भोगा" आदि कहाँ कहा ? जैन–शासन मे भोग के अन्तराय का त्याग तो स्पष्ट कहा गया है, क्योकि भोग मे बाधक अन्तरायकर्म के नाश हुए बिना कैवल्य की प्राप्ति नही हो सकती। सिद्धि स्थिति में यानी मुक्ति की मंजिल पर अनन्त काल तक स्वतंत्र आत्मा का अचिन्त्य अतीन्द्रिय भोग चलता है। यह भौतिक देह भी हमारे उस भोग में अन्त–राय रूप होने से उसके दूर करने की विधि बताई है। सासारिक अवस्था में शारीरिक आवरण रहने से हमारे अपने सहज स्वाभाविक भोग में विघ्न पडते है। मीराबाई कहती है :—

पचरंग चोला पहन सखी।
मै झिरमिट रमवा जाती।
झिरमिट में मारो मोहन मिलियो,
खोल रमूं तन–गाती ॥
मै गिरिधर के रंग राती ॥

शुद्ध आत्मस्वभाव के भोगो में रमण करना चाहनेवाली मीरा तन रूपी गाती (आवरण) को सहन नही कर सकती और यही चाहती है कि मोह–रहित आत्मस्वरूप "मोह–न" मे अन्तकाल तक रमण करती रहूँ। वह भक्ति की ऐसी मदिरा पीना चाहती है कि फिर कभी होश मे ही न आये। इसी भोग को शास्त्रो में आत्मरति, आत्मक्रीडा और आत्मानन्द के पवित्र नाम से कहा जाता है।

कोई तो सखी मद पी-पी माती मै बिनपियां ही माती।
भक्ति-भटीको मै मद पीधो, छकी फिरूँ दिन-राती ॥
पीना हराम है न पिलाना हराम है।
पीने के वाद होश में आना हराम है ॥

भक्ति की भट्टी मे से निकली हुई यह मदिरा पीकर फिर परतन्त्रता की इच्छा नही होती, क्योकि सच्चा भक्त कभी परमआत्मा के भोग से विभक्त नहीं हो सकता। फिर उसे भोग के लिए कहीं भटकना नही पडता–आवागमन नहीं करना पडता। मीरा कहती है––

कोई का पिया परदेशबसत है,
लिख लिख भेजे पाती।
मेरो पिया मेरे हृदय बसत है,
नही कहिं आती-जाती। मै गिरिधर के रंगराती ॥

अब आप समझ सकते है कि आत्मतत्त्वज्ञानी भक्तजन किस प्रकार का उन्नत भोग चाहते है। इसलिए अगर अन्तिम मंजिल मुक्ति में ऐसे आनन्द का भोग अनन्तकाल तक न रहे तो किस बुद्धिमान् का उस ओर आकर्षण हो सकता है? श्री हेमचन्द्राचार्य देव ने वैशेषिको की मुक्ति का खण्डन करते हुए सिद्ध अवस्था के अनन्त भोग का यत्र तत्र सुन्दर वर्णन किया है।

जब एक व्यक्ति के साथ कुछ समय के लिये निरावरण होकर मिलने पर हमें इतने आनन्द का भोग! तो फिर अनन्त द्रव्यो के अनन्तानन्त गुणो की

सपूर्ण पर्यायो के साथ युगपत् अनन्तकाल तक निरावरण रूप से मिले रहने की शुद्ध सिद्ध पर्याय प्राप्त करने पर कितने अधिक आनन्द का भोग मिलता होगा? इसकी कल्पना से ही हमारा मन आनन्द से भर जाता है और उसके लिये हम विषय, कषाय, प्रमाद और योग आदि के जरिये प्राप्त होने वाली सुविधाओ का बलिदान करने के लिए क्यो न तत्पर होगे? अज्ञान अवस्था में सुषुप्ति के समय विषय, कषाय और अहंकार के दबने मात्र से हमे रात्रि में इतनी शाति का भोग मिलता है कि जिसके बल पर हम जागृति मे उत्साहपूर्वक कर्त्तव्य कर्म कर सकते है तो ज्ञान अवस्था में विषय कषाय आदि के सर्वथा निर्मूल होने पर मुक्ति-मंजिल के सम्पूर्ण सुखोपभोग को प्राप्त करने के लिए ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप साधु मार्ग मे तत्परतापूर्वक बढने के लिए उमंग के साथ शुद्ध कर्त्तव्य क्यो न करेगे? अवश्य करेगे।

मैं अपने हृदयसरोवर की समस्त तरंग–मालाओ को लेकर यह भावना अभिव्यक्त करता हूँ कि हम सब साधुमार्ग को जानकर–मानकर यथाशक्ति उस पर चले, बढ़ें। विघ्न आयें तो घबराये नही और धीरे–धीरे अपने मजिले मक–सूद मुक्ति को उपलब्ध करे। साधु का रास्ता और सिद्धि का मुकाम–साधुमार्ग और सिद्धिस्थान सब के लिये सर्वत्र सदा सर्वथा परम मगल है।



काल एक विश्लेषण

डॉ मोहनलाल मेहता, एम ए पी एच डी, शास्त्राचार्य

जैन दार्शनिको ने जिस प्रकार गति और स्थिति के माध्यम के रूप में धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय रूप स्वतत्र द्रव्यो का अस्तित्व स्वीकार किया उसी प्रकार परिवर्तन के लिए भी उन्होने काल का माध्यम स्वीकार किया। जीव आदि में गति एव स्थिति की योग्यता स्वभावत होते हुए भी ये धर्म एव अधर्मरूप माध्यमो की सहायता से ही गति एव स्थिति रूप क्रियाएँ करते है। इसी प्रकार वस्तु में परिवर्तन की योग्यता होते हुए भी काल की सहायता से ही उसमे परिवर्तन होता है। इस दृष्टि से जैन दार्शनिको के अनुसार अन्य द्रव्यो की भाँति काल भी एक स्वतंत्र द्रव्य है।

परिवर्तन का जो कारण अथवा माध्यम है उसे काल या अद्धासमय कहते है। वस्तु अपने स्वरूप का परित्याग किये विना प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती है। यह परिवर्तन पदार्थ का निजी स्वभाव है। इस स्वभाव को कार्य रूप में परिणत करने में काल सहकारी कारण का काम करता है। कालकृत इस प्रकार के परिवर्तन को जैन ग्रन्थकारो ने वर्तना शब्द से निर्दिष्ट किया है। तत्त्वार्थ-राजवार्तिककार ने प्रत्येक द्रव्य और पर्याय की प्रतिक्षणभावी स्वसत्तानुभूति को वर्तना कहा है। इस वर्तना का कारण काल है।

जैनदर्शन के अनुसार काल असख्यात प्रदेश–प्रमाण है। ये प्रदेश अथवा अणु एक अवयवी के प्रदेश (अवयव) नही, अपितु स्वतंत्र रूप से अवयवी है। इसीलिए काल को धर्मास्तिकाय आदि की तरह अस्तिकाय न कह कर अनस्ति–काय (केवल काल अथवा अद्धासमय) कहा गया है। आकाश (लोकाकाश) के प्रत्येक प्रदेश (अवयव) पर एक–एक काल–प्रदेश रहा हुआ है। जैसा कि द्रव्य-सग्रहकार ने स्पष्ट कहा है—रत्नो की राशि की तरह लोकाकाश के एक–एक प्रदेश पर जो एक–एक द्रव्य-स्थिति है वह काल है। वह असंख्यात-द्रव्य प्रमाण है।

इससे यह फलित होता है कि काल एक द्रव्य नही, अपितु असख्य द्रव्य है। वर्तना की दृष्टि से यद्यपि काल के सभी प्रदेशो (द्रव्यो) का एक ही स्वभाव है, तथापि अस्तित्व की दृष्टि से वे परस्पर भिन्न एव स्वतंत्र है। दूसरे शब्दो में वे सब मिलकर एक अवयवी का निर्माण नही करते। जिस प्रकार उपयोग सभी आत्माओ का लक्षण अथवा स्वभाव है किन्तु अस्तित्व की दृष्टि से वे परस्पर

भिन्न एव स्वतंत्र है। उसी प्रकार वर्तनालक्षण का साम्य होते हुए भी प्रत्येक काल भिन्न-भिन्न है। यह काल अणुरूप है, अस्तिकायरूप नही।

काल को अस्तिकायरूप न मानकर अणु रूप मानना कहाँ तक युक्तिसंगत है, इस पर जरा विचार करे। काल को अणुरूप सिद्ध करने के लिए एक हेतु यह दिया जा सकता है कि वस्तु के प्रत्येक अवयव (प्रदेश अथवा अंश) का परिवर्तन स्वतंत्र है अत काल का प्रत्येक अणु स्वतन्त्र है। इस हेतु में दो दोष है। पहला यह कि अवयवो मे स्वतन्त्र परिवर्तन के होते हुए भी जब वस्तु एक अवयवी के रूप मे रह सकती है तो कालाणु एक अवयवी (अस्तिकाय) के रूप में क्यो नही रह सकते? दूसरा यह कि परिवर्तन प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक अश (प्रदेश) में होता है। पुद्गल द्रव्य के अनन्त प्रदेश है। इसी प्रकार सभी आत्माओ के अनन्त प्रदेश है। ऐसी स्थिति मे असख्यात-प्रदेश-प्रमाण वाला काल अनन्त प्रदेशो में परिवर्तन कैसे कर सकता है? जहाँ तक असख्य प्रदेशवाले आकाश (लोकाकाश) मे अनन्त प्रदेशो के रहने का प्रश्न है, यह बात किसी तरह मान भी ली जा सकती है कि परस्पर व्याघात के बिना दीप-प्रकाश की भाँति उनका रहना सभव है। परिवर्तन ऐसी चीज नही कि एक कालाणु एक से अधिक अश मे परिवर्तन कर सके। इस दोष को दूर करने के लिए यह माना गया है कि काल आकाश (लोकाकाश) के प्रत्येक प्रदेश पर स्थित है न कि आत्मा या पुद्-गल के प्रत्येक प्रदेश पर जब आकाश (लोकाकाश) के प्रत्येक प्रदेश पर। कालाणु का अस्तित्व माना गया तो फिर आकाश की तरह काल को अस्तिकाय (अवयवी) क्यो नही माना गया? यदि यह कहा जाय कि आकाश का धर्म अवकाशदान (स्थान देना) है और अवकाश मे कोई भेद या विभिन्नता नही होती। काल का धर्म वर्तना-परिवर्तन है। इसमें अत्यधिक विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। यदि काल आकाश की ही भाँति अस्तिकाय (अखड अवयवी) होता तो परिवर्तन मे विभिन्नता दृष्टिगोचर न होती। इसीलिए प्रत्येक कालाणु स्वतन्त्र रूप से सत् है। यह समाधान युक्तियुक्त प्रतीत नही होता। परिवर्तन की विभिन्नता अथवा विलक्षणता का कारण काल न होकर पदार्थ स्वय है। विभिन्नता अथवा विलक्षणता से काल का कोई सम्बन्ध नही। यह तो पदार्थ का निजी धर्म है। जैसे पदार्थों में विलक्षणता है वैसे ही इनके परिवर्तनो में भी विलक्षणता होती है। यह विलक्षणता काल को अस्तिकायरूप मान कर भी सिद्ध की जा सकती है। विश्वास है, इस विश्लेषण से जैन विद्वानो को इस दिशा में कुछ विचार करने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

पुरुषार्थ

लेखक—शान्तिलालजी जैन वकील शुजालपुर

इस परमवैज्ञानिक उपग्रहयुग में पुरुष अपने सभी काम यत्रो के द्वारा करके अपने लिए केवल अकर्म—स्थिति उत्पन्न करने का ही प्रयास करता प्रतीत होता है। जैन सिद्धात-समत काल—विभाग में जो युगलिया—काल था वह भी अकर्म काल ही था। किंतु प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या आज का विज्ञान उसी ओर प्रयास कर रहा है ? विश्व में खनिज पदार्थो का दिनो-दिन ह्रास होता जाता है। प्राचीन—काल में स्वर्णमय नगर——लंका और द्वारका——के वर्णन तो अवश्य पढने को मिलते है किंतु आज का विज्ञान अपने विकास की उन्नत अवस्था में भी कुछ लोह नगर ही निर्मित कर सका है। स्वर्ण-नगर तो स्वप्न ही है। क्या इसका कारण यह नही है कि निरतर विकासशील मानव अपना मूल गुण मनुष्यत्व खो बैठा है और वह केवल भौतिक वस्तुओ के पीछे लक्ष्यहीन होकर अपने निजगुण को भूल कर चक्कर लगा रहा है ? मानव की इसी अन्तहीन खोज के लक्ष्य को विश्राम देने के लिए इस संसार में महापुरुषो का प्रादुर्भाव होता आया है। प्रत्येक महापुरुष की अपनी स्वतत्र परिधि होती है और उसी के आस पास उसके द्वारा निर्धारित सत्यान्वेषण के मार्ग की वृत्तवीथिका प्रकाशमान रहती है। विश्व के निराश मानव को अपनी शक्ति से मुक्त कराने का कुछ महापुरुष मानव की चेष्टा और पात्रता की सीमा का अंकन किये बिना पात्र के अपनी शरण में आने मात्र से सर्व पाप—मुक्ति का विश्वास दिलाते हुए "मामेक शरणं व्रज" का उपदेश देते है। कही कही अपनी तपस्या और साधना की शक्ति से अथवा अपनी योगसाधना की शक्ति का दान करके कुछ व्यक्तियो को अक्षय कल्याण प्राप्त कराते कहे गये है किंवा शक्तिमान के द्वारा—किसी समर्थ गुरु द्वारा किसी पात्र को शक्ति—सपन्न किये जाने की बात भी कभी-कभी सुनी गई है।

ये समस्त बाते कतिपय भावुक मनुष्यो पर महान् आत्माओ द्वारा की गई कृपाविशेष के उदाहरण हो सकते है, किंतु जहाँ सामूहिक कल्याण और सामूहिक श्रेयस् के अनुसधान का प्रश्न उत्पन्न होता है वहाँ प्राय सभी धर्मो में केवल एक ही बात सुनाई पडती है कि मनुष्य को स्वय अपने आप ऊँचा उठने और

विकास करने की प्रवृत्ति जगानी होगी। यहाँ विचारणीय बात यह हो जाती है कि यदि प्रत्येक मनुष्य को अपने विकास के लिए अपना ही प्रयास करना है तो भगवत्कृपा, अकारणदया, और करुणा-सागरता की जो विशाल मनोरम कल्पना है क्या उसका सहारा लेकर मनुष्य आगे बढ सकता है? या उसे अपने ही पैरोपर खडे होकर ज्ञानमार्ग पर चलना होगा? ज्ञानमयी भक्ति और भक्ति मय ज्ञान में किस को आधार मानकर मनुष्य आगे बढ़ सकता है? यह प्रश्न चिर-काल से चिन्तन का विषय रहा है। जैन सिद्धात का मूल मंत्र है "पढम णाण"। बिना ज्ञान के मुक्ति का मार्ग खुल नही सकता। निरक्षर बालक जब सर्वप्रथम बोलना सीखता है तब उसकी वाणी अज्ञानमयी होने के कारण न तो स्वयं उस बालक द्वारा अभिप्रेत अर्थ का बोध कराती है और न उस बालक को ही अज्ञान के कारण अन्यजनो के द्वारा निगदित वाक्याशो के अर्थ की प्राप्ति ही होती है। अपने अभीष्ट आशय को प्रगट करने की और अन्योक्त वाक्यो के आशय को ग्रहण करने की उत्कट अभिलाषा---भक्ति होते हुए भी ज्ञान के अभाव में वह सभव नही होती है। इसी प्रकार सम्यक्ज्ञान के अभाव के कारण ही विज्ञा-नमय---विशेष ज्ञानी यह विश्व कल्याणकर और अकल्याणकर मार्ग का चयन करने में अक्षम होने से उपग्रह-युग में प्रवेश कर गया है और अपने उस लक्ष्य को भूल गया है जिसकी ओर महापुरुष चिरकाल से इंगित करते रहे है।

जैन सिद्धात में इस द्वद्व को मिटाने का स्पष्ट निर्देश किया गया है। जीव द्वारा जो अनादिकाल से कर्म—बध होता आया है उसको पूर्णतया भोगे बिना अथवा पाप और पुण्य हिसाब का चुकता हुए बिना जीव आवागमन से मुक्त नही हो सकता, न वह निर्बन्ध ही हो सकता है। इस विशिष्ट सिद्धात के आधार पर जो जैन सिद्धात की इमारत खडी है वह अडिग है। विश्ववंद्य भगवान् महा-वीर स्वामी के निर्वाण के समय स्वयं देवराज इंद्र ने आकर जब उन से प्रार्थना की कि वे अपना आयुष्य दो घडी कम करले तो तीर्थंकर महाराज ने स्पष्ट निषेध करते हुए "न भूतो न भविष्यति" फरमाया और कहा कि चाहे भस्म-ग्रह का प्रभाव कुछ भी क्यो न हो? कर्म-प्रभाव को मिटाया नही जा सकता। जब यह अविचल सिद्धात है कि कर्मों का लेखा-जोखा जीवात्मा को स्वय अपने ही प्रयास से बराबर करना पड़ता है, तब किसी तपस्वी द्वारा अपनी तपस्या के फल का दान करने से या किसी महान् आत्मा की कृपा से मोक्ष प्राप्ति की बात सहज ही असमजस में डाल देनेवाली हो जाती है। फिर भी किसी की

भी आस्था को चुनौती दिये विना यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि अपवाद स्वरूप यदि किसी कृपाविशेष से कोई महत्कार्य सपादित भी हो जाए तो भी समष्टिगत जो कर्म—विपाक का अविचल नियम है वह अबाध है और उसमे किसी व्यत्यय का अवकाश नही है। डार्विन ने मनुष्य का विकास वानर से सिद्ध करने का प्रयास अवश्य किया किन्तु प्रत्यक्ष में किसी वानर को मनुष्य-रूप में परिवर्तित होते देखा नही जा सका। कुछ संप्रदायो में तपस्या के फल दान करने की बात सुनाई पडती है, अपने कर्म—फल का दान करने का विधान भी कुछ संप्रदायो मे विहित है किन्तु उसका सामजस्य शास्त्रसमत तत्त्वो से बैठाया जा सकना दुष्कर प्रतीत होता है। निराश मानव को भावप्रवण बनाने मे वह सहायक हो सकता है किन्तु उसका उपयोग इतना हो सकता है कि एक बार अभितप्त शप्त मानव शरण में आकर अपना उद्धार करने की ओर अग्रसर होने को उद्यत हो जावे और ऐसी तत्परता प्राप्त होने के बाद पुनः अपने कर्मनाश के प्रयास की ओर अग्रसर हो। जैन सिद्धात में भी चार शरणो की इसी लिए व्यवस्था की गई है। इस प्रकार किसी भी संप्रदाय की दृष्टि से विचार किया जावे, इसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना पडता है-चाहे संत कृपा का आश्रय हो चाहे भगवत् कृपा का, जीव को कर्मबन्ध से छुटकारा पाने के लिए स्वयं ही प्रयास करना पड़ता है। रेशम का कीडा अपने ही आस-पास अपने शरीर के तत्त्व से जाल बुनता है और स्वयं उसमें ही बंध जाता है। उस जाल को स्वय ही काटकर उसे बाहर आना पडेगा। अन्य कोई उसे लाने में समर्थ नही है। इसी प्रकार जीव को अपने ही प्रयास से अपने कर्मबधो का छेद करना होगा। सत-प्रवर गजसुकुमालजी को भगवान् आरिष्टनेमी की शरण में जाकर भी और भिक्षु की सर्वोत्कृष्ट प्रतिमा अगीकार कर के भी ९९ लाख भवपूर्व के अपने उपस्थित कर्म को भोगना पडा था। यह घटना इस अनुल्लंघ्य सत्य का स्पष्ट प्रमाण है। खदक मुनि और गजसुकुमालजी के कष्टो को मिटाने के लिए क्या तपस्या के अथवा सुकृत के फलो का दान करनेवालो की कमी हो सकती थी? क्या स्वय श्रीराम सीताहरण को टालने में असमर्थ थे? क्या श्रीकृष्ण द्वारका का नाश रोकने में असमर्थ थे? तब "मामेक शरणं व्रज" का उद्घाष करनेवाले स्वय क्यो कर्मबधो के अनिवार्य नियम से बच न सके? इसी कारण जैन सिद्धात के विशाल इतिहास में तथा विशद साहित्य में एक भी उदाहरण इस बात का नही मिलता है कि किसी तपस्वी, अथवा महापुरुष ने अपनी तपस्या के पराक्रम से किसी जीव के

कर्मबध—छेदन मे सहायता की हो। सतो का और महापुरुषो का जीवन सूर्य अथवा सघन वृक्ष के समान होता है और उसका प्रकाश और छाया सब को समान रूप से मिलता है। समदृष्टि महात्मा लोग किसी विशिष्ट जीव को लाभान्वित करके अन्य जीवो को वचित कैसे कर सकते है? इसीलिए जैन सिद्धात केवल आत्मा को ही कर्ता और अकर्ता मानता है **"अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य"** (उत्तराध्ययन सूत्र) आत्मा ही मित्र और अमित्र होती है और आत्मा ही सुप्रवृत्ति और दुष्प्रवृत्ति में लीन होती है। ईश्वर को केन्द्रबिन्दु मान कर उस पर कर्तृत्व का आरोप कभी नही किया गया। इसीलिए जैनधर्म ज्ञानमयी भक्ति द्वारा पुरुषार्थ करके स्वय परमात्मपद-प्राप्ति का मार्ग है। आत्मा के अतिरिक्त किसी विशिष्ट परमात्मा के द्वारा किसी प्रकार की कृपा द्वारा परम पद प्राप्ति को इस सिद्धात में इसीलिए प्रश्रय नही दिया गया है। यही आत्म-जागृति-मूलक धर्म है।

आत्म-जागृति पर विचार पहुँचते ही एक प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि सोया कौन है? और जगानेवाला कौन है? जैन सिद्धात की उपरोक्त गाथा के अनुसार आत्मा किस की मित्र और किस की अमित्र है? निश्चय ही ये सब सापेक्षिक शब्द है। जीव विषय—कषायो के कारण न केवल सोया ही हुआ है अपितु मोह के कारण मूर्च्छित है और ज्ञान तथा दर्शन की प्राप्ति में अन्तराय-भूत निगूढ पूर्वकर्मों के कारण स्वय जागृत होने मे असमर्थ है। जीव को सहज मित्र आत्मा की सहायता प्राप्त होने देने में बाधास्वरूप कर्मजाल ज्ञान तथा दर्शन को आच्छादित-आवृत कर रखते है और जीव अपने बंधनो का छेदन करने मे विषय—विष द्वारा मुग्ध होकर निश्चेष्ट रहता है। जब तक इस मोह-निद्रा से जागृत होने का सुअवसर दृढ़तापूर्वक झपट लेने को उसकी प्रवृत्ति न हो, वह उसी प्रकार अकर्म कर्ता रहता है जैसे गर्भस्थ शिशु। गर्भ के बाहर आने तक बालक न हाथ हिला सकता है, न शब्द कर सकता है, न अन्य कोई क्रिया ही कर सकता है। कषायो के अय. पिड में जकड़ा हुआ जीव मोह-निद्रा के वशीभूत हो अपने वास्तविक कर्तव्य के प्रति पूर्णतया अचेत होकर सोता है। सद्गुरु के उपदेश तथा पुण्य का उदय ही उसे मोह-निद्रा से जागने का अवसर देते है। यहीं से उसकी जागृति प्रारभ होती है, किन्तु वह आत्म-जागृति नही होती। सद्गुरु के उपदेश केवल सोते हुए व्यक्ति के मुँह पर जगाने को मारे गए ठडे पानी के छीटो के समान होते है। उन से वह जीव जाग ही जायेगा' यह नही कहा जा सकता। भगवान्

महावीर स्वामी का उपदेश सुन लेनेवाले सभी प्राणी न तो मोक्ष ही गये न सभी साधु ही हुये, न सभी धर्म-मार्ग में प्रवृत्त ही हुए। जिन जीवो का सस्कारविशेष के कारण अत करण शुद्ध हो रहा था वे अवश्य छीटे पड़ते ही उठ बैठे और यथोपदेश सत्कार्य में प्रवृत्त हुए। जितने अंश तक उन्होंने अपने मित्र आत्मा से सहायता ली उतने अंशो तक उन्हे काम मिला। जिन्होने पूर्णतया कमर कसकर अपनी आत्मा की निर्बन्ध स्थिति प्राप्त करने की ओर पग उठाया उन्हे सफलता मिली और वे शुद्ध बुध्द और मुक्त हो गये। इसी प्रवृत्ति को उत्पन्न करनेवाली विद्या—ज्ञान वास्तविक विद्या कही गई है 'सा विद्या या विमुक्तये, शेष सब अविद्याएँ कही हे। ऐसी विद्या अथवा ज्ञान की प्राप्ति ही समस्त सृष्टि में श्रेष्ठ योनि मनुष्य योनि प्राप्ति का चरम लक्ष्य है। पुरुष होने-मनुष्य जन्म प्राप्त करने का जो हेतु है वह उसी के ही भीतर समाया हुआ है। मनुष्य जाति के भौतिक प्रवृत्ति विकास में इस मूल हेतु का विस्मरण ही स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य अन्तर्मुखी प्रवृत्ति को छोड़कर जब बहिर्मुखी साधनो की ओर प्रवृत्त होता है तब वह अपने कर्मजाल को छेदन करने की अपनी प्रमुख वृत्ति से और अधिक बेखबर होकर सो जाता है और जिन कषायो ने उसे बाध रखा है उन्हे और अधिक पुष्ट करने का उपक्रम करता है। इसके विपरीत ससार के सभी धर्म और संप्रदायो ने एक स्वर से अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के द्वारा कर्मबन्ध को नष्ट करने के प्रयास को मनुष्य जन्म का मूल हेतु बताया है। इसीलिए इस आत्म-जागृति के प्रयास को ही सर्व धर्मो ने पुरुषार्थ कहा है।



स्याद्वाद अर्थात् वीतराग--दृष्टि

(प श्री रतनलालजी संघवी-न्यायतीर्थ-विशारद, छोटीसादड़ी)

दार्शनिक सिद्धान्तो के इतिहास में स्याद्वाद का स्थान सर्वोपरि है । स्याद्वाद का उल्लेख सापेक्षवाद, अनेकान्तवाद अथवा सप्तभगीवाद के नाम से भी किया जाता है । विविध और परस्पर मे विरोधी प्रतीत होनेवाली मान्यताओ का एव विपरीत तथा विघातक विचार- श्रेणियो का समन्वय करके सत्य की शोध करना, दार्शनिक-संक्लेश को मिटाना, अनेकविध धर्मों एव दार्शनिक सिद्धान्तो को मोतियो की माला के समान एक ही सूत्र में अनुस्यूत कर देना अर्थात् पिरो देना ही स्याद्वाद की उत्पत्ति का रहस्य है । नि संदेह जैन-धर्म ने स्याद्वाद सिद्धान्त की व्यवस्थित रीति से स्थापना करके और युक्तिसगत विवेचना करके विश्व-साहित्य में विरोध एव विनाशरूप विविधता को सर्वथा मिटा देने का सफल और स्तुत्य सत्-प्रयत्न किया है ।

विश्व के सार्वदेशिक और सार्वत्रिक मानव-समूह ने सभी देशो मे, सभी कालो में तथा सभी परिस्थितियो में नैतिकता और सुख-शाति के विकास के लिये समयानुसार आचार-शास्त्र एव नीति-शास्त्र के जो भिन्न-भिन्न नियम और परंपराएँ स्थापित की है, वे ही धर्म के रूप में विख्यात हुई और तात्कालिक परिस्थिति के अनुसार उनसे मानव-जाति ने विकास, सभ्यता और शाति भी प्राप्त की । किंतु कालान्तर में वे ही परम्पराएँ अनुयायियो के हठाग्रह से साप्रदायिकता के रूप में परिणत होती गईं, जिससे धार्मिक-क्लेश, मताधता, अदूरदर्शिता हठाग्रह आदि विविध विघातक दुर्गुण उत्पन्न होते गये और अखड मानवता एक ही रूप में विकसित नही होकर खण्ड खण्ड रूप में होती गई । इसीलिए नये नये धर्मों की, नये नये आचार-शास्त्रो की तथा नये नये नैतिक नियमो की आवश्यकता होती गई और परिणाम-स्वरूप इन सभी की उत्पत्ति हुई । फल-स्वरूप सैकडो पन्थ और मतमतान्तर उत्पन्न हो गये और इनका परस्पर में संघर्षात्मक द्वद्व युद्ध भी होने लगा । उचित-अनुचित रूप से खण्डन-मण्डन के हजारो ग्रन्थ बनाये गये, सैकडो बार शास्त्रार्थ हुए और यहाँ तक कि धर्म के नाम पर बीभत्स हत्याकाड भी हुए । मानवता धर्म के नाम पर कदाग्रह के कीचड़ में फँस कर सक्लेशमय होगई ।

ऐसी गंभीर स्थिति में कोई भी धर्म अथवा मतमतान्तर पूर्ण सत्यरूप नही हो सकता है। सापेक्ष रूप से सत्यमय हो सकता है। इस सापेक्ष सत्य को प्रकट करनेवाली एक मात्र वचन-प्रणाली स्याद्वाद के रूप में ही हो सकती है। अतएव स्याद्वाद सिद्धान्त दार्शनिक-जगत् में और मानवता के विकास में असाधारण महत्त्व रखता है, केवल इसीका आश्रय लेकर पूर्ण सत्य प्राप्त करते हुए सभ्यता और सस्कृति का समुचित संविकास किया जा सकता है।

विश्व का प्रत्येक पदार्थ अस्ति-स्वरूप है याने सत्-स्वरूप है, जो सत्-स्वरूप होता है वह पर्याय-शील होता हुआ भी नित्य होता है याने अविनाशी होता है। पर्याय-शीलता और नित्यता के कारण से ही हर पदार्थ अनन्त धर्मों वाला और अनन्त गुणोवाला है तथा इन्ही अनन्त धर्म-गुणो के कारण से ही एक ही समय मे और एक ही साथ उन सभी धर्म-गुणो का शब्दो द्वारा कथन भी नही किया जा सकता है-इसीलिए स्याद्वाद-सनिहित भाषा की और भी अधिक आवश्यकता प्रमाणित हो जाती है।

'स्यात्' शब्द इसीलिए लगाया जाता है कि जिससे सपूर्ण पदार्थ उसी एक अवस्था रूप नही समझ लिया जाय। अन्य गुण-धर्मों का भी और अन्य अवस्थाओ का भी अस्तित्व उस पदार्थ में है-यह तात्पर्य 'स्यात्' शब्द से जाना जाता है।

'स्यात्' शब्द का अर्थ 'शायद है, सभवत है, कदाचित् है' ऐसा कदापि नही है। क्यो कि ये सभी संशयात्मक है। अतएव ऐसा अर्थ त्याज्य है। 'स्यात्' शब्द का अर्थ 'अमुक निश्चित अपेक्षा से' ऐसा है और यह अर्थ ही सशय-रहित स्वरूपवाला है। ऐसा पूर्ण-अर्थ 'स्यात्' शब्द सुव्यवस्थित दृष्टिकोण को ही बतलानेवाला है। मताधता के कारण से ही दार्शनिको ने इस सिद्धान्त के प्रति अन्याय किया है और आज भी अनेक विद्वान् इसको बिना समझे ही इसके विषय में कुछ का कुछ लिख दिया करते है। 'कपडा स्यात् रूपवान् है' अर्थात् अमुक अपेक्षा से कपडा रूपवाला है। इस कथन में केवल कपडे के रूप से ही तात्पर्य है, और उसी कपडे में रहे हुए गध, रस, स्पर्श आदि गुण-धर्मों से अभी कोई तात्पर्य नही है। इसका यह अर्थ 'नही है कि- कपड़ा रूपवाला ही है और अन्य गुण-धर्मो का निषेध है।' अतएव इस कथन में यह रहस्य है कि रूप की प्रधानता है और अन्य शेष की गौणता है-न कि निषेधता है। इस प्रकार अनेक विधि से वस्तु को क्रम से और मुख्यता-गौणता की शैली से बतलानेवाला वाक्य ही स्याद्वाद सिद्धात का अश है।

'स्यात्' शब्द नियामक है, जो कि कथित गुण–धर्म को वर्तमान–काल मे मुख्यता-प्रधान करता हुआ उसी पदार्थ में रहे हुए शेष गुण-धर्मों के अस्तित्व की भी रक्षा करता है। इस प्रकार 'स्यात्' शब्द वर्णन किये जानेवाले गुण–धर्म की मर्यादा की रक्षा करता हुआ शेष धर्मों के अस्तित्व को भी स्वीकार करता हुआ परोक्षरूप से उनका भी प्रतिनिधित्व करता है। जिस शब्द द्वारा पदार्थ को वर्तमान में प्रमुखता मिली है वही शब्द अकेला ही सारे पदार्थत्व को घेर कर नही बैठ जाय, बल्कि अन्य सहचारी धर्मों की भी रक्षा हो–यह कार्य 'स्यात्' शब्द करता है।

'स्यात् कपडा नित्य है' यहाँ पर कपड़ा रूप पुद्गल द्रव्य की सत्ता के दृष्टिकोण से नित्यत्व का कथन है, पर्यायो की गणना की दृष्टि से अनित्यता की गौणता है। इस प्रकार त्रिकाल सत्य को शब्दो द्वारा प्रकट करने की एक मात्र शैली स्याद्वाद ही हो सकती है। प्रतिदिन के दार्शनिक झगडो को देखता हुआ सामान्य व्यक्ति न तो धर्म के रहस्य को ही समझ सकता है और न आत्मा एव ईश्वर–संबधी गहन तत्त्व का ही अनुभव कर सकता है। उल्टा विभ्रम में फँसकर कषाय का शिकार बन जाता है। इस दृष्टिकोण से अनेकान्तवाद मानव-साहित्य में बेजोड विचार–धारा है। इस विचार–धारा के बल पर ही जैन-दर्शन विश्व के दर्शनो में तथा धर्मों में सर्वाधिक शाति–सस्थापक और सत्य के संदर्शक का श्रेष्ठ पद प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार अनेकान्त वाद ही सत्य को स्पष्ट कर सकता है। क्योकि सत्य एक सापेक्ष तत्त्व है। सापेक्षिक सत्य द्वारा ही असत्य का अश निकाला जा सकता है और इस प्रकार पूर्ण सत्य तक पहुँचा जा सकता है। इसी रीति से मानव के लिये ज्ञान–कोष की श्री–वृद्धि हो सकती है जो कि सभी विज्ञानो की अभिवृद्धि करती है। अद्वैतवाद के समर्थ और महान् आचार्य श्री शंकराचार्य तथा अन्य विद्वानो द्वारा समय समय पर किये जानेवाले प्रचड प्रचार और प्रखर शास्त्रार्थ के कारण से ही बौद्ध–दर्शन सरीखा महान् प्रबल दशन तो भारत से निर्वासित हो गया और लंका, बर्मा, चीन, जापान, तिब्बत, सिक्किम, भूटान और अन्य एशियाई देशो में जाकर विशेष रूप से पल्लवित हुआ; जब कि जैन–दर्शन प्रबलतम साहित्यिक बाधाओ, प्रचंड तार्किक आक्रमणो एव हत्यामय राज्यक्रातियो के सामने भी टिका रहा, इस विषयक अनेक कारणो में से एक कारण स्याद्वाद–सिद्धान्त भी है। इसी स्याद्वाद-सिद्धान्त का आश्रय लेकर ही जैन विद्वानो ने प्रत्येक सैद्धान्तिक–विवेचना में इसको मूल आधार बनाया।

स्याद्वाद-सिद्धात जैन तत्त्वज्ञानरूप आत्मा का प्रखर प्रतिभासपन्न मस्तिष्क है, जिसकी प्रगति पर यह जैन–दर्शन जीवित है और जिसके अभाव में यह जैन–दर्शन समाप्त हो जाता है।

मध्य-युग में भारतीय वसुन्धरा के विस्तृत वक्षस्थल पर होनेवाले राजनैतिक तूफानो में और विभिन्न विरोधी आँधियो में भी जैन-दर्शन का हिमालय के समान अडोल और अचल बने रहना केवल स्याद्वाद सिद्धान्त का ही प्रताप है। जिन जैनेतर दार्शनिको ने इसे सशयवाद अथवा अनिश्चयवाद कहा है, निश्चय ही उन्होने इसका गम्भीर अध्ययन किये बिना ही ऐसा लिख दिया है। आश्चर्य तो इस बात का है कि प्रसिद्ध–प्रसिद्ध सभी दार्शनिको ने एव महामति मीमासकाचार्य कुमारिल भट्ट आदि भारतीय धुरंधर विद्वानो ने इस सिद्धान्त का शब्द रूप से खण्डन करते हुए भी प्रकारान्तर से और भावनान्तर से अपने अपने दार्शनिक सिद्धान्तो में विरोधो के उत्पन्न होनेपर विरोधात्मक विवेचन में विविधताओ का समन्वय करने के लिये इसी सिद्धान्त का आश्रय लिया है।

दीर्घ तपस्वी 'निर्ग्रंथ–ज्ञातपुत्र' भगवान् महावीर स्वामी ने इस सिद्धांत को 'सिआ अत्थि, सिआ णत्थि सिआ अवत्तव्व' के रूप मे फरमाया है। जिसका यह तात्पर्य है कि प्रत्येक वस्तु–तत्त्व अपेक्षा–विशेष से वर्तमान रूप वाला होता है और अन्य अपेक्षाविशेष से वही नाशरूप वाला भी होता है। इसी प्रकार से तीसरी अपेक्षा–विशेष से वही तत्त्व त्रिकाल–सत्तारूप वाला होता हुआ भी शब्दो द्वारा अवाच्य अथवा अकथनीय रूप वाला भी हो सकता है।

जैन–तीर्थकर रूप से विख्यात होनेवाले परम पूज्य भगवान् अरिहतो ने इसी सिद्धात को–'उव्वन्ने वा विगए वा धुव्वे वा' अर्थात् 'उत्पन्नो वा विगतो वा ध्रुवो वा' इन तीन शब्दो द्वारा 'त्रिपदी' के रूप मे संग्रन्थित कर दिया है। इस 'त्रिपदी' रूप मूल का जैन–आगमो में इतना अधिक महत्त्व और सर्वोच्चशीलता बतलाई है कि इसके श्रवण–मात्र से ही गणवरो को चौदह पूर्वो का सपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है। द्वादशागी रूप वीतराग–वाणी का यह हृदयस्थान कहा जाता है।

भारतीय साहित्य के सूत्र रूप रचना–युग में निर्मित और जैन–सस्कृत–साहित्य मे सर्वप्रथम रचित होने से महान् तात्त्विक आदि–ग्रंथ 'तत्त्वार्थ–सूत्र' में इसी सिद्धात का 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त सत्' इस सूत्र के द्वारा उल्लेख

☆ जैन श्रमण की व्याख्या ☆



श्री. घेवरचन्द्रजी बाँठिया ("वीरपुत्र")

जैनागमो में 'समण' शब्द का प्रयोग वहुत स्थानो पर हुआ है। यदि यह कहा जाय कि--जैनागमो का मूल आधार ही 'समण' है 'समण' पर ही जैनागम आधारित है, जैनागम ही समण है और समण ही जैनागम है।' यह कहना सर्वथा उपयुक्त है। समण शब्द अर्द्धमागधी एव प्राकृत भाषा का है। इसकी संस्कृत छाया--'शमन, श्रमण' समन, समण" होती है। इनका अर्थ इस प्रकार है–

(१) शमन--'शम् उपशमें' इस उपशम अर्थ वाली दिवादिगणीय धातु से शमन' शब्द बना है। 'शाम्यति क्रोधादि कषायान् इति शमन' अर्थात् जो क्रोधादि कषायो का शमन करे वह शमन कहलाता है। क्रोधादि कषाय ही ससार परिभ्रमण के मूल कारण है। जो कषाय का शमन करता है अर्थात् कषायो का क्षय करता है वही मोक्ष प्राप्त करता है। कहा भी है--

अनिच्छन् कर्मवैषम्यं, ब्रह्मांशेन शम जगत्।
आत्माभेदेन यः पश्येदसौ मोक्षगमी शमी॥

अर्थ—कर्मो की विषमता को न चाहनेवाला, सम्पूर्ण चेतन रूप जगत् को अपनी आत्मा के समान समझनेवाला शमी अर्थात् क्रोधादि कषायो का क्षय करनेवाला महर्षि मोक्षगामी होता है अर्थात् सम्पूर्ण कर्म क्षय रूप मोक्ष को प्राप्त होता है। क्योकि—

'कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव'

अर्थात्–क्रोधादि कषायो का छूट जाना, सर्वथा क्षय हो जाना ही वास्तविक मुक्ति (मोक्ष) है।

(२) श्रमण--'श्रमु तपसि खेदे च' इस धातु से 'श्रमण' शब्द बना है।

"श्राम्यतीति श्रमण श्राम्यति श्रममानयति पञ्चेन्द्रियाणि मनश्चेति श्रमणः। श्राम्यति ससारविषयखिन्नो भवति तपस्यतीति च श्रमणः।"

अर्थात्--जो पांच इन्द्रियो को और मन को अपने वश में करता है। वह श्रमण है। जो ससार के विषयो से खिन्न होता है और जिनाज्ञानुसार तपस्या करता है वह श्रमण है।

किया है, जिसका तात्पर्य यह है कि जो सत्-रूप है याने भावरूप है, उसमें प्रत्येक क्षण-क्षण में नवीन नवीन पर्यायो की उत्पत्ति होती ही रहती है एव पूर्व पर्यायो का नाश अथवा परिवर्तन भी होता रहता है, परन्तु फिर भी मूल द्रव्य की द्रव्यता, और मूल सत्य की सत्ता पर्यायो के परिवर्तन होते रहने पर भी ध्रौव्यरूप से बराबर अवस्थित रहती है। विश्व का कोई भी पदार्थ इस स्थिति से वंचित नही है।

भारतीय साहित्य के मध्य-युग में तर्क-जाल-सगुम्फित घनघोर शास्त्रार्थ-रूप संघर्ष-मय समय में जैन साहित्यकारो ने इसी स्याद्वाद सिद्धान्त को 'स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति और स्यात् अवक्तव्यं' इस तीन शब्द-समूह के आधार पर सप्तभंगी के रूप में प्रस्थापित किया है। इस प्रकार --

(१) 'उव्वन्ने वा विगए वा धुव्वे वा' नामक अरिहंत-प्रवचन;

(२) 'सिआ अत्थि, सिया णत्थि, सिआ अवत्तव्वं' नामक आगम-वाक्य,

(३) 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त सत्' नामक संस्कृत-सूत्र, और

(४) 'स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अवक्तव्यं' नामक संस्कृत-शब्द-समूह ये सब स्याद्वाद-सिद्धात के वाचक रूप है, शब्द-रूप कथानक हैं अथवा भाषा-रूप शरीर है। स्याद्वाद का यही बाह्य रूप है।

इस प्रकार विश्व-साहित्य में जैन दर्शन द्वारा प्रस्तुत अनेकान्तवाद अथवा स्याद्वाद एक अमूल्य और विशिष्ट योग-दान है। जो कि सदैव उज्ज्वल नक्षत्र के समान विश्व-साहित्याकाश में अति ज्वलत ज्योति के रूप में प्रकाशमान होता रहेगा एव विश्व-धर्मों के सघर्ष में (Chief Justice) चीफ-जस्टिस याने सौम्य प्रधान न्याय-मूर्ति के रूप में अपना गौरव-शील स्थान बनाये रक्खेगा।

प्रमाण समग्र-ग्राही है और नय अंशग्राही है, दोनो का समन्वय ही स्याद्वाद है। जैसा कि-तत्त्वार्थ-सूत्र में भी कहा गया है कि-' प्रमाणनयैरधिगमः' अर्थात् त्रिकाल-वर्त्ती और त्रिलोकव्यापी द्रव्य-पर्यायो का ज्ञान केवल 'प्रमाण और नय' द्वारा ही होता है, ऐसा अमोघ सिद्धांत ही स्याद्वाद है।

अपने असाधारण और अत्युच्च गुणो के कारण से ही यह सिद्धान्त 'वीतराग-दृष्टि' ऐसे परम पद को भी अपने लिये अनायास ही प्राप्त कर लेता है। यह वीतराग दृष्टि ही यथाख्यान-चारित्र का निश्चायक बीज है, जिसके बल पर आत्मा परमात्मा होता है। एवमस्तु।

☆ जैन श्रमण की व्याख्या ☆



श्री. घेवरचन्द्रजी बाँठिया ("वीरपुत्र")

जैनागमो में 'समण' शब्द का प्रयोग बहुत स्थानो पर हुआ है। यदि यह कहा जाय कि--जैनागमो का मूल आधार ही 'समण' है 'समण' पर ही जैनागम आधारित है, जैनागम ही समण है और समण ही जैनागम है।' यह कहना सर्वथा उपयुक्त है। समण शब्द अर्द्धमागधी एव प्राकृत भापा का है। इसकी संस्कृत छाया--'शमन, श्रमण' समन, समण" होती है। इनका अर्थ इस प्रकार है-

(१) **शमन**--'शम् उपशमे' इस उपशम अर्थ वाली दिवादिगणीय धातु से शमन' शब्द बना है। 'शाम्यति क्रोधादि कषायान् इति शमनः' अर्थात् जो क्रोधादि कपायो का शमन करे वह शमन कहलाता है। क्रोधादि कषाय ही ससार परिभ्रमण के मूल कारण है। जो कषाय का शमन करता है अर्थात् कषायो का क्षय करता है वही मोक्ष प्राप्त करता है। कहा भी है--

अनिच्छन् कर्मवैषम्यं, ब्रह्मांशेन शम जगत्।
आत्माभेदेन यः पश्येदसौ मोक्षंगमी शमी॥

अर्थ—कर्मो की विपमता को न चाहनेवाला, सम्पूर्ण चेतन रूप जगत् को अपनी आत्मा के समान समझनेवाला शमी अर्थात् क्रोधादि कषायो का क्षय करनेवाला महर्षि मोक्षगामी होता है अर्थात् सम्पूर्ण कर्म क्षय रूप मोक्ष को प्राप्त होता है। क्योकि—

'कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव'

अर्थात्—क्रोधादि कषायो का छूट जाना, सर्वथा क्षय हो जाना ही वास्तविक मुक्ति (मोक्ष) है।

(२) **श्रमण**--'श्रमु तपसि खेदे च' इस धातु से 'श्रमण' शब्द बना है।

"श्राम्यतीति श्रमण श्राम्यति श्रममानयति पञ्चेन्द्रियाणि मनश्चेति श्रमणः। श्राम्यति ससारविषयखिन्नो भवति तपस्यतीति च श्रमणः।"

अर्थात्--जो पांच इन्द्रियो को और मन को अपने वश में करता है। वह श्रमण है। जो ससार के विपयो से खिन्न होता है और जिनाज्ञानुसार तपस्या करता है वह श्रमण है।

(३) समना — "सह मनसा शोभनेन निदान–परिणाम–लक्षण तापरहितेन च वर्तते इति समनाः,

तथा— समानं स्वजनपरजनादिषु तुल्यं मनो यस्य स समना"

अर्थात्— माया, निदान और मिथ्यात्व इन तीन शल्यरूप ताप से रहित जिसका मन है उसे 'समन' कहते है। तथा शत्रु और मित्र मे एव स्वजन और परजन में जिसका समान मन रहता है उसे 'समन' कहते है। कहा भी है—

णत्थि य से कोइ वेसो, पिओ य सव्वेसु चेव जीवेसु।
एएण होइ समणो, एसो अण्णो वि पज्जाओ॥

अर्थात्—जिसे संसार के सभी प्राणियो में न किसी पर राग है और न किसी पर द्वेष है। इस प्रकार समान मन (मध्यस्थ भाव) वाला होने से साधु 'समन' कहलाता है।

सो समणो जइ सुमणो, भावेण जइ ण होइ पावमणो।
सयणे य जणे य समो, समो य माणावमाणेसु॥

अर्थात—जो शुभ द्रव्य मनवाला है और भाव से भी जिसका मन कभी पापमय नही होता है अर्थात् जिसका द्रव्य मन और भाव मन दोनो शुभ है। जो स्वजन और परजन में एवं मान और अपमान में एक-सी वृत्तिवाला है वह 'समन' कहलाता है।

(४) समण— 'सम्–इति समतया शत्रुमित्रादिषु अणति प्रवर्तते इति समण। सर्वजीवेषु तुल्यं वर्तते इति समणः

अर्थात्—जो शत्रु और मित्र में अर्थात् संसार के समस्त प्राणियो में समान बर्ताव करता है वह 'समण' कहलाता है। जैसे कि कहा है—

जह मम न पियं दुक्खं, जाणि य एमेव सव्वजीवाणं।
न हणइ न हणावेइ य, सममणइ तेण सो समणो॥

अर्थात्—जिस प्रकार मुझे दुःख अप्रिय है उसी प्रकार सभी जीवो को दुःख अप्रिय लगता है। ऐसा समझकर तीन करण तीन योग से जो किसी जीव की हिसा नही करता, हिंसा नही कराता और हिंसा करनेवाले का अनुमोदन भी नही करता मन, वचन, काया से। तथा जो ससार के समस्त प्राणियो को आत्मवत् समझता है वह 'समण' कहलाता है।

उपर्युक्त गुणसम्पन्न 'श्रमण' को बारह पदार्थों के साथ उपमा दी गई है—

उरग गिरि जलण सागर,
णहतल तरुगणसमो य जो होइ।
भमर मिय धरणि जलरुह,
रवि पवण-समो य सो समणो॥

अर्थात्—जो सर्प, पर्वत, अग्नि, सागर, आकाश, वृक्षपंक्ति, भ्रमर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य, और पवन के समान होता है वह श्रमण कहलाता है।

दृष्टातो के साथ दार्ष्टान्तिक इस तरह घटाये जाते है—

(१) उरग (सर्प)—जैसे सांप अपने लिए स्वय घर (बिल) नही बनाता किन्तु चूहे आदि के द्वारा बनाये हुए बिल में रहता है। उसी प्रकार साधु स्वयं अपने लिए घर नही बनाता, दूसरो को उपदेश देकर अपने लिए घर नही बनवाता (धर्म स्थानक बनाने के लिए उपदेश नही देता और न धर्मस्थानक बनाने के लिए फण्ड—रुपया इकट्ठा करवाता है,) साधु के निमित्त बनाये हुए घर में भी नहीं ठहरता है किन्तु गृहस्थ के लिए बने हुए मकान में मकान मालिक की आज्ञा लेकर ठहरता है तथा जिस प्रकार सांप एक ही जगह नही ठहरता, उसी प्रकार साधु भी एक जगह नही ठहरता किन्तु अपने कल्पानुसार ठहरकर विहार कर देता है।

(२) गिरि (पर्वत) जिस प्रकार पर्वत वायु से कम्पित नही होता, उसी तरह साधु भी परीषह उपसर्गों से कम्पित न होवे, किन्तु संयम का पालन करते हुए जो जो अनुकूल और प्रकिकूल परीषह उपसर्ग आवे उन्हे समभावपूर्वक सहन करे और संयम में दृढ़ बना रहे।

(३) ज्वलन (अग्नि)—अग्नि में कितना भी इन्धन क्यो न डाला जाय किन्तु वह तृप्त नही होती, इसी तरह साधु भी ज्ञान से कदापि तृप्त न होवे अर्थात् यावज्जीवन सूत्रार्थ का अभ्यास करता रहे। "मैने काफी पढ लिया है, अब मुझे विशेष ज्ञान की आवश्यकता नही है" इस प्रकार साधु कभी भी ज्ञान के प्रति उपेक्षाभाव न लावे किन्तु नवीन-नवीन ज्ञानोपार्जन करने में निरंतर परिश्रम करता रहे। जिस प्रकार अग्नि अपने तेज से दीप्त होती है, उसी प्रकार साधु अपने तपरूपी तेज से दीप्त एव शोभित होवे।

(४) सागर (समुद्र) जैसे समुद्र में अगाध जल होता है, समुद्र कभी भी अपनी मर्यादा का उल्लघन नही करता। उसी प्रकार साधु ज्ञानरूपी अगाध जल का धारक बने। कभी भी तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का उल्लघन नही करे। समुद्र के समान सदा गम्भीर बना रहे, छोटी-छोटी बातो में कुपित न होवे।

(५) नभस्तल (आकाश) जिस प्रकार आकाश में ठहरने के लिए कोई स्तम्भ नहीं है, किन्तु वह निराधार स्थित है, उसी प्रकार साधु को गृहस्थ आदि के अवलम्बन से रहित होना चाहिए किन्तु निरवलम्बन होकर ग्राम, नगर आदि में यथेच्छ विहार करना चाहिए।

(६) तरु (वृक्ष) जैसे वृक्ष शीत और तापादि दुखो को समभावपूर्वक सहन करता है और उसके आश्रय मे आनेवाले मनुष्य, पशु, पक्षी आदि को शीतल छाया से सुख पहुँचता है, उसी प्रकार साधु भी सब परींषह—उपसर्गों को एव सब कष्टो को समभावपूर्वक सहन करे और धर्मोपदेश द्वारा ससार के प्राणियो को मुक्ति का मार्ग बतलाकर उनका उद्धार करे। फल आने पर जैसे वृक्ष नम्र बन जाता है अर्थात् नीचे की ओर झुक जाता है, अपने मीठे फलो द्वारा लोगो को सुख पहुँचाता है। उसी प्रकार साधु को चाहिए कि ज्यों ज्यो वह ज्ञान रूपी फल से सयुक्त होता जाय त्यो त्यो विशेष विनयवान् और नम्र बनता जाय। विद्या पढ़कर अभिमान करना तो ज्ञान गुण के बिलकुल विपरीत है क्योकि ज्ञान तो विनय और नम्रता सिखलाता है। अपने ऊपर पत्थर फेंकनेवाले पुरुष को भी वृक्ष मीठे और स्वादु फल देता है, उसी प्रकार साधु को चाहिए कि कोई उसकी प्रशसा करे या निन्दा करे, सत्कार करे या तिरस्कार करे उस पर किसी प्रकार से राग-द्वेष न करे। साधु को कोई अपशव्द भी कह दे तो उस पर कुपित न होवे किन्तु समभाव रखे। समभाव के कारण ही मुनि को 'वासीचन्दनकल्प' कहा गया है। तथा—

जो चंदणेण बाहुं आलिपइ, वासिणा वा तच्छेइ।
सथुणइ जो व णिंदइ, महरिसिणो तत्थ समभावा॥

अर्थात्— यदि कोई व्यक्ति मुनि के शरीर को चन्दनचर्चित करे अथवा वसोले से उसके शरीर को छील डाले। कोई उसकी स्तुति करे वा निन्दा करे, महर्षि लोग (साधु) सब पर समभाव रखते है।

(७) भ्रमर—जिस प्रकार भ्रमर फूल से रस ग्रहण करता है किन्तु फूल को किसी प्रकार पीडा नही पहुँचाता है, उसी प्रकार साधु गृहस्थो के घर से थोड़ा-थोड़ा आहार ग्रहण करे। जिससे उन्हे (गृहस्थो को) किसी प्रकार की तकलीफ न हो, और फिर से नया भोजन बनाना न पडे। श्री दशवैकालिक सूत्र के पहले अध्ययन में भी साधु को भ्रमर की उपमा दी गई है। यथा—

जहा दुमस्स पुप्फेसु भमरो आवियइ रसं॥
ण य पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं॥

एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥

अर्थात्—जिस प्रकार भ्रमर फूल को पीडा पहुँचाये विना ही उससे रम पीकर अपनी तृप्ति कर लेता है, उसी प्रकार आरम्भ और परिग्रह के त्यागी साधु भी दाता के द्वारा दिये हुए प्रासुक और निर्दोष आहार-पानी में सन्तुष्ट रहते है । जिस प्रकार भ्रमर अनियत वृत्तिवाला होता है अर्थात् भ्रमर के लिए यह निश्चित नही होता है कि वह अमुक फूल से ही रस ग्रहण करेगा । इसी तरह साधु भी अनियत वृत्तिवाला होवे अर्थात् साधु को प्रतिदिन नियत (निश्चित) घर से ही गोचरी न लेनी चाहिए किन्तु मधुकरी वृत्ति से अनियत घरो से गोचरी करनी चाहिए ।

(८) मृग (हरिण) जिस प्रकार सिंह को देखकर मृग भाग जाता है, एक क्षण भर भी वहाँ नही ठहरता । उसी प्रकार साधु की पापकार्यों से सदा डरते रहना चाहिए । पाप स्थानो पर उसे एक क्षण भर भी न ठहरना चाहिए ।

(८) पृथ्वी—जिस प्रकार पृथ्वी शीत, ताप, छेदन-भेदन आदि सब कष्टों को समभावपूर्वक सहन करती है, उसी प्रकार साधु को सब परीषह उपसर्गो को समभावपूर्वक सहन करना चाहिए । जिस प्रकार पृथ्वी अपने उपकारी और अनुपकारी तथा भले बुरे सभी को समान रूप से आश्रय देती है, इसी प्रकार साधु को चाहिए कि वह अपने उपकारी तथा अपनी प्रशंसा करनेवाले तथा निन्दा करनेवाले सभी को समान भाव से शान्ति-मार्ग का उपदेश दे, किसी पर राग—द्वेष न करे । शत्रु, मित्र पर समभाव रखता हुआ सहिष्णु बनें ।

(१०) जलरुह (कमल)—जिस प्रकार कमल कीचड़ से उत्पन्न होता है और जल से वृद्धि पाता है, किन्तु वह कीचड और जल से लिप्त न होता हुआ जल से ऊपर रहता है । इसी प्रकार साधु को चाहिए कि इस शरीर की उत्पत्ति और वृद्धि काम और भोगो से होने पर भी वह काम भोगो में लिप्त न होता हुआ सदा इससे दूर रहे । काम-भोगो को ससार—वृद्धि का कारण जानकर साधु इनका सर्वथा त्याग कर दे ।

(११) रवि (सूर्य)—जैसे सूर्य अपने प्रकाश से अन्धकार का नाश कर संसार के पदार्थों को प्रकाशित करता है । उसी प्रकार साधु जीवाजीवादि नव तत्त्वों का स्वय ज्ञाता बने और धर्मोपदेश द्वारा भव्य जीवो के अज्ञानान्धकार को दूर कर उन्हे नव तत्त्वो का यथार्थ स्वरूप समझाकर मोक्ष-मार्ग की ओर प्रवृत्त करे ।

(१२) पवन (वायु)—जिस प्रकार वायु की गति अप्रतिबद्ध होती है अर्थात् वायु अपनी इच्छानुसार पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण किसी भी दिशा मे बहती है, उसी प्रकार साधू अप्रतिबद्ध विहारी होवे अर्थात् साधु किसी गृहस्थादि के प्रतिवन्ध में बंधा हुआ न रहे, किन्तु अपनी इच्छानुसार ग्राम, नगर, आदि में विहार करे और धर्मोपदेश द्वारा जनता को कल्याण का मार्ग बतलावे।

अपेक्षा से 'श्रमण' शब्द के पर्यायवाची शब्द अनेक है। उनमे से कुछ इस प्रकार बतलाये गये है—

पव्वइए अणगारे, पासंडे चरगतावसे भिक्खू।
परिवाइए य समणे, णिग्गंथे संजए मुत्ते॥
तिण्णे ताई दविए, मुणी य खंते य दंतविरए य।
लूहे तीरट्ठे वि य हवंति समणस्स णामाइं॥

अर्थात्——प्रव्रजित जो प्रकर्ष रूप से चला गया है अर्थात् जो आरंभ और परिग्रह से दूर रहता है, इस कारण से उसे 'प्रव्रजित' कहते है। अनगार जिसके आगार—घर नही है जिसने घर—ससार का त्याग कर दिया है उसे 'अनगार' कहते है। 'पाखण्डी'—पाखण्ड अर्थात् व्रत जिसके हो उसको 'पाखण्डी' कहते है। यथा——

पाखण्डं व्रतमित्याहुस्तद् यस्यास्त्यमलं भुवि।
स पाखण्डी वदन्त्यन्ये कर्मपाशाद् विनिर्गतः॥

अर्थ—— 'पाखण्ड नाम व्रत का है। वह निर्मल व्रत जिसके हो उसे 'पाखण्डी कहते है। 'चरक'——जो व्रत नियमादि का आचरण करे उसे 'चरक' कहते है। 'तापस'——तपस्या करता है, इसलिए उसे 'तापस' कहते है। भिक्षु——जो प्रासुक और निर्दोष भिक्षा करता है उसे 'भिक्षु' कहते है अथवा जो आठ प्रकार के कर्मों की ग्रन्थि का भेदन करे उसे 'भिक्षु' कहते है। 'परिव्राजक'—— जो सर्वथा रूप से पापो का त्याग कर देता है उसे 'परिव्राजक' कहते है। श्रमण——श्रमण शब्द का अर्थ ऊपर बतला दिया गया है। निर्ग्रन्थ——जो बाह्य ग्रन्थि धन-धान्यादि रूप परिग्रह और आभ्यन्तर ग्रन्थि क्रोधादि कषाय से रहित है उसे 'निर्ग्रन्थ' कहते है। सयत——जो अहिंसादि महाव्रतो के पालने मे सम्यग् रूप से सदा प्रयत्नवान् सावधान है उसे 'सयत' कहते है। मुक्त—जो वाह्याभ्यन्तर ग्रन्थि से मुक्त अर्थात् रहित है उसे 'मुक्त' कहते है। तीर्ण——जो ससार समुद्र को तिर चुका है उसे 'तीर्ण' कहते है। त्राता——जो छह काय जीवो की रक्षा करता है

उसे त्राता—त्रायी कहते हैं। द्रव्य——जो प्रतिदिन नया-नया ज्ञान सीख कर ज्ञानादि पर्यायो को प्राप्त होता रहता है, अत उसे 'द्रव्य' कहते है मुनि——जो मौन रखे अर्थात् जो अपनी वाणी पर पूर्ण सयम रखे, कभी 'सावद्य' वचन न वोले उसे 'मुनि' कहते हैं। क्षान्त——क्रोधादि कषायोपर विजय प्राप्त करने से क्षान्त तथा पाँच इन्द्रियो और मन का दमन करने से दान्त और प्राणातिपातादि पापो से निवृत्त होने से 'विरत' कहलाता है। रूक्ष——सव प्रकार के सासारिक स्नेह का त्यागी होने से 'रूक्ष' कहलाता है। 'तीरार्थी'——जो ससारसमुद्र के तीर का अर्थी-चाहनेवाला है एवं सम्यक्त्व प्राप्ति हो जाने से जो सासारिक परिणामो से तीरस्थ हो गया है इसलिए उसे ,तीरार्थी' या 'तीरस्थ' कहते हैं।

विवक्षाविशेप से ये 'श्रमण' शव्द के कुछ पर्यायवाची नाम वतलाये गये है।

'श्रमण' के सम्वन्ध में जैनागमो में विपुल सामग्री है किन्तु यहाँ परिमित लेख लिखने का स्थल है। अत यह लेख यहाँ समाप्त किया जाता है।



भारतीय वाङ्मय को जैन साहित्य की देन

गोकुलचन्द्र साहित्याचार्य एम् ए., काव्य-न्यायतीर्थ



जैन साहित्य भारतीय वाङमय का एक महत्त्वपूर्ण अग है। साहित्य का कोई भी विषय ऐसा अछूता नही, जिस पर जैन विद्वानो और आचार्यो की लेखनी ने मुक्त विहार न किया हो। दर्शन, काव्य, व्याकरण, छन्द, शास्त्र, अलकार, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि सभी विषयो पर जैन विद्वानो एव जैनाचार्यों द्वारा लिखित महत्त्वपूण ग्रन्थ उपलब्ध होते है।

इस समग्र साहित्य को जैन-साहित्य कहने का एकमात्र यही कारण प्रतीत होता है कि इसके रचयिता जैनधर्म मे आस्था रखने वाले रहे हैं। सभवतया जैन लोग भी इसे अपना साहित्य इसीलिये मानते है कि उनके पूर्व पुरुषो ने इसकी रचना की है। वास्तव मे इस साहित्य का सर्वांगीण महत्त्व है। भारतीय साहित्य के किसी भी अंग का अध्ययन इस जैन साहित्य के अध्ययन के बिना पूर्ण नही कहा जा सकता। दर्शन, इतिहास, सस्कृति, कला और भाषा-विज्ञान के अध्येताओ के लिए जैन साहित्य एक अक्षय भाडागार है।

वर्तमान मे जितना जैन साहित्य उपलब्ध होता है वह दो प्रकार का है—

(१) निग्गठ नायपुत्त (महावीर) के वचनो के रूप मे और (२) विभिन्न आचार्यो तथा विद्वानो की स्वतत्र रचनाओ के रूप में।

पहले पकार का साहित्य महावीर के बहुत समय बाद तक गुरु-शिष्य परपरा के द्वारा सुन सुनकर चला आया। यही कारण है कि लिपिबद्ध होने के बाद भी वह 'श्रुत' अर्थात् सुना गया, के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बहुत समय बाद जिस तरह बुद्ध के उपदेशो को सजाकर त्रिपिटको की रचना की गई ठीक उसी तरह महावीर के बाद उनके उपदेशो को बारह अगो (विभागो) मे निबद्ध किया गया जिसे द्वादशाग कहते है। द्वादशाग इस प्रकार है—

(१) आचाराग—मुनियो के चारित्रसंबधी नियमोका वर्णन।

(२) सूत्रकृताग—स्व पर समय अर्थात् जैन एव इतर सिद्धातो का विवेचन।

(३) स्थानाग—तत्त्वो के भेद प्रभेदो का वर्णन (संख्या क्रम से)।

(४) समवायाग–तत्वो का वर्णन (द्रव्य क्षेत्र, काल व भाव की अपेक्षा)

(५) व्याख्याप्रज्ञप्ति–प्रश्नोत्तर क्रम से जीवादि तत्त्वो की व्याख्या।

(६) ज्ञाताधर्म कथा–धर्मोपदेश तथा बहुविध कथाएं।

(७) उपासकाध्ययन–गृहस्थो के पालने योग्य धर्म आदि का वर्णन।

(८) अन्तकृतदश–उन मुनियो का चरित्र, जिन्होने अनेक उपसर्ग सहन करके मोक्ष प्राप्त किया।

(९) अनुत्तरौपपातिकदश–उन मुनियो का चरित्र, जो अनेक उपसर्ग सहन करके विजय आदि अनुत्तर विमानो में देव हुए।

(१०) प्रश्नव्याकरण–पॉच आस्रव (हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह) तथा पाँच संवर (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) का अत्यत आकर्षक विवेचन

(११) विपाकसूत्र–पुण्य और पाप के फलो का वर्णन।

(१२) दृष्टिवाद–विभिन्न वर्णन।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार उपर्युक्त द्वादशाग का काल-क्रम से ह्रास होता गया और छिट-फुट ग्रन्थो के रूप में केवल दृष्टिवाद ही शेष है। श्वेताम्बर-मान्यता के अनुसार अंगो का सर्वथा लोप नही हुआ, प्रत्युत भगवान् महावीर के बाद उन्हे सुव्यवस्थित करने के लिए कई बार मुनि-सघ की बैठके हुई और उनके प्रतिफल आज भी ग्यारह अंग शेष है।

यह बहुत ही मनोरजक बात है कि जिन ग्यारह अगो को दिगम्बर नष्ट हुआ मानते है उन्हे श्वेताम्बर मौजूद मानते है और जिस बारहवे अग को श्वेताम्बर नष्ट हुआ मानते है उसे ही दिगम्बर मौजूद मानते है। लगता है–नष्ट कुछ भी नही हुआ, किन्तु आपसी मत-भेदो के कारण जब साहित्य का विभाजन सा हो चला तो उसमें अनेक परिवर्तन हुए और एक दूसरे ने एक दूसरे के साहित्य को नष्ट हुआ कहकर मानना छोड़ दिया।

उपयुक्त बारह अगो के अतिरिक्त बारह उपाग, दश प्रकीर्णक, छह छेद सूत्र, चार मूलसूत्र तथा दो चूलिकासूत्र भी है। इन आगमो पर लिखा गया चूर्णि और भाष्य नामक व्याख्यात्मक साहित्य भी विपुलकाय है जो मूल ग्रन्थो की टीका और व्याख्या होने के बाद भी मौलिकता की दृष्टि से बहुमूल्य है।

इस साहित्य के विस्तार में न जाकर हम केवल इतना कहना चाहेगे कि उस युग के आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, सास्कृतिक, राजनैतिक

और ऐतिहासिक तथ्यो का अध्ययन करने के लिए यह समग्र साहित्य एक ऐसा चित्रपट है जिस पर एक एक चित्र उभरता चला आता है।

दूसरे प्रकार का साहित्य अर्थात् विभिन्न विद्वानो और आचार्यों द्वारा लिखा गया साहित्य इतने प्रकार का और इतना अधिक है कि उन सब का यहाँ परिचय देना सभव नही। इतना अवश्य कहा जा सकता है, और जैसा कि हम ऊपर भी लिख चुके है, जैन साहित्यकारो ने ऐसा कोई भी अंग अछूता नही छोडा जिस पर कुछ न कुछ लिखा न गया हो।

इस दूसरे प्रकार के साहित्य का सब से महत्त्वपूर्ण भाग इसका दार्शनिक साहित्य है। जैन दार्शनिको ने भारतीय दर्शन में चिन्तन को एक नया मोड और गति प्रदान की। जैनदर्शन का प्राण अनेकान्त और उसका व्यावहारिक रूप स्याद्वाद या सप्तभगी-नय जिस तार्किक दृष्टि से वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन करता है, उसकी ओर आज का बुद्धिवादी मानव आईस्टीन के सापेक्षवाद (Theory of Relativity) के प्रकाश में आकर्षित हुए बिना नही रह सकता। समन्तभद्र ने आप्तमीमासा, युक्त्यनुशासन तथा स्वयंभू-स्तोत्र द्वारा एवं सिद्धसेन ने न्यायावतार सन्मति-प्रकरण आदि के द्वारा अनेकान्त की स्थापना की और अकलक ने राजवार्तिक, लघीयस्त्रय, अष्टशती आदि तथा विद्यानन्द ने श्लोकवार्तिक, अष्ट-सहस्त्री, आप्तपरीक्षा आदि के द्वारा जैन न्याय की उच्च शिखर पर प्रतिष्ठा की। बाद के आचार्यों मे प्रभाचन्द्र, हरिभद्रसूरि, हेमचन्द्र तथा यशोविजय का नाम उल्लेखनीय है। इन आचार्यों ने अपने महान् ग्रन्थों में समस्त भारतीय दर्शनो को पूर्वपक्ष के रूप में रखकर भारतीय वाङ्मय के दार्शनिक इतिहास को सुर-क्षित बचा लिया।

सैद्धान्तिक साहित्य मे कुन्दकुन्द का समयसार, प्रवचनसार आदि, उमा-स्वाति का तत्त्वार्थसूत्र, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती का गोमटसार आदि ग्रन्थ विशेष रूप से प्रतिष्ठा को प्राप्त है।

काव्य के क्षेत्र में वसुदेवहिंडी (प्राकृत), महापुराण, जसहर चरित आदि (अपभ्रंश), सोमदेव का यशस्तिलक, धनपाल की तिलकमजरी, हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय, हेमचन्द्र का कुमारपालचरित आदि अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ है।

यशपाल का प्रतीक नाटक मोहराज-पराजय, सिद्धर्षि की उपमितिभाव-प्रपच कथा, हरिभद्र का धूर्ताख्यान आदि कुछ ऐसी रचनाएँ है जिनका भारतीय वाङ्मय में दूसरा कोई सानी नही रखता।

महाकवि हस्तिमल के विक्रान्तकौरव आदि संस्कृत नाटक, हेमचन्द्र का द्वयाश्रय काव्य तथा अलकृत शैली में लिखे गये जैन महापुरुषो (शलाकापुरुष) के चरित्र काव्य-साहित्य की वेजोड़ निधि है ।

पुराण साहित्य में आदिपुराण, उत्तरपुराण, पदमपुराण, हरिवशपुराण, आदि आदि अनेक ग्रथ है, जिनमे महापुरुषो के चरित का सुन्दर वर्णन है ।

व्याकरण साहित्य में देवनन्दि का जैनेन्द्र-व्याकरण, तथा हेमचद्र का शव्दानुशासन विशेष प्रसिद्ध है । इनके अतिरिक्त शाकटायन, त्रिविक्रम, गुण-नन्दि, वर्द्धमान, तथा समन्तभद्र भट्टारक आदि के व्याकरण ग्रथ प्रसिद्ध है ।

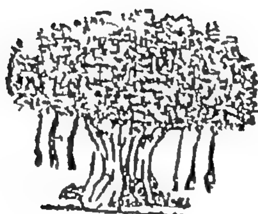
छदशास्त्र और अलकार ग्रन्थो में वाग्भटालंकार, अलकार-चिन्तामणि काव्यानुशासन आदि ग्रथ विशेप प्रकाश में आए है ।

कोश ग्रंथो में धनंजय तथा हेमचद्र आदि की रचनाएँ तथा ज्योतिप और आयुर्वेद में हेमप्रभ, हर्षकीर्ति, पद्मप्रभ, दिवाकर, चंद्रसेन, पूज्यपाद, यशकीर्ति, चिक्कण, वाहट और दामोदर भट्ट आदि के ग्रथ उल्लेखनीय है ।

इसके अतिरिक्त इतिहास, कला योगशास्त्र, तथा मत्र-तंत्र विषयक स्वतत्र साहित्य उपलव्ध होता है । स्तुति तथा पूजा प्रतिष्ठा संबंधी साहित्य कलेवर की दृष्टि से विपुल काय है । अपनी स्थूलता के अनुरूप इस साहित्य में भक्ति के अतिरिक्त दर्शन, तत्त्वज्ञान और संस्कृति के महान् तत्त्व अन्तर्निहित है ।

इस तरह हम देखते है कि जैन साहित्यकारो ने हृदय खोलकर, मुक्त भाव से भारतीय वाङमय के प्रत्येक अग को सजाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है । सवसे वडी विशेषता यह है कि जैन साहित्यकारो को कभी भी भाषा का आग्रह नही रहा, उसने सदैव अपने युग की भाषा और शैली में साहित्य रचना की । प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रश के अतिरिक्त भारतवर्ष की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओ को जैन साहित्यकारो ने समान भाव से अपनाया । पुरानी हिंदी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, कन्नड तथा तामिल आदि भाषाओ मे प्रचुर मात्रा से जैन साहित्य मिलता है । नई पीढी के साहित्यकार विभिन्न विदेशी भाषाओ में भी जैन साहित्य का प्रणयन कर रहे है ।

इस विपुलकाय एव सर्वागीण महत्त्व के साहित्य को बहुत समय तक धार्मिक साहित्य (Religions Titerature) कहकर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता रहा किन्तु जब से विद्वानो ने उदारतापूर्वक निष्पक्ष दृष्टि से इस ओर देखा है तब से इसकी उपयोगिता का मूल्याकन प्रारभ हो गया है। अब तो धीरे धीरे विद्वानो की यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि भारतीय वाङ्मय का अध्ययन जैन साहित्य के अध्ययन के बिना अधूरा रहता है। जैन साहित्य की यह अनिवार्य उपयोगिता ही भारतीय वाङ्मय के लिए इसकी महत्त्वपूर्ण देन है।



सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः ।

ले० 'साहित्यरत्न' प. देवेन्द्रकुमार जैन 'सिद्धान्त शास्त्री'
हिन्दी-धर्माध्यापक श्री तिलोक जैन विद्यालय, पाथर्डी



सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये तीनो ही मोक्ष के साधन है। इन तीनो साधनो का विवेचन करने के पूर्व मोक्ष क्या है, तथा उसका स्वरूप कैसा है, इसपर प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है, कारण कि मोक्ष का स्वरूप जाने विना उसके साधनो की व्याख्या प्रभावी नही ठहरती।

मोक्ष की व्याख्या —बन्ध के कारणो का अभाव होने पर तथा सचित कर्मो की निर्जरा होने से समस्त कर्मो का मूलोच्छेदन होना ही मोक्ष है, कहा भी है कि "कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्ष" कर्मों का आत्यन्तिक क्षय ही मोक्ष है। कर्म क्षय के यहाँ दो कारण बताए गये है। बन्ध हेतुओ का अभाव और निर्जरा। बन्ध हेतुओ का अभाव होने से नूतन कर्म-बन्धन रुकते है और निर्जरा से पूर्वसचित कर्म दूर होते है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय एव अन्तराय इन चार घाती कर्मों के पूर्ण रूप से क्षय हो जानेपर ही वीतरागत्व प्रगट होता है, किन्तु वेदनीय, आयु, नाम एव गोत्र इन चार अघाती कर्मो की सत्ता नामावशेष रह जाने से मोक्ष नही होता। जब ये चार कर्म क्षय हो जाते है तभी जीवात्मा का जन्म मरणादि चक्र बन्द पडता है और वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो जाता है इसी का नाम मोक्ष है।

संसारावस्था में आत्मा की स्वाभाविक शक्ति वैभाविक हो जाती है और यह वैभाविक अवस्था ही आत्मा के ससार में परिभ्रमण का कारण बनती है। जब आत्मा की वैभाविकावस्था नष्ट हो स्वाभाविकावस्था प्राप्त होती है, तब मिथ्या दर्शन सम्यग् दर्शन, मिथ्या ज्ञान सम्यग् ज्ञान और मिथ्या चारित्र सम्यक् चारित्र बन जाता है। आत्मा निर्विकल्प, निश्चल और चैतन्यमय हो जाता है। कहा भीहै कि—

चित्तमेव हि ससारो, रागादिक्लेशवासितम्।
तदेव तैर्विनिर्मुक्तं, भवान्तमिति कथ्यते॥

चित्त की राग द्वेषादि अवस्था ही ससार है और इस अवस्था से विरहित होना ही मोक्ष है। मुक्तावस्था में इच्छा, द्वेष, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप आदि की

सत्ता का अभाव है, कारण कि ये सब पर्यायें कर्मजन्य हैं, अत मुक्तावस्था मे ये नही रहती, किन्तु चैतन्यरूप ज्ञान पर्याय आत्मा की स्वाभाविकावस्था है उसकी सत्ता मुक्तावस्था में भी रहती ही है। बौद्ध ग्रन्थो में मोक्ष के स्थान पर निर्वाण माना है जिसका अर्थ है बुझ जाना, जैसे दीपक का तेल समाप्त होने पर दीपक की ज्योति नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार कर्म के क्षय हो जाने पर आत्मा भी सर्वथा नष्ट हो जाती है, किन्तु जैन परपरा उनकी उस मान्यता का खडन करती है कारण कि आत्मा का मोक्ष होना अर्थात् आत्मा का कर्म पुद्गल से पृथक् हो जाना, आत्मा और कर्म पुदगल का संबन्ध विच्छेद हो जाना ही मोक्ष है।

मोक्ष का स्थान :— आगम मे वर्णन आया है कि

अत्थि एग धुवं ठाण, लोगग्गम्मि दुरारुहं ।
जत्थ नत्थि जरामच्चू, वाहिणो वेयणा तहा ।।

जहाँ पहुँचना बडा ही दुष्कर है, ऐसी चौदहराजू लोक के मस्तिष्क के ऊपर ईषत् प्राग्भारा नाम की एक शिला है, सिद्ध की आत्मा इसके समीप होने से यह सिद्धशिला कहलाती है। इस शिला के अग्रभाग पर एक स्थान है, जिसे लोकात कहते है यही सिद्ध परमात्मा विराजमान है। यह स्थान कपूर से अधिक सुगन्धित, कोमल, सूक्ष्म अवयवयुक्त, पवित्र एव अत्यन्त तेजस्वी है। इस शिला का आकार द्वितीया के चन्द्र के समान है। यहाँ बुढापा, रोग, मृत्यु आदि का लेशमात्र भी दुख नही है। आधि-व्याधि किवा उपाधि कुछ भी नही है। यह महान् परमपद आराधको का आराध्य, साधको का साध्य व ध्याराको का ध्येय है। यह पद अभव्य प्राणियो को असंभव एव भव्य प्राणियो को प्राप्त होना दुर्लभ एवं कष्टसाध्य है। ऐसे स्थान पर संयम एवं त्यागमय जीवन व्यतीत करनेवाला जीवात्मा ही जा सकता है। यथा आगम में कहा है।—

नाण च दंसण चेव चरित्तं च तवो तहा ।
एवं मग्गमणुप्पत्ता जीवा गच्छन्ति सुग्गइं ।।

जिसे सम्यग्ज्ञान है वीतराग के वचन पर जिसकी श्रद्धा है, जो चारित्रवान् है, तप करने की जिसकी प्रवृत्ति है वही मोक्ष पा सकता है।

मोक्ष के साधन–सम्यग्दर्शन:— जिस गुण से सत्य की प्रतीति हो, हेय, ज्ञेय एव उपादेय योग्य तत्त्व की यथार्थ अभिरुचि हो वही सम्यग्दर्शन है। कहा भी है कि "तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम्" वस्तु के वास्तविक स्वरूप पर श्रद्धान रखना, सम्यग्दर्शन से जीव आत्मा को शरीर से पृथक् समझने लगता है। सासा-

रिक भोगोपभोगो को दुखमय और निवृत्ति को सुखमय मानता है। सम्यग्दर्शन से आत्मा में प्रशम, सवेग, निर्वेद, अनुकपा और आस्तिक्य गुण प्रकट होते हैं, और इन गुणो से ही जीव पहचाना जाता है। सम्यग्दर्शन का अर्थ अन्ध विश्वास नही है, अन्धविश्वास का अर्थ है हित-अहित, सत्य असत्य आदि का विचार किये विना ही किसी बात का आग्रह करना, और अपनी मानी हुई बात को ही सत्य समझना, सम्यक्त्व का अर्थ है जो वस्तु सत्य है, उस पर दृढ विश्वास रखना। ससार में पदार्थो के जानने की रुचि प्रत्येक की भिन्न-भिन्न होती है किंतु जो जिज्ञासा आध्यात्मिक विकास का कारण हो, आत्मिक तृप्ति के लिए हो, वही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के दो कारण है एक निसर्गजन्य और दूसरा उपदेशादि बाह्यनिमित्तजन्य। कहा भी है कि "तन्निसर्गादधिगमाद्वा" जैसे कोई व्यक्ति किसी कला को जानना चाहे तो उसमें किसी की सहायता की अपेक्षा रहती है, विना उसके वह कलाभिज्ञ नही हो सकता, इसी प्रकार दूसरा व्यक्ति विना किसी की सहायता के ही कला आत्मसात कर लेता है, अत. आन्तरिक कारण की समानता होने पर भी बाह्य निमित्त की अपेक्षा-अनपेक्षा से सम्यग्दर्शन के दो प्रकार माने है।

सम्यग्दर्शन को विद्वानो ने ज्ञान और चारित्र का बीज माना है, इसके विना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता ही नही है तथा व्रत, नियम, तप, स्वाध्यायादि इसके विना मोक्ष-फल के दाता नही हो सकते है। सम्यग्दर्शन के विना सम्यग्ज्ञान, मिथ्याज्ञान और सम्यक्चारित्र कुचारित्र कहलाता है। सम्यग्दर्शन ससारजनित रोगो को नष्ट करने के लिए औषध के समान है। समस्त कल्याणो का कारण है। ससाररूपी समुद्र से तारने के लिए नाविक है। पापरूपी वृक्ष को काटने के लिए कुठार है। किसी कविने ठीक ही कहा है,

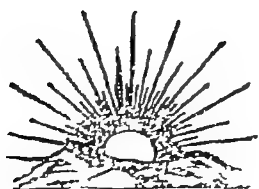
सुख अनंत की नींव है, सम्यग्दर्शन जान।
याही ते शिक्षा मिले, भैया लेहु पिछान ॥
सम्यग्दर्शन अंक हैं, और क्रिया सब शून्य।
अक जतन करि राखियो, शून्य शून्य दश गुण्य ॥

सम्यग्दर्शन अक के समान है, जैसे अक के बिना शून्य की कौडी कीमत है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के विना सभी क्रियाओ का मूल्य शून्यवत् है। जैसे बीज विना वृक्ष की उत्पत्ति वृद्धि एव फल की प्राप्ति नही होती, उसी प्रकार समकित रूप बीज विना सम्यग्ज्ञान व चारित्र की उत्पत्ति स्थिति और वृद्धि नही हो सकती, तथा उसका फल सत्यसुख—मोक्ष नही मिलता।

सम्यग्ज्ञान—नय और प्रमाण द्वारा होने वाले जीवादि नवपदार्थों के यथार्थ ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते है। सम्यग्दर्शन का अधिकारी ही निर्ग्रंथ प्रवचन एव आत्मा पर आस्तिक के भाव रख सकता है ऐसे व्यक्ति का ज्ञान श्रद्धामूलक होने से सम्यग्ज्ञान कहलाता है। उपयोग अर्थात् ज्ञान यह जीवात्मा का असाधारण लक्षण होने से प्रतिक्षण रहता ही है, चाहे वह ज्ञान मिथ्या हो या सम्यक्। सम्यक्त्व की प्राप्ति पश्चात् मिथ्याज्ञान में विशेषता आ जाती है और वह ज्ञान जीवन को प्रत्येक दिशा में शुद्धि की ओर ले जाता है। सुश्रद्धा के बिना भाषाज्ञान एव दूसरी पढाई खूब होने पर भी वह ज्ञान मिथ्याज्ञान ही कहलाता है। सैकडो शास्त्र एवं कला ज्ञान पढा क्यो न हो यदि उसमें सद्विवेक नही है तो वह उन्मार्गगामी हो सकता है। जिस ज्ञान का विषय सत्य है वह सम्यग्ज्ञान और जिस ज्ञान का विषय असत्य है वह मिथ्याज्ञान है। सम्यग्ज्ञान से आत्मा का विकास और मिथ्याज्ञान से आत्मा का पतन होता है। सम्यग्ज्ञानी सदैव सत्य की खोज में रहता है वह अपनी मानी हुई बात का आग्रह छोडकर पदार्थ के असली स्वरूप को जानने का प्रयत्न करता है। जैन परपरा के अनुसार ज्ञान के मति, श्रुत, अवधि, मनपर्याय एवं केवल ऐसे पाँच प्रकार माने गये है। आदि के दो ज्ञान परोक्ष एव अंत के तीन ज्ञान प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्षज्ञान के द्वारा आत्मा इन्द्रिय और मन के योग के बिना ही वस्तु का असली स्वरूप जान सकता है। आदि के तीन ज्ञान कभी कभी सम्यक्त्व के अभाव में अज्ञान भी कहलाते है। सम्यक्त्व की प्राप्ति के पश्चात् केवल जीवन-शुद्धि के कारण ज्ञान अल्पमात्रा में रहने पर भी वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है, वहाँ ज्ञान की अल्पता या अधिकता नही देखी जाती, केवलज्ञान के पीछे रहा हुआ शुद्ध भाव ही देखा जाता है। इसी शुद्ध भाव या सम्यक्श्रद्धा के कारण वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है। सम्यग्ज्ञानी अपने ज्ञान का उपयोग सासारिक वासनाओ के पोषण में नही करता, उसे आध्यात्मिक विकास में लगाता है। सम्यग्ज्ञानी आत्मा के सत्य स्वरूप को जानता हुआ मै बाह्य वस्तुओ से भिन्न एक अनंत सुखपूर्ण आत्मा हूँ ऐसा मानता हुआ आत्मगुणघातक तत्त्वों को छोड़ने मे ही आनन्द मानता है।

सम्यक्चारित्र—सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान के बाद जीवन में चारित्र का स्थान आता है। देवगति के प्राणी सम्यक्त्वी होने पर भी केवल आचरण के अभाव मे चारित्रशील नही हो सकते, परतु मनुष्य गति में आगमो में उपदिष्ट चर्या का पालन करनेवाला व्यक्ति सम्यक् चारित्र का अधिकारी हो सकता है। वह चारित्र भी व्यक्ति की शक्ति के अनुसार दो प्रकार का है। सर्वविरति

चारित्र और देशविरतिचारित्र । इन्ही दोनो को अनगारचारित्र और सागारचारित्र कहा जाता है। जो सब प्रकार के वाह्य वैभव एव परिग्रह का त्याग कर पंचमहाव्रतो को अंगीकार करता है उसका चारित्र सर्वविरति है किन्तु जो पूर्ण त्याग की शक्ति न रहने पर मर्यादित त्याग करता है उसका चारित्र देशविरति चारित्र है । आत्मविकास के मार्गानुगामी सभी व्यक्ति समान शक्तिवाले नही होते, कोई व्यक्ति तीन करण तीन योग से अपनी सभी वासनाओ का दमन कर आत्मविकास एव कल्याण को ही अपना ध्येय वना लेता है और कोई व्यक्ति इच्छाओ के दमन करने का पर्याप्त सामर्थ्य न होने से धीरे धीरे त्याग करता है। इन्हे हम क्रमश अनगार और सागारचारित्र कह सकते है । सब प्रकार के संकल्प विकल्प छोडकर निश्चल भाव से जो सर्वविरति चारित्रधर्म का पालन किया जाय तो यह जीवात्मा आगे वढता वढ़ता यथाख्यातचारित्र का अधिकारी हो जाता है । सम्यक्चारित्र के अभाव में सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन व्यर्थ है। कहा भी है कि 'ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष ' ज्ञान और चारित्र के मेल से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है । ज्ञान के विना क्रिया और आचरण के अभाव में ज्ञान निकम्मा है । चारित्रशील व्यक्ति के ज्ञान और दर्शन स्व पर हित में कारणीभूत होते है । अतएव प्रत्येक साधक का कर्तव्य है कि जीवन को नि.श्रेयस की ओर ले जानेवाले इस सम्यक्चारित्र धर्म का सुचारु रूप से पालन करे । ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीनो की त्रिपुटि ही मोक्ष की साधिका है ।



कहत है तिलोकरिख—

प. श्री सूरजचंदजी सत्यप्रेमी (डाँगीजी)

पांच विषयो के रस से वृक्ष का सिंचन हो रहा है। मोक्ष रूपी वृक्ष का सिंचन करना हो तो पंच पदो की भाव वंदना—रस उपलब्ध करना चाहिये। अपनी प्रशसा और मधुर सासारिक सगीत का रस श्रोत्रेंद्रिय को नही देकर अरिहन्त प्रभुकी स्तुति का लोकोत्तर सगीत कानो को सुनाना चाहिए।

आंखो को कामिनीका रूप और चल—चित्रोकी चलती-बोलती-नाचती आँखोकी खराबी करती नीन्दको हराम करती, पैसेकी बरबादी करती आगकी पुतलियाँ नही बताकर सिद्ध भगवान् के स्वरूप की शान्त अवगाहना का दर्शन कराने की आदत डालनी चाहिये।

नाकको नाना प्रकार के जीवोकी हत्या से बने हुए इत्रफुल्लेल नही सुघाकर सुव्रतो द्वारा सुवासित आचार्य के चरणो की रज सुघाना चाहिये।

जीभको बाजारू मिठाइयो का रस नही देकर उपाध्याय के मुखारविन्द से निकला हुआ प्रभु के प्रवचनो का स्वाद देना चाहिए।

त्वचा इन्द्रियो को लौकिक कोमल स्पर्श न देकर सर्व साधुओ के चरणो का स्पर्श कराना चाहिये तभी मोक्ष रूपी वृक्ष को सिंचन मिल सकता है।

मोक्ष रूपी वृक्ष का मूल विनय है। जो नवकार मत्र में 'नमो' के रूप में प्रसिद्ध है। सयम और तप पत्रपुष्प है और सिद्धि फल है।

पूज्यपाद श्री० तिलोकऋषिजी महाराज ने अपनी अमर वाणी में फरमाया है कि——

'कहत है तिलोकरिख मन, वच, काया करि
लुलि लुलि बारम् बार वदना हमारी है'।

अरिहन्त भगवान् की भाव वन्दना करते हुए ऋषि महाराज फर्माते है कि, उत्तम क्षमा का प्रथम धर्म प्राप्त करने के लिये क्रोध की प्रथम कषाय नष्ट करने के लिये कर्मरूपी अरियो का हनन करने के लिये अर्थात् दुश्मनी का नाश करने के लिये अरिहन्त भगवान् का विनय करना ही प्रथम मैत्री भाव है जो मन, वचन और काया से बारम् बार झुक झुक कर लुलि लुलि बारम् बार मन, वच, काया करि, हमारी भाववन्दना पहुँचने से ही बोधिबीज का वपन होता है।

दूसरे भगवान् सिद्धकी स्तुति करते हुए श्री० तिलोकऋषिजी महाराज फर्माते है कि,——

'कहत है तिलोकरिख बताओ ए वास प्रभु
सदा ही उगंते सूर वन्दना हमारी है ।'

मान कषाय को नष्ट करने के लिए मनका आवास छोडकर सिद्ध भगवान् का आवास देखना चाहिए जो सबसे ऊपर है जिससे मार्दव नामका दूसरा धर्म प्राप्त होता है । क्योकि सूर्य का उदय होते ही हम जैसे बाहर का प्रकाश प्राप्त करते है उसी प्रकार सबसे ऊपर विराजमान सिद्धकी तरफ दृष्टि करने से मनका सारा अंधकार दूर होकर ऐसा ज्ञानका प्रकाश होता है कि, उनके सामने हमारी मानसिक सत्ता तुच्छ मालूम होती है इसलिये हमें उनके समान आध्यात्मिक सत्ता प्राप्त करना चाहिए । जिससे निरतर सद्गुणो के प्रति प्रमोद भावना जागृत हो सके ।

तीसरे आचार्यपद की स्तुति करते हुए श्री तिलोकऋषिजी म. फर्माते है कि,

'कहत है तिलोकरिख, हितकरि देत सिख
ऐसे आचारज ताकुँ वन्दना हमारी है ।'

तीसरे माया कषाय को नष्ट करने के लिये और आर्जव धर्म को प्राप्त करने के लिये कपट छोड़कर आचार्य महाराज सरलताकी समतापूर्वक शिक्षा देते है । जो सभी आचार का मूल और फल है । करुणाकी भावना इस सरलता के बिना नही आ सकती ।

चौथे उपाध्याय पदकी स्तुति करते हुए श्री० तिलोकऋषिजी महाराज फर्माते है कि,——

'कहत है तिलोकरिख ज्ञान भानु परतिख
ऐसे उपाध्याय ताकुँ वन्दना हमारी है'

चौथे लोभ कषाय को नष्ट करने के लिए और मुक्तिधर्म को प्राप्त करने के लिए जिन नही पर जिनसरीखे प्रत्यक्ष ज्ञान के सूर्य उपाध्याय का शरण ग्रहण करना चाहिए । स्वाध्याय के प्रति लोभ किये बिना संसार का लोभ नष्ट नही हो सकता और चौथी मध्यस्थभावना प्राप्त नही होती और पूर्ण निर्लोभ हुए बिना प्रत्यक्ष ज्ञान का भानु केवल ज्ञान प्रकट नही हो सकता । उपाध्यायकी वन्दना इसीलिए श्रेष्ठ मानी गई है ।

पाँचवें पदकी स्तुति करते हुए श्री० तिलोकऋषिजी महाराज फर्माते हैं कि

'कहत है तिलोकरिख करमांको टाले विख
ऐसे मुनिराज तांको वन्दना हमारी है'

सब कर्मों का विष दूर करने के लिए हमे सब पकार के साधन का शरण लेना पडेगा, जिससे सब भावनाएँ पुष्ट होकर सिद्ध का साध्य प्राप्त हो सके।

पाप का नाश करने के लिये सबसे उत्कृष्ट पुण्यपद तीर्थंकर अरिहन्त प्रभु का शरण उत्तम है। जीव और अजीव का संबंध तोडने के लिए सिद्ध पद का शरण उत्तम है। आश्रव को रोककर सवर पद में प्रतिष्ठित होने के लिये आचार्य पद का शरण उत्तम है। बन्ध को काटकर कर्मों की निर्जरा के लिये उपाध्याय पद का शरण ग्रहण करना श्रेयस्कर है परन्तु अतिम तत्त्व मोक्षपद प्राप्त करने के लिये सब साधुका शरण ही परम मंगलकारी माना गया है। इसी लिये श्री० तिलोकऋषिजी महाराज कहते हैं कि, ऐसे पाँचों पद ताकूं वन्दना हमारी है।



"अहिंसाप्रधान जैन संस्कृति"

श्री बन्सीलाल भगवानदास कोठारी, (अहमदनगर)

किसी राष्ट्र अथवा देश का परिचय, उसकी भौगोलिक रूप–रेखाओ में न मिलकर, उसकी सस्कृति और सदेशो में मिला करता है। किसी राष्ट्र के सास्कृतिक संदेश उसके जीवन, आदर्श, सभ्यता और सिद्धातो के लिए ऐतिहासिक पृष्ठो का काम किया करते है। भारत में कितनी ही जातियाँ अपने सन्देशो के साथ आईं, पर उनसे भारत की आत्मा, उसके मन और हृदय का परिचय नही मिल सकता, क्योंकि वे सदेश भोगो की आकाक्षाओ और आमोद–प्रमोद की लिप्साओ से लदे हुए थे। लेकिन भारत की आत्मा, मन और हृदय जीवन के उन सिद्धातो की तरफ झुकते रहे है, जो मनुष्य की भावनाओ और उसके जीवन के सामने आनेवाले भौगोलिक और जात–पात आदि के बंधनो को हटाते हुए, उन्हे इतने विराट और महान् बनाते हो, जो समस्त विश्व को एक कोने से दूसरे कोने तक छू रहे हो। जिस संस्कृति ने मनुष्य को इतना विराट बनाने का महान् सन्देश दिया, उसी सस्कृति में भारत की आत्मा, उसके मन और हृदय का परिचय मिल सकता है।

भोग और विलास मानव जीवन के उच्च आदर्श नही हो सकते, और न मनुष्य को विराट बनाने के वे महान् सन्देश ही बन सकते है। हिंसक विधि-विधान और वाह्य क्रिया-काण्ड भी, मानवीय हृदय और मन को इतने ऊँचे नहीं उठा सकते कि वे विश्व की सीमाओ को लाघ सके। जात-पात के सिद्धात तो मनुष्य को इतना छोटा बना देते है कि वह अपने जीवन की उँचाइयो का भी अनुभव नही कर सकता। श्रमण सस्कृति ने मनुष्य के लिए जो जीवन सिद्धांत दिए है, वे उसे एकदम जीवन की अन्तिम ऊँचाइयो पर ले जा रहे है। वे मनुष्य के आत्मा, मन और हृदय को छूकर चलते है, और मनुष्य के भावो को अपरिसीम बनाते और उनकी मलिनता को पवित्र करते हुए चलते है। इसलिए भारत की कोई मूल संस्कृति हो सकती है, तो वह श्रमण–सस्कृति है। इसका कोई

सन्देश हो सकता है तो वह है इस सस्कृति का मनुष्य मात्र को सत्य और अहिसा का आदेश। जो सिद्धात मनुष्य मात्र को यह आदेश नही दे सके है, या जो व्यक्ति के शरीर या सामाजिक रीति-रिवाजो तक अपना प्रभाव डालकर मिटते रहे है, उन्होने ससार की आग न बुझाकर संसार में आग बरसाई, परमार्थ की राह न दिखाकर स्वार्थ-साधना के मार्ग का निर्देश किया। श्रमण सस्कृति ने मनुष्य के लिए जो आदेश दिया है, वह सब बन्धनो से मुक्त होने के कारण उसके जीवन की अन्तर्भूमि को विराट बनाता हुआ उसे भी महान् बनाता है। इसलिए श्रमण सस्कृति ने मनुष्य के सामने सबसे पहले विश्व के समस्त प्राणियो को अपनी आत्मीयता के समर्पण करने का आदेश दिया जिसे मानव जाति मे अहिसा के महान् सिद्धात के रूप में उपस्थित किया। अहिसा का वह महान् सिद्धात, जीवन के सभी सिद्धातो का प्रतिनिधित्व करता है। वह सबसे विश्व-प्रेम, न्याय, समस्त प्राणियो के उत्पीडन के उच्छेद, अभय और सुरक्षा का सन्देश-वाहक है। उसने समस्त प्राणियो के विषय में अटल घोषणा की है—'ससार के समस्त प्राणी जीवन की प्यास से व्याकुल है।'

श्रमण सस्कृति की प्रधान शाखा जैन-सस्कृति का तो सारा दारोमदार ही अहिसा पर है। इसने अहिसा को, 'किसी को मत मारो'- जैसे छोटे-छोटे वाक्यो की ही परिभाषा में समाप्त नही किया है। इसने इसे एक अगाध आध्यात्मिक दर्शन के रूप में उपस्थित किया है। विश्व की अन्य संस्कृतियाँ अहिसा के अगाध आध्यात्मिक दर्शन समुद्र के तट तक न पहुँच सकने के कारण उसके ऊपर ही ऊपर तैरती रही, जिससे वे अहिसा-हिसा के सिद्धातो को अच्छी तरह न समझ सकने के कारण बहुत गलत ढग से इन सिद्धातो के प्रचार में सहायक बनती रही। ये ही गलत धारणाएँ, दुनियाँ में भयकर आग बनकर भडकती रही, जिनमें मानव जातियो को अपनी संस्कृति और सभ्यताओ के बडे-बडे बलिदान देने पडे। यदि जैन संस्कृति की तरह दुनिया ने हमेशा से अहिसा की मौलिकता और आवश्यकता अनुभव की होती तो हमें आज यह दुनियाँ इतनी अव्यवस्थित, भयकर और असुन्दर रूप में नही मिलती, मानव-जाति के खून से लथडे हुए ऐतिहासिक पृष्ठ पढने को नही मिलते, । बल्कि यह सारी दुनियाँ स्वर्ग से भी अधिक व्यवस्थित और सुन्दर मिलती। इसलिए जैन सस्कृति ने मनुष्य के सामने अहिसा का विराट रूप रखते हुए यह उदार सन्देश रखा है कि यदि वह जीने और हर तरह के

भय से मुक्त होने का इच्छुक है, तो वह अपने जीवन और सुख–सुविधाओ की चिता से पहले दूसरो को मृत्यु और भय से मुक्त करने के साधनो और उपायों को शीघ्र करने का प्रयत्न करे, नही तो यह दुनियाँ उसे कभी भी सुन्दर रूप में न मिलेगी।

इस सस्कृति की अहिंसा का क्षेत्र जल और वनस्पति जैसे वे अत्यन्त मूक प्राणी भी है, जिनके सुख–दुखो का संसार को जरा भी ज्ञान नही है। इतनी सूक्ष्म अहिंसा का आविष्कार, मनुष्य को मनुष्य के प्रति हमेशा के लिए अहिंसक बनाए रखने की महान् योजना, और विश्व मे शाश्वत शाति लाने का एक महान् प्रयत्न है। जैन सस्कृति मनुष्य के मानस को इतना अहिंसामय बनाना चाहती है कि उसके विचारो की दुनिया में किसी भी प्राणी की हिंसा के सकल्प जन्म न ले सके। उसने मानवीय स्वभावो को विश्वहितो में बदलने के लिए कुछ मौलिक संयम–सिद्धातो का आविष्कार किया है। इसने मनुष्य के मासाहार, मदिरापान, स्त्रैण–जीवन जैसे दुर्गुणो पर नियत्रण लगाया है, जो मनुष्य के स्वभाव को महान् उत्तेजक बनाते है। 'जीओ और जीने दो' के अमर सन्देश देने का उत्तरदायित्व जैन सस्कृति ने हमेशा से अपने ऊपर लिया है। स्वतत्रता के युग से पहले बहुत से लोगो ने जैन सस्कृति पर उसकी अहिंसा के लिए भारत की गुलामी, पतन और कायरता के जो आक्षेप किये है, उनसे उन्होने अपनी बडी भारी जीवन की भूलो का प्रमाण दिया है। जहाँ कई सस्कृतियो ने अहिसा को जीवन के गलत सिद्धातो में स्वीकार किया, वहाँ जैन सस्कृति ने उसे विश्व को एक कोने से दूसरे कोने तक बन्धुता के संबधो में जोड़ने के सिद्धातो में स्वीकार किया है। दूसरी संस्कृतियाँ इसे कष्ट और यातनाएँ पहुँचाने दौडी, लेकिन इसकी आंखो में उनके लिए अहिंसा टपक रही थी। इसने उन्हे मित्र की आँखो से देखा। यह थी जैन–सस्कृति की अहिसा की उत्कृष्ट एव अविचल साधना। जैन सस्कृति की समकालीन अहिंसक सस्कृतियाँ, भारत की सीमाओ को लाघकर जिन द्वीपो और राष्ट्रो मे गई, वहाँ आज उनकी अहिसा की साधना का बिल्कुल अत हो चुका है। लेकिन जैन सस्कृति आज जहाँ मौजूद है, उसकी अहिंसा की साधना आज भी उसी तरह से चल रही है। आज भी उसके दयालु नेत्र किसी भी जीवन की हिंसा को देख नही सकते।

वल्लभी वांचना की तिथि और समकालीन नरेश

(डॉ ज्योतिप्रसाद जैन, एम ए एल. एल. बी पी. एच्. डी , लखनऊ)

आगम साहित्य के इतिहास में सौराष्ट्र देश की प्राचीन राजधानी वल्लभी नगरी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, जिसके कारण इस नगरी का नाम जैन परपरा में चिरस्मरणीय हो गया है ।

इसी नगर में नागार्जुन सूरि (वीरात् ८२६–९०४) ने ४ थी शताब्दी ईस्वी के मध्य के लगभग एक बृहत्साधुसम्मेलन करके आगमो की वाचना एवं सकलन करने का प्रयत्न किया था । वल्लभी की यह प्रथम वाचना श्वेताबर परंपरा की द्वितीय आगम वाचना थी । प्राय इसी समय मथुरा में आर्य स्कंदिल (स्थण्डिल) द्वारा भी एक वाचना की गई थी । किन्तु परस्पर मत भेदो के कारण ये दोनो ही वाचनाएँ आगमो को सकलित करके पुस्तकारूढ करने में असफल रही ।

इसके लगभग एक शताब्दी पश्चात् सौराष्ट्र की इसी वल्लभी नगरी में आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने फिर एक बृहत्साधु सम्मेलन किया और मौखिक परम्परा से प्राप्त अवशिष्ट आगमो की वाचना की । सौभाग्य से वे उक्त आगमो को संकलित करके पुस्तकारूढ करने में भी सफल हुए ।

अनुश्रुतियो से पता चलता है कि उस काल में देश में एक व्यापक भीषण दुर्भिक्ष पड़ा था जिसके कारण साधुसघ भारी दुर्दशा को प्राप्त हो गया था और निरतर ह्रास को प्राप्त होते जा रहे । आगम भी अति विपन्नावस्था को पहुँच गये थे । सभवतया वल्लभी नगरी उक्त दुष्काल के प्रकोप से कुछ सुरक्षित रही थी, वहाँ जैन साधुओ को कुछ राज्याश्रय भी प्राप्त था और जनता में भी इस धर्म के प्रति कुछ अनुराग था, इसी से आगम और सघ के वात्सल्य से प्रेरित होकर आचार्य देवर्द्धिगणि ने अपने महाकार्य के लिए इस नगर को चुना हो । मुनि समयसुन्दरकृत 'समाचारी शतक' में लिखा है—

"श्री देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणेन श्री वीरात् अशीत्यधिकनवशत (९८०) वर्षजातेन द्वादशवर्षीय दुर्भिक्षवशात् बहुतरसाधुव्यापत्तौ बहुश्रुत विच्छित्तौ च जाताया भव्यलोकोपकाराय श्रुतभक्त्यै च सघाग्रहात्

मृतावशिष्टतत्कालीनसर्वसाधून् वल्लभ्यामाकार्य तन्मुखाद् विच्छिन्ना-वशिष्टान् न्यूनाधिकान् त्रुटिताऽत्रुटितान् आगमालापकान् अनुक्रमेण स्वमत्या सकलय्य पुस्तकारूढाकृता ततो मूलतो गणधरभाषितानामपि तत्संकलना-नतरे सर्वेषामपि आगमानां कर्ता श्री देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणा एव जाताः।"

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि किन दुस्तर परिस्थितियो मे और कितनी सावधानीपूर्वक क्षमाश्रमणजी ने आगमोद्धार का यह महान् कार्य साधकर भावी पीढियो को अपनी चिरऋणी वनाया था। देवर्द्धिगणि द्वारा वीरात् ९८० में वल्लभीपुर में आगमो के लिपिवद्ध किये जाने का समर्थन एक प्राचीन गाथा से होता है, जो इस प्रकार है—

वल्लहिपुरम्मि नयरे, देवड्ढिप्पमुहसयलसंघेहि।
पुत्थे आगम लिहिओ, नवसय असीआओ वीराओ॥'

देवर्द्धिगणि से संवधित एक अन्य अनुश्रुति मिलती है जिसके अनुसार उन्होने वीरात् ९९३ में आनन्दपुर नगर में राजा ध्रुवसेन के पुत्रशोक के शमनार्थ उसकी राजसभा में कल्पसूत्र का व्याख्यान किया था।

यथा—'श्री कल्पसूत्र श्री महागिरसंतानीय श्री देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणं-लिखितं, तस्मिन्वर्ष आनन्दपुरे ध्रुवसेननृपस्य पुत्रमरणे शोकार्तस्य समाध्यर्थं सभा-समक्ष श्री कल्पवाचना जाता इति वहुश्रुता॥' (धर्मघोषसूरिकृत दुःषमाकाल श्री श्रमणसंघ स्तोत्र)। विनय विजय कृत सुखबोधिका मे इस घटना की तिथि वीरात् ९९३ ही है, यथा—

'वीरात्त्रिनंदाक (९९३) शरद्यचीकरत्, स्वचैत्यपूते ध्रुवसेन भूपति।
यस्मिन् महे ससदि कल्पवाचनामाद्या तदानंदपुर न क स्तुते॥'

उत्तराध्ययन निर्युक्ति, विचार श्रेणी, रत्नसंचय प्रकरण, काल सप्ततिका, उपदेश गच्छ पट्टावलि आदि से भी वीरात् ९९३ मे देवर्द्धि द्वारा आनंदपुर में ध्रुवसेन राजा की सभा मे कल्पसूत्र का व्याख्यान किये जाने की पुष्टि होती है। इनमें से किसी-किसी ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि वाचना भेद से यह तिथि ९८१ या ९८० भी कही जाती है और एक स्थान में तो स्पष्ट लिखा है कि—

'नवशतअशीतिवर्षे, वीरात् सेनागजार्थमानन्दे।
संघसमक्ष समहं, प्रारब्धं वाचितुं विज्ञै.॥'

तिथि संवधी इस मतवैभिन्य के कारण विद्वानो में यह भ्रम प्रचलित हो गया है कि वल्लभी वाचना की दो तिथियाँ प्राप्त होती है—एक वीरात् ९८० या

९८१ और दूसरी वीरात् ९९३। किन्तु जैसा कि एक पुरातन विद्वान् ने स्पष्ट किया है कि 'नवशत त्रिनवतितमवर्षे च कल्पस्य पर्षद् वाचनेति--वीरात् ९८० मे आगम पुस्तकारूढ हुए और वीरात् ९९३ में कल्पसूत्र का ध्रुवसेन की राजसभा में व्याख्यान हुआ। अतः उपरोक्त भ्रम के लिए वास्तव मे कोई कारण नहीं है। द्वितीय वल्लभी वाचना की और देवर्ध्दिगणि द्वारा आगमो के पुस्तकारूढ होने की तिथि वीर निर्वाण सवत् ९८० ही माननी चाहिए जो सर्वमान्य महावीर निर्वाण तिथि ५२७ ईस्वीपूर्व के अनुसार सन् ४५३ ईस्वी (वि. सं ५१० और श स. ३७५) बनती है। उसके १३ वर्ष बाद, सन् ४६६ ई में क्षमाश्रमणजी ने आनदपुर के राजा ध्रुवसेन की राजसभा में कल्पसूत्र का व्याख्यान किया था।

जहाँ तक वल्लभी वाचनासबधी अनुश्रुति का सबध है। उसमें किसी राजा, राजसभा राजधानी या राज्याश्रय का कही कोई सकेत नही पाया जाता। किन्तु दूसरी घटना से संबंधित अनुश्रुतियो से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि आनदपुर का राजा ध्रुवसेन आचार्य देवर्द्धि का भक्त था और सभवतया उनके उपदेश से वह जैनधर्म में दीक्षित हो गया था। यह बात भी ध्यान देने की है कि वल्लभी वाचना के साथ ध्रुवसेन का और आनदपुर के साथ आगमो की वाचना एव पुस्तकारूढ किये जाने का कोई सबंध नही पाया जाता।

सामान्य धारणा यही है कि वल्लभी का ही अपर नाम आनदपुर था और उल्लेखित ध्रुवसेन वल्लभी का ही राजा था। वल्लभी में ५ वी शती ई० के अन्त से लेकर ८ वी शती ई के मध्य तक लगभग ढाई सौ वर्ष मैतृकवशी राजाओं का राज्य रहा है और उस वश में सेनात नामवाले कई राजा हुए है—स्वय ध्रुवसेन नाम के कम से कम तीन राजा हुए है। अतएव प्रायः यही समझा जाता है कि वल्लभी का मैतृकवशी नरेश ध्रुवसेन ही देवर्द्धि सबधी अनुश्रुतियो का ध्रुवसेन था।

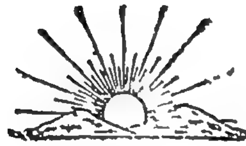
किन्तु ऐसा मानने में कुछ भारी बाधाएँ है। ४ थी शती ई के अन्त के लगभग चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (ई ७९–४१३ ई) ने गुजरात-सौराष्ट्र के शको को पराजित करके उक्त समस्त प्रदेश को अपने राज्य में मिला लिया था। और एक गुप्त शिलालेख से प्रकट है कि ४५५–५६ ई. में, सम्राट् स्कदगुप्त के शासन-काल के प्रारभ में ही पर्णादत्त नाम का व्यक्ति सम्राट् के आधार से गुजरात सौराष्ट्र का राजपाल था और उक्त वर्ष उनने सम्राट् की आज्ञा से

गिरिनगर की तलैठी में सितप्राचीन सुदर्शन झील का जीर्णोद्वार कराया था। इसके उपरान्त लगभग ४६५–७५ ई मे सौराष्ट्र एव काठियावाड़ का राज्यपाल गुप्तो को एक अन्य सेनापति मैतृकवंशी भटार्क था। उसका पुत्र एव उत्तराधिकारी सेनापति धरसेन प्रथम हुआ। इसके उपरान्त इसका भाई द्रोणासिंह महाराज ५०७ ई में विद्यमान था। द्रोणासिंह का उत्तराधिकारी उसका भाई ध्रुवसेन महाराज (प्रथम) (५२५–४५ ई) था। यही वल्लभी प्रथम स्वतत्र नरेश था और पर्याप्त शक्ति हीन था। इस वश मे ध्रुवसेन नाम का भी यही प्रथम ज्ञात नरेश है। इसके उपरान्त ध्रुवसेन द्वितीय (६४०) और ध्रुवसेन तृतीय (६५१–५३ ई) हुए है।

इन तीनो ध्रुवसेनो में से कोई भी देवर्द्धिगणि (४५३–६६ ई) के समकालीन नही हो सकता। प्रो जार्लचारपेंटियर ने (उत्तराध्ययन भूमिका में वीर निर्वाण की तिथि ४६८ ई. पू. मानकर वल्लभी वाचना की तिथि वीरात् ९९३ को ५२५ ई. मान लिया और इस प्रकार देवर्द्धिगणि एव मैतृकवशी ध्रुवसेन प्रथम को समकालीन सिद्ध करके, इसी आधार को अपनी मान्य निर्वाण तिथि का पोषक बनालिया। किन्तु एक तो महावीर निर्वाण की तिथि ४६८ ई. पू. होने के विरूद्ध अनेक अकाटच प्रमाण है दूसरी ओर मैतृकवंशी राजाओ का उक्त वाचना या जैन धर्म के साथ कोई सबध रहा यह बात भी अत्यन्त सदिग्ध है। वस्तुत जैस्न कि प्रो घाटगे आदि अन्य आधुनिक विद्वानो का मत है—वल्लभी के मैतृको के अन्गिनत अभिलेख प्राप्त है, किन्तु उनमें कही भी इस महासम्मेलन का संकेत नही है और न उनसे इस वश के किसी भी राजा का जैनधर्म की ओर झुकाव ही प्रकट होता है। दूसरी ओर जैन अनुश्रुतियो में इस वाचना को नरेश विशेष या राजवंश विशेष के साथ सम्बन्ध नही किया। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि जैनो को वल्लभी के किसी राजा का आश्रय प्राप्त नहीं था और इस वाचना का सम्पूर्ण श्रेय केवल स्वयं जैनसघ को ही है। यह प्रदेश इसके बहुत पूर्व से जैन साहित्यिक प्रवृत्तियो का केद्र रहा है। धरसेनाचार्य ने इसी प्रदेश के गिरिनगर की चन्द्रगुफा में निवास करते हुए पुष्पदन्त और भूतबलि को प्रथम शती ई. में महाकर्म्म प्रकृति प्राकृत का व्याख्यान किया था जिसके फलस्वरूप उक्त आगम का उद्धार हुआ और यह पुस्तकारूढ़ हुआ। देवर्द्धि के एक शताब्दीपूर्व नागार्जुन सूरि ने वल्लभी में ही आगम संकलन का प्रयत्न किया

था। कालान्तर मे भी जिनभद्र क्षमा श्रमण आदि अनेक विद्वानों ने इस नगर में साहित्य पलायन किया है। अस्तु देवर्द्धिगणि ने भी अपने ही बल और प्रभाव से वह महान् कार्य इस नगर में साधा था। (देखिए—क्लासिकल एजु पृ ४१०–४११)

अत इतिहास से तो यही प्रकट है कि वाचना के समय सौराष्ट्र-गुजरात का शासक गुप्त सम्राट् का राज्यपाल पर्णादत्त था न कि कोई ध्रुवसेन। संभव है कि वल्लभी के आस-पास कही कोई आनन्दपुर नाम का दूसरा नगर न हो जिसका छोटा-मोटा स्थानीय राजा कोई ध्रुवसेन हो और वह क्षमाश्रमणजी का भक्त होगया हो। अथवा मैतृकवशी सेनापति सटार्क (४६५–७५ ई.) का ही अपर नाम ध्रुवसेन हो या उसके पूर्वज का नाम ध्रुवसेन हो। किंतु यह सब बाते इतिहास सिद्ध नही है—इन अनुमानो के पोषक कोई प्रमाण जब तक उपलब्ध न हो तब तक यह कुछ नही कहा जा सकता कि देवर्द्धिगणि का भक्त राजा ध्रुवसेन कौन था।



तिलोकऋषिजी की काव्य-कला

(ले–प्रो. नरेन्द्रकुमार भानावत, एम् ए.)

हिन्दी-साहित्य मे काव्य-कला का स्फुरण दो रूपो में हुआ है एक ओर उसने राज्याश्रित होकर वैभव और विलास के गीत गाये हैं तो दूसरी ओर जनाश्रित होकर लोक-मानस को आत्म–कल्याण और कर्तव्य-धर्म का उद्बोधन दिया है। एक में साहित्यिक कारीगरी और सजावट है तो दूसरे में भावना का स्वतः स्फूर्त उन्मेष। कहना न होगा कि जैन–काव्य–परंपरा विविध चरित्रो, विविध घटनाओ, विविध भावनाओ को –रंग–रूप देती हुई दूसरी धारा का प्रतिनिधित्व करती रही है। जहाँ उसने हिन्दी के आदिकाल की गोद को भरा है, रीतिकाल की श्रृंगार–वाटिका में आध्यात्म–प्रेम का परिमल बिखेरा है वहाँ आज भी वह मानवता का–सत्य–अहिंसा का सन्देश दे रही है।

हमारे आलोच्य कवि तिलोकऋषि उन कवियो में है जिन्होने जीवन के विविध पहलुओ का मनन–चिन्तत और अनुभव कर उन्हे काव्य एव संगीत का स्वर दिया है। केवल सुनी–सुनाई अधकचरी बातो पर उन्होने काव्य–प्रासाद खड़ा नही किया। सवत् १९०४ में चैत्र कृष्ण तृतीया रविवार को रतलाम में दुलीचन्दजी सुराणा के यहाँ जन्म लेकर यह बाल–ब्रह्मचारी दस वर्ष की अवस्था में ही अयवन्ताऋपिजी महाराज का शिष्य बन गया। श्रावक से श्रमण बन गया। कर्तव्य ने कामना को दबा दिया, विराग ने राग पर विजय पा ली। दक्षिण एवं मध्यभारत में मानवता का, आत्म–कल्याण का सन्देश लेकर यह तपस्वी घूमता रहा, भटकता रहा। भूखा रहकर, प्यासा रहकर, बाईस परीषहों का समभावपूर्वक सामना कर यह कामजयी काव्य–कला को निखारता रहा, भव्य–जीवो को अनुभव–मुक्ता बांटता रहा और संवत् १९४० में श्रावण कृष्ण द्वितीया को सदा के लिये अमर हो गया इस पार्थिव देह का परित्याग कर।

काव्य–कृतियाँ––

(१) प्रकाशित रचनाएँ–ज्ञानकुजर, चित्रालंकार, अध्यात्मपर्व दशहरा तिलोकछन्द सग्रह, तिलोक काव्य संग्रह आदि।

(२) अप्रकाशित रचनाएँ–श्री चन्द्रकेवली का रास, धर्मबुद्धि–पापबुद्धि चरित्र, समरादित्यकेवली चरित्र, पंचसमिति तीन गुप्ति का अष्टढालिया, सीता चरित्र, श्री हंसकेशव चरित्र, रात्रि भोजन निषेध, अर्जुनमाली चरित्र धन्ना

शालीभद्र चरित्र, भृगु पुरोहित चरित्र, श्री सुदर्शन चरित्र, श्री नन्दिषेण चरित्र, श्री चन्दनबाला चरित्र, श्री धर्मजय चरित्र, श्री महावीर चरित्र, अमरकुमार चरित्र, नन्दन मनिहार चरित्र, श्री हरिवश काव्य चरित्र आदि ।

काव्य सौष्ठव --

तिलोकऋषि की रचनाओ पर विहंगम दृष्टि डालने से पता चलता है कि उनकी काव्य-धारा के दो रूप है:--

(१) जैन-दर्शन से सम्बन्ध रखनेवाले आदर्श चरित्रो का रसपरक आख्यात-वर्णन ।

(२) मानव जीवन को उदात्त बनानेवाले लोक व्यवहारी सिद्धातो का काव्यमय अभिव्यजन ।

पहले रूप ने हमें कई सुन्दर खण्डकाव्य दिये है तो दूसरे रूप ने मुक्तक-मोती ।

हमारे आलोच्य-कवि की यह विशेषता रही है कि उसने दार्शनिक-विचार, नैतिक शिक्षा, समाज-सुधार, आत्म-कल्याण जैसे गंभीर विषयो को बडी ललित पदावली में गाकर 'गागर में सागर' भरने का काम किया है । आपके छन्दो में हृदय में प्रभाव डालने की अद्भुत क्षमता है जो एक बार हाथ में उठाकर गाने लगता है तो फिर गाता ही रहता है । तन्मय होकर उससे एकरस होजाता है । सीधी-साधी भाषा में मानव को विवेकशील बनने की जो चुनौतीपरक प्रेरणा दी है उसमें कितना बल है:--

'मान तू मान तू मान तू मानव, छाण ले छाण ले छाण तू तंत ।
जाण तू जाण तू जाण ले जीवने, आण रे आण रे आर तू खंत ।।
मोड दे मोड़ दे मोड़ तू मान को, छोड़ दे छोड़ छोड़ तू थंत ।
धार तू धार तू धार ले अक्कल, केत है केत तिलोक के संत ।।'

तिलोकऋषि उन ज्ञानमार्गी सत कवियो की श्रेणी में बैठे दिखाई देते है जब वे जी खोलकर नारी की निंदा करते है पर उनका नारी-निंदावर्णन सामान्य नही है, काव्यत्व-भार से लदा हुआ है ।

'नारी है नरकवास तन है सघनबन, साडे तीन क्रोड़ रोम तरु कर छायो है ।
कुच है पहार रहे काम चौर छग तीर, भमूहकबान जान खेचके चढायो है ।।
नागन सी वेणी कटि केहरी को भयपूर, भूलके अजान जन वन में लुटाये है ।
कहत तिलोक कोई चतुर न चूके पंथ, धरम खजानो भर मोक्ष को सिधायो है ।।

मन की चंचलता का और उसे वश में करने की भावना का बडा आलंकारिक चित्रण तिलोक के कवि-हृदय ने किया है। मन 'तोय मे तरग मानु कूदत कुरग फुनि' है तो क्षण क्षण में 'पीपल को पान जैसे हाले'। वह कुजर के कान की तरह अस्थिर है तो ध्वजा की उडान की तरह चचल भी। उसे वश करने का तरीका है 'पणिहारी कुम्भ चिते, तैसे धर्मध्यान ध्यावे सुख दिन २ में।'

सासारिकता का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि यह संसार अटवी है। काया रूपी नगरी में जीव रूपी वटायु ने आकर विश्राम लिया है और उसके चारो ओर काम रूपी चोर तथा पंचेन्द्रिय रूपी ठगणियाँ चक्कर काट रही हैं। अतः मुसाफिर को सतत जागरुक रहकर अपनी रक्षा करने की चेतावनी देता हुआ कवि कहता है—

'ज्ञानादिक गुण रूप रतन अमोल धर्म,
ऊघे तो ले जाय लूट मिथ्यातम घोर है।
तिलोक कहत सद्गुरु चौकीदार सीख,
धार रे वटावु ऊघे मती भई भोर है।'

काया रूपी नगरी की राज्य-व्यवस्था भी बडी भयावह है। यद्यपि राजा चेतन जीव है पर क्रोध रूपी कोतवाल, मान रूपी प्रधान, लोभ रूपी छडीदार और मोह रूपी फौजदार नें मिलकर राजा के विरुद्ध षडयन्त्र रच दिया है। जबतक विवेक रूपी मित्र की सहायता से सबको पराजित नही कर दिया जाय तबतक सुख कैसा ?

'काया रूप नगरी में चिदानंद राज करे,
क्रोध कोटवाल मानसिह प्रधान है।
कपट हजूरयो लोभ छडीदार बन्यो तामें,
मोह फौजदार अति करत गुमान है।
मानत न आण कियो मुलक वेहाल सब,
भयो नृप दु.खी कियो मित्र बोधिदान है।
लेइ फौज चढ्यो मित्र, मोह परिवार पर,
कहत तिलोक जीत लह्यो सिद्धस्थान है॥'

ऐसे सिद्ध-स्थान की प्राप्ति करने के लिये राज्य-व्यवस्था में क्राति करनी होगी। समकित को प्रधान, ज्ञान को भंडारी, शील को सारथी और क्षमा

रूपी हाथी-घोडो को एकत्रित कर संयम की सेना के हाथो में तप के हथियार देने होगे तभी कही कर्म रूपी शत्रुओ का वध होगा और मोक्ष रूपी गढ पर विजय की पताका फहरायेगी।

'जीव रूप राजा समकित परधान जाके,
ज्ञान को भडार शील रूप रथ सारके।
क्षमा रूप गज मन हय को स्वभाव वेग,
सजम की सेना तप आयुध अपार के॥
सज्झाय वाजित्र शुभ ध्यान नेजा फरकत,
रंयत छकाय सो बचाय कर्म मारके।
मोक्ष गढ जीतवा को कहत तिलोकरिख,
करियें सग्राम ऐसे धीरजता धारके॥'

कभी कवि आयु की नश्वरता का बोध देते हुए कहता है कि

'खिण खिण माहे जैसे अजलि को तोय घटे,
तैल खूटे दीपक की हीण होत जोत है।
ओस बिन्दु सूरज की तेजसु विरलाय जाय,
तैसे पलपल तेरो आयु क्षय होत है॥

और ससार-सागर में मोह रूपी जल है, भोग रूपी कीचड है। मान रूपी फेन तथा तृष्णा रूपी तरगो में जीव डूबा जा रहा है, फँसा जा रहा है अतः

'कहत तिलोक धर्म-दीप मोक्ष तीरव,
सजम जहाज ग्रही शिव पद पाय है।'

कवि की वाणी में कबीर की क्राति भरी हुई है वह बाह्य क्रियाकाड का विरोधी है। उसे आत्म-कल्याण के लिये मन्दिर, मस्जिद और गिरजाघर में जाने की जरूरत नही, उसका परमात्मा उसीके आत्म-मंदिर में प्रतिष्ठित है जिसकी पूजा करने का ढंग है--

'पूजा परमेश्वर की करत पडित जन,
ज्ञान निरमल जल दया-दीवो करिये।
किरिया कटोरो क्षमा-केसर को भरकर,
पांच नवकार गुण फूलमाल धरिये॥

तप रूप अगर उरवेविए जिनेन्द्र आगे,
ध्यान रूप नैवेद्य सो पापसेही डरिये ।
कहत तिलोक ऐसी करिये सदीव पूजा,
होत है सकल सुख भव-जल तरिये ॥'

कविने कही कही शब्द क्रीडा भी की है। जहाँ उसने दशहरेपर्व की आध्यात्मिक विवेचना की है वहाँ मनुष्यो के नामो से आध्यात्मिक उपदेश भी दिया है --

प्रेमसी जुम्मारसिंह वश किया जीवराज,
मानसिंह भाईदास मिल्या चारो भाई है ।
कर्मचन्द्र काठा भया रूपचदजी से प्यार,
धनराजजी की बात चाहत सदाई है ॥
ज्ञानचन्दजी की बात सुने न चेतनराय
आवे नही दयाचन्द सदा सुखदाई है ।
कहत तिलोकरिख मनाय लीजे नेमचन्द,
नही तो कालूराम आया त्रिपत सवाई है ॥

कवि ने वर्तमान-युग में अधिकाश पुरुषो को अपने आप को धार्मिक कहते देखा है । जब कि सच्चे अर्थों में उनमें धर्म-भावना का स्फुरण नही होता वे अपने आप को. विरागी सिद्ध करने का प्रयत्न अवश्य करते हैं । इस मनो-स्थिति का अध्ययन कर कवि ने पाँच प्रकार के वैरागियो का स्वरूप चित्रण किया है जो बडा ही व्यंग्यपूर्ण एवं मार्मिक है --

(१) मटक वैरागी:--

आवत तेवार तब करत है स्नान लोक, करे अलंकार केश सवारे नरनारी है ।
पेरत भूपण निज-वित्त के मुजब सब, खावत सरस माल फिरत हुशारी है ॥
वीतत तेवार तब फिरत निज रूप ही से, आवत तेवार तब फिरे वोही त्यारी है ।
कहत तिलोकरिख मटक वैरागी रीत, आवत परब धर्म करे नरनारी है ॥

(२) चटक वैरागी --

डाम मास मच्छर ज्यू माकण रू दुष्ट जीव, तनपे चटको देत दुखत तेवारी है ।
हाथ से खुजाल कर माने समाधान सुख, घडी पल बीत्या बाद दुःख न लगारी है ।
तैसी रीत चटक वैरागी नर जाणीएत, पडत संकट माने संसार दुख्यारी है ॥
मिटत है कष्ट तब भूलत है धर्मध्यान, कहत तिलोकरिख सो ही भी असारी है ।

(३) खीचड्यो वैरागीः--

लागत है भूख तब मिलत न अन्न नित्य, मन में विचारे सुखी दीसे अनगारी है ।।
दर्दरा में कर जोड़ कहे मुनिराजसेती, दीजिये सयम मोय संसार असारी है ।
माता कहे नदन से आज्ञा है मेरी तुझको, भोजन जीमी ने फिर होजो दीक्षाधारी है ।।
खीचडी में घृत खूब जीमत ही भूल्योधर्म, खीचड्यो वैरागी रीत तिलोक उच्चारी है।

(४) मसाण्यो वैरागीः--

तरुण उमर माही मर जावे कोई जन, होवत उदास मन झूरे नरनारी है ।
ससार असार सब, स्वप्ना की माया सम, एक दिन सबही को जानो निरधारी है ।।
छोडिये ससार फद करत विचार जन, बालके सिनान कर आवे घरबारी है ।
मोह मदिरा में अब करे फिर घर धंध, मसाण्यो वैरागी चोथो कह्यो सुविचारी है ।।

(५) असली वैरागी --

किरमजी रग जैसे धोवे कोई क्षोम देवे, तार तार होवे रंग उडे न लगारी है ।
तैसे भव्य जीव हिये धम रूपी लागो रंग, जाणत असार जग नागणीसी नारी है ।।
धन सब धूलि सम परिवार फास रूप, जानत अनित्य वित्त होय व्रतधारी है ।
करणी तो शुद्ध करे मन-वच- काय करी, कहत तिलोकरिख वदना हमारी है ।।

तिलोकऋषि की अपार भाषा-क्षमता का परिचय तब लगता है जब हम उन्हे सस्कृत की सूक्तियो पर भी कवित्त लिखते हुए देखते हैं । 'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरति,' 'मनुष्यरूपेण धेन्वश्चरति,' 'मनुष्यरूपेण श्वानोभवंति,' 'मनुष्यरूपेण खराश्चरति,' 'मनुष्यरूपेण तृणानि सति,' 'मनुष्यरूपेण भवंति वृक्षाः' 'और 'मनुष्यरूपेण धूलेश्च पुजा.' सूक्तियो पर जो उनके कवित्त है वे बडे मर्मस्पर्शी और मानवत्त्व का बोध देनेवाले है । 'मनुष्यरूपेण खराश्चरंति' पर लिखा गया यह कवित्त देखिये:--

'कहत गर्दभ शीत-ताप खमू डिल पर,
   गुणे गुणे गार लाऊ लगडे से वारी है ।
लिडाकी सो घुटी देवे काम आवे औषधि में,
   मिट्टी में मिलावे मल होवे एकतारी है ।।
शकुन सुलाभ कहूँ तुरत ही परगट,
   और सो करूँ पैमुक्ष मान न लिगारी है ।
और भी अनेक गुण मोय मे नराधिपत,
   निगुणी की उपमा न लागत हमारी है ।'

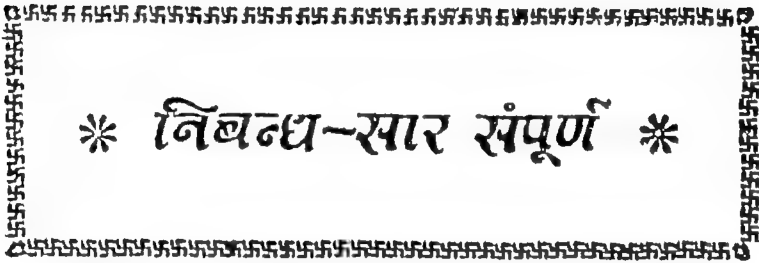
जैन कवियो में जितनी लोकप्रियता हमारे कवि को मिली है और किसी को नही। पच पदो की वन्दना में आये हुये सवैयो को जब प्रतिक्रमण करते समय जन-समूह गाता है तब निराला ही समा बंध जाता है। कवि की भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और प्रसादगुण सम्पन्न है। कही भी जटिलता या दुर्बोधता नही है। छन्दो मे जितनी सफलता कवित्त और सवैयो को लिखने में आपको मिली है शायद ही किसी हिन्दी कवि को मिली हो। रीतिकालीन कवियो ने कवित्त सवैये अवश्य लिखें पर उद्दाम बासनात्मक श्रृगारधारा बहाने के लिये ही आपकी यह विशेषता रही कि श्रृगार की जगह शात रस की मन्दाकिनी ही मन्थर गति से काव्य-प्रयाग की ओर बहती रही।

तिलोक ऋषि साहित्य या कला को मनोरंजन का साधन अथवा 'कला कला के लिये' माननेवाले नहीं थे वे तो समस्त कलाओ को जीवन से प्रेरित और प्रभावित मानते थे। कला और नीति का सुन्दर गठबधन उनकी काव्य-स्थली में होता है। उनका तो आदर्श ही था —

'सीखत वेद पुराण कुराण को, सीखत तान बजावत ताली।
जंतर मंतर तंतर सीखत, चोट चलाय कुचोट की टाली॥
खावण पीवण धातु रसायन, लावण्य और कला सब झाली।
रीति कोठी नही सोहे तिलोक के त्यो सब कला धर्म बिन ठाली।'

कहना न होगा कि ज्यो ज्यो रसिक-हृदय तिलोक के काव्यमहोदधि मे गोते लगायेंगा त्यो त्यो उसे भक्ति, वैराग्य और नीति के त्रिरत्न मिलते जायेंगे-ऐसे रत्न जिनकी चमक उसे लोकोत्तर प्रकाश से भर देगी।


* निबन्ध-सार संपूर्ण *




श्री तिलोक जैन विद्यालयके आद्य सदुपदेशक

श्री रत्नऋषिजी महाराज

का

संक्षिप्त-जीवन-वृत्त

चरित्रनायक श्री तिलोकऋषिजी महाराज के स्वर्गवास के समय उनके पट्टशिष्य श्री रत्नऋषिजी महाराज की अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी। श्री रत्नऋषिजी महाराजने किस उत्कट वैराग्य-भावसे अपने पिताजी स्वरूपचन्दजी के साथ घोडनदी मे पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराजके पास दीक्षा ली। इस सवका उल्लेख पहले हो चुका है।

दीक्षानंतर आपश्री अपने अलौकिक गुरु के सान्निध्य में एकनिष्ठ होकर स्वाध्याय करने लगे। पर साढे चार साल ही उनकी छत्रछाया में नही रहने पाये कि कुटिल काल-चक्र के कारण आपको अपने गुरुदेव की छत्रछाया से वंचित होना पड़ा। इस वीच आपने वहुत से सिद्धान्त के थोकडे, शास्त्रो का रहस्य, अनेक शास्त्रीय ढाले और साधुओ के आचार सम्वन्धी मुख्य-मुख्य वातो का परिचय प्राप्त कर लिया था। पर केवल इतना सा ज्ञान एक योग्य संत के लिए पर्याप्त नही था। उसके लिए पाण्डित्य की आवश्यकता थी। अपने गुरुदेव के सहवास में यह सव सुलभ था। अव गुरुदेव के अभाव में उन्हे चारो ओर अंधकार ही अंधकार प्रतीत होने लगा। कही पर ज्ञान की किरण दृष्टिगोचर नही होती थी।

अपने गुरुवन्धुओ में भी कोई ऐसे प्रतिभासपन्न विशिष्ट अध्येता नही थे, जो आपकी कामना की पूर्ति कर सकते, दक्षिण में भी उस समय अन्य किसी ऐसे सत का संचार नही हो रहा था, जिसके पास रह आप निराकुल भाव से अपना अध्ययन कर सकते। इधर आपके ससारपक्ष के पिता श्री तथा दीक्षित अवस्था के गुरु वंधु श्री स्वरूपऋपिजी म भी वृद्धावस्था के कारण अशक्त हो चुके थे। उस समय भी श्री स्वरूपऋषिजी महाराजने अपनी परिचर्या की ओर विलकुल ध्यान दिये विना वालमुनि श्री रत्नऋषिजी महाराजके विद्याध्ययन की ओर अधिक ध्यान दिया। दिवगत श्री तिलोकऋषिजी महाराज की ससार पक्ष की भगिनी महासती श्री हीराजी महाराज की भी केवल रत्नऋषिजी महाराज की

ओर दृष्टि थी। महासतीजी ने सोचा, हमारे सम्प्रदाय में केवल ये बालमुनि ही ऐसे है, जिन्हे योग्य वातावरणमे रखने से थोडे समय में सघके आधारभूत हो सकते है। अतएव महासतीजीने पुन संघके हितार्थ श्री रत्नऋषिजी महाराज को मालव प्रान्तकी ओर विहार कराने का सकल्प किया। श्री स्वरूपऋषिजी महाराजने भी अपने पुत्र की उन्नतिके हेतु एकाकी रहना स्वीकार किया और अपने साथ के दो मुनियो को श्री रत्नऋषिजी म के साथ कर दिये।

मालव प्रान्त की ओर विहार

श्री रत्नऋषि जी महाराज को विशिष्ट अध्ययन कराने के हेतु महासतीजी श्री हीराजी महाराज ने अपनी ९ शिष्याओ के साथ मुनित्रय के विहारानुक्रम से मालवप्रान्त की ओर पदार्पण किया। आपको कुछ दूर पहुँचाने के लिए श्री स्वरूप-ऋषिजी महाराज, महासती श्री चंपाजी महाराज, रामकुंवरजी महाराज और छोटाजी महाराज भी आई थी।

विद्याध्ययन

मालवप्रात में आने के बाद आप को श्री हीराजी महाराज के सदुपदेश से रतलाम नगरमे श्री वृद्धिचदजी नामक एक ऐसे सुशिष्य की प्राप्ति हुई जो चालीस थोकडो के ज्ञाता, शुद्धाचारी एक चादर पर अपना निर्वाह करनेवाले परम वैरागी थे। साथ मे आपकी धर्मपत्नी ने भी महासतीश्री हीराजी म. के पास दीक्षा ली थी।

अपने इस शिष्य के साथ आपश्रीने सुजालपुर की ओर विहार किया। उस समय वहाँ श्री खूबाऋषिजी महाराज ने अपने शिष्य चेनाऋषिजी म० की शारी-रिक अस्वस्थता के कारण स्थिरवास कर रखा था। उन्ही के समीप अब श्री रत्न-ऋषि जी महाराज उनकी आज्ञानुसार रहने लगे। श्री खूबाऋषि जी महाराज समयानुसार सब साधुओ को शास्त्र सुनाते थे और अर्थ की भी धारणा कराते थे। परंतु जिस समय से श्री रत्नऋषि जी महाराज आप के सानिध्य मे रहने लगे, तब से आप ही से शास्त्र का वाचन कराकर अर्थ कराने लगे, । गुह्य अर्थका सविस्तार विवेचन स्वयं श्री खूबाऋषि जी महाराज करते थे। दूसरे दिन प्रात काल उसी विषय पर आपश्री से परिषद में विवेचन करवाते थे। इस प्रकार अध्ययन के साथ आपने स्थविर शास्त्रज्ञ मुनि श्री खूबाऋषि जी म० के सहवासमें व्याख्यानकला में भी प्रवीणता प्राप्त कर ली। उस समय श्री खूबाऋषि जी महाराजके शिष्य श्री केवलऋषि जी महाराज भी आपश्री के साथ विद्याभ्यास कर रहे थे। पर्याप्त समय तक श्री खूबाऋषि जी म० की सेवामें रहकर आपश्री ने प्राय सब मुख्य मुख्य सूत्रोका अध्ययन कर लिया।

स्वाध्याय के लिए श्री खूबाऋषिजी म० के पास बहुत कुछ समय अंतेवासी के रूप से व्यतीत कर आप ने साधुचर्या के अनुसार ग्रामानुग्राम विहार करना प्रारम्भ किया। उस समय आप के साथ तपस्वी मुनि श्री केवलऋषि जी महाराज भी थे। इस मुनिश्री की समय समय पर उग्र तपश्चर्या चलती रहती थी। विहार करते-करते जब आप इच्छावर पधारे तब तपस्वी महाराज ने केवल छाछ के आधार से तेरह दिन की तपश्चर्या करने का निश्चय किया। उस समय इच्छावर से कुछ दूरी पर खेडी नामक ग्राम मे श्री केवलऋषि जी महाराज के संसार पक्ष के पुत्र अमोलकचन्द जी अपने मामा स्वरूपचन्द जी के यहाँ आये हुये थे। महाराज श्री की तपश्चर्या के समाचार पाकर बालक अमोलकचन्द जी खेडी से दर्शनार्थ इच्छावर आया।

बालक अमोलक की दीक्षा

इच्छावर आने के बाद अपने पिताश्री को साधुवेप मे देखकर बालक अमोलक का मन भी दीक्षा की ओर आकर्पित हुआ। दीक्षा विपय प्रकरण को लेकर रात्रि में दोनो सन्तो में बहुत ऊहापोह हुआ। बहुत विचार करने पर वे इस निर्णय पर पहुँचे कि यह बात प्रकट होने पर बालक की दीक्षा होना कठिन है।

क्यो कि इनके काका मन्दिरमार्गी है, तथा मामा आदि श्रीमत है। इस पर श्री रत्नऋषि जी महाराज ने फरमाया कि कोई कचहरी की ओर मत देखो, कर्त्तव्य की ओर पहले ध्यान दो। आपका आदेश होते ही एक वैरागी बन्धु ने रातोरात पछेवडी तथा मुँहपत्ती पर स्वस्तिक के चिन्ह बनाकर, सिरके बाल कैंची से कटवा, चोलपट्टा आदि पहना कर बालक अमोलक को स्थानक के बाहर बैठा दिया। इसपर कुछ लोगो ने विरोध किया। पर अपने पिताके पास बालक के रहने के कारण न्यायाधीश ने अपना निर्णय दीक्षा के पक्ष में ही दिया। बाद में श्री खूबाऋषि जी म० की सेवा में पहुँचने पर उनके आदेश से श्री अमोलकऋषि जी म० को चेनाऋषि जी महाराज की नेश्राय में रखा।

यद्यपि श्री अमोलकऋषिजी म० श्री चेना ऋषिजी म० के शिष्य थे। पर शास्त्रो का अभ्यास आप ने श्री रत्नऋषिजी महाराज के पास ही किया। श्री रत्नऋषिजी म० का भी इनके प्रति पुत्र की तरह वात्सल्य भाव था। एक समय विहारमें चलते-चलते जब यह बालमुनि थक गये तब इन्हे अपने कधोपर उठाकर आपने विहार किया था। ऐसे वात्सल्यमूर्ति गुरु के समीप रहकर आपश्रीने शास्त्रो का यथेच्छ अभ्यास किया। अपने इन वत्सल गुरु के समीप आप करीब ११ वर्षों तक रहे। उन्ही के साथ आप ने मालवा, मेवाड, सौराष्ट्र, गुजरात आदि स्थानो मे विहार कर पुन. महाराष्ट्र में पदार्पण किया और गुरु-द्वारा प्राप्त विद्या को अपने मस्तिष्क में ही नही रखकर उसे स्थाई रूप दिया।

पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज

का

वैशिष्ट्य

श्री अमोलकऋषिजी महाराज शास्त्रोद्धारक रूप से प्रसिद्ध है। भगवान् द्वारा प्ररूपित आगम अर्धमागधीमें होने से केवल प्राकृत के जानकार कुछ विद्वानो-तक ही सीमित थे, उनका अकले हाथो हिंदीकरण कर आपश्री ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की बहुत सेवा की है। आपके दीर्घकालीन प्रयत्न से आज हिंदी जाननेवाला कोई भी पाठक किसी भी आगम को हाथमे लेकर अच्छी तरह समझ सकता है। आगमो का अनुवाद करते समय आपश्री ने अपने साथ किसी विद्वान् को नही रखा। प्रति दिन एकाशन कर तीन साल तक कठोर श्रम करने के बाद आपश्री ने यह भगीरथ कार्य सम्पन्न किया। आप के द्वारा अनूदित आगमो को देखकर कोई भी पाठक इस कार्य की महत्ता का सहज ही अनुमान लगा सकता है। इस कार्य की महत्ता इससे और अधिक बढ जाती है कि पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महा-राज के अनुवाद करने के पहले आगमो का हिंदी अनुवाद उपलब्ध नही था। आज कल हिंदी आगमो के जो कुछ संस्करण प्रकाशित हो रहे है उन सब में पूज्य अमोलकऋषिजी म० द्वारा कृत आगमो का प्रश्रय लिया जाता है। आगमो के अतिरिक्त आपश्री ने और भी अनेक अमूल्य ग्रन्थो की रचना की है, जिनका पारायण कर अनेक भव्य प्राणियो ने सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर शुद्ध चारित्र धर्म को अगीकार किया है, उनमे एक नवदीक्षित श्री यशवंतऋषिजी म० ने सर्व प्रथम अपनी पत्नी तथा पुत्रियो का वियोग होने के बाद पूज्य श्री द्वारा रचित ध्यान-कल्पतरु का तीन चार बार पारायण कर ब्रह्मचर्य व्रत अगीकार किया और उसमे बताई हुई प्रणाली के अनुसार ग्यारह वर्ष तक कठोर साधना कर संवत् १९१७ कार्तिक कृष्णा अष्टमी गुरुवार के दिन उपाध्याय मुनि श्री आनंदऋषिजी म के पास वाबोरी मे भागवती दीक्षा ग्रहण की। इस दृष्टि से पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी म० का नाम केवल स्थानकवासी जैन परम्परा में ही नही, जैन समाज की तीनो परम्पराओ मे अमर रहेगा। जैन परम्परा का इतिहास लिखते समय पूज्य श्री अमोलकऋषि जी म० के नाम का उल्लेख किये विना वह इतिहास अधूरा ही रहेगा। शास्त्रोद्धारक पूज्य श्री अमोलकऋषि जी महाराज के महत्त्व पूण कार्यो पर स्वतत्र रूप से एक अलग पुस्तक लिखी जा सकती है। आपके आध्यात्मिक जीवन का दर्शन करने के लिए पाठक पूज्य श्री के ग्रन्थो का पारायण करे। क्योकि ग्रन्थकर्ता के ग्रन्थो मे उसका जीवन छिपा रहता है।

संत–समागम एवं धर्म प्रचार

अपने बिहारकाल में श्री रत्नऋषिजी महा० का अनेक सतो से परिचय हुआ। उनमें कई शास्त्रो के पारगामी विद्वान्, कुछ महान् क्रियाशील, एव कुछ व्याख्यान वाचस्पति थे। उनमे एक पूज्य श्री हुकमीचंदजी महा० की सप्रदाय के वादीमानमर्दक पण्डित मुनि श्री नदलालजी महा० थे। दूसरे महान् तपस्वी श्री वेणीरामजी महा० है, जो तपस्वीजी पिछले दस वर्षसे केवल छाछ के आधार से रहते थे, उनसे आपने शास्त्रो का बहुत कुछ रहस्य प्राप्त किया। तपस्वीजी महा०के आग्रहसे आप कुछ समय तक उनके साथ रहे। इनके अतिरिक्त तेजमलजी महा० की सप्रदाय के श्री प्यारचदजी महा०, इद्रमलजी महाराज और हुकमीचंदजी महा० की संप्रदाय के श्रीलालजी महा० से भी आपने समय समय पर शास्त्रीय चर्चा कर बहुत कुछ शास्त्रों का रहस्य प्राप्त किया। उस समय मालवा, मेवाड, राजस्थान और बादमे गुजरात में विराजित प्राय सब अग्रगण्य मुख्य संतो से आपने परिचय साधकर उन्हे अपने गुणो से मुग्ध किया।

गुणग्राहकता के अतिरिक्त महाराज श्री की व्याख्यान शैली अदभुत थी। जो कोई आपका व्याख्यान सुनता, आपकी ओर आकर्षित हो जाता। अपने विहारकाल में आपने अपनी कथनी और करनी की एक वाक्यता द्वारा अनेक व्यक्तिओ को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किया। करजू ग्राम निवासी गमेरचदजी नामक एक वृद्ध श्रावक से ज्ञात हुआ कि जिस समय कुछ गिने गिनाए वृद्धो को छोडकर शेष श्रावक-गणमुंहपत्ती बाधनेमें भी लज्जा का अनुभव करते थे, उस समय महाराज श्रीने अपने महान् व्यक्तित्व से नवयुवको को इस मिथ्या लज्जा से पराङ्-मुख कर मुहपत्ती बाधने के लिये विवश किया। एक वार आपके व्याख्यान को सुनकर श्री प्रतापमलजी महाराजने कहा–रत्नऋषिजी ! आपके पास ऐसा-कौनसा मोहनी मत्र है, जिससे जो आपका व्याख्यान सुनता है वह आपके वशमें हो जाता है। श्री रत्नऋषिजी महाराज के सदुपदेश से केवल जैन धर्मावलंबी ही अपने धर्म–पर दृढ नही हुए, वरन् अन्य मतवाले अनेक लोगोने भी जैन धर्म अंगीकार किया। हिंसा में रत रहनेवाले कुछ राजा महाराजाओ ने तो उग्र हिंसाको छोडकर उत्त-रोत्तर अहिंसाकी दिशामें प्रयाण करने का पच्चक्खाण लिया।

एक वार मेवाड प्रात में विहार करते समय वहा की पहाडी भूमि मे स्थित सियाड, वंवोरा के ठाकुर साहव अपने उमरावो सहित आपका व्याख्यान सुनने आये। आपका व्याख्यान सुनकर ठाकुरसाहवने सिह व्याघ्र आदि हिंसक प्राणियो को छोडकर अन्य पचेन्द्रिय प्राणियो को नही मारने का प्रत्याख्यान किया। एका–दशी आदि पर्व तिथियो मे मासभक्षण करने का परित्याग किया।

यहा से विहार करने के कुछ दिन बाद का उल्लेख है कि पुन —श्री रत्न ऋषिजी महाराज श्री अमोलक ऋषिजी महा० के साथ विहार करते करते सिहाड़ पधारे। वहा आप श्री के पास दीक्षा लेनेके प्रकरण को लेकर लडते झगडते देख तत्काल वहा से विहार कर दिया।

कुछ दूर जानेपर बिकट जंगल के कारण रास्ता भूल गये। पहाडके चक्रव्यूह मे रास्ते तथा दिशा का कुछ ध्यान नही रहा। दो घटे तक इधर उधर चक्कर लगाने पर भी रास्ते का कुछ पता नही लगा। सूर्यास्त होने का समय निकट आ गया। इधर इस घने जगल मे आप दोनो को सिंह व्याघ्र आदि की शंका भी होने लगी। दोनो सोचने लगे-अब क्या करे और किधर जायँ ? तदनंतर जगल में चारो ओर देखकर श्री रत्नऋषिजी महा० ने कहा, इधर तीतर पक्षी बोल रहा है, इसकी ध्वनि से प्रतीत होता है कि कही आस पास गाव होना चाहिये। पहाड की उपत्यका मे होने के कारण हमें कोई वसती नही दिखाई दे रही है। तुम इस पहाड की चोटी पर चढकर देखो। श्री अमोलक ऋषिजी महा० ने पहाड की चोटीपर चढकर देखा, तो उसकी दूसरी ओर पास ही में एक गाव दृष्टि गोचर हुआ। फिर महाराज श्री को बुलाकर दोनो सतोने सूर्यास्त के पहले उस गाव मे पदार्पण किया।

दोनो सतो को देखकर लोग बोले- आज प्रात काल महाराज श्री ने विहार किया, रास्ता भूल जाने से सारे दिन भूखे प्यासे पहाडो में भटकते फिरे। आपको वहुत ही कष्ट हुआ। तव महाराज श्री ने कहा-सियाड़ से आहार पानी करके निकले थे। रास्ता भूल जाने से पहाड की दूसरी ओर चले गये थे। यह सुन लोग कहने लगे-अच्छा हुआ महाराज! आप चले आये। इस जंगल में तो सिंह रहता है। तत्पश्चात् प्रतिक्रमण कर सो गये। रात्रि व्यतीत होने पर प्रतिक्रमण आदि कर कानोड की ओर विहार किया।

एक बार एक तुरकी बोहरा कुछ मेवा लाकर महाराज श्री के सामने उपस्थित हुआ। उसने अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा से महाराज श्री से निवेदन किया। आपका व्याख्यान सुनकर मै तृप्त हो गया हूँ। इसके उपलक्ष मे मै आपको कुछ देना चाहता हूँ, पर हमारे घर बनी हुई चीज तो आपके काम नही आती। इस लिये मै यह शुद्ध मेवा लाया हूँ। इसे लेकर आप मुझे कृतार्थ कीजिए। इस पर महाराज श्री ने फरमाया—सामने लाई हुई चीज हमारे काम नही आती, यदि तुम्हारी कुछ देने की इच्छा है, तो आज से किसी प्राणी को मारने तथा मास भक्षण करने का त्याग कर लो। तुम्हारा यह त्याग मेरे लिये बहुत बडी भेट होगी। महाराज श्री के कहने पर उसने यह त्याग ले लिया और ऐसे निर्लोभी सच्चे साधु दुनिया में मिलने कठिन है, इस प्रकार प्रशंसा करता हुआ चला गया।

मेवाड प्रान्त मे ही धरियावद के रावसाहब महाराज श्री के व्याख्यान की प्रशसा सुनकर हाथी पर सवार होकर अपने उमराव आदि परिवार के साथ महाराज श्री के दर्शनार्थ आये। व्याख्यान सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुये। रावसाहब के आग्रह से आपने वहाँ २९ दिन तक स्थिरवास किया। इस बीच अनेक बार रावसाहब ने व्यख्यान का लाभ लिया। आपके काकाजी बडे धर्मात्मा पुरुप थे। वे तो प्रतिदिन व्याख्यान मे आते थे। चारो ओर से व्याख्यान की प्रशंसा सुनकर महारानी का भी चित्त उस ओर आकर्षित हुआ। फलत राजमहल में व्याख्यान देने की प्रार्थना की गई। विशेष उपकार की सभावना से प्रेरित होकर आपने राज महल मे व्याख्यान दिया। उस समय अनेक प्रकार की जीवहिंसा इत्यादि का प्रत्याख्यान हुआ। वहाँ के लोग आपके महान् व्यक्तित्व से इतने अधिक प्रभावित हुये कि रावसाहब की ओर से कामदार आदि प्रमुख व्यक्तिओ ने आप से अपने यहाँ आगामी चातुर्मास करने की प्रार्थना की, पर उस समय तक फाल्गुनी चातुर्मास समाप्त नही होने के कारण आपने वह प्रार्थना स्वीकार नही की। इधर रावसाहब भी महाराज श्री का पीछा छोडने वाले नही थे। उन्होने दृढ निश्चय कर लिया कि किसी तरह महाराज श्री का चातुर्मास यही होना चाहिए। वे इस निश्चय के अनुसार अपने अनुचरो द्वारा आपके विहार के समाचार प्राप्त करते रहे। फाल्गुनी चातुर्मास समाप्त होते ही रावसाहब ने अपने प्रधानजी को ग्यारह श्रावको के साथ महाराज श्री के पास चातुर्मास की विनति करनें के लिए भेजे। उन्होने बासवाडा पहुँचकर महाराज श्री के सन्निकट अत्याग्रह पूर्वक अपनी प्रार्थना सुनाई। स्पर्शना हुई तो इस वर्ष धरियाबद में चातुर्मास करने के भाव है। महाराज श्री के मुखारविंदसे ये शब्द सुन प्रधानजी कृतकृत्य हो पुन अपने स्थानपर आये।

गुजरातकी ओर विहार एव घोर परीषह

मालवा, मेवाड आदि प्रान्तोमें आपने शुध्द क्रियाशील जीवन एवं अनुपम व्याख्यानो द्वारा धर्म का प्रचार कर श्री रत्नऋषिजी म एवं श्री अमोलकऋषिजी म की गुजरात की ओर विहार करने की इच्छा हुई। अपने विहार काल मे आप श्री ने इससे पहले अनेक परीषहोका सामना किया। पर गुजरात की ओर विहार करते समय आपको जिन कठिनाइयोका सामना करना पडा, वे वर्णनातीत है। एक बार लीमडी से विहार करते समय आप दोनो ने यह निश्चय किया कि जब तक सूर्यास्त न हो, तब तक कही निवास नही किया जाय। चलते चलते तीसरा प्रहर व्यतीत होनेपर रास्तेमें एक ग्राम आया। कठ सूख जाने से सतोने वहा पानी की याचना की, पर कही पानी का योग नही लगा। फिर आगे बिढे। लगभग एक घडी दिन शेष रह गया, तब तक बत्तीस मील का

उग्र विहार हो चुका था। वहा रास्तेमें सडक के किनारे एक चौकी मिली। ठहरने के लिये सिपाही से याचना करनेपर कठोर उत्तर प्राप्त हुआ, यहाँ किसी को ठहरने के लिये आज्ञा नही है। चलते चलते आप दोनो इतने अधिक थक गये थे कि अव आगे एक पाव भी रखना कठिन था। पर जगहके अभाव में निरुपाय हो कुछ दूरीपर एक खेत मे वटवृक्षके नीचे कमर खोलकर अपना आसन जमा दोनो संत वैठ गये। किसी प्रकार के आहार-पानी के विना दिन भर विहार करने से दोनो थकावट के कारण चूर-चूर हो गये थे। ऐसी अवस्था में प्रतिक्रमण करने के वाद शयन किया। दोनो ओर पहाडकी संधि आ गई थी। सघन वृक्षलता-गुल्मोसे चारो ओर अंधकार छाया हुआ था। निर्जन भूमि में भी झिल्लियो का झनकार हो रहा था। जिधर देखो उधर हिंस्र पशुओका भय था। फिर भी शयन करने पर आप दोनो ने निद्रादेवी की गोद मे विश्रान्ति ली।

दूसरे दिन सूर्योदय के पश्चात् प्रतिलेखन कर आप दोनो ने आगे की ओर विहार किया। पहले दिन के भूखे-प्यासे तो थे ही, उस पर आज दस मील का उग्र विहार हुआ था। इससे दोनो अत्यंत श्रात हो गये थे। गोधरा शहर में पहुँचने पर दोनो ने स्थान के लिए इधर-उधर बहुत तलाश की, परन्तु किसीने कुछ ध्यान नही दिया। अन्त में एक वृद्धने मदिरके पास एक धर्मशाला दिखाई, उस में दोनो संत उतरे। इस शहर में जैनो के अनेक घर थे। पर उन्हे कल्पनीय अकल्पनीय का कुछ ज्ञान नही था। तीस पैंतीस घरो में घूमने पर बडी कठिनाईसे पाँच दस घरोमें आहार पानी का कुछ योग लगा, उसी पर सतुष्ट होकर दोनो संतोने विश्रान्ति ली।

एक वार आप अट्ठाईस मीलका उग्र विहार कर बडौदा पहुँचे। वहाँ आप दोनो वहुत घूमे-फिरे, लोगो से कुछ पूछ-ताछ भी की, पर उतरने के लिए किसी न अपने मुँह से एक शब्द तक नही निकाला। इधर-उधर घूमते जब लगभग चार वज गये, तव हैरान होकर एक मन्दिर के बाहर बैठ गये, तब कौशेय वस्त्रधारी एक यति बाहर आये, उन्होने अपने हाथो मे स्वर्ण-कंकण पहन रखे थे। दोनो को देखकर बोले—यहाँ क्यो बैठे है ? महाराज श्री ने फरमाया—हम मालव प्रान्त से विहार कर यहाँ आये है। इस शहर की स्थिति से हम सर्वथा अपरिचित है!! इस पर यति ने कहा—लिवडा की पोल में जाओ, वहाँ हिम्मतलाल नामक ढूंढिया रहता है, यतिजी के निर्देशानुसार दोनों संत उस स्थानको पूछते-पूछते लगभग एक मील तक गये। उनका घर नजदीक ही था, पर किसी के घर भोजन करने के लिए मडली वैठी होने के कारण उधर का रास्ता रुका हुआ था। इस लिए पुन: उलटे पैर दोनो सन्त लौटे। रास्ते में एक वृद्ध से भेंट होने पर उसने पूछा,,—कहाँ से आये महाराज ? और क्यो लौट रहे है ? महा-

राज श्री ने फरमाया—हम बहुत थके हुए है, दिन भी बहुत थोडा रह गया है। पहले उतरने के लिये कोई स्थान बताओ, फिर बातचित करने का भाव है। इस पर उसने कचरे से परिपूर्ण एक छोटी-सी कुटिया बताई। वहाँ पर ही दोनो सन्त उतरे। बडी कठिनाई से आहार-पानी का कुछ योग लगा। आहार-पानी चुका कर प्रतिक्रमण कर सो गये।

सुबह प्रतिक्रमण करते समय श्रावको ने आकर वदन नमस्कार किया और मकान का ताला खोल कर महाराज श्री से निवेदन किया। अन्दर की ओर सुखदायक स्थान है, यहाँ पधारिये। महाराजश्री ने पूछा—यह किसकी जगह है? श्रावको ने उत्तर दिया, यह उपाश्रय है।

महाराजश्री—तो फिर कल सन्ध्या को यह क्यो नही खोला गया? रात्रि भर जीव-जन्तु सहित कचरे के स्थान में रहना पडा। श्रावक-साहब! अपराध क्षमा कीजिये। कुछ सुनिये। कुछ दिन पहले यहाँ दो साधु मालवा से आये थे। उन्हे उपाश्रय खोलकर जगह दी थी। वे बहुत अच्छा व्याख्यान देते थे। व्याख्यान सुन हम तो घर गये। पीछे से वे भडार का ताला तोड शास्त्र निकाल कर भग गये। दोपहर को श्रावक दर्शन करने आये। इस समय वे साधु दिख नही पडे और भन्डार का ताला खुला देखकर सूचना दी गई, हमने सरकार की ओर से उन्हे पकडवाये, केस चला, उन साधुओ को दो साल की सजा हुई। अभी वे कैद मे है। इसलिए अन्दर की ओर आपको नही उतारे। महाराज—तो आज हम पर विश्वास किस लिए किया? श्रावक—कल रात्रि मे लीबडी से एक पत्र आया। उसमे आपके गुणो का वर्णन किया गया है। उस पर से पता चला कि आप महापुरुष है।

फिर ग्यारह दिन तक महाराजश्री ने बडौदा में स्थिरवास किया। बडे ठाट बाट से व्याख्यान आदि होने लगे। व्याख्यान में जन-समूह भी बहुत एकत्रित होता था। उस समय वहाँ आठ कोटी सप्रदाय की आर्याजी बिजलीबाई विराजमान थी। उनके द्वारा गुजरात की आचार-विचारविषयक बहुत सी बातो का परिचय हुआ। बडोदा से विहार करते समय कितनी ही श्राविकाएँ पहुँचाने आई। रास्ता बताने के लिए सघ ने कुछ आदमी भी दिये, परन्तु इनकार कर दोनो सत आगे बढे। आठ मील चलने पर रास्तेमें छावनी नामक एक गाँव आया। वहाँ बाजार के बीच होकर निकले। श्रावको की अनेक दुकाने थी। पर किसीने कुछ नही पूछा। उस समय दिन भी अधिक नही चढा था। इस लिये छह मील और आगे चलने पर एक गाँव आया। वहाँ धर्मशाला मे ठहरे। श्री अमोलकऋषिजी महाराज गोचरी के लिए गये, पर आहार-पानी का कुछ योग नही लगा। वापिस लौटते समय एक बाईने बुलाकर थोडी-सी खिचडी वहराई। एक भाई उष्णोदक लेकर स्नान करने के लिए बैठा था। उससे लगभग दो सेर पानी लेकर महाराज श्री के समीप आये। आहार-पानी कर आप दोनो ने पुनः विहार किया। बीच में

पडने वाली नदी को पूल के रास्ते से पार कर आहेर नामक ग्राम मे पदार्पण किया। वहाँ कुछ लोग एक स्थान पर बैठकर परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। महाराजश्री ने उनके पास जा कर कहा, भाई! हमें ठहरने के लिए कही कुछ जगह बतला सकते हो? महाराजश्री के पूछने पर उन लोगोने अपना मुँह दूसरी ओर कर दिया। फिर उनके सम्मुख जाकर पूछा। पुनः उन लोगोने दूसरी ओर मुँह कर लिया। इस प्रकार तीन चार बार पूछने पर एक लड़का बोला। आत्मारामजी महाराज ने हमे समझाया है कि ढूंढियासे नही बोलना चाहिए। यह सुनकर दोनो सत आगे बढे। फिर चार मील आगे चलने पर विष्णुमदिर के बाहर पडसाल में किसी की आज्ञा लेकर उतरे।

इस प्रकार प्रति दिन पच्चीस, तीस मील चलने पर भी इस देश में न तो कही उतरने की अच्छी जगह मिलती थी और न आहार-पानी का योग मिलता था। कभी कभी रेगिस्थान मे नकली स्थान की तरह सतोषजनक स्थान मिल जाता था। यहाँ पहुँच प्रात कालीन प्रतिक्रमण कर महाराजश्री ने फरमाया, इधर के मनुष्य बहुत निर्दयी है। पीछे मालवे की ओर चलो। तब श्री अमोलकऋपिजी म० बोले, इतना परीपह सहकर यहाँ तक आ गये है, अब खभात बदर निकट है, उसे देखकर फिर लौटेंगे। इस प्रकार बाते करते हुए दोनो सत बाहर निकले। महाराज श्री ने मालवे की ओर अपने पैर रखे और श्री अमोलकऋपिजी महा० ने खंभात की ओर। थोडी दूर चलकर दोनो संत खडे हो गये, फिर श्री अमोलकऋपिजी महा० शीघ्रतासे जाकर श्री रतनऋषिजी महा० की कमर से लिपट गये। श्री अमोलकऋषिजी म० की यह दशा देखकर महाराज श्री के नेत्र आर्द्र हो गये, दोनो के नेत्रोसे हर्ष के अश्रु गिरने लगे। अन्त मे लघु सत की विजय हुई। महाराज श्री ने श्री अमोलकऋषिजी महा० का अनुसरण कर खभात की ओर प्रस्थान किया।

यहाँ से विहार करने पर साथमे कुछ आदमी होने से विशेष कठिनाई नही हुई। रास्ते में ज्यो ज्यो आगे बढते गये, स्थानकवासी जैनो की संख्या भी अधिक होने लगी। खंभात नगरमे पदार्पण करने पर आपका धूम-धामसे स्वागत हुआ, उस ओर विहार करते समय रास्तेमे एक बार दरियापुरी सप्रदाय के स्थविर, बहुश्रुत, श्री पुरुपोत्तमजी महा० ठाणा ८ से आपकी अगवानी के लिए पधारे। वे आप ही के साथ उतरे। लगभग पद्रह दिन तक उनके साथ आपकी शास्त्रीय सूक्ष्म ज्ञान की चर्चा होती रही। श्री पुरुषोत्तमजी महाराज ने दो रात्रि पर्यंत अखड जागरण कर आकाश मे विचरण करने वाले नक्षत्र-मंडल का ज्ञान भी आपश्री को कराया।

महाराजश्री के खभात पहुँचने पर आनन्दमें विराजित श्री छगनऋपिजी महा० ठाणा ४ से बडी शीघ्रता से आपके पास पधारे। दोनो सतो का बडे प्रेम से मिलने के बाद आहार-पानी, वदन व्यवहार आदि सब सम्मिलित हु

उन्होंने अपना प्राचीन भंडार दिखाया। उसमें ताड़पत्र पर लिखित अनेक दुष्प्राप्य शास्त्र थे।

दक्षिण की ओर विहार और धर्मप्रचार

अपने गुरु श्री तिलोकऋषिजी महा० का स्वर्गवास होनेपर संवत् १९४० में श्री रत्नऋषिजी म० ने महासतीजी श्री हीराजी महा० की प्रेरणा से विशेष अध्ययन हेतु मालव प्रांत की ओर विहार किया था। मालव प्रांत मे आपश्री ने वयोवृद्ध शास्त्रज्ञ पण्डित मुनि श्री खूबाऋषिजी म० स्थविर मुनि श्री हरकाऋषिजी महा० आदि संतो के पास शास्त्रीय ज्ञान संपादन कर स्वाध्याय प्रवचन आदि के द्वारा उसे पचा लिया था। फिर अपने विहार काल मे उस समय मालवा, मेवाड, गुजरात आदि प्रांत में विचरण करने वाले अनेक संत-महात्माओं से समय-समय पर शास्त्रीय चर्चा कर पूर्ण पारंगत हो गए थे। लगभग पंद्रह साल तक कठोर साधना कर श्री रत्नऋषिजी महा० श्री अमोलकऋषिजी महा० के साथ अपने गुरु की अंतिम विहारभूमि महाराष्ट्र प्रांत मे आ रहे थे। एक ज्ञानी और बहुश्रुत संत के पास जो सब प्रकार के ज्ञान का भंडार होना चाहिए, वह सब आपने प्राप्त कर लिया। अध्यात्म–मार्ग के अतिरिक्त आपने व्यावहारिक जीवन का भी ठोस अनुभव किया था। गुजरात के विहारानुक्रम से अपने आदेश द्वारा अनेक भव्य प्राणियो का उद्धार करते हुए जब आप अहमदनगर पधारे तब आपके नाम से दो ठग साधु का वेष धारण कर अनेक लोगोको ठग रहे थे। वहाँ आने के पूर्व अनेक जगहो के लोग उनके छल-प्रपंच के शिकार हो चुके थे। महाराज-श्री अहमदनगर पधार कर स्थानक के सम्मुख खडे रहे। उस समय लोग पौषध व्रत लेकर बैठे हुए थ। महासतीजी श्री रामकुंवरजी महाराज धर्म–चर्चा कर रहे थे। उन्होंने श्रावकों से कहा–थाका साधुजी आय गया। संतो को देखकर ठग की भावना से कोई श्रावक नही उठा। तत्पश्चात् दोनो संतोंके स्थानक के अंदर-जाने पर भी कोई नही उठा। इतने में घोडनदीवाले वयोवृद्ध श्रावक श्री छोटमलजी बोथरा महाराज श्री को पहचान कर बोले–सब बेठा बेठा काई देखो हो? रत्नऋषिजी महा० पधारिया हे ना? यह शब्द सुनते ही आर्याजी तथा श्रावक उठ खडे हुए। वंदना-नमस्कार करने के बाद हाथ जोडकर बोले,–हमारे सुनने में आया कि दो ठग साधु का वेष बना कर लोगोको ठगते फिरते है, ये वे ही साधु है। अतः हमारे अविनय को क्षमा कीजिये।

महाराज श्री ने फरमाया–अनजान में बनी हुई बात अपराध की कोटि मे नही आती। यहाँ से फिर महाराजश्री का उपदेश के साथ अनेक विध परोपकार रूप कार्य प्रारंभ हुआ। आपने अपने उपदेश–द्वारा अनेक जगह परंपरा

मे प्रचलित मौसर आदि कुरूढियो का मूलोच्छेद किया । बत्तीस वर्षों से उग्ररूप से पडे हुये धडो को मिटाकर एकता स्थापित की । इसी तरह श्री ज्ञानफंड की स्थापना कर मौसर आदि कृत्यो पर प्रतिबंध लगाया गया । उसका विनियोग शिक्षा-प्रसार तथा अनाथ विद्यार्थियो की छात्रवृत्ति आदि मे किया जाता था ।

इस विहार–काल में आपश्री ने पूना से आगे भयंकर पर्वतीय उपत्यका में स्थित ऐसे एकान्त स्थलो मे विहार किया । जहाँ पहले किसी सन्त का आवा-गमन नही हुआ था । उन स्थलो में ये मुख्य हैं–सासवड, गराडा, वोपगाव, भीवरी, परिंचे आदि । इन स्थानो में स्थित जैन बन्धुओ में अपने धर्म का कुछ भी सस्कार नही रहा था । महाराजश्री ने ही सर्व प्रथम उन्हे नवकार मंत्र सिखा कर पुन जैनधर्म की दीक्षा दी । श्रीरामपूर-निवासी श्रीमान् चन्द्रभानजी डाकलिया इसी प्रान्त के थे । आप पुन जैनधर्म में दीक्षित होने के लिए स्व० महाराज श्री का बहुत उपकार मानते हैं ।

आप ही के उपदेश से गराडा वाले श्रीमान् नवलमलजी खिवराजजी पारख की ओर से बीस हजार रुपये शिक्षण खाते में निकाले गये । उसी रकम के व्याज से प० मुनि श्री गणेशलालजी महाराज एव पं० मुनि श्री घासीलालजी महाराज तथा प० रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषी जी महाराज, प० महासतीजी श्री शान्तिकुँवरजी म०, पं० महासतीजी श्री उज्ज्वल कुँवर जी म० आदि सन्त–सतियो का अध्ययन हुआ । आज-कल भी उस रकम के ब्याज मे से औषधालय, पाठशाला आदि सत्कार्यों मे विश्वस्त मंडल की तरफ से सहायता दी जाती है ।

महाराजश्री को सुशिष्य की प्राप्ति

दक्षिण में अनेकविध धर्म–प्रचार करते हुये जब श्री रत्नऋषिजी म० चिचोडी (सिराल) पधारे, उस समय धर्मपरायणा श्री हुलासाबाई अपने पति श्री देवीचन्दजी गुगलिया का देहावसान हो जाने से अपने दो पुत्रो के साथ धार्मिक जीवन व्यतीत कर रही थी । उसमे अपने लघु पुत्र नेमिचन्द उर्फ गोटी-रामजी को महाराज श्री से यह कह कर सामायिक प्रतिक्रमण आदि सीखने के लिए प्रेरित किया –

"अपने गाँव मे साम्प्रदायिक भाइयो के केवल चौदह ही घर है । उसमें से कोई ऐसा नही जिसे कि प्रतिक्रमण आता हो, मेरी भी वृद्धावस्था है । अत एव यदि तू पूज्यपाद महाराज श्री के पास इतना-सा सीख लेगा तो मुझे बहुत सतोप होगा । मुझे प्रतिक्रमण सुनने का अवसर मिलेगा ।"

अपनी माताके आदेश से बालक नेमिचन्द दो वर्षाकाल महाराज श्री के साथ रहकर सामायिक, प्रतिक्रमण, पच्चीसवोल का थोकडा, सडसठवोल का थोकडा, स्तवन, सवाद आदि अनेक विषयो का ज्ञान सपादन कर वैर

की ओरें अभिमुख हुआ। चातुर्मास मिरि में सानद सपन्न होने पर महाराजश्री ने खरवडी कासार की ओर विहार किया। और नेमिचंद अपनी माता से दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करने के लिये चिचोडी आया। माता से अनुमति माग ने पर माता ने जवाव दिया कि अभी तेरी छोटी अवस्था है। पहले ज्ञान की वृद्धि करो पीछे से देखा जायगा। खरवडी से महाराजश्री पुन मिरि पधारने पर उनकी सेवा में नेमिचन्दजी आ गये। कुछ काल तक शिक्षण लेने के पश्चात् पुत्र की संयम लेने की उत्कठा देख योग्य समझ कर माताने आज्ञा दे दी और सवत् १९७० में मार्गशीर्ष शुक्ल नवमी रविवार के रोज मिरि ग्राम में भागवती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षानतर उस वाल मुनि का नाम श्री **आनन्द ऋषि जी** रखा गया। श्री आनन्द ऋषि जी महाराज अपने नाम के अनुरूप आनन्द रूप ही है। इन वाल मुनि की शिक्षा की ओर महाराजश्री ने वहुत रस लिया। आपको पढाने के लिए बनारस तथा पूना से अनेक अध्यापक वुलाये गये। इसका सव विस्तृत वर्णन श्री रत्न ऋषि जी म० के जीवन-चरित्र में है। अन्त में श्री प० राजधारी त्रिपाठी शास्त्री द्वारा न्याय, व्याकरण, साहित्य, छन्द, चपू, पुराण, स्मृति आदि अनेक विषयो का ज्ञान सम्पादन कर पूर्ण पाडित्य प्राप्त किया। अपने गुरुदेव के स्वर्गवास के वाद से अपने अनेक विध गुणो द्वारा शासन की सेवा कर रहे है। श्री **आनन्द ऋषि जी महराज** विनीत, सेवाभावी, व्याख्यान-पटु, कर्मठ, क्षमाशील और क्रिया-सम्पन्न है। आप समय का विलकुल दुरुपयोग नही करते। जव देखो तव व्याख्यान, अध्यापन, लेखन एव धर्मचर्चा करते हुए हम उन्हे पाते है। गाभीर्य के साथ आपके चेहरे पर मुस्कराहट वनी रहती है। आपके इन अनेक गुणों से आकर्षित हो संघ के पूज्य श्री अमोलकऋषि जी महाराज के स्वर्गवास के वाद आपको भुसावल में युवाचार्य पद, दिया गया तत्पश्चात् पाथर्डी मे पूज्य पदवी से विभूषित किया। तदनतर व्यावर में पाँच सम्प्रदायो ने मिलकर आपको प्रधानाचार्य पद से अलंकृत किया। सादडी साधु-समेलन मे सव सप्रदायो की एकता होने पर आप सर्व-सम्मति से प्रधान मत्री चुने गये और भीनासर साधु-सम्मेलन मे उपाध्याय पद से विभूषित किये गये। अपने गुरु श्री रत्न-ऋषिजी महाराज द्वारा प्रारभ की हुई शुभ प्रवृत्तियाँ को स्थायित्व रूप देकर आपने और भी अनेक प्रवृत्तियाँ प्रारभ की। आपके द्वारा प्रारभ किये हुए कार्यो मे श्री जैन धर्म प्रसारक सस्था नागपुर, श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी, श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा वोर्ड पाथर्डी, श्री अमोल जैन सिद्धात शाला पाथर्डी और उसकी शाखाएँ श्री जैन सिद्धान्तशाला अहमदनगर तथा घोडनदी, श्री देव प्रेम स्या० जैन उपकरण भंडार पाथर्डी, श्री रत्न जैन पाठशाला वोदवड, श्री

वर्द्धमान स्था० जैन छात्रालय राणावास, श्री महावीर सार्वजनिक वाचनालय चिचोडी तथा बदनोर इसी तरह भिगार, वावोरी, चादा आदि ग्रामो मे धार्मिक पाठशालाएँ एवं सुधर्मा मासिक आदि मुख्य है। इन सब प्रवृत्तिओ से स्थानकवासी जैन समाज मे शिक्षा-विषयक कितनी प्रगति हुई यह किसी से छिपा नही है। आज कल भूतपूर्व ऋषिसप्रदाय मे सबसे ज्येष्ठ एव श्रेष्ठ संत आप ही है। सप्रदायो के विलीनीकरण के पहले ऋषिसंप्रदाय के आचार्य भी आपश्री थे। आपकी नेश्राय में अनेक प्रतिभा-सपन्न सुयोग्य साधु-साध्वियाँ विचरण कर सर्वत्र धर्म का प्रचार कर रही है। शासनदेव से प्रार्थना है, आपके द्वारा सघ की यह उत्कृष्ट सेवा चिरकाल तक होती रहे।

धर्म-प्रचार तथा कुछ आश्चर्यजनक घटनाएँ

श्री रत्नऋषिजी म० का स्वभाव बाह्य दृष्टि से तेज होने पर भी आतरिक दृष्टि से वे अत्यन्त सरल तथा सवेदनशील थे। वे हिंसा को मिटाकर अहिसा स्थापित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होने जगह-जगह अनेक प्रयत्न किये। आपके उपदेश से कुडगाव के माधवरावजी काळे पटेल, अतरवली के यशवतराव पटेल तथा जेऊर के नाथूजी पटेल आदि दस बारह घरवालो ने मदिरा मास आदि का परित्याग कर जैन धर्म का स्वीकार किया था। पूना जिले के राहू (पीपलगाव) नामक ग्राम में श्री यशवतराव पटेल, मनाजी पटेल, रगनाथजी ढमढेरे आदि मडली आपके उपदेश से प्रभावित होकर विशेष धर्मप्रेमी बन गई थी। इसी तरह यहाँ किसी देवल के सामने पाँच बकरे प्रति-दिन नियमित रूप से मारे जाते थे तथा मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा के रोज होनेवाली यात्रा मे लगभग चार पाँच हजार बकरे मारे जाते थे। इस प्रचड हिंसा को आपने अपने सदुपदेश-द्वारा सर्वथा बद करा दिया। आपके उपदेश से कितने ही महाराष्ट्र के मूलनिवासियो ने हिंसा-परित्याग का नियम लिया। यह महती हिंसा सतत लगभग पाँच वर्ष तक बद रही, किंतु महाराज श्री के बाद किसी प्रबल उपदेष्टा का सचार नही होने से सुना जाता है कि वह पुन जारी हो गई।

आपके स्वच्छ हृदय का पता इन दो घटनाओ से चलता है, म्हसा में चातुर्मासार्थ श्री रतनचदजी छाजेड के मकान में विराजते हुये श्री रत्नऋषिजी महाराजने आठ दिन की तपश्चर्या की थी। उस समय एक बडा भारी भुजग निकल कर महाराजश्री के सामने आया। लोगो ने उसे पकडने की इच्छा की। परतु महाराज श्री ने उन्हे रोक कर उस पर रजोहरण रख दिया। रजोहरण रखते ही लोगो के देखते-देखते वह अदृश्य हो गया।

दूसरे दिन एक मृगशावक जगल से दौडता-दौड़ता आया और महाराजश्री जिस पाट पर अधिष्ठित होकर व्याख्यान फरमाते थे, उसके नीचे आकर बैठ गया। लोगो ने उसके सामने दूध तथा खाने की अनेक वस्तुएँ लाकर रखी, पर किसी की ओर उसने देखा तक नही। मौन-भाव से चुपचाप बैठा रहा, यहाँ तक कि हिला-डुला तक नही। रात्रि को न मालूम कब उठ कर किधर चला गया। इस बात का किसी को पता तक नही लगा।

शिक्षा-प्रचार

जैन समाज में अधिकतर मरुधर-निवासी या वहा से चलकर व्यापार के निमित्त भिन्न भिन्न प्रान्तो मे रहने वाले वैश्यवर्गीय जैन लोग धनिक है। उन्होने अपनी सूझ बूझ तथा मितव्ययिता के कारण अपनी अच्छी स्थिति बनाई है, पर शिक्षा की दृष्टि से यह समाज बहुत पीछे है। इस समाज मे विद्या की इतनी महत्ता नही, जितनी द्रव्य की है। ये लोग एक ज्ञानी तथा विद्वान् की अपेक्षा पैसे वाले धनिक की अधिक कदर करते है। इसी कारण शिक्षा की दृष्टि से यह समाज वहुत पीछे है। महाराज श्री समाज की इस अशिक्षित अवस्था से वहुत चिन्तित रहते थे। उनके मन में सतत ये विचार चक्कर लगाते रहते थे कि समाज में इस अविद्या का अधकार कब दूर हो? इसके लिए उन्होंने अपने उपदेश द्वारा गाँव-गाँव में वाचनालय तथा पाठशालाएँ स्थापित करने का सकल्प किया। पर यह कार्य दूसरो पर अवलबित होने से अपनी इच्छानुसार होना अशक्य था। फिर भी अपने प्रयत्न से घोडनदी, पीपलगाव, (पिसा) माडवगण चिचोडी, (पटेल) खुटेफल, मिरजगाव, करमाला और पाथर्डी आदि अनेक स्थानो मे धार्मिक पाठशालाएँ स्थापित की। पाथर्डी मे स्थापित श्री तिलोक जैन विद्यालय का इति-वृत्त अत्यन्त रोचक एवं भव्य है। उसके लिये एक स्वतत्र प्रकरण की आवश्यकता है। वह महाराज श्री के प्रयत्नो का मूर्तरूप है। इसलिये उसका इतिहास स्वतंत्र रूप से अलग ही दिया जा रहा है। अपने इस दीर्घकालीन प्रयत्नो द्वारा महाराज श्री ने शिक्षाविषयक जो उत्क्रान्ति की, उसे महाराष्ट्र-निवासी अच्छी तरह जानते है।

चिचपुर-निवासी श्रीमान् कुंदनमलजी गुगलिया के सुपुत्र श्री उत्तमचदजी श्री साहेबरामजी गुगलिया के दुकान पर रहते थे। पाथर्डी में महाराज श्री का सवत १९७८ मे चातुर्मास हुआ उस समय श्री रत्नऋषिजी म की सेवा में आते-जाते थे। चातुर्मास उतरने पर महाराज श्री के साथ सेवामें रह कर ज्ञान-ध्यान

सीखा और उनकी दीक्षा लेने की भावना हुई। विचरते हुए महाराजश्री बीड होकर नादूर पधारे। वहाँ पर संवत् १९७९ ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया के रोज आप की दीक्षा हुई। दीक्षासबधी अर्थ–व्यय नादुर–निवासी श्रीमान् भिकचन्दजी चुन्नीलालजी कोटेचा एव श्रीसंघ तथा जेबा पीपरी वाले श्री हीरालालजी पन्नालालजी खिवसराने उत्साह पूर्वक किया था। आपका स्वभाव सरल था, सस्कृत प्राकृत एवं शास्त्रीय ज्ञान हासिल किया था। ज्येष्ठ गुरुबंधु श्री आनंद ऋषिजी म के साथ ही बडे प्रेम से रह कर संयम पालन किया था। आपका सवत् २०१४ मार्गशीर्ष कृष्ण ८ गुरुवार के रोज शुजालपुर में समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ। आपके स्मरणार्थ धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी में उत्तम ज्ञान प्रोत्साहक पारितोषिक विभाग स्थापित है।

स्वर्गवास

दीक्षानन्तर लगभग ४८ वर्ष तक शुद्ध सयम का पालन करते हुए महाराज श्री ने अनेकविध सुकृत्य किये। उसकी किंचित् रूपरेखा ऊपर दी गई है। इस प्रकार अनेकविध परीषह सहन करते हुये आपने साठ से ऊपर वर्ष व्यतीत किये। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से आपके चेहरे पर प्रकाश झलकता था, जो कोई आपकी ओर देखता, वह चेहरे की कान्ति से प्रभावित हो जाता। सत्य जीवन होने के कारण आपकी प्रकृति जरा उग्र थी, पर आप मे वाचा-सिद्धि नामक अद्‌भुत गुण था। अज्ञात रूप से अचेतन मन द्वारा आपके मुँह से जो शब्द निकल जाते वे सिद्ध होते।

सवत् १९८४ का समय था। महाराज श्री भुसावल का चातुर्मास पूर्ण कर हिंगणघाट की ओर विहार कर रहे थे, रास्ते में पोटी नामक स्थान पर पहुँचने पर आपने आगे चलने के लिए अपनी असमर्थता बताई। इसके पूर्व हाथ पाँव में दर्द रहने के कारण रालेगाव में आपने सात दिन तक स्थिरवास किया। असमर्थता के कारण उस समय आपने वहाँ विश्रान्ति ली। तदनन्तर चतुर्थ प्रहर मे वहाँ से विहार कर मोजरी नामक गाम में पधारे। रात्रि में भयंकर ज्वर ने आप पर आधिपत्य जमा लिया। यह समाचार सुनकर रात्रि में रालेगाव से अनेक श्रावक आकर आप से पुन अपने स्थान की ओर विहार करने के लिए आग्रह करने लगे। परंतु महाराज श्री अपनी इच्छानुसार वहाँ से आगे विहार कर कानगात्र में पहुँच विश्रान्ति ली। रात्रि मे वहाँ के लोगो को धर्मोपदेश दे प्रात. काल मे विहार कर ६ मील दूर स्थित अल्लीपुर नामक ग्राम के निकट पहुँचे। वहाँ पहुँचते-पहुँचते पुन आपकी चलने की शक्ति क्षीण हो गई और इधर ज्वर का प्रकोप भी उत्तरोत्तर बढने लगा। तब असमर्थता के कारण निरुपाय हो एक वृक्ष के नीचे बैठ गये।

वहाँ कुछ विश्रान्ति ले आगे बढ़ने पर आपश्री के शरीर का सतुलन नहीं रहा। चलते-चलते इधर उधर झोका खाने लगे। ऐसी परिस्थिति मे महाराजश्री की अनिच्छा होने पर श्री आनन्दऋषिजी महाराज ने अपने हाथ के सहारे से उनके संतुलन को सम्हाले रखा। रुग्णावस्था के कारण लगभग साढे नौ बजे अल्लीपुर ग्राममे श्री विट्ठल मंदिर के मंडप में उतरे। थोडा-सा जल लेकर महाराज श्री वही लेट गये। ज्वर भी अंतिम डिग्री के पास पहुँच रहा था। इस भयंकर व्याधि में भी महाराज श्री ने शात चित्त से सबसे खमत खामना किया।

महाराजश्री का शरीर अत्यन्त तप्त हो गया था, साथ साथ घबराहट भी बढ रही थी। सुधार के कोई लक्षण नही देख कर वहाँ के श्रावक तथा कुछ ब्राह्मण दो प्रसिद्ध वैद्यो को बुला कर लाये। एक वैद्य तो नाडी की गति देख कर मौन हो गया। दूसरे वैद्यने कहा—महात्माजी त्रिदोष में आ गये है। तब आपश्री के पट्टशिष्य श्री आनन्दऋषिजी महा० ने पूछा—परिणाम क्या दीख पडता है।

वैद्य—प्रकृति सुधरने की आशा कम है, परन्तु अंतिम क्षण तक उपचार करना हमारा कर्तव्य है।

वैद्यराज के निर्देशानुसार श्री उत्तमऋषिजी महाराज औषध लाये, देने पर तीव्र वेग से हिचकी पर हिचकी होने लगी और मुँह से अनवरत रूप से झाग पर झाग निकलने लगे। महाराजश्री की ऐसी स्थिति देख पास में बैठी हुई एक अनुभवी श्राविका श्रीमती जतनबाई ने कहा—अब औषध आदि का परित्याग कर महाराजश्री को सथारा पचखा दीजिये। मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज के लिए यह पहला ही प्रसंग था। यह सब देख सुन कर वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। दीक्षा लेने के बाद पिछले चौदह वर्ष से उन्होने सतत अपने गुरु के साथ विहार किया था। कभी एक दिन के लिए उनसे वियुक्त नही हुए थे। उनके सान्निध्य मे ही आपकी शिक्षा–दीक्षा हुई। बचपन से आपश्री के साथ रह कर पू० उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महा० ने अनेक अनुभव प्राप्त किये थे। इस समय अपने गुरु के ये सब उपकार मूर्तरूप धारण कर उनके सामने उपस्थित होने लगे। पर महाराजश्री की शाति के लिए आपने अपने गुरुदेव की आज्ञा लेकर अश्रुपूर्ण नयनो से सागारी सथारा पचखा दिया। उस समय तक आपकी स्मृति ठीक थी। अत में इस पुण्यशाली आत्मा ने अपने इस जीर्ण शरीर को त्यागकर सवत् १९८४ ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी सोमवार के दिन लगभग बारह बजे उर्ध्व लोक की ओर प्रयाण किया।

इस प्रान्त में महाराज श्री का न तो पहले कभी आवागमन हुआ था और न वहाँ के लोगो से विशेष परिचय था। महाराज श्री के इस स्वर्गवास–स्थान में जैन श्रावको के केवल तीन घर थे। परन्तु इस पुण्यशाली आत्मा के पुण्य-प्रभाव से उस ग्राम के मारवाडी ब्राह्मण, माहेश्वरी तथा ग्राम की स्थानीय सारी जनता सहायतार्थ एकत्र हुई। अल्लीपुर के चादमलजी कोठारी ने तत्काल अपने लडके को मोटर से हिगनघाट भेजा। हिगनघाट मे यह समाचार पहुँचते ही सारे सघमें शोक छा गया। वहाँ के श्रीमान् जेठमलजी लोढ़ा, चुन्नीलालजी कटारिया, गणेशमलजी कासवा आदि पच्चीस तीस श्रावक शव-सस्कार की चंदन आदि विविध सुगधित सामग्री लेकर अल्लीपुर पहुँचे। पूज्यपाद श्री रत्नऋषिजी महाराज जिस दिन अल्लीपुर स्थित विट्ठल मंदिरमे उतरे, उसी दिन आपश्री का स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास होने पर भी आपका शरीर पहले की तरह कान्तियुक्त था, उसमें कही पर भी विकृति दृष्टिगोचर नही हो रही थी। अत एव कुछ कर्मचारियो को संदेह हुआ, संभवत इन्हे कुछ दे-दिला कर इस अवस्था तक पहुँचाया गया है। महाराजश्री के पट्टशिष्य उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज से भी इस सबन्ध में पूछ–ताछ की गई। श्री आनन्दऋषिजी महाराज ने फरमाया––मेरे लिए ये देव-तुल्य है, इन्होने वात्सल्य भाव से मुझे शिक्षा–दीक्षा दे कर उपकार किया है। इतने ही मे इनके पुण्य–प्रभाव से उस स्थान के मालगुजार को पता चलने पर वह दौडे-दौडे चले आये। सब लक्षण देखकर उन्होने विचार किया––'यह विट्ठल देव का मंदिर है और आज सोमवार का दिन है। एक महात्मा के दिवगत होने के लिए जिस प्रकार का स्थान या समय चाहिए वह सब दृष्टिगोचर हो रहा है और फिर ऐसे सेवाभावी शिष्य तो सदैव इनकी छत्र-छाया मे रहने की इच्छा करेगें" यह सब सोच कर उन्होने कहा––ये पुण्यशाली महात्मा है।

तदनंतर सस्कार के पूर्व की सब विधि संपन्न कर शव शिविका में रखा गया। इस छोटे से गाव में श्मशान–यात्रा के समय लगभग पाँच सौ अन्य मतावलंबियो ने ताल–मृदग बजाते हुये सहयोग दिया।

ग्राम की स्थानीय जनता छूआछूत तथा पारस्परिक भेदभाव को त्याग कर अनन्य भाव से इस यात्रा में सम्मिलित हुई। यह सब आपके साधुजनोचित संयमपूर्ण जीवन का शुभ परिणाम था।

श्री तिलोक जैन विद्यालय, पाथर्डी



इस विद्यालय का इतिहास अत्यन्त रोचक, भव्य एव आकर्षक है। एक छोटी-सी सस्था अपने ध्येय की ओर निश्चल रह सतत आगे बढते-बढते किस प्रकार महान् रूप धारण कर सकती है, इसका यह मूर्तिमान् रूप है। इस सस्था ने अपने आपको ध्रुव रूप देकर महाराष्ट्र मे और भी अनेक स्थानो पर अपने समान सस्था खोलने के लिये मार्ग खोला है। लोकमान्य तिलक के देहावसान के बाद राष्ट्रपिता महात्मा गाधी ने जब इस देश का सूत्र अपने हाथ मे लिया। तब इस संस्था का अकुर बोया गया। पिछले चालीस वर्षो से अनेक झंझावातो को सहन करते हुए आज इस विद्यालय ने इतना बडा रूप धारण कर लिया है कि उसे देखकर इसके आद्य सस्थापको को भी आश्चर्य हुए बिना नही रहता। गगन-मंडल मे सूर्य के आसपास परिभ्रमण करने वाले नक्षत्रो की तरह इस सस्था के आसपास जो अनेक विध प्रवृत्तियाँ प्रारम्भ हुईं, उन्होने इस संस्था की कीर्ति में चार चाँद लगा दिये है।

मूल कल्पना तथा आद्य सस्थापक

श्री रत्नऋषिजी महाराज का संक्षिप्त जीवन-चरित्र लिखते समय मै राजस्थानियो में वैश्यवर्गीय जैन समाज की शिक्षा-विषयक निर्माल्य स्थिति पर थोडा बहुत प्रकाश डाल चुका हूँ। श्री रत्नऋषि जी म० ने यद्यपि किशोरावस्था प्रारभ होने के पूर्व शैशवावस्था में ही दीक्षा ले ली थी, फिर भी वैश्य वर्ग में उत्पन्न होने के साथ उनके आसपास इसी समाज के व्यक्तियो का वातावरण होने से वे इसकी प्रत्येक गति-विधि से सुपरिचित थे। अनेक प्रकार की कुरूढियो मे ग्रस्त इस समाज को अंधकार में मग्न देख कर वे मन ही मन मुरझाते रहते थे। अपने सामने इतर समाज के सुधारक वर्ग तथा शिक्षित वर्ग को देख कर वह उनसे किसी प्रकार का बोध नही ले रहा था। समाज के अधिकतर बालक दो तीन क्लास पढने के बाद दूकान पर बैठा दिये जाते और जीवनपर्यंत अपने पिता के मार्ग का अनुसरण कर पैसा कमाने मे ही अपना जीवन व्यतीत कर देते थे। आजीविका का वह साधन भी आज कल के युग में प्रशस्त नही कहा जा सकता। अधिकतर व्यापारी साहुकारी लेन-देन का धंधा करते थे। शिक्षाप्रेमी, समाज-सुधारक मुनि श्री रत्नऋषि जी म० समाज की दरिद्रावस्था देख कर मन ही मन घुटते रहते थे। अनेक बार लोगो के सामने अपने हार्दिक विचार प्रकट करते, पर वे उस ओर कुछ ध्यान नही देते थे। अपनी पुरानी परिपाटी को छोडने का अभी तक उनमें साहस नही आया।

हम इसके पूर्व श्री रत्नऋषि जी म० के इतिवृत्त मे पढ चुके है कि उन्होने मालवा, मेवाड़ तथा गुजरात आदि प्रान्तो मे सतत विहार कर प्रचुर अनुभव प्राप्त किया था। वे अनेक शिक्षाप्रेमी तथा शिक्षा-शास्त्रियो के परिचय मे आये थे। इसाई समाज मे अवैतनिक रूप से काम करनेवाले पादरियो तथा रामकृष्ण मिशन के त्यागी सुधारक साधुओ के सुकृत्यो का उन्होने अवलोकन किया था। इन मिशनरियो की तरह आपके मानस मे विद्याविषयक कुछ उत्क्रान्ति करने की इच्छा हुई। इच्छा होते ही आपश्री ने इसे पूर्ण करने का संकल्प ले लिया। अपने ध्येय के अनुसार आपश्री सारे दक्षिण प्रान्त मे पाठशालाओ का जाल बिछा देना चाहते थे। जहाँ कही जाते आपके व्याख्यान मे रूढियो के मूलोच्छेद तथा धार्मिक पाठशाला स्थापित करने का सकेत रहता। आपके व्याख्यान से प्रभावित होकर अधिकतर प्रारभशूर जैन लोग तत्काल पाठशाला स्थापित कर देते, पर उसकी वय-मर्यादा अल्प ही रहती थी। बहुत-सी अकाल अवस्था मे ही काल-कवलित हो गई। इस प्रकार की कुल नौ दस पाठशालाएँ स्थापित हुई होगी। उनमे मुख्य ये है—पिंपलगाव पिसा, माडवगण, चिचोडी पटेल, मिरजगाव, करमाला, घोडनदी, खुटेफळ आदि। इनमे से कोई चार महीने, कोई छह महीने, कोई एक साल, कोई दो साल और अधिक से अधिक तीन साल चल कर बन्द हो गई। महाराजश्री ने अपने हाथो प्रारभ की हुई पाठशालाओ को इस प्रकार थोडे ही समय में अस्त होते देख कर उन्हे स्थायी रूप देने के लिये विशेष चिंतन किया। चिंतन करते करते वे इस परिणाम पर पहुँचे। किसी स्थान पर पाठशाला या संस्था स्थापित कर उसे केवल अपने ही कार्य मे व्यस्त रहने वाले लोगो के भरोसे छोड़ देने से वह कभी स्थायी रूप प्राप्त कर नही सकती। उसके लिये ध्रुवफड एकत्रित करने के साथ कुछ ऐसे सेवाभावी व्यक्तियो की नितात अवश्यकता है कि जो उसे सपन्न बनाने के लिए अपने समय का योग दान दे सके।

श्री जैन ज्ञान फंड संस्था

इस संस्था की उत्पत्ति का कारण कितना साधारण है तथा किन कार्यकलापो से प्रभावित इस सस्था ने अपना आकार धारण किया, उसका विवरण इस प्रकार है — सवत् १९७७ के वर्षमें समाज-सुधारक, शिक्षाप्रेमी, उग्रविहारी, प्रात स्मरणीय, परमोपकारी दिवगत श्री १००८ श्रीरत्नऋषिजी महाराज ठाणे २ का चातुर्मास अहमदनगर हुआ। अपने चातुर्मास-कालमे एक बार स्व. श्रीरत्न-ऋषिजी म. गाँव के बाहर स्थंडिल भूमि के लिये बाहर पधारे हुए थे। उस समय उन्होने गाँव के बाहर इतर समाज के व्यक्तियो द्वारा स्थापित एक छात्रालय मे दो अनाथ जैन विद्यार्थी देखे। इस दृश्य को देख महाराजश्री गहरे विचार मे मग्न

हो गये । स्थानक में लौटकर आपश्री ने समाज की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए निराश्रित छात्रो के अध्ययनार्थ छात्रालय स्थापित करनेके लिये जोशीला उपदेश दिया । आपके प्रोत्साहन पूर्ण व्याख्यान से प्रेरित होकर स्थानीय जनता के द्वारा, तत्काल १५ हजार रुपयो की सहायताप्रीत्यर्थ आकडें लिखे गये । पर एक छोटी-सी वात के कारण वह शुभ कार्य वही रुक गया ।

चातुर्मास समाप्त होने पर आपश्री ने अपने विहारानुक्रम से पाथर्डी पदार्पण किया । यहाँ आने पर आपश्री को ऐसा लगा, मैने अपने जीवन–काल मे अन्य स्थानो पर अनेक पाठशालाएँ स्थापित की, पर कोई ऐसी नही दिखाई देती, जो चिरकाल तक अपने सुयश को अक्षुण्ण रख सके । पर इस स्थान पर जैन पाठ-शाला स्थापित करने पर वह स्थाई हो सकती है । यहाँ आसपास के गावो मे अपने समाजके बहुतसे घर है । अपने समाज मे जो आश्रय–विहीन जैन विद्यार्थी है, उनके शिक्षण के लिए अन्य किसी जगह सुविधाजनक स्थान दृष्टिगोचर नही होता । इसलिए यहाँ सब प्रकार से पाठशाला का प्रारभ होना सुसंगत है । इस प्रकार महाराजश्री ने पाथर्डी मे उपस्थित जनता को अपने व्याख्यान द्वारा उद्बो-धन दिया ।

व्याख्यानके वाद दूसरे दिन अर्थात् सवत् १९७७ माघ शुक्ल १४ सोमवार ता २१–२–२१ को वहाँके स्थानीय लोगो की सभामे महाराजश्री ने पुनः जैन पाठशाला की आवश्यकता बतलाई । व्याख्यान के पश्चात् दो सद्गृहस्थो ने विचार कर ऐसा प्रस्ताव किया–

"उत्तम कार्य को चिरस्थाई बनाने के लिये द्रव्य की बहुत आवश्यकता है, परन्तु अन्य व्यक्तियो के मन को कष्ट पहुँचा कर द्रव्य ग्रहण करना योग्य नही, और नही ग्रहण करने पर संस्था का चिरकाल पर्यन्त स्थायी होना शक्य नही । इस-लिए प्रत्येक जैनगृहस्थ से कम से कम एक आने से लगाकर एक रुपये तक का मासिक चन्दा एकत्रित करना चाहिए । यदि किसी की इसमे अधिक रकम देने की भावना हो तो वह पेटी खाते में जमा की जाय । इस प्रकार पाँच वर्ष व्यतीत होने पर जब योग्य रकम इकट्ठी हो जाय, तब इस स्थान पर सर्वानुमति से जैन पाठशाला खोली जाय,,

यह प्रस्ताव सर्वानुमति से पास होने पर उसी दिन पाथर्डी मे **"श्री जैन ज्ञान फंड संस्था"** की स्थापना की गई । इस अवसर पर गाँववाले श्रावको ने धर्मस्थानक के लिए ३१०० रुपयो का चदा किया । जिसमें १००० रु. श्री. मोतीलालजी गुगलिया, १००० रु, श्री उत्तमचन्दजी मुथा, ५०० रु श्री माणक-चंदजी गाधी और ६०० रुपयेमें वाकी सब श्री संघने भाग लिया था ।

६	श्रीमान्	किसनदासजी मुकनदासजी मेहेर	मु. आष्टी
७	,,	गजमलजी सुखलालजी कोटेचा	,, बीड
८	,,	हीराचंदजी शिवलालजी नाहर	,, अमलनेर
९	,,	चंद्रभानजी चुन्नीलालजी मुथा	,, ,,
१०	,,	हीराचन्दजी गुलाबचन्दजी मुणोत	,, पिंपळवंडी
११	,,	किसनदासजी हीरालालजी गांधी	,, पाथर्डी
१२	,,	जेठमलजी मारुतीलालजी कटारिया	,, खरवंडी
१३	,,	हीराचन्दजी गुलाबचन्दजी संचेती	,, शिरूर
१४	,,	लालचन्दजी रतनचन्दजी भटेवडा	,, राहू (पिंपळगाव)
१५	,,	मेघराजजी किसनलालजी कुंकुलोळ	,, कलव
१६	,,	नारायणदासजी कन्हैयालालजी काकरिया	,, पाटोदा
१७	,,	जीतमलजी ताराचन्दजी कोठारी	,, शिरसमार्ग

इन सब लोगो का इस संस्था के लिये बहुत बडा योगदान है। अपने गांव में इसी तरह आस पास के गाँवो में से एक आने से एक रुपये तक की मासिक रकम त्येक निश्चित व्यक्ति के पास से एकत्रित कर प्रतिवर्ष पाथर्डी भेजना कितना कठिन काम है ? पर इन सब व्यक्तियो ने इस काम को अपना काम समझ-कर परोपकार वृत्ति से यह कार्य किया।

इस प्रकार चन्दा एकत्रित करते करते ढाई वर्ष हो गये। ढाई वर्ष की छोटी अवधि में भी यह रकम ४५०० के आस पास पहुँच गई थी। इस रकम में विवाह प्रसग पर वर-वधू पक्ष की ओर से प्रदत्त ११-११ रुपयो की सहा-यता का भी मेम्बरोने ज्ञान फंड संस्था में सहयोग लिया था। वह भी सम्मिलित है। तदनन्तर संस्था के सेवाभावी कार्यकर्ताओ को चन्दा देनेवालो ने कहा कि " फंड अभी तक जमा किया जा रहा है, पर उसका कुछ भी प्रत्यक्ष परिणाम दृष्टिगोचर नही हो रहा है " इस लिये जितना फंड एकत्रित हुआ हो, उसके द्वारा जैन पाठशाला का प्रारंभ कर देना चाहिये।

यद्यपि पहले जैन ज्ञान फंड संस्था की योजना बनाते समय स्व श्री रत्न-ऋषिजी महाराज के समक्ष यह निश्चय हुआ था कि पाँच वर्ष तक नियमित रूप से चन्दा एकत्रित हो जाय, तत्पश्चात् सर्वानुमति से पाठशाला स्थापित की जाय। ढाई साल के भीतर ही जनता की जैन पाठशाला जल्दी स्थापित करने की बढती हुई भावना देखकर यह विचार स्थगित करना पडा और जन साधा-रण की इस भावना से मेम्बरो ने पाथर्डी कार्यालय के अध्यक्ष, मंत्री आदि को अवगत किया। इस पर योग्य विचार कर संवत् १९८० चैत्र शुक्ल १५ को पाथर्डी में श्री जैन ज्ञान फंड संस्था के कार्यकारिणी तथा सहायक मेंबरो की सभा

अगले साल महाराजश्री का पाथर्डी में चातुर्मास होने पर इस ज्ञान फंड की प्रगति अच्छी हुई। यहाँके चातुर्मास काल मे अन्य गाँवो के अनेक श्रावक कारणविशेष एव सेवा-निमित्त घर लेकर रहे थे। और आपश्री पर जैनेतर सप्रदाय के लोगो का भी प्रेम अत्यधिक था। अत व्याख्यान में परिषद् पर्याप्त परिमाण में उपस्थित रहती थी। पर्यूषणपर्व में आपश्री के सदुपदेश से श्री जैन ज्ञान फंड संस्था में लगभग ८०० आठ सौ रुपये एकत्रित हुए।

चातुर्मास संपन्न होने पर महाराजश्री ने महोटा, चिचपुर, अमलनेर, गोमलवाडा, शिरूर, भालगाव, खरवंडी, टाकळी, गिरसमार्ग, निब्रगाव, बीड़, नादूर, कलब, आदि स्थानो मे विहार कर अपने उपदेशो द्वारा उपर्युक्त "ज्ञान फंड संस्था" के लिए चंदा एकत्रित करने के लिए स्थानीय लोगो को प्रेरित किया। उस समय एक आने से लगाकर एक रुपये सरीखी छोटी-सी रकम देख कर अनेक भव्य लोग स्वयं प्रेरणा से यह रकम पाथर्डी श्री जैन ज्ञान फंड संस्था को भेजने लगे। इस रकम को एकत्रित करने के लिये किसी वैतनिक कर्मचारी की नियुक्ति नही की गई। समाजके सेवाभावी अनेक व्यक्तिओ ने स्वयं यह जिम्मेवारी अपने ऊपर उठा ली। संस्थाके मेबर आसपास के गाँवो से यह रकम एकत्रित कर पाथर्डी भेजने लगे। बाहर गाँव के ऐसे व्यक्तिओ में नादूर निवासी श्रीमान् चुन्नीलालजी कोटेचा का नाम मुख्य है। उन्होने आस-पास के स्थानो में घूमकर इस सस्थाके लिए बहुत रकम एकत्रित की। इस सेवाभावी सद्गृहस्थ ने लंबा जीवन प्राप्त किया। अपने जीवन के अंतिम क्षण तक वह किसी न किसी सत्प्रवृत्ति मे मग्न रहे। अतिम समय मे उन्होने काम करते करते किसी प्रकारके रोग से ग्रस्त हुए बिना अपना यह देह छोडा। दिवगत होनेके पहले इस वृद्धावस्था में भी अपने आसपास के सव स्थानो में जाकर वहाँ विराजित संत तथा सतियो का दर्शन कर लिया था।

श्री जैन ज्ञान फड सस्था के उस समय सर्वानुमति से श्रीयुत जेठमलजी मोतीलालजी गुगलिया अध्यक्ष और श्रीयुत नेमीचदजी उत्तमचदजी मुथा महामंत्री चुने गये। तथा बाहर के व्यक्तियो में श्री चुन्नीलालजी कोटेचा प्रातीय मंत्री नियुक्त किये गये। इसके अतिरिक्त बाहर के सतरह गावो के सतरह मेंबर और कार्य समिति मे रखे गये। उनके नाम क्रमश इस प्रकार है।:—

१	श्रीमान्	जीवराजजी फत्तेचदजी लोढा	मु कलंब
२	,,	उमेदमलजी हीरालालजी गुगलिया	,, लोहसर
३	,,	मानकचदजी पूनमचदजी	,, घाटशिरस
४	,,	जवानमलजी मोतीलालजी	,, मिरी
५	,,	पूनमचदजी चादमलजी भडारी	,, भालगांव

६	श्रीमान्	किसनदासजी मुकनदासजी मेहेर	मु. आष्टी
७	,,	गजमलजी सुखलालजी कोटेचा	,, बीड
८	,,	हीराचंदजी शिवलालजी नाहर	,, अमलनेर
९	,,	चंद्रभानजी चुन्नीलालजी मुथा	,, ,,
१०	,,	हीराचन्दजी गुलाबचन्दजी मुणोत	,, पिंपळवाडी
११	,,	किसनदासजी हीरालालजी गांधी	,, पाथर्डी
१२	,,	जेठमलजी मारुतीलालजी कटारिया	,, खरवंडी
१३	,,	हीराचन्दजी गुलाबचन्दजी संचेती	,, शिरूर
१४	,,	लालचन्दजी रतनचन्दजी भटेवडा	,, राहू (पिंपळगाव)
१५	,,	मेघराजजी किसनलालजी कुंकुलोळ	,, कलव
१६	,,	नारायणदासजी कन्हैयालालजी काकरिया	,, पाटोदा
१७	,,	जीतमलजी ताराचन्दजी कोठारी	,, शिरसमार्ग

इन सब लोगो का इस संस्था के लिये बहुत बडा योगदान है। अपने गाँव में इसी तरह आस पास के गाँवो में से एक आने से एक रुपये तक की मासिक रकम प्रत्येक निश्चित व्यक्ति के पास से एकत्रित कर प्रतिवर्ष पाथर्डी भेजना कितना कठिन काम है ? पर इन सब व्यक्तियो ने इस काम को अपना काम समझ-कर परोपकार वृत्ति से यह कार्य किया।

इस प्रकार चन्दा एकत्रित करते करते ढाई वर्ष हो गये। ढाई वर्ष की छोटी अवधि मे भी यह रकम ४५०० के आस पास पहुँच गई थी। इस रकम में विवाह प्रसग पर वर-वधू पक्ष की ओर से प्रदत्त ११-११ रुपयो की सहायता का भी मेम्बरोने ज्ञान फंड संस्था में सहयोग लिया था। वह भी सम्मिलित है। तदनन्तर संस्था के सेवाभावी कार्यकर्ताओ को चन्दा देनेवालो ने कहा कि " फंड अभी तक जमा किया जा रहा है, पर उसका कुछ भी प्रत्यक्ष परिणाम दृष्टिगोचर नही हो रहा है " इस लिये जितना फंड एकत्रित हुआ हो, उसके द्वारा जैन पाठशाला का प्रारंभ कर देना चाहिये।

यद्यपि पहले जैन ज्ञान फंड संस्था की योजना बनाते समय स्व. श्री रत्न-ऋषिजी महाराज के समक्ष यह निश्चय हुआ था कि पाँच वर्ष तक नियमित रूप से चन्दा एकत्रित हो जाय, तत्पश्चात् सर्वानुमति से पाठशाला स्थापित की जाय। ढाई साल के भीतर ही जनता की जैन पाठशाला जल्दी स्थापित करने की बढती हुई भावना देखकर यह विचार स्थगित करना पडा और जन साधा-रण की इस भावना से मेम्बरो ने पाथर्डी कार्यालय के अध्यक्ष, मंत्री आदि को अवगत किया। इस पर योग्य विचार कर सवत् १९८० चैत्र शुक्ल १५ को पाथर्डी में श्री जैन ज्ञान फंड संस्था के कार्यकारिणी तथा सहायक मेंबरो की सभा

बुलाई गई। उसमे प्रातीय मंत्री आदि आये, परन्तु तीन चार मेम्बरो के नही आने से दिलगिरी व्यक्त की गई। इस कमेटी मे दस नवीन सद्गृहस्थो की मेम्बर रूप से नियुक्ति की गई और पाच प्रस्तावो मे से तीन मुख्य प्रस्ताव पास किये गये।

प्रथम प्रस्ताव– नादूर तथा पाथर्डी ऑफिस की रकम इस सयय साढे चार हजार रुपये के लगभग है, उसके व्याज से इस सस्था के लिये रकम खर्च की जाय।

द्वितीय प्रस्ताव:–ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा तक श्रीजैन पाठशाला का उद्घाटन किया जाय।

तृतीय प्रस्ताव:–खोली जाने वाली पाठशाला मे व्यावहारिक तथा धार्मिक शिक्षण दिया जाय।

इस प्रकार तीन प्रस्ताव पास हुये। दूसरे प्रस्तावानुसार द्वितीय ज्येष्ठ कृष्ण पचमी सवत् १९८० तदनुसार दिनाक ५-५-१९२३ को जैन ज्ञान फंड पाठ-शाला का उद्घाटन किया गया। इस पाठशाला के प्रारभ काल मे स्थानीय श्री मानकचदजी गाधी ने छह महीने तक बिना किराये के अपना स्थान मुफ्त दिया। उन समय पाठशाला के लिये जब अध्यापक की नियुक्ति का प्रश्न आया, तब प मुनि श्री रत्नऋषिजी म ने फरमाया कि "सस्थाके पास इस समय कुल ४५०० रुपये है। उनका साहुकारी व्याज ३३॥। तेंतीस रुपये बारह आना मिल सकता है इसलिये मूल रकम को कायम रखकर इसके व्याज से पाठशाला के शिक्षक के वेतन का प्रबध किया जाय। फलत ३३॥। रुपये मे बारह आने बचा कर तेंतीस रुपये मासिक मे स्थानीय श्री गोविंदराव सीताराम वराडे नामक व्यक्ति को जैन धर्म का शिक्षण देकर उनकी अध्यापक रूपसे नियुक्ति की गई।

जिस समय इस पाठशाला की स्थापना हुई उस समय सस्था मे शिक्षण ग्रहण करनेके लिये गाँवके नौ विद्यार्थी प्रविष्ट हुए। उनके नाम इस प्रकार है– (१) अमोलकचद नवलमलजी सुरपुरिया (२) रिखबदास बापूराव रणदिवे (३) झुंबरलाल रामचंदजी मुथा (४) सुगनचंद सुखराजजी कुचेरिया (५) अमोलकचद मूलतानचदजी गुगलिया (६) गोकुलदास पूनमचदजी गाधी (७) सुमति बापूराव रणदिवे (८) चदनमल नवलमलजी गाधी (९) बनसीलालजी रामचदजी मुथा।

पाठशाला स्थापित होने पर चार महीने भी पूरे नही होने पाये कि इतनी थोडी-सी अवधि मे गाँव तथा परगाँव के सशुल्क नि शुल्क विद्यार्थी मिलकर कुल ३५ के लगभग शिक्षण लेने लगे। उस समय पाठशाला तथा विद्यार्थियो के लिए जो नियम बनाये गये वे इस प्रकार है –

नियमावली

इस संस्थाका नाम "श्री जैन ज्ञान फंड पाठशाला" है।

उद्देश्य :– जैन समाज में धार्मिक तथा व्यावहारिक शिक्षण का प्रसार करने की दृष्टि से इस संस्था का निर्माण किया गया है। धार्मिक शिक्षण को छोड कर शेष व्यावहारिक शिक्षण इस पाठशाला मे सरकारी शिक्षण के अनुसार ही दिया जायगा। **व्यवस्था**–इस संस्था की सब व्यवस्था "श्री जैन ज्ञान फंड कमेटी" के अधिकार में रहेगी। इस संस्थाके अध्यक्ष श्रीमान् मोतीलालजी जेठमलजी गुगलिया, महामंत्री श्रीमान् उत्तमचंदजी नेमिचंदजी मुथा, और कार्य निरीक्षक श्रीमान हीरालालजी किसनदासजी गांधी नियुक्त किये जाते है।

विद्यार्थी–संबंधी नियम

(१) इस संस्था मे सशुल्क और निःशुल्क दोनो प्रकार के विद्यार्थी लिये जायँगे।

(२) नि:शुल्क विद्यार्थियो के पास से भोजन या दूसरा किसी प्रकार का खर्च नही लिया जायगा।

(३) विद्यार्थी के संरक्षक अपने पुत्रो को नि:शुल्क श्रेणीमे रखना चाहे तो उन्हे अपने गाँव के दो प्रतिष्ठित व्यक्तियो द्वारा अपनी गरीबी को प्रमाणित करना होगा। ऐसा करने पर ही छात्र नि:शुल्क की श्रेणीमें रखे जायगे।

(४) इस संस्था मे प्रविष्ट होनेवाले छात्र की अवस्था कम से कम ९ वर्ष की होनी चाहिए।

(५) इस संस्था मे प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थी को प्रविष्ट होने के बाद कम से कम तीन वर्ष तक यहाँ रहना आवश्यक होगा।

(६) सशुल्क विद्यार्थियो के पास से प्रतिमास सात रुपये भोजन खर्च के रूप मे लिये जायँगे। ये रुपये उनके संरक्षको को छह महीने पहले ही जमा करा देने चाहिए।

(७) इस संस्था में रहनेवाले विद्यार्थी के लिये अविवाहित रहना आवश्यक होगा। इस संस्था का यह मुख्य ध्येय है कि ब्रह्मचर्य व्रत का भंग करनेवाले विद्यार्थी का इस संस्थामें प्रवेश सर्वथा निषिद्ध रहेगा।

(८) विद्यार्थी को संस्था में प्रविष्ट करते समय उनके संरक्षको को संस्था के अधिकारी के पास एक करारनामा लिख कर देना होगा। यह करारनामा लिखने के बाद उसमे लिखित शर्तो का पालन करना होगा। नही तो उसमें लिखी हुई नुकसानी की भरपाई करनी होगी।

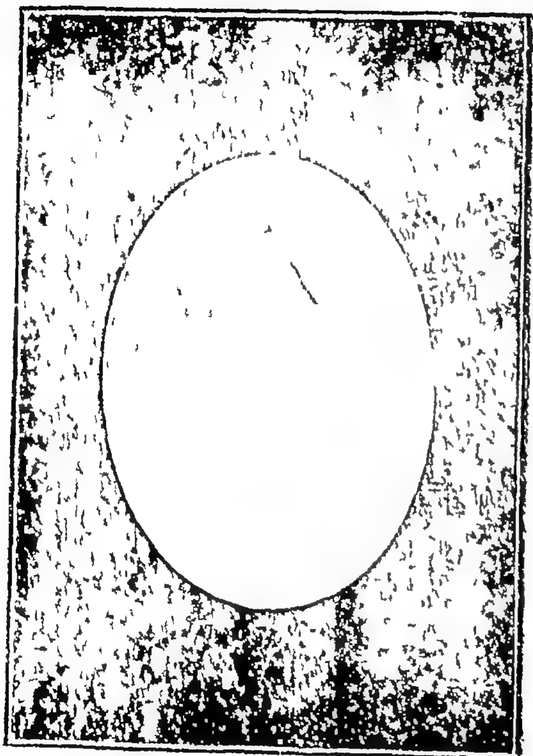
श्री तिलोक जैन पाठशाला पाथर्डी को पहले–पहल जो शिक्षक अध्यक्ष एव मत्री प्राप्त हुए, वे तीनो अपने त्यागमय जीवन के लिये सदैव प्रसिद्ध रहेगे। श्री गोविंदराव सीताराम वराडे मास्टर ने अपने कार्य–काल मे इस सस्था की बहुत बडी सेवा की। प्रारंभ में वे ही इस संस्था के शिक्षक, चपरासी, अर्थलेखक आदि सब कुछ थे। जब देखो तब उन्हे संस्था के विकास की ही चिन्ता बनी रहती थी।

उस समय सस्था मे किसी प्रकार का टेबल कुर्सी आदि फर्नीचर नही था। फिर भी यह त्यागी, सेवाभावी, अध्यापक प्राचीन कलाचार्यो की तरह केवल टाटपट्टी पर बैठ कर पढाते थे। अध्यापन के समय भी अंग्रेजी, गणित, मराठी, इतिहास भूगोल आदि विषय तो ये पढाते ही थे, इसके अतिरिक्त धार्मिक विषय भी आप ही पढाते थे। आज पाथर्डी तथा आस-पास के गॉवो के हजारो विद्यार्थियो ने आप से शिक्षण लिया है। सारी जनता आपको आदर के साथ सबोधित कर बहुमान करती है। इस प्रकार यह अध्यापक सस्था के सौभाग्य से प्राप्त हुए थे। इस सस्था के कण-कण मे इस शिक्षक का पसीना दृष्टिगोचर हो रहा है। अभी भी यह वृद्ध अध्यापक पाथर्डी में जीवित है। पाथर्डी पाठशाला के निर्माण मे इस सेवाभावी मास्टर की कीर्ति सदैव अक्षुण्ण रहेगी।

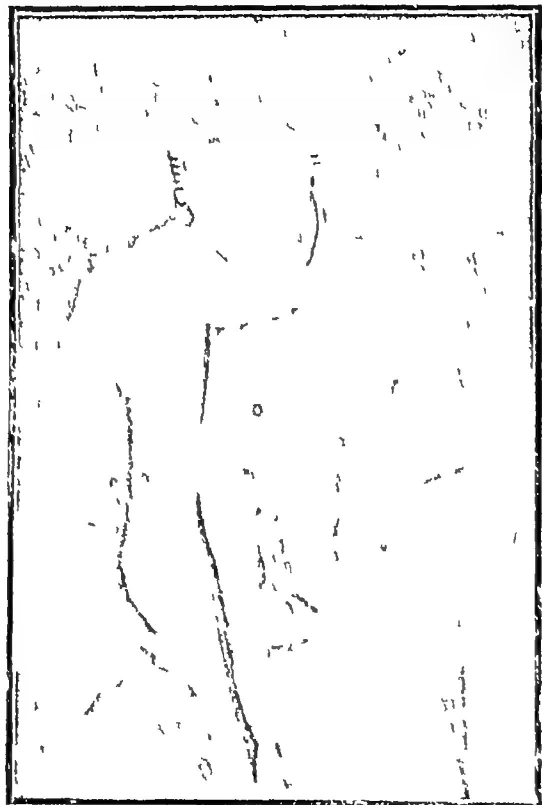
इसी प्रकार पाठशाला के अध्यक्ष श्रीमान् मोतीलालजी जेठमलजी गुगलिया और सेक्रेटरी श्रीमान् उत्तमचन्दजी नेमिदासजी मुथा इन दोनो सद्गृहस्थो का इस सस्था के निर्माण मे बहुत बडा योगदान है। दोनो ने २७ वर्ष पर्यन्त इस संस्था की अखड रूप से सेवा की। १२ वर्ष पर्यत ये दोनो बारह बारह रुपये मासिक के हिसाब से इस सस्था की आर्थिक सहायता करते रहे। इसके अतिरिक्त अध्यक्ष महोदयने इस पाठशाला के निर्माण मे आज तक चालीस हजार रुपये प्रदान किये। उनमे से पंद्रह हजार तो समय समय पर विविध प्रसगो में हजार, पाँच सौ आदि के रूपमें देते रहे और पच्चीस हजार रुपये अपनी अतिम अवस्था में स्वर्गवास होने के पूर्व एक ट्रस्ट बनाकर एक मुश्त दिये। इसी तरह महामत्री महोदय मुथाजी ने भी प्रसग प्रसग पर पद्रह हजार रुपयो की सहायता पाठशाला को पहुँचाई।

ये दोनो जीवित रहे, तब तक संस्था के काम को अपने घर का काम समझ कर करते रहे। उन्हे सदैव इसके विकास की चिता बनी रही। इस पाठशाला

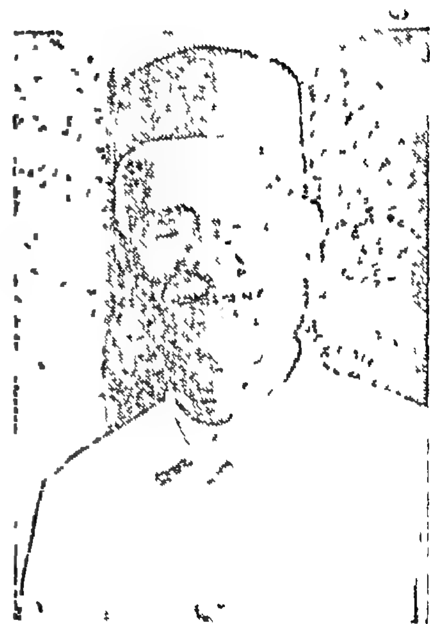
— श्री तिलोक जैन विद्यालय, पाथर्डी के आद्य कर्णधार —



स्व. श्रीमान् सेठ उत्तमचंदजी मुथा (पाथर्डी)
भू. पू. दीर्घदर्शी महामंत्री



स्व. दानवीर सेठ मोतीलालजी गुगले
(पाथर्डी) भूतपूर्व चाणा..ा अध्यक्ष



स्व श्री चुन्नीलालजी कोटेचा
नादूरनिवासी (नार्शी)
भूतपूर्व कर्मठ प्रान्तमंत्री



देशभक्त श्री. चंदनमलजी गाँधी (पाथर्डी)

भूतपूर्व कुशल महामंत्री



श्रीमान् सेठ माणकचंदजी मुथा

(अहमदनगर)

श्री तिलोक जैन विद्यालय के

वर्तमान अध्यक्ष

तथा श्री ति.रत्न स्था. जैन धा. परीक्षा बोर्ड के

उपाध्यक्ष



श्रीमान् सेठ चुन्नीलालजी गुगले

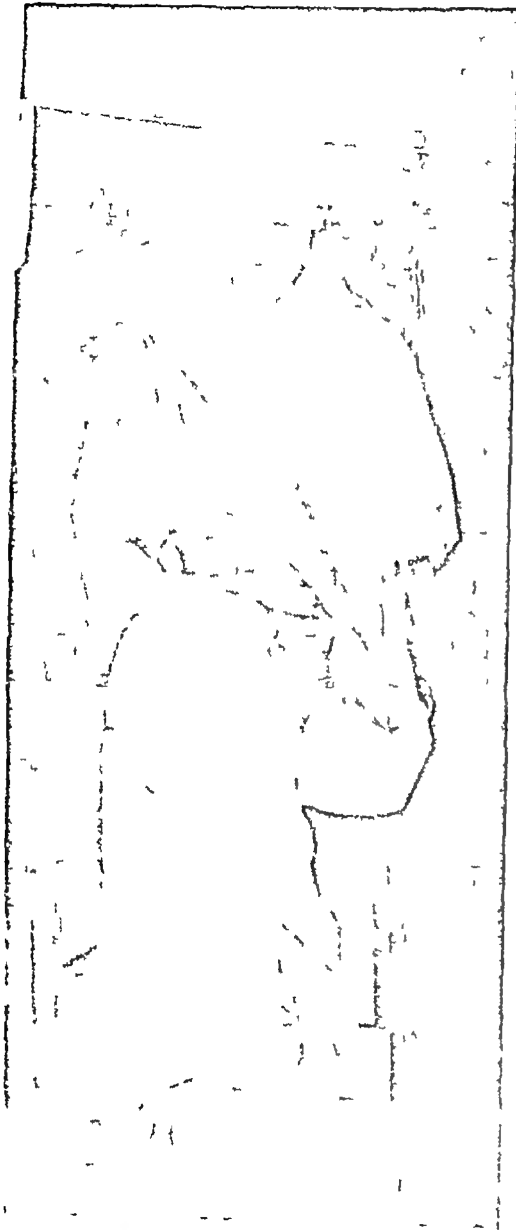
(पाथर्डी)

विद्यालय के भू. पू. सहमंत्री तथा

धार्मिक परीक्षा बोर्ड के वर्त्तमान

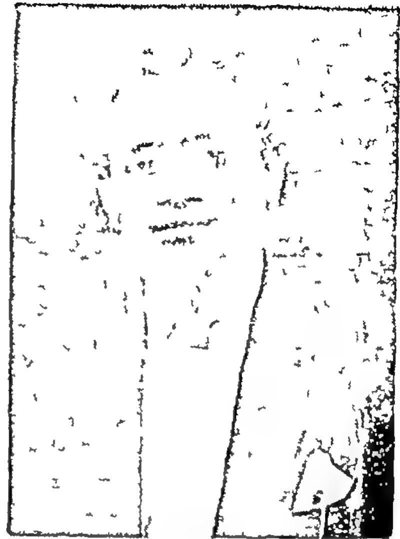
कोषाध्यक्ष

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक



पं. श्री. महेंद्रकुमारजी जैन

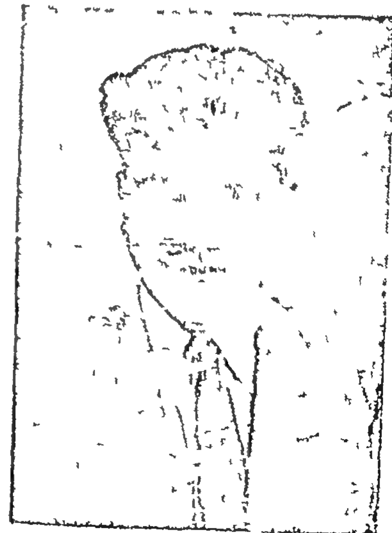
वल्लभनगर (राज)



श्री. नयनसुखजी गुगले

बी ए एल्एल् बी

वर्तमान सेक्रेटरी श्री तिलोक जैन ज्ञान प्रसारक मडल, पाथर्डी



डॉ चाँदमलजी गुगले

वर्तमान सहायक मत्री, श्री तिलोक जैन ज्ञान प्रसारक मडल

के कण कण मे इन दोनो का नाम अंकित है। मैने तो इस संस्था को कभी देखा नही, केवल उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋपिजी महाराज तथा रिपोर्टो द्वारा इसके बारेमे कुछ जानकारी प्राप्त की है। फिर भी आशा करता हूँ कि, सस्था के वर्तमान अधिकारियो ने इन दोनो सद्गत त्यागी पोषको के तैलचित्र सस्था मे अवश्य स्थापित किये होगे।

इसी प्रकार इस पाठशाला के आद्य प्रेरक एवं सदुपदेशक, स्वर्गीय, पूज्यपाद श्री रत्नऋपिजी महाराज को विस्मृत नही किया जा सकता। दुनिया में धनिक लोग अनेक पडे है, पर उस धन का किस दिशामे उपयोग होना चाहिए इसका मार्ग-दर्शन करने वाला त्यागी महात्मा होता है। इस दृष्टि से दान देनेवाले धनिको की अपेक्षा एक त्यागी संत की महत्ता बहुत अधिक बढ जाती है।

परमोपकारी श्री रत्नऋषिजी महाराज ने ही समाज के बालको की ओर कारुण्य वृत्ति रखकर इस पाठशाला का प्रारम्भ किया। उसके लिए अपनी पैनी दृष्टि मे द्रव्य एकत्रित करने की प्रेरणा दी। और जबतक जीवित रहे, अपने वचनानुमार तीन वर्प पर्यन्त चाहे जहाँ होते, विहार कर साल मे एक बार पाठशाला का निरीक्षण करने के लिये अवश्य पधारते थे। विहार के समय भी इस संस्था के विकास के लिये उनका सतत चिन्तन चलता रहता था। इस दृष्टि से आपश्री का इस सस्था के निर्माण मे बहुत अधिक योग दान है। आपश्री के स्वर्गवास के बाद आप के पट्ट शिष्य उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋपिजी म० ने इस सस्या की बागडोर अपने हाथ मे ली है और अपने कुशल नेतृत्व द्वारा इस संस्था का सदेव विकास कर रहे है। आज विद्यालय के इर्द-गिर्द श्री रत्न जैन पुस्तकालय, श्री अमोल जैन सिद्धात शाला, श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा, श्री देवप्रेम स्था० जैन उपकरण भंडार, सुधर्मा मासिक पत्रिका आदि विविध प्रवृत्तियाँ दृप्टिगोचर हो रही है। ये सब आपकी सूझके परिणाम है। विहार या चातुर्मास काल मे आप चाहे जहाँ हो, सस्था के समाचार सचालक लोग पहुँ-चाते रहते है और संस्था को बडी से बडी कठिनाई से निकालकर उसे सरल मार्ग की ओर गति देनेवाले आप ही है। आप ही के पुण्य-प्रभाव से समय २ पर इस संस्था को बडी सहायता मिलती रहती है।

इसके पूर्व हम उल्लेख कर चुके है कि सस्था को स्थापित हुये पूरे चार महीने ही नही होने पाये कि इतनी अल्प अवधि मे वहाँ ३५ विद्यार्थियो की सख्या हो गई। उसमे वाहर के भी अनेक विद्यार्थी थे। इन बाहर के विद्यार्थियो के लिए पाठशाला के साथ एक छात्रालय खोला गया। इस समय "श्री जैन–ज्ञानफड संस्था के पास ४५०० रुपये जितनी बहुत कम रकम थी। उसके व्याज से केवल एक वराडे नामक शिक्षक की नियुक्ति की गई थी। अव छात्रालय के निमित्त मूल धन में से खर्च करने जैसी स्थिति इस सस्था की नही थी। इस-लिये छात्रालय में रहने वाले निःशुल्क विद्यार्थियो के भोजन आदि की जिमेवारी समाज के उदार धनी व्यक्तियो ने अपने ऊपर उठा ली। छात्रालय मे निवास करनेवाले छात्र समाज के स्थानीय प्रमुख सद्गृहस्थो के यहाँ भोजन करते थे। छात्रालय प्रारंभ करते समय असमर्थ विद्यार्थीयो को बिना किसी भेदभाव के भोजन कराने वाले स्थानीय उदार व्यक्तियो के नाम इस प्रकार है– (१) श्री मोती-लालजी गुगलिया (२) श्री उत्तमचन्दजी मुथा (३) श्री हीरालालजी गाधी (४) श्री मुलतानचन्दजी गुगलिया, इनमे से प्रथम दो सज्जनो ने दो असमर्थ छात्रो का भार अपने ऊपर उठाया और अवशिष्ट दो ने एक एक विद्यार्थी का। इस प्रकार की सहा-यता का क्रम सात महीने तक चलता रहा। बाद में छात्रालय स्थापित होने पर प्रतिविद्यार्थी के सात रुपये के खर्च के हिसाब से छात्रालय को सहायता प्रदान करते रहे। इस प्रकार मूल रकम वैसी की वैसी सुरक्षित बनी रही।

इसके बाद फिर थोडे से समय में पाठशाला में ६३ विद्यार्थी प्रविष्ट हुए। इनमें से छात्रालय मे चालीस विद्यार्थी रहते थे। उनमे से भी तेवीस छात्र नि शुल्क थे, पर इनके निवास-भोजन आदि के खर्च का बोझ संस्था पर किसी प्रकार नही पडने दिया। समाज पूर्ववत् इन विद्यार्थियो की व्यवस्था करता रहा। अव अनेक सद्गृहस्थ एक एक असमर्थ विद्यार्थी के खर्च का भार अपने सिर पर ले उक्त रकम सस्था को भेजने लगे। इस प्रकार "श्री जैन ज्ञानफंड" पेटीखाता, तथा छात्रालय के खाते को अच्छी सहायता मिली।

सन् १९२४ से १९२७ तक की द्वितीय वार्षिक रिपोर्ट के छट्ठे पृष्ठ के अंत मे जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसके आधार से लिख रहे है.—

दिनाक ३०–४–२७ तक पाठशाला में बालको की संख्या १२८ थी। पाठशाला की वार्षिक परीक्षा होने पर अग्रिम वर्ष में लगभग ३०–४० विद्या-

र्थियो की सख्या बढ गई। उस समय पाठशाला मे सात शिक्षक थे और शिक्षण मराठी बालवर्ग से लेकर सातवी कक्षा तथा अंग्रेजी प्रायमर से अंग्रेजी चतुर्थ कक्षा तक दिया जाता था। अभ्यासक्रम सरकारी धोरण के अनुसार होने पर भी धार्मिक शिक्षण बाल वर्ग से लेकर सब वर्गों तक दिया जाता था। दूसरी पाठशालाओ की अपेक्षा इस पाठशाला की यह एक महती विशेषता-प्रारभ से ही रही है। इसी प्रकार संस्कृत, मराठी चतुर्थ कक्षा से ही सिखाया जाता था। इसके अतिरिक्त कुछ शिक्षक विशेष परिश्रम कर एक वर्ष में दो दो वर्गों की पढाई करा कर विद्यार्थियो की एक साल की बचत करा देते थे। दिनाक ३०—३—२४ से लेकर ३०—४—२७ की अवधि के बीच वार्षिक परीक्षा के लिये श्री कुंदनमलजी शोभाचदजी फिरोदिया बी. ए. एल् एल् बी श्री माणकचन्दजी किसनदासजी मुथा, बी ए एल्. एल् बी श्री शकरराव नवाथे, एम् ए हेड मास्टर ए सोसायटी हाइस्कूल, श्री मोडक एम् ए. श्री चुन्नीलालजी नेमिचन्दजी संकलेचा बी. ए एल् एल् बी दानवीर श्री मगनमलजी गाधी, श्री उत्तमचदजी रामचंदजी बोगावत—वकील इत्यादि विद्वान् मंडली वार्षिक परीक्षा के लिये आई थी। प्रत्येक बार परीक्षा का परिणाम समाधानकारक रहा। प्रतिशत ८८ विद्यार्थी सब विषयो मे उत्तीर्ण हुए। उनमें से कुछ विद्यार्थियो ने तो अपने शिक्षको के परिश्रम के परिणाम स्वरूप एक ही वर्ष में दो दो वर्ग (क्लास) उत्तीर्ण कर यशस्वी परिणाम प्राप्त किया था। सरकारी धोरण को देखते हुए प्रतिशत ३३ मार्क पर उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थियो की शाला साधारणत उत्तम गिनी जाती है। इस पर से इस पाठशाला का शिक्षण कैसा चलता है, उसकी कल्पना की जा सकती है।

इस प्रकार दि ३०—४—२७ पर्यंत पाथर्डी जैन छात्रालय मे कुल मिलाकर १०५ विद्यार्थी थे। उनमें ६४ असमर्थ, १६ अर्द्धसमर्थ एव २५ समर्थ थे। छात्रालय की व्यवस्था करने के लिये एक छात्रालय गृहपति तथा भोजन बनाने के लिए जाति की पाँच गरीब बाइयाँ थी। श्री तिलोक जैन छात्रालय मे भोजन बनानेवाली इन बहिनो की एक विशेषता है। अन्य संस्थाओ मे भोजन बनानेवाले प्राय ब्राह्मण रसोइये होते है, वे लडको के लिए भोजन बनाने पर भी चौके में दूसरो को प्रविष्ट नही होने देते। पर यहा प्रारभ से इस काम के लिए उन बहिनो की ओर विशेष ध्यान दिया गया, जो अपने पति के देहावसान के बाद अपने छोटे २ पुत्रो के साथ किसी प्रकार अपना जीवन-यापन करती थी।

ये बहिने छात्रालय मे भोजन बनाती थी और इनके बालक पाठशाला में निःशुल्क अभ्यास करते थे। भोजन पकाने बनाने वाली बहने छात्रालय को अपना घर समझ कर उसी तरह काट-कसर से काम करती थी। बोर्डिंग मे रहने वाले बालको को अपने बालक समझती थी। मातृत्व की इस विशाल भावना के कारण उनके द्वारा बनाया हुआ भोजन बच्चो के शारीरिक-विकास मे बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है और सस्था मे अभ्यास करने वाले बालक घर से दूर रहने पर भी इन माताओ को अपने पास पाकर धन्यता का अनुभव करते थे। ये बहिने तो बच्चो के लिये भोजन पका कर भी स्वयं वहाँ भोजन नही करती थी। पारिश्रमिक रूप से प्राप्त केवल ग्यारह रुपये जितनी छोटी रकम द्वारा अपना जीवन-यापन करती थी। इन माताओ के इस त्याग की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। उनमे मुख्य है श्रीमती कोडाबाई पारख और उनकी सुपुत्री हुलासाबाई ललवाणी। इन दोनो बहिनो ने अनेक वर्षों तक छात्रालय को अपनी यह अमूल्य सेवा प्रदान की। श्री कोडाबाई जी तो मृत्यु के समय भी इस बोर्डिंग को स्मरण करती रही। अंतिम समय मे इस माता ने "मेरे इस छात्रालय का सदा ध्यान रखना, छात्रालय मे रहने वाले बच्चो को किसी प्रकार कष्ट नही होने पावे" यह कहते हुये अपने प्राण छोडे। इसके अतिरिक्त ऊपर का काम करने के लिये नौकर आदि है। असमर्थ विद्यार्थियो के भोजन, शिक्षण आदि की सब व्यवस्था सस्था मुफ्त

पाठशाला तथा छात्रालय के लिए अलग-अलग जगह होना नितात आवश्यक है, परंतु सस्था की वर्तमान–स्थिति उतना बडा खर्च करने जैसी नही है। संस्था को पाठशाला तथा छात्रालय का खर्च मिलाकर कुल खर्च मासिक एक हजार रुपये आता है। इतना महान् खर्च सस्था के स्थायी फड पर हाथ नही लगाते हुए अत्यंत परिश्रम से समाज के उदार धनी व्यक्तियो की सहायता से किया जाता है। स्थायी फंड आज केवल बीस हजार रुपये अर्थात् बहुत थोडा है। किसी भी सस्था का चिरस्थायित्व उसके स्थायी फंड पर अवलंबित है। बाहर की सहायता पर कुछ दिन अच्छी तरह से चली हुई सस्था वह सहायता बद होने पर डूब जाती है। ऐसे सैकडो उदाहरण हमारे सामने उपस्थित है, यह तत्त्व कुछ अप्रिय होने पर भी अनुभव की दृष्टि से सत्य है। इस प्रकार विचार करने पर संस्था का स्थायी फड बीस हजार रुपये तथा खर्च प्रतिवर्ष बारह हजार रुपये, क्या यह वर्तमानकालीन स्थिति समाधान–कारक है? इस सकटापन्न स्थिति से सस्था को बाहर निकालने के लिये यह आवश्यक है कि सस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये कम से कम एक लाख रुपये इकट्ठे किये जायँ और उसकी समाज के न्यायपटु तथा व्यवहारदक्ष सद्गृहस्थो द्वारा योग्य व्यवस्था की जाय। हमे अनुभव है कि यह काम अत्यत कठिन है परंतु साधु संतो के पूर्ण आशीर्वाद, समाज के धनिक वर्ग की दानशूरता तथा इस शुभकार्य के लिये सस्था के हितचिंतक और आश्रयदाताओ द्वारा मिलने वाली सहायता, इन सब पर हमारा पूर्ण विश्वास होने से यह काम कुछ कठिन नही है।

यहाँ पाठको के मन में यह शंका होना स्वाभाविक है कि मूल धन पर हाथ नही लगाते हुए संस्था इतना बडा खर्च कैसे उठा लेती है? यह शका वास्तविक है, परन्तु इस का उत्तर यह है कि समाज के धनिक वर्गो का शिक्षण-प्रेम, उनके अंतःकरण में दीन दुर्बल असमर्थ विद्यार्थियो की करुणा–जनक स्थिति देखकर उत्पन्न होने वाली अनुकपा, ये दोनो ही उन्हे समय-समय पर सहायता करने के लिए प्रेरित करते रहे है। वस्तुत इस धनिक वर्ग ने अपने समर्थ हाथो द्वारा संस्था की सहायता न की होती तो संस्था के इस महान् खर्च का चलना अशक्य था।

इस प्रकार के सहायको में प्रथम व्यक्ति है श्री मगनमलजी गाधी पारनेरवाले। आप सस्था मे असमर्थ विद्यार्थियो के प्रविष्ट होने पर अपनी ओर से पहले पहल चार विद्यार्थियो के भोजन का खर्च मासिक अट्ठाईस रुपये देने लगे। आप अपनी ओर से तो देते ही थे, दूसरे उदार व्यक्तियो को भी प्रेरित कर उनकी ओर

ये बहिने छात्रालय में भोजन बनाती थी और इनके बालक पाठशाला मे निःशुल्क अभ्यास करते थे। भोजन पकाने बनाने वाली बहने छात्रालय को अपना घर समझ कर उसी तरह काट-कसर से काम करती थी। बोर्डिंग मे रहने वाले बालको को अपने बालक समझती थी। मातृत्व की इस विशाल भावना के कारण उनके द्वारा बनाया हुआ भोजन बच्चो के शारीरिक-विकास मे बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है और संस्था मे अभ्यास करने वाले बालक घर से दूर रहने पर भी इन माताओ को अपने पास पा कर धन्यता का अनुभव करते थे। ये बहिने तो बच्चो के लिये भोजन पका कर भी स्वयं वहाँ भोजन नही करती थी। पारिश्रमिक रूप मे प्राप्त केवल ग्यारह रुपये जितनी छोटी रकम द्वारा अपना जीवन-व्यापन करती थी। इन माताओ के इस त्याग की जितनी प्रशंसा की जाय, कम है। उनमें मुख्य है श्रीमती कोडाबाई पारख और उनकी सुपुत्री हुलासाबाई ललवाणी। इन दोनो बहिनो ने अनेक वर्षो तक छात्रालय को अपनी यह अमूल्य सेवा प्रदान की। श्री कोडाबाई जी तो मृत्यु के समय भी इस बोर्डिंग को स्मरण करती रही। अंतिम समय में इस माता ने "मेरे इस छात्रालय का सदा ध्यान रखना, छात्रालय मे रहने वाले बच्चो को किसी प्रकार कष्ट नही होने पावे" यह कहते हुये अपने प्राण छोडे। इसके अतिरिक्त ऊपर का काम करने के लिये नौकर आदि है। असमर्थ विद्यार्थियो के भोजन, शिक्षण आदि की सब व्यवस्था सस्था मुफ्त करती है। पाठशाला तथा छात्रालय के लिये किराये की जगह ले रखी है।

इस संस्था का प्रारभ होते समय इसकी मकान पूर्ति की समस्या, करीब छह महीने के लिये श्रीमान् माणकचंद जी गाधी ने हल की थी। फिर भी पाठशाला और छात्रालय के लिये मकान का विकट प्रश्न उपस्थित था। इसका निराकरण सस्था के तत्कालीन कार्यदक्ष अध्यक्ष एव मंत्री महोदय ने इस प्रकार किया। उस समय पाथर्डी मे मल्लाप्पा जिरेसाळ नामक व्यक्ति से २००० रुपयो मे एक मकान इस शर्त पर लिया गया कि हम १५०० रुपये अभी देते है, इन पद्रह सौ रुपयो पर किसी प्रकार का व्याज नही लिया जायगा और अवशिष्ट पाँच सौ रुपयो का व्याज देना होगा। यह मकान इतना विशाल था कि उसमे विद्यालय चलता ही था। उसके अतिरिक्त छात्रालय मे रहने वाले छात्रो के निवास तथा भोजन आदि की व्यवस्था भी इसमे की गई। इस मकान मे बीस साल की लबी अवधि तक छात्रालय तथा विद्यालय चलता रहा। यह सब संस्था के आद्य अध्यक्ष एव मन्त्री महोदय की दीर्घ दर्शिता का परिणाम था कि यह सस्था अपनी परिमित सामग्री मे भी निरंतर आगे बढती रही।

पाठशाला तथा छात्रालय के लिए अलग-अलग जगह होना नितांत आवश्यक है, परन्तु संस्था की वर्तमान-स्थिति उतना बडा खर्च करने जैसी नहीं है। संस्था को पाठशाला तथा छात्रालय का खर्च मिलाकर कुल खर्च मासिक एक हजार रुपये आता है। इतना महान् खर्च संस्था के स्थायी फंड पर हाथ नहीं लगाते हुए अत्यंत परिश्रम से समाज के उदार धनी व्यक्तियों की सहायता से किया जाता है। स्थायी फंड आज केवल बीस हजार रुपये अर्थात् बहुत थोडा है। किसी भी संस्था का चिरस्थायित्व उसके स्थायी फंड पर अवलंबित है। बाहर की सहायता पर कुछ दिन अच्छी तरह से चली हुई संस्था वह सहायता बंद होने पर डूब जाती है। ऐसे सैकडों उदाहरण हमारे सामने उपस्थित है, यह तत्व कुछ अप्रिय होने पर भी अनुभव की दृष्टि से सत्य है। इस प्रकार विचार करने पर संस्था का स्थायी फंड बीस हजार रुपये तथा खर्च प्रतिवर्ष बारह हजार रुपये, क्या यह वर्तमानकालीन स्थिति समाधान-कारक है? इस संकटापन्न स्थिति से संस्था को बाहर निकालने के लिये यह आवश्यक है कि संस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये कम से कम एक लाख रुपये इकट्ठे किये जायें और उसकी समाज के न्यायपटु तथा व्यवहारदक्ष सद्गृहस्थों द्वारा योग्य व्यवस्था की जाय। हमें अनुभव है कि यह काम अत्यंत कठिन है: परंतु साधु संतों के पूर्ण आशीर्वाद, समाज के धनिक वर्ग की दानशूरता तथा इस शुभकार्य के लिये संस्था के हितचिंतक और आश्रयदाताओं द्वारा मिलने वाली सहायता, इन सब पर हमारा पूर्ण विश्वास होने से यह काम कुछ कठिन नहीं है।

यहाँ पाठकों के मन में यह शंका होना स्वाभाविक है कि मूल धन पर हाथ नहीं लगाते हुए संस्था इतना बडा खर्च कैसे उठा लेती है? यह शंका वास्तविक है, परन्तु इस का उत्तर यह है कि समाज के धनिक वर्गों का शिक्षण-प्रेम, उनके अंतःकरण में दीन दुर्बल असमर्थ विद्यार्थियों की करुणा-जनक स्थिति देखकर उत्पन्न होने वाली अनुकंपा, ये दोनों ही उन्हें समय-समय पर सहायता करने के लिए प्रेरित करते रहे हैं। वस्तुतः इस धनिक वर्ग ने अपने समर्थ हाथों द्वारा संस्था की सहायता न की होती तो संस्था के इस महान् खर्च का चलना अशक्य था।

इस प्रकार के सहायकों में प्रथम व्यक्ति है श्री मगनमलजी गांधी पारनेरवाले। आप संस्था में असमर्थ विद्यार्थियों के प्रविष्ट होने पर अपनी ओर से पहले पहल चार विद्यार्थियों के भोजन का खर्च मासिक अट्ठाईस रुपये देने लगे। आप अपनी ओर से तो देते ही थे, दूसरे उदार व्यक्तियों को भी प्रेरित कर उनकी ओर

से बराबर दिलाते रहते। आपकी प्रेरणा से समाज के अनेक व्यक्तियो ने इन असमर्थ छात्रो के लिये बहुत—कुछ दान दिया। धीरे धीरे जैसे जैसे इन असमर्थ विद्यार्थियो की सख्या बढती गई। श्री मगनमलजी गाधी का औदार्य भाव भी बढता गया। उन्होने चार से बढकर दस-पंद्रह असमर्थ विद्यार्थियो की जिम्मेदारी अपने ऊपर उठा ली और प्रत्येक विद्यार्थी की सात रुपये की सहायता के हिसाब से मासिक एक सौ पाँच रुपये सस्था को देने लगे। किसी किसी समय तो आपने एक साथ पच्चीस विद्यार्थियो का भार अपने सिर पर उठाकर हस्ते पर—हस्ते संस्था को १७५ रु मासिक तक दिये है।

श्रीमान् मगनमलजी गाँधी साल मे नियमित रूप से दो बार छात्रालय का निरीक्षण करने आते थे और अपना खर्च करने मे असमर्थ नि शुल्क छात्रों को अनेक वर्षों तक कपडो की सहायता देते थे।

अनेक बार तो ऐसा होता था कि बाहर से संस्था का निरीक्षण करने के लिए आनेवाले दयालु सज्जन निराश्रित छात्रो की स्थिति देख किसी की प्रेरणा के बिना स्वयं प्रेरणा से सहायता देना प्रारम्भ कर देते। एक बार का समय है, एक अनाथ विधवा बहिन अपने तीन बालको को पाठशाला में प्रविष्ट कराने आई। उस समय वहाँ गुलेदगडवाले रावसाहब श्रीमान् लालचदजी मुथा उपस्थित थे। उन्होने देखा "इस बहिन ने अपने शरीर पर फटे कपडे पहने हुए हैं, लडको के शरीर पर भी फटे पुराने कपडे है। बाहर आने पर तो प्रत्येक व्यक्ति अच्छे कपडे पहन कर आता है। इस की दशा देखते हुए यह किसी भी परिस्थिति मे अपने बच्चो के भोजन आदि के खर्च का भार उठा नही सकती। यह सब सोचकर उन्होने किसी की प्रेरणा के बिना स्वेच्छा से तीनो बालको के खर्च का भार पहले तीन वर्ष तक देने का आश्वासन दिया, परतु योग्य स्थल जानकर पाँच वर्षों तक सहायता दी।

यह तो एक उदाहरण है, इस प्रकार अनेक सद्गृहस्थो ने अनुकपा से प्रेरित होकर बहुत—से असमर्थ बालको का भोजन विषयक भार स्वेच्छा से अपने ऊपर उठा लिया। पुण्यश्लोक श्री रत्नऋषिजी महा० के सक्षिप्त जीवन—चरित्र में जिन स्वनामधन्य गराडानिवासी श्रीमान् नवलमलजी खिवराजजी पारख का उल्लेख हो चुका है, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती फूलाबाई एक बार पाथर्डी में विराजमान स्वर्गीय पूज्यपाद श्री रत्नऋषिजी म० का दर्शन करने के लिये घोडनदीनिवासी वयोवृद्ध श्रावक एवं ट्रस्टी श्रीमान् नानचंदजी दूगड के साथ आई थी। दर्शन करने के बाद पाथर्डी में महाराजश्री के उपदेश से स्थापित

पाठशाला को देखकर श्रीमती फूलाबाई की संस्था के निमित्त कुछ देने की इच्छा हुई। अभी तक आपके स्व. पति द्वारा निकाले हुए द्रव्य के व्याज से सत-सतियो का अध्ययन-क्रम चल रहा था। पर अव उस द्रव्य का इस प्रकार के उत्कृष्ट कार्य मे उपयोग नही होने के कारण पहले शिक्षण खाते मे निकाले हुए वीस हजार रुपयो का व्याज सौ रुपये मासिक के हिसाव से देने का वचन दिया और वह रकम अनेक वर्षो तक सस्था को प्राप्त होती रही।

अहमदनगर जिले के अतर्गत मिरीनिवासी श्रीमान् स्व० पन्नालालजी मेहेर के स्मरणार्थ उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूराबाई तथा सुपुत्री जडावबाई ने इस पाठशाला को एक वहुत वडी स्थावर संपत्ति अर्पित की। उसकी विक्री से विद्यालय को साढे आठ हजार रुपये प्राप्त हुए।

सवत् १९८४ में परमोपकारी श्री रत्नऋषिजी म० का स्वर्गवास होने के पश्चात् दूसरे वर्ष संवत् १९८५ ज्येष्ठ कृष्ण सप्तमी के रोज नागपूर सदर वाजार में पं० रत्न मुनि श्री आनन्दऋषि जी म० ने अपने गुरुवर्य के स्मरणार्थ श्री जैनधर्म प्रसारक संस्था स्थापित की। इसमें वाहर की सहायता, व्याज तथा पुस्तक प्रकाशन से जो कुछ आमदनी होती थी, उसका तृतीयाश यह संस्था श्री तिलोक जैन विद्यालय पाथर्डी को प्रदान करती रही।

इस संस्था के निर्माण मे जिन श्रेष्ठ पुरुषो का स्थान है, उनमे वाघे वाभुलगाँवनिवासी श्रीमान् प्रेमराजजी छाजेड को विस्मृत नही किया जा सकता। श्री प्रेमराजजी छाजेड अपने गाँव में सपन्न व्यक्ति थे। पर उनके कोई सतति नही थी। उन्होंने नादूरनिवासी सेवाभावी शिक्षाप्रेमी प्रातीय मत्री श्रीमान् भीकचंदजी चुन्नीलालजी कोटेचा की प्रेरणा से अपनी सारी संपत्ति श्री तिलोक जैन विद्यालय (पाथर्डी) को सन् १९२५ में वक्षीस रूपमे दे दी। उस समय इस स्थावर संपत्ति की कीमत २०००० वीस हजार रुपयो से भी अधिक की आकी गई थी। पर सन् वत्तीस के वाद इस स्टेट पर सस्था का अधिकार करने के लिए स्व० श्रीमान् प्रान्त मंत्री जी चुन्नीलालजी कोटेचा और उनके ज्येष्ठ वधु श्रीमान् भीकचंदजी कोटेचा को वहुत परिश्रम करना पड़ा। उसके लिये उन्हें अनेक वार केज, वीड, औरगावाद और हैदरावाद के न्यायालयो के द्वार खटखटाने पडे। यहाँ तक कि इस दौड-धूप मे उन्होने केवल सस्था के विकास हेतु अनेक रुपये अपनी ओर से खर्च किये। अत मे सन् १९५६ में स्व० श्री चुन्नीलालजी कोटेचा और उनके ज्येष्ठ वधु श्री भीकचंदजी कोटेचा के अथक परिश्रम से संस्था को आधी स्टेट प्राप्त हो गई। उसकी विक्री के रूप मे श्री तिलोक जैन विद्यालय को करीव चालीस हजार रुपये प्राप्त हुए। अव आधी स्टेट पर और

अधिकार करना अवशिष्ट रह गया था। पर सस्था के ट्रस्टी–रूप मे नियुक्त चार ट्रस्टियो में से एक ट्रस्टी के विमुख हो जाने से इस कार्य मे कुछ विलब हुआ। अत में बहुत कुछ ऊहापोह के बाद यह निश्चित किया गया कि बची हुई आधी स्टेट में से आधी कडा विद्यालय को प्रदान की जाय और आधी श्री तिलोक जैन विद्यालय को दी जाय। बाभुलगाव निवासी श्रीमान् प्रेंमराजजी छाजेड का तो कभी का स्वर्गवास हो चुका हैं, पर उन्होने श्रीमान् चुन्नीलालजी कोटेचा की शुभ प्रेरणा से अपना सर्वस्व इस सस्था को अर्पण कर दिया, इसके लिये पाठशाला के सचालक उनके चिरकृतज्ञ रहेगे।

इसी प्रकार भुसावलनिवासी श्रीमान् दानवीर केसरीमलजी कोटेचा ने इस संस्था के विकास–हेतु ५००० पाँच हजार रुपयो का अभिवचन दिया। पर वचन देने के थोडे समय बाद ही उनका स्वर्गवास हो गया। उसके बाद उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुदरबाई ने अपने स्व पति के वचन का पालन करने के लिये स्थानीय व्यक्तियो का एक ट्रष्ट बनाकर वह रकम सस्था को अर्पित की। सस्था की आवश्यकता के अवसर पर अर्पण की गई पांच हजार रुपयो जैसी इस महती सहायता के लिए स्वर्गीय श्री केसरीमलजी कोटेचा, उनकी धर्मपत्नी श्री सुदरबाई तथा उनके दत्तक पुत्र श्रीमान् मागीलालजी आदि कोटेचा–परिवारकी यह सस्था ऋणी है।

जालना (जामनगर) निवासी दानवीर श्रीमान् केशवजी भाई जवेर-चद शाह भी इस सस्था के आधार-स्तंभो मे एक है। जिन्होने श्री तिलोक जैन विद्यालय के इस विशाल भवन–निर्माण के लिए दो किश्तो में ११००० ग्यारह हजार रुपये देकर समाज के और भी अनेक संपन्न व्यक्तियो को इस महान् कार्य मे दान देने के लिए प्रेरित किया है।

ऊपर अकित सद्‌गृहस्थो के अतिरिक्त गाँव के बाहर स्थित श्री तिलोक जैन विद्यालय के भवन–निर्माण के लिए निम्नलिखित उदार व्यक्तियो द्वारा एक हजार रुपयो से लेकर तीन-चार हजार तक की सहायता प्राप्त हुई है। उनके नाम इस प्रकार हैं।

क्र.	नाम	स्थान	रकम
१	श्री दौलतरामजी बोरा, श्रीसिमरतमलजी बोरा तथा श्री उत्तमचदजी गुगळे फर्म	अहमदनगर	४००१ रु.
२	श्रीमान् मनसुखलालजी चैन-सुखलालजी काठेड	भालगाव	३१०० रु,
३	,, चंद्रभानजी रूपचदजी डाकलिया	श्रीरामपूर	३१०१ रु.
४	,, अभयराजजी हीराचदजी बलदोटा	मुबई	३१०१ रु.

५	श्रीयुत	तखतमलजी फत्तेचंदजी मुणोत द्वारा	अमरावती	३१०१ रु.
	,,	जवाहरलालजी मुणोत।		
६	श्रीमती	पुतलाबाई ध्र. बंडूलालजी देसरडा	टाकली मानोर	३००० रु
७	,,	हेवराबाई ध्र सुखराजजी बोहरा मूलचंदजी हम्मीरमलजी सुराणा के स्मरणार्थ।	औरंगाबाद	२००० रु.
८	श्रीमती	हरकूबाई ध्र. चुन्नीलालजी मुथा द्वारा श्री मोहनलालजी, उत्तमचंदजी सिमरतमलजी मुथा।	वाबोरी	१५०० रु.
९	श्रीमान्	राजाबहादुर सुखदेव सहायजी	हैदराबाद	१००१ रु.
	,,	ज्वालाप्रसादजी जौहरी		
१०	,,	इदरचदजी चुन्नीलालजी लूणावत	धामणगाव	,, ,,
११	,,	बाबूलाल डाह्याभाई वदाणी	अमरावती	,, ,,
१२	,,	गुलाबचंद ओघडभाई गोसलिया	बडनेरा	,, ,,
१३	,,	मयाशंकरभाई चतुरभुज	अमरावती	,, ,,
१४	,,	देवराज देपार शाह द्वारा—फूलचंद जवेरचद गोसर।	जालना	,, ,,
१५	,,	कुंदनमलजी शोभाचदजी फिरोदिया	अहमदनगर	,, रु.
१६	,,	उत्तमचंदजी रामचदजी बोगावत	,,	,, ,,
१७	,,	रतनचदजी भिकमदासजी बाठिया	,,	,, ,,
१८	,,	केसरीमलजी वस्तीमलजी गुगलिया	मलाड (मुम्बई)	,, ,,

उस समय स्व. श्री रत्नऋषिजी महाराज ने भी अपने विहार—काल में अनुभव किया। समाज में दो श्रेणियाँ है। धनिक और निर्धन। निर्धनो मे भी अनेको की तो ऐसी दयनीय स्थिति है, जो जंगल मे जाकर ढोर पशु आदि चराते है। इन में से धनिक बालक तो ऐश—आराम मे लिप्त रहने के साथ अपने परिवार की अशिक्षित अवस्था के कारण पढ नही पाते और निर्धन बालको के लिए तो पैसे के अभाव के कारण स्कूल का द्वार सदैव के लिए बंद रहता है। धनिक बालक नहीं पढें, तो भी पूर्वजो द्वारा उपार्जित संपत्ति के कारण उनका निर्वाह हो सकता है। पर असमर्थ बालको के लिए स्कूल में गये बिना गति नही। इस लिये आपने इन असमर्थ बालको को विद्याध्ययन के लिए अत्यधिक प्रेरित किया। आपकी प्रेरणा से ये बालक विद्याध्ययनार्थ संस्था मे प्रविष्ट होने लगे और समाज उनकी बढती हुई सख्या की चिंता किये बिना सारा भार अपने ऊपर उठाता रहा।

सन् १९२९ से १९३३ की रिपोर्ट के अनुसार ऐसे कितने सज्जन असमर्थ विद्यार्थियो की सहायता कितने बडे पैमाने पर करते थे, उसकी सूची निम्नांकित है।

क्रमाक		नाम	गाव	असमर्थ बालक	प्रतिमास रु.
१	श्री	मगनमलजी निहालचदजी गाधी	पारनेर	१५	१०५
२	,	मोतीलालजी जेठमलजी गुगलिया	पाथर्डी	१	७
३	,,	उत्तमचंदजी नेमिदासजी मुथा	,,	१	७
४	,,	माणकचदजी किसनदासजी मुथा	अहमदनगर	१	७
५	,,	फत्तेचंदजी श्रीमलजी	गुलेजगड	३	२१
६	,,	फत्तेचंदजी चादमलजी	,,	१	७
७	,,	कस्तूरचंदजी सूरजमलजी गाधी	कौडगाव	१	७
८	,,	पूनमचंदजी कुंदनमलजी चंगेडिया	सोनई	१	७
९	,,	उमेदमलजी सागरमलजी गुगलिया	लोहसर	१	७
१०	,,	सुखलालजी मोतीलालजी कोटेचा	बीड	१	७
११	,,	धोडीरामजी दलीचदजी खिवसरा की मातुश्री राजुबाई	पुणे	२	१४
१२	,,	हंसराजजी धनराजजी	सूरत	१	७

असमर्थ विद्यार्थियो के लिए प्रति माह सहायता देने वाले इन उदार सज्जनो के सिवाय समाज के अन्य व्यक्तियो द्वारा छात्रालय के लिए इस बीच १५०००, पंद्रह हजार रुपयो से अधिक सहायता मिली थी।

छात्रालय की सहायता करने के अतिरिक्त अध्यापको के वेतन के लिए भी कुछ व्यक्ति प्रतिमाह कुछ सहायता देते थे। उनके नाम इस प्रकार है।

क्रमाक		नाम	गाव	प्रतिमाह सहायता
१	श्रीमान्	मोतीलालजी जेठमलजी गुगलिया	पाथर्डी	५ रु.
२	,,	उत्तमचदजी नेमिदासजी मुथा	,,	५ ,,
३	,,	किसनदासजी माणकचंदजी मुथा	अहमदनगर	५ ,,
४	,,	नवलमलजी मूलचदजी मुणोत	कुकाणे	१५ ,,
५	,,	नवलमलजी खीवराजजी की धर्मपत्नी जडाववाई	गराडा	५० ,,
६	,,	फत्तेचदजी चादमलजी	गुलेजगड	५ ,,
७	,,	धनराजजी मगनलालजी	,,	२५१ वार्षिक

इनके सिवाय "श्री जैन ज्ञानफड संस्था" के पेटी खाते मे दान देनेवालो की सख्या साडे छ सौ के लगभग है। उसमें छोटी रकम पॉच से लगाकर ६०० रुपये तक की सहायता प्राप्त हुई है।

इस प्रकार चारो ओर से बडे पैमाने पर दान मिलने पर भी संस्था मे असमर्थ विद्यार्थियो की सख्या उत्तरोत्तर इतनी अधिक बढती गई कि वहा तक पहुँचना कठिन हो गया। अत एव छात्रालय को चिरकाल के लिए सुचारु रूप से चलाने के लिए असमर्थ छात्रो की संख्या नियत कर देना चाहिये और संस्था की आर्थिक मर्यादा के वाहर असमर्थ छात्र छात्रालय में प्रविष्ट नही करना चाहिये, ऐसा विचार संचालक वर्ग करने लगा।

एक वार सवत् १९८४ मे प० रत्न मुनि श्री आनदऋषिजी महाराज ठाणे २ का चातुर्मास हिंगणघाट मे हुआ। उस समय पर्यूषण पर्व मे प्रतिवर्ष की तरह सस्था के अध्यक्ष, मत्री, मेम्बर, एव मुख्य अध्यापक आदि आपश्री के दर्शनार्थ आये। यहा पाठशाला के विद्यार्थियो ने अपना व्यायाम प्रदर्शन, धार्मिक शिक्षण एव सगीत आदि के प्रयोग दिखाये। उससे आकृष्ट होकर हिंगणघाट के श्री संघ ने ६०००, छ हजार रुपये प्रदान किये। उसी वर्ष हिंगणघाट के सन्निकट वरोरा क्षेत्र मे तपस्वीराज पू० देवजीऋषि जी महाराज की सेवा मे दर्शनार्थ जानेपर वहाँ देखते ही देखते एक दिन में लोगो ने १५००, पंद्रह सौ रुपयो की सहायता दी।

यहाँ चातुर्मास काल में प० रत्न मुनि श्री आनंदऋषि जी महाराज के साथ मुख्य रूप से सस्था के भावी विकास के संवध में बातचीत हुई। उस समय संस्था में अत्यधिक विद्यार्थियो के कारण ध्रुवफड में से दो हजार रुपयो तक की रकम संस्था के छात्रो के लिए खर्च की जाती थी। यह सुनकर महाराज श्री ने कहा—चाहे संस्था में विद्यार्थी कम कर दिये जायँ, पर ध्रुवफड में से कुछ भी खर्च नही होना चाहिये। ध्रुवफड के व्याज की सारी की सारी रकम खर्च कर सकते हैं। महाराजश्री द्वारा इतने सावधान किये जाने पर भी सस्था के मुख्य संचालक कुछ वर्ष तक कारुण्यवश इसमें कुछ कमी नही कर सके। अत में उन्हे महाराजश्री के मार्गदर्शन का ही अनुसरण करना पडा।

संवत् १९८८ में बोदवड चातुर्मास के समय महाराजश्री ने फिर सावधान किया। तदनतर एक प्रस्ताव ऐसा पास किया गया। वर्तमान स्थायीफड को सुरक्षित रखते हुये उसे उत्तरोत्तर बढाने के हेतु से यह फड ट्रस्टी--मंडल को सौंप दिया जाय। उस समय सस्था के पास ३९०००, उन्चालीस हजार रुपया जितना स्थायी फंड था। यह ट्रस्ट कैसे वनाया जाय और उसकी भाषा कैसी

हो ? उसकी जानकारी के लिये अहमदनगर-निवासी श्रीमान् उत्तमचदजी रामचदजी बोगावत वकील-साहब दो बार बबई जाकर श्री चिमनलाल चकुभाई शाह सोलिसिटर आदि व्यक्तियो से मिले और वहा से जो जानकारी प्राप्त की, तदनुसार ट्रस्ट बनाने का निश्चय किया गया ।

फिर दूसरे प्रस्तावानुसार उस समय महाराष्ट्र जैन समाज और इस समय सारे जैन समाज के विश्वासपात्र श्री कुदनमलजी शोभाचदजी फिरोदिया B. A L L B, अहमदनगर, श्री किसनदासजी माणकचदजी मुथा अहमदनगर, श्री मगनमलजी निहालचदजी गाधी (पारनेर) अहमदनगर, श्री मोतीलालजी जेठमलजी गुगलिया पाथर्डी, श्री उत्तमचदजी नेमिदासजी मुथा पाथर्डी, इन पाँच व्यक्तियो का एक ट्रस्ट मडल-बनाया गया और अभी तक अध्यक्ष तथा मत्री महोदय संस्था के जिन रुपयो को बडी सावधानी से रक्षा करते आ रहे थे, उस स्थायी फड में वृद्धि करने के लिये वह रकम ट्रस्टी-मडल को सौप दी । इस ट्रस्टी-मडल मे दो तो पूर्व के अध्यक्ष तथा मंत्री महोदय ही थे । शेष तीन भी ऐसे ही व्यक्ति चुने गये, जो संस्था के प्रारभ काल से उसकी प्राण-पण से सेवा करते आ रहे थे । इन तीनो की उदारता का परिचय पाठक पूर्व के प्रकरणो में प्राप्त कर चूके है ।

पूज्यपाद श्री रत्नऋषिजी म० का सवत् १९८४ ज्येष्ठ कृष्ण सप्तमी को स्वर्गवास होने के बाद पं० मुनि श्री आनन्दऋषिजी म० ठाणे २ हिगणघाट, नागपूर, अमरावती, चादूर बाजार, बोदवड आदि क्षेत्रो मे चातुर्मास कर के और मध्यवर्ती क्षेत्रो को स्पर्श करते हुए पाथर्डी में पधारे । यहा सस्था की गति-विधि को देखकर आपको परम सतोष हुआ । पर इधर पाथर्डी की स्थानीय जनता अपने गुरुदेव के आकस्मिक स्वर्गवास से अत्यत दुखित थी । क्योकि श्री तिलोक जैन विद्यालय के आद्य प्रेरक स्व श्री रत्नऋषिजी महाराज ही थे । इस सस्था की स्थापना के समय लोगो ने इस सस्था का नाम आपश्री के नाम से अलकृत करने का बहुत प्रयत्न किया, परतु उन परोपकारी सत ने अपने स्वर्गीय गुरुदेव के नाम को यह यश-प्रदान किया था । अब आपके स्वर्गवास के बाद इस सस्था के साथ आपके स्मारक रूप से कुछ ठोस कार्य करने का निश्चय किया गया । फल स्वरूप सर्वानुमति से एक योजना बनाकर स्वर्गीय श्री रत्नऋषिजी महाराज के नाम से "श्री रत्न जैन पुस्तकालय,, की स्थापना की गई ।

इस पुस्तकालय की स्थापना हुए ३३ वर्ष हो गये । पिछले इन वर्षो मे इस में पुस्तको की संख्या बरावर बढती रही है । दक्षिण प्रात के आस-पास के क्षेत्रो मे स्थानकवासी समाज के लिये पाथर्डी का यह "श्री रत्न जैन पुस्तकालय"

यह आदर्श पुस्तकालय कहा जा सकता है। इसमें किसी प्रकार का भेदभाव नही रखते हुए जैनसमाज के तीनो संप्रदायो के श्रेष्ठ ग्रन्थो का सग्रह किया गया है। इस के अतिरिक्त भारतीय सस्कृति के विकास मे कारणभूत अन्य दर्शनो के ग्रन्थो का भी अच्छा चयन किया गया है। इन मुद्रित ग्रन्थो के अतिरिक्त यहाँ हस्त-लिखित ग्रन्थो का भी अच्छा सग्रह है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंग आदि ग्रन्थो के अतिरिक्त यहाँ हिंदी, मराठी, गुजराती, अग्रेजी, उर्दू, फारसी ग्रन्थो का संग्रह करीव आठ हजार के ऊपर है। विद्यालय एवं धार्मिक परीक्षा बोर्ड के प्राण-स्वरूप यह पुस्तकालय अवश्य दर्शनीय है। पुस्तकालय को देखने से ही इस संस्था की श्रेष्ठता का पता सहज ही चल सकता है।

इस पुस्तकालय की एक शाखा पूज्य उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म० के जन्मस्थान चिचोडी मे भी खोली गई है। उसका नाम "श्री महावीर सार्वजनिक वाचनालय" है। पर पुस्तकालय का सारा खर्चा स्थानीय जनता उठाती है। पाथर्डी पुस्तकालय से इस पुस्तकालय को ग्राट-स्वरूप वार्षिक ६१ इकसठ रुपये प्रदान किये जाते है। पिछले १२ वर्षो से यह पुस्तकालय समाज की बहुत अच्छी सेवा कर रहा है। पुस्तकालय में संगृहीत पुस्तको का पारायण कर स्थानीय और आस-पास की जनता अपने ज्ञान का विशेष विकास कर रही है। चिचोडी जैसे छोटे से गाव मे ऐसे समृद्ध पुस्तकालय का होना वहाँ के लिये गौरव रूप है।

छात्रालय के बालको के शारीरिक विकास के लिये यहा एक व्यायाम-शाला भी है। इस व्यायाम-शाला का उद्‌घाटन सस्था के प्रारभ के साथ ही हुआ। अब तो इस व्यायाम-शाला ने भी संस्था मे बढती हुई छात्रो की सख्या के अनुसार बडा आकार धारण कर लिया है। इसमे व्यायाम की प्राय सब पद्ध-तियाँ सिखाई जाती है। सूर्य-नमस्कार, आसन, लाठी, काठी, बोथाटी, लेझिम, भाला फरीगदगा इत्यादि पौरुप-प्रधान खेल इसमे सिखाये जाते है। इसके अतिरिक्त छात्र फूटबाल, वालीबाल, पिंगपोन और कबड्डी आदि देशी खेल भी खेलते है। इस शिक्षण के लिये भी मासिक खर्च दो सौ से अधिक आता है।

पाठशाला का प्रारभ होते समय एक सद्‌गृहस्थ ने कुछ समय के लिये अपना मकान दिया था। उसके बाद यह सस्था किराये के मकान मे ही यह सब प्रवृत्तियाँ चला रही थी, पर किराये के मकान मे इन सब प्रवृत्तियो का चलाना सर्वथा अशक्य था। संस्था के पास इतना स्थायी फंड भी नही था, जिसके बल पर वह भवन-निर्माण जैसे महान् कार्य को अपने कंधेपर उठा सकती। इस अभाव की पूर्ति के लिये संस्था की प्रारभ से सेवा करने वाले दानवीर श्रीमान् सेठ श्री

मगनमलजी निहालचंदजी गाधी ने अपनी पूज्या माताश्री के स्मरणार्थ पाठशाला और छात्रालय का समावेश हो सके, ऐसी एक भव्य इमारत के आधे भाग के लिए संस्था के अस्तित्वपर्यंत अर्पण करने के निमित्त पाँच हजार रुपये प्रदान किये और अवशिष्ट आधे भाग के लिए सस्था की तन-मन-धन से सेवा करने-वाले अध्यक्ष महोदय श्रीमान् मोतीलालजी गुगलिया ने अपनी पूज्या माताश्री के स्मरणार्थ सस्या के अस्तित्वपर्यन्त पांच हजार रुपये देकर पाठशाला और छात्रा-लय की कमी को सपूर्ण रूप से दूर कर दिया। इस पर भी आठ हजार की कमी रह गई थी। इस अवशिष्ट आठ हजार रुपयो की कमी को दूर करने के लिए स्थानीय श्रीसंघ ने यह जिम्मेवारी अपने ऊपर उठा ली। उनमे से अपनी कुशलता से ३१०० रुपये के व्याज तथा व्यापार आदि के द्वारा ५००० पाँच हजार बनाकर वे रुपये दिये, जो कि सर्वप्रथम "श्री जैन ज्ञानफड सस्था" की योजना बनाते समय स्थानीय व्यक्तियो ने धर्म-स्थानक के लिए ३१०० तीन हजार एक सौ रुपये दिये थे। इन पांच हजार के अतिरिक्त तीन हजार रुपये और अवशिष्ट रह गये थे। उसकी पूर्ति सथा की तरफ से हुई। इस प्रकार अठारह हजार रुपयो में सस्था को एक ऐसा विशाल एव भव्य मकान प्राप्त हो गया, जिसने उस समय विद्यालय एव छात्रालय की कमी को दूर कर दिया।

धुलिया-निवासी श्रीमती जडाबाई शिवलाल श्रीश्रीमाल ने संस्था को एक श्लाघनीय दान दिया। जडाबाईजी ने श्रीमान् पन्नालालजी के दत्तक-विधान के प्रसंग पर बालमटाकलीनिवासी सुश्रावक श्रीमान् दीपचंदजी छाजेड के सहयोग से पाथर्डी पाठशाला के लिए हाईस्कूल होने की शर्त पर दस हजार रुपयो का ट्रस्ट बनाकर उसके व्याज की रकम सस्था को देने का अभिवचन दिया।

इन तेरह वर्षो की अवधि मे संस्था से कुल ७०० से अधिक विद्यार्थियो ने लाभ उठाया। इन मे ५०० असमर्थ और २०० समर्थ छात्र थे। सस्था मे रहकर शिक्षण ग्रहण करनेवाले ये विद्यार्थी अधिकतर आस-पास के छोटे गाँवो के थे। इनमे से कितने ही सुयोग्य विद्यर्थियो ने सस्था से बाहर निकल बहुत अधिक प्रगति की। कुछ विद्यार्थी तो हाईस्कूल की परीक्षा पास कर वहाँ से आगे बढते हुए बी ए. एम् ए, एल्. एल् बी तक पहुँच गये। उनमें से एक श्री अमोलकचद नवलमल सुरपुरिया नामक विद्यार्थी सन् १९३५ मे मुबई युनि-वर्सिटी की बी ए सरीखी उच्च परीक्षा अर्द्ध-मागधी विषय लेकर प्रथमश्रेणी मे उत्तीर्ण हुआ। इस सफलता के निमित्त श्री अमोलकचदजी का अभिनदन करने के

लिए श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया के सभापतित्व में एक सभा की गई। सभा में ४००—५०० व्यक्ति थे। श्री भाऊसाहब ने अध्यक्ष-स्थान से विद्याका महत्त्व बताते हुए ऐसा ओजस्वी भाषण दिया कि सारी सभा चित्रवत् स्तब्ध रही। इस आयोजन का जन—साधारण पर अच्छा प्रभाव पडा। परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के उपलक्ष्य में श्री अमोलकचंद को स्वर्ण-पदक प्रदान करने के साथ आगे एम् ए का अभ्यास करने के लिए सरकार की ओर से पचास रुपये की मासिक छात्र-वृत्ति दी गई।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है- संस्था का विकास होने के साथ-साथ अनेक नई प्रवृत्तियाँ बढती गईं, जो कि संस्था के गौरव को बढानेवाली है। उनमे मुख्य हैं—श्री अमोलक जैन सिद्धातशाला, बालवाचनालय, आयुर्वेदिक औषधालय, और श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड।

श्री अमोलक जैन सिद्धांतशाला,

अल्प समय और अल्प व्यय में बहुत अधिक काम हो, तथा दूर-दूर विचरण करनेवाले सत-सती वृन्द एक स्थान पर एकत्रित होकर एक सुयोग्य अध्यापक से दार्शनिक एवं आगमिक अध्ययन कर सकें। इस अभिप्राय से शास्त्रोद्धारक पूज्य श्री १००८ श्री अमोलकऋषिजी महाराज साहब के स्मारकस्वरूप सन् १९३६ में इस सस्था की स्थापना की गई। इस सिद्धातशाला में अध्ययन कर संत-सतियो ने शास्त्री आचार्य तक की उच्च परीक्षा दी है।

इस सिद्धान्त-शाला में अध्ययन कर ऐसे अनेक संत—सतीगण ने विद्या में पारंगतता प्राप्त की है, जो आज अपनी शास्त्रीय विद्वत्ता के साथ युगानुरूप जन-कल्याण करने की दृष्टि से सारे देश में प्रसिद्ध है। उन्होने अपने पाद—विहार द्वारा दूर-दूर प्रातो में भ्रमण कर अनेक व्यक्तियो को जैनधर्म के प्रति श्रद्धाशील बनाया है। वे चारित्रशील, जैन सिद्धात के पारगामी एवं अपनी व्याख्यान-पटुता से सर्वत्र प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाले सत—सतीवृद ये है—१ विदुषी सती श्री सुमतिकुंवरजी म०, २ पं मुनिश्री मोतीऋषिजी म०, ३ पंडिता सती श्री सज्जनकुवर जी म०, ४ प सती श्री प्रभाकुवर जी म०, ५ प. सती श्री अमृतकुवरजी म०, ६ प. सती सुशीलकुवरजी म०, ७ पं सती श्री अजितकुवरजी म० तथा पं सती श्री विमलकुवरजी म० आदि। इस अमोलक जैन सिद्धात शाला, पाथर्डी की दो शाखाएँ क्रमश अहमदनगर तथा घोडनदी मे भी जैन सिद्धात शाला-के नाम से स्थापित की गई है। इन दोनो सिद्धात-शालाओ में भी अनेक सत-सतियो ने अभ्यास किया है।

आयुर्वेदिक औषधालय

संस्था के निरीक्षक अहमदनगर-निवासी श्रीमान् सेठ श्री किसनदासजी माणकचंदजी मुथा की उदारतापूर्ण सहायता से श्री प्रेमराजजी के स्वर्गीय पुत्र श्री सरदारमलजी के स्मरणार्थ सन् १९३८ में एक औषधालय खोला गया। इस में विद्यार्थियो के अतिरिक्त बाहर के अन्य व्यक्ति भी चिकित्सा कराकर आरोग्य लाभ प्राप्त करते थे।

धार्मिक परीक्षा बोर्ड

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड का इतिवृत्त बहुत विस्तृत है। उसने एक विश्व विद्यालय का रूप धारण कर लिया है। समय की गति के साथ इस में अनेक प्रवृत्तियाँ बढती रही है। इसलिए इस संस्था के संबध मे विद्यालय के परिचय के बाद एक स्वतत्र प्रकरण लिखा गया है। पाठक वहाँ-पर ही इस बोर्ड के सबध में विस्तृत जानकारी प्राप्त करे।

ऊपर का यह सारा विवरण सन् १९४० तक का है। उस समय सस्था के पास केवल ४००८५ रुपये थे। इस के पश्चात् देश की परिस्थिति ने पलटा खाया। युद्ध के कारण दिन बा दिन हमारे सामने अनेक समस्याएँ उपस्थित होने लगी। यह काल कितना भयकर तथा कठिन रहा, इसकी कल्पना तक नही की जा सकती। सन् १९४० से १९४९ तक सस्था ने इन नौ वर्षो में विद्यालय विभाग में ५६६२० रु. तेरह आने तीन पाई, छात्रालय में ६८०१९ रु. तीन आने ६ पाई, ध्रुव फड खर्च ३५९० रु तेरह आने तीन पाई, अर्थात् कुल १२८०३७ रु चौदह आने का खर्च करते हुए भी ध्रुव फड में ११५६ रु पद्रह आने पांच पाई की वृद्धि कर दिखाई। सन् १९४९ में ट्रस्ट–मडल के पास ४१२४२ रु. नौ आने का ध्रुव फंड था।

सन् १९३५ से सन् १९४९ पर्यन्त इस विद्यालय मे अग्रेजी आठवी कक्षा तक ही शिक्षा दी जाती थी। इसका कारण यह था कि इतनी अवधि तक संस्था ने सरकार द्वारा अपना सबंध स्थापित कर अपने पर किसी प्रकार की जिम्मेवारी लेना पसद नही किया था। इधर समय की गति ने नया मोड लिया। शिक्षा का स्तर उच्च और विस्तृत हुआ। जनता ने विद्यार्थियो को सस्था में हाईस्कूल तक की शिक्षा देने की माग की। सन् १९४५ मे संस्था सरकार द्वारा सबंधित हुई। अब अंग्रेजी नववी तक की शिक्षा दी जाने लगी और हाईस्कूल का पूर्व प्रयत्न चालू रहा। परन्तु कतिपय सरकारी अपरिहार्य प्रतिवचनो के कारण उस समय सफलता प्राप्त न हुई। सन् १९४८ में दसवी कक्षा की स्वीकृति मिली और

संस्था के संचालको का कई वर्षो का प्रयत्न सफल हुआ। सस्था के कार्य के प्रति शिक्षा विभाग के उच्च कर्मचारियो ने सतोष व्यक्त किया और सन् १९४९ से हाईस्कूल तक शिक्षण देने की स्वीकृति दे दी गई। उस वर्ष सस्था के अहोभाग्य से शिक्षाशास्त्री, सेवाभावी, उत्साही एवं योग्य व्यक्ति श्रीयुत परशुराम पुरुषोत्तम-जी मेहेंदले एम् ए वी. टी एस् टी. सी जेसे प्रधानाध्यापक एवं अनुभवी कर्त्तव्य-निष्ठ ट्रेंड शिक्षक प्राप्त हुए।

संस्था पर वज्रपात

उपरोक्त दोनो संस्थाएँ दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति पथ पर अति वेग से वढ रही थी कि इतने मे दुर्दैव से सस्था की स्थापना से लगाकर २८ वर्ष पर्यंत निरतर, निसीम, निःस्वार्थ सेवा करनेवाले पाथर्डी के लोकप्रिय, कुशल, कर्मठ कार्यकर्ता, सद्व्यवसायी, शातस्वभावी, अनुभवी, अवैतनिक मत्री श्री उत्तमचद-जी मुथा वनाम वावू सेठजी का कॅन्सर की वीमारी से अहमदनगर मे असामयिक देहावसान हो जाने से सस्था पर जो वज्राघात हुआ, उसकी कल्पना तक नही की जा सकती। इसका घाव अभी सूखने भी नही पाया था कि इतने में क्रूर काल का सस्था पर दूसरा प्रहार हुआ, जिसने सब को किंकर्तव्यविमूढ वना दिया। सस्था के सामने चारो ओर अंधकार ही अंधकार भासित होने लगा, अर्थात् पाठशाला की स्थापना से लगाकर आज तक हजारो रुपयो का दान दे संस्था की नीव दृढ़ करनेवाले, सस्था के प्राण, आधारस्तभ एव अध्यक्ष दानवीर सेठ श्रीमान् मोतीलालजी गुगलिया पाथर्डी-निवासी का दि ३-८-४९ को असाध्य रोग से अवसान हो जाना संस्था के लिए विशेष दुर्भाग्य का कारण हुआ। आपने अपना मृत्युकाल सन्निकट जान विद्यालय के लिए २५००० पच्चीस हजार रुपयो का ट्रस्ट कराया था।

इसके अतिरिक्त एक और दुखद घटना इसी वर्ष हुई। वह यह कि सस्था की अहर्निश बौद्धिक सेवा करनेवाले विनीत, सरलस्वभावी, उद्भट विद्वान्, विद्या-वारिधि पं राजधारी त्रिपाठी शास्त्री, (रजिस्ट्रार श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा वोर्ड पाथर्डी) का चेत्र शुक्ल त्रयोदशी महावीर जयती के दिन भाषण देते समय सहसा हृदय-गति वद हो जाने से देहावसान हो गया। अपने संयमपूर्ण जीवन, शुद्ध क्रिया और पाडित्य से स्थानकवासी समाज को प्रकाशित करनेवाले उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज आपके ही अध्यापन के परिणाम है। इसी प्रकार देश मे अपनी अद्भुत वक्तृत्व-शक्ति से चैतन्य का संचार

करनेवाली महासती श्री सुमतिकुँवरजी म० ने आप से ही शिक्षा प्राप्त की है। आपसे शिक्षण लेकर अपनी योग्यता का परिचय देनेवाली ऐसी अनेक संत-सतियाँ है।

इस वर्ष सस्था की बढती हुई अनेक प्रवृत्तियो को लक्ष्य मे रख "संस्था की बढती हुई आवश्यकता और नम्र निवेदन" के रूप में एक अपील की गई। वह निम्नलिखित है।

माननीय सज्जनो! सस्था की स्थापना-काल से ही कार्यकर्ताओ के समक्ष दो प्रश्न उपस्थित थे। एक तो हाईस्कूल तक की शिक्षा की व्यवस्था और द्वितीय निजी भवन-निर्माण। इनमें से हम अपने एक उद्देश्य की पूर्ति में तो सफलता प्राप्त कर चुके है, पर दूसरा भवन-निर्माण का कार्य ज्यो का त्यो सामने खडा है। इसके लिये सन् १९४९ में सस्था के सदस्यो ने एक प्रस्ताव पास कर भवन-निर्माण फड एवं बोर्डिंग के लिये वार्षिक वात्सल्य सिति २५ रु की योजना प्रारंभ की थी। फल-स्वरूप भवन-निर्माण-फड में २७००० सत्ताईस हजार रुपये भी प्राप्त हो चुके थे। किंतु किन्ही विशेष कारणो से यह विचार स्थगित कर कुछ समय के लिए रुक जाना पडा। अब जब कि हाईस्कूल तक की शिक्षा दी जा रही है, कक्षाओ के साथ छात्रो की संख्या उत्तरोत्तर विशेष बढ रही है, इस समय जिस भवन में विद्यालय है, वह यद्यपि विशाल है, फिर भी सरकारी नियमानुसार इस में चार वर्ग से अधिक नही चलाये जा सकते। साथ ही हाईस्कूल तक की शिक्षा की स्वीकृति देते समय सरकार की पहली शर्त यही है कि सन् १९५१ मार्च पर्यन्त नूतन भवन-निर्माण होना ही चाहिये। ऐसी परिस्थिति में निजी भवन की महती आवश्यकता है। सरकार के साथ वचन-बद्ध होने के कारण दिन-रात यह प्रश्न हमें चैन नही लेने देता। वैसे भी संस्था का वार्षिक व्यय महगाई के कारण पहले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ गया है। ट्रस्ट मंडल की मिटिंग में सन् १९४९-५० का विद्यालय एवं बोर्डिंग का वार्षिक बजट ३२००० रुपयो का पास किया है। जिस की पूर्ति के लिये भी हमें अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडेगा। हमें हाईस्कूल एवं छात्रालय इस प्रकार दो भवन निर्माण करने है। दोनो के लिये कम से कम २००००० दो लाख रुपयो की आवश्यकता है। यह बहुत बडी रकम है। एक साथ इतना फड एकत्रित होना अशक्य है, अत वर्तमान में हम एक हाईस्कूल-भवन ही बनाना चाहते है। इसके लिये कम से कम १००००० एक लाख रुपये तो लगेंगे ही। यह सब भार समाज के उदार, दानी कर्णधारो के कंधो पर ही है। जब तक समाज का

हमारी और सस्था की सच्चाई पर विश्वास है, हमारी यह भावना शीघ्र ही पूर्ण होगी, इस में जरा भी सदेह नही। भवन-निर्माण के लिये कमवे से कुछ दूरी पर शुद्ध एव प्रशात वातावरण मे चौबीस एकड का चार हजार रुपयों मे एक विशाल प्लॉट बहुत समय पहले से ही खरीदा जा चुका है। किंतु-अब आगे का कार्य चालू करने के लिये संस्था आर्थिक कमी का अनुभव कर रही हैं।

हम सस्था को अपनी निज की संपत्ति नही समझते। वरन् समस्त भारत वर्ष के स्थानकवासी समाज की समझते हुए समाज के धनी, मानी, दानी, विद्यानुरागी सज्जनो से प्रार्थना है कि हमारे इस विद्या–मंदिर के निर्माण जैसे शुभ कार्य मे मुक्त मन से उदारतापूर्वक सहायता देकर अक्षुण्ण यश एवं पुण्य का उपार्जन करे एवं हमारा उत्साह बढावे। कहा भी है कि "पढम णाण तओ दया" अर्थात् दया का सच्चा स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति पर निर्भर है। ज्ञान प्राप्त किये विना सदसद्–विवेक नही हो सकता। सदसद्–विवेक के विना दया का पालन नही किया जा सकता और उसके विना मोक्ष प्राप्त नही होता। तात्पर्य यह है कि ज्ञान ही इहलौकिक एवं पारलौकिक सपत्ति का भडार है राष्ट्र, समाज एव धर्म की बुनियाद ही विद्या है। जहां विद्या का अभाव है, वहा मनुष्यता का अभाव भी निश्चित है। कहा भी है "ज्ञान विना पशुः" अत ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु हैं। इसी का उपार्जन करना चाहिए और इसकी प्राप्ति के लिए सब साधन सुलभ होने चाहिए। अत हमारी आग्रहपूर्वक विनम्र विनति है कि महाराष्ट्र प्रान्त मे सब से पुरानी, परिचित, प्रगतिशील एव विकसित अपनी इस सस्था के नूतन-भवन-निर्माण कार्य मे तन, मन एवं धन से पूर्ण सहयोग दें।

इसी प्रकार विद्यालय के भूतपूर्व विद्यार्थियो से भी इसी वर्ष जोरदार अपील की गई। वह इस प्रकार है——

विगत सत्ताईस वर्षों की अवधि में पाठशाला से हजारों छात्र अपना अध्य-यन पूर्ण कर व्यावहारिक क्षेत्र मे दक्षतापूर्वक कार्य कर रहे है। उनमें से अनेक अपने कौशल से लक्षाधिपति भी बन गये है और बहुत से वकील डॉक्टर, प्रोफेसर आदि पदो पर प्रतिष्ठापूर्वक काम कर रहे हैं। सस्थाने उनकी शिक्षा के लिये लाखो रुपयो का व्यय किया है। आज उनके सामने अपना उत्तर-दायित्व सम-झने का सुअवसर है। यदि प्रत्येक छात्र हमें अत्यल्प भी सहयोग देने का वचन दे, तो भवन–निर्माण तो क्या ? हमारा जटिल से जटिल प्रत्येक कार्य बहुत-सी आसानी एवं बिना किसी बाधा के अल्प काल ही मे पूरा हो सकता है। यह

करनेवाली महासती श्री सुमतिकुँवरजी म० ने आप से ही शिक्षा प्राप्त की है। आपसे शिक्षण लेकर अपनी योग्यता का परिचय देनेवाली ऐसी अनेक संत-सतियाँ है।

इस वर्ष सस्था की बढती हुई अनेक प्रवृत्तियो को लक्ष्य मे रख " संस्था की बढती हुई आवश्यकता और नम्र निवेदन " के रूप में एक अपील की गई। वह निम्नलिखित है।

माननीय सज्जनो ! सस्था की स्थापना- काल से ही कार्यकर्ताओ के समक्ष दो प्रश्न उपस्थित थे। एक तो हाईस्कूल तक की शिक्षा की व्यवस्था और द्वितीय निजी भवन-निर्माण। इनमे से हम अपने एक उद्देश्य की पूर्ति में तो सफलता प्राप्त कर चुके है, पर दूसरा भवन-निर्माण का कार्य ज्यो का त्यो सामने खडा है। इसके लिये सन् १९४९ मे सस्था के सदस्यो ने एक प्रस्ताव पास कर भवन-निर्माण फड एवं बोर्डिंग के लिये वार्षिक वात्सल्य मिति २५ रु० की योजना प्रारंभ की थी। फल-स्वरूप भवन-निर्माण-फड में २७००० सत्ताईस हजार रुपये भी प्राप्त हो चुके थे। किंतु किन्ही विशेष कारणो से यह विचार स्थगित कर कुछ समय के लिए रुक जाना पडा। अब जब कि हाईस्कूल तक की शिक्षा दी जा रही है, कक्षाओ के साथ छात्रो की संख्या उत्तरोत्तर विशेष बढ रही है, इस समय जिस भवन में विद्यालय है, वह यद्यपि विशाल है, फिर भी सरकारी नियमानुसार इस में चार वर्ग से अधिक नही चलाये जा सकते। साथ ही हाईस्कूल तक की शिक्षा की स्वीकृति देते समय सरकार की पहली शर्त यही है कि सन् १९५१ मार्च पर्यन्त नूतन भवन-निर्माण होना ही चाहिये। ऐसी परिस्थिति में निजी भवन की महती आवश्यकता है। सरकार के साथ वचन-बद्ध होने के कारण दिन-रात यह प्रश्न हमें चैन नही लेने देता। वैसे भी संस्था का वार्षिक व्यय महगाई के कारण पहले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ गया है। ट्रस्ट मंडल की मिटिंग मे सन् १९४९-५० का विद्यालय एवं बोर्डिंग का वार्षिक बजट ३२००० रुपयो का पास किया है। जिस की पूर्ति के लिये भी हमे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडेगा। हमें हाईस्कूल एवं छात्रालय इस प्रकार दो भवन निर्माण करने है। दोनो के लिये कम से कम २००००० दो लाख रुपयो की आवश्यकता है। यह बहुत बडी रकम है। एक साथ इतना फड एकत्रित होना अशक्य है, अत वर्तमान में हम एक हाईस्कूल-भवन ही बनाना चाहते है। इसके लिये कम से कम १००००० एक लाख रुपये तो लगेंगे ही। यह सब भार समाज के उदार, दानी कर्णधारो के कधो पर ही है। जब तक समाज का

हमारी और संस्था की सच्चाई पर विश्वास है, हमारी यह भावना शीघ्र ही पूर्ण होगी, इस में जरा भी संदेह नही। भवन-निर्माण के लिये कसबे से कुछ दूरी पर शुद्ध एव प्रशांत वातावरण में चौबीस एकड का चार हजार रुपयों में एक विशाल प्लॉट बहुत समय पहले से ही खरीदा जा चुका है। किन्तु अब आगे का कार्य चालू करने के लिये संस्था आर्थिक कमी का अनुभव कर रही है।

हम सस्था को अपनी निज की संपत्ति नहीं समझते। वरन् समस्त भारत वर्ष के स्थानकवासी समाज की समझते हुए समाज के धनी, मानी, दानी, विद्यानुरागी सज्जनो से प्रार्थना है कि हमारे इस विद्या-मंदिर के निर्माण जैसे शुभ कार्य मे मुक्त मन से उदारतापूर्वक सहायता देकर अक्षुण्ण यश एव पुण्य का उपार्जन करें एवं हमारा उत्साह बढावे। कहा भी है कि "पढम णाण तओ दया" अर्थात् दया का सच्चा स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति पर निर्भर है। ज्ञान प्राप्त किये विना सदसद्-विवेक नही हो सकता। सदसद्-विवेक के विना दया का पालन नही किया जा सकता और उसके विना मोक्ष प्राप्त नही होता। तात्पर्य यह है कि ज्ञान ही इहलौकिक एवं पारलौकिक सपत्ति का भडार है राष्ट्र, समाज एव धर्म की बुनियाद ही विद्या है। जहां विद्या का अभाव है, वहा मनुष्यता का अभाव भी निश्चित है। कहा भी है "ज्ञान विना पशुः" अत ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। इसी का उपार्जन करना चाहिए और इसकी प्राप्ति के लिए सब साधन सुलभ होने चाहिए। अत हमारी आग्रहपूर्वक विनम्र विनति है कि महाराष्ट्र प्रान्त में सब से पुरानी, परिचित, प्रगतिशील एव विकसित अपनी इस सस्था के नूतन-भवन-निर्माण कार्य में तन, मन एवं धन से पूर्ण सहयोग दें।

इसी प्रकार विद्यालय के भूतपूर्व विद्यार्थियो से भी इसी वर्ष जोरदार अपील की गई। वह इस प्रकार है--

विगत सत्ताईस वर्षों की अवधि में पाठशाला से हजारो छात्र अपना अध्ययन पूर्ण कर व्यावहारिक क्षेत्र मे दक्षतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। उनमें से अनेक अपने कौशल मे लक्षाधिपति भी बन गये है और बहुत से वकील, डॉक्टर, प्रोफेसर आदि पदो पर प्रतिष्ठापूर्वक काम कर रहे है। सस्थाने उनकी शिक्षा के लिये लाखो रुपयो का व्यय किया है। आज उनके सामने अपना उत्तर-दायित्व समझने का सुअवसर है। यदि प्रत्येक छात्र हमें अत्यल्प भी सहयोग देने का कष्ट करे, तो भवन-निर्माण तो क्या ? हमारा जटिल से जटिल प्रत्येक कार्य बड़ी आसानी एव बिना किसी बाधा के अल्प काल ही मे पूरा हो सकता है।

सस्था आप के जीवन-विकास में पूर्ण सहायक बनी है। उसकी प्रत्येक प्रकार से सेवा करना आपका परम कर्तव्य है। भवन-निर्माण जैसी समस्या आपको अपने कधो पर उठा लेनी चाहिए। ऐसा करके ही आप संस्था के ऋण से उऋण हो सकते है।"

इस जोरदार अपील पर भी सस्था के भूतपूर्व विद्यार्थियो मे से अधिकतर विद्यार्थियो ने सस्था के विकास-हेतु कुछ योगदान नही दिया। उनकी ओर से किसी प्रकार की सहायता प्राप्त नही हुई। विद्यार्थियो के इस व्यवहार से सस्था के संचालको को कुछ लगा और उन्होने मन ही मन अपना दु ख प्रगट किया। यह बात तो पुरानी है, पर अब भी भूतपूर्व विद्यार्थी सस्था के विकास की ओर कुछ सचेत होकर योगदान देंगे तो वे सस्था के ऋण से कुछ अश में उऋण हो सकते है।

साधारण सभा

संस्था के प्रारभिक काल से उसकी तन-मन-धन से सेवा करने वाले अध्यक्ष एव मत्री महोदय के स्वर्गवास के पश्चात् सस्था की एक साधारण सभा जामनेर-निवासी श्री राजमलजी ललवाणी की अध्यक्षता में हुई। उसमे पाँच सौ के लगभग उपस्थिति थी। इस सभा मे समयोचित योग्य प्रस्तावो द्वारा ट्रस्ट-मडल का मार्गदर्शन किया गया एव श्री तिलोक जैन ज्ञान प्रसारक मडल द्वारा किया हुआ सब व्यवहार सर्व सम्मति से पास हुआ। संस्था के अध्यक्ष एवं मंत्री के स्थान पर क्रमश श्री माणकचदजी किसनदासजी मुथा अहमदनगर तथा श्री चदनमलजी नवलमलजी गाधी पाथर्डी नियुक्त किये गये। इसी प्रकार श्री मोतीलालजी गुगलिया के स्थान पर उनके सुपुत्र श्री चुन्नीलालाजी गुगलिया और दीपचंदजी छाजेड के स्थान पर उनके सुपुत्र श्री सुवालालजी छाजेड वकील ट्रस्ट-मडल में सर्वसम्मति से नियुक्त किये गये। उस समय नियमावली मे भी बहुत कुछ परिवर्तन कर सशोधित नियमावली स्वीकृत की गई।

विद्यालय के नवीन भवन का शिलान्यास समारंभ

उसी समय विद्यालय के नये भवन की नीव भरने के साथ भवन का शिलान्यास-समारभ बडे समारोहपूर्वक मनाया गया। उस समय जैन जैनेतरो की सख्या लगभग दो हजार से भी अधिक थी। यह समारंभ वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध भाऊसाहेब श्रीमान् कुदनमलजी शोभाचदजी फिरोदियाजी की अध्यक्षता में हुआ। बाहर से समाज के अनेक प्रतिष्ठित सज्जनो ने इस समारोह मे भाग लिया। अनेक व्यक्तियो के स्फूर्तिदायक व्याख्यानो द्वारा इस कार्य मे बडी गति मिली।

भूतपूर्व विद्यार्थी—सम्मेलन

उसी अवसर पर भूतपूर्व विद्यार्थियो का एक सम्मेलन श्री अमोलकचदजी सुरपुरिया M. A. L. L. B. की अध्यक्षता में हुआ। इस सम्मेलन के आयोजन का मुख्य हेतु यही था कि भूतपूर्व विद्यार्थी अपना कर्तव्य समझकर संस्था की सर्वांगीण उन्नति के लिए सामुदायिक रूप से प्रयत्न करे। इस समारंभ मे भूत-पूर्व विद्यार्थियो की एक समिति स्थापित हुई और सस्था के लिए सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न भी प्रारभ हुआ। पर वह प्रयत्न वहा तक ही सीमित रहा।

ऊपर मै विद्यालय के विकास की सन् १९४९ तक की घटनाओ का उल्लेख कर चुका हूँ। तब तक सरकार की ओर से संस्था के संचालक हाईस्कूल तक की स्वीकृति प्राप्त कर चुके थे और अपने इस ध्येय को कार्यरूप में परिणत करने के लिए विद्यालय मे दसवी कक्षा तक का अध्यापन प्रारभ कर दिया था। फिर आगे बढते बढते सन् १९५१ तक ११ वी कक्षा तक अर्थात् मैट्रिक तक के वर्ग लिए जाने लगे और सस्था के छात्र—गण बबई विश्वविद्यालय की मैट्रिक की परीक्षा में अच्छी श्रेणी मे उत्तीर्ण होकर आगे विश्वविद्यालय के कॉलेज या महा विद्यालय में अनेक विषयो का अध्ययन कर पारगतता प्राप्त करने लगे।

अभी कल दि २२।११।६० की ही बात है, मै श्री तिलोक जैन विद्यालय मे वहा के प्रधानाध्यापक के पास सस्था का परिचय प्राप्त करने के लिए बैठा हुआ था। उन्होने प्रसगवश उसी समय डाक से प्राप्त एक विद्यार्थी का पत्र बताया, जिसमें उसने B S C. परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के साथ सारे विश्वविद्यालय मे द्वितीय स्थान प्राप्त करने के लिए संस्था के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की थी। उस पत्र का साराश यह था—" मैने अपनी प्रारभिक शिक्षा श्री तिलोक जैन विद्यालय में प्राप्त की है, अतएव इस सफलता का यश विद्यालय को ही है। मेट्रिक तक के वर्ग प्रारभ होने पर किस प्रकार विद्यार्थी उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त करते गये, उस की तालिका अंत मे दी गई है।

जिस समय सरकार ने विद्यालय को मेट्रिक तक का अभ्यास करने की स्वीकृति दी, उस समय उसके साथ एक प्रतिबंध यह भी रखा था कि हाईस्कूल के उपयुक्त एक भव्य मंदिर का निर्माण शीघ्रातिशीघ्र किया जाय। उसके लिए संस्था के सचालको ने पाथर्डी ग्राम से कुछ दूरी पर प्रशात वातावरण में चौबीस एकड भूमि खरीदी। विद्यालय के भवन-निर्माण के लिये समाज के उदार व्यक्तियो द्वारा सस्था को २७७०५ रुपये प्राप्त हुए। पहले पहल भावी विद्यालय भवन के प्लाट में एक कुआं खोदकर पानी की सुविधा की गई। किंतु यह प्लाट खेती

का सर्वे नंबर होने से भवन जैसे बिन खेती के काम में लाने के लिये सरकार की ओर से आज्ञा प्राप्त करने में कुछ कठिनाई हुई। अतएव भवन-निर्माण का कार्य कुछ समय के लिए स्थगित रखना पडा। अंत में बहुत प्रयत्न के पश्चात् सन् १९५२-१९५३ में भवन-निर्माण के लिए सरकार की ओर से आज्ञा प्राप्त हुई। सम्मति प्राप्त होते ही नीव और चबूतरे के आयटम रेट टेंडर मंगवाये गये तथा विद्यालय-भवन की नीव तथा चबूतरे का कार्य तत्काल पूर्ण कर दिया गया। इतने से ही कार्य में अभी तक भवन-निर्माण फंड के ३३९५० रु खर्च हो गये। ये सब रुपये विद्यालय भवन की नीव, चबूतरा, प्लाट तथा कूपखनन आदि कार्यों में खर्च हुए। इसके आगे का कार्य पैसे के अभाव के कारण तीन-चार वर्ष तक स्थगित रखना पडा। फिर सन् १९५४ से १९५६ के बीच विद्यालय-भवन की एक मंजिल पूरी हो गई। उसमे लगभग ८५००० पच्चासी हजार रुपये व्यय हुए। पहली मंजिल तैयार होने पर अभीतक विद्यालय के छात्र गाव मे छात्रालय के लिए खरीदे हुए जिस मकान में अभ्यास करते थे, अब विद्यालय के नव-निर्मित इस विशाल भवन में उनके वर्ग चलने लगे और श्री तिलोक जैन छात्रालय के छात्र संस्था के भूतपूर्व अध्यक्ष तथा श्री मगनमलजी गाधी एव स्थानीय श्रीसंघ की उदारता पूर्ण दान से खरीदे हुए छात्रालय में जैन आचार के अनुकूल शुद्ध नियमो का पालन करते हुए रहने लगे। इधर विद्यालय की पहली मजिल तैयार हो जाने पर भी दूसरी मजिल के लिए और साठ हजार रुपयो की आवश्यकता थी। रुपयो के अभाव के कारण यह कार्य भी कुछ समय के लिये स्थगित रखना पडा। फिर सन् १९५६ से १९५८ तक के विवरण के अनुसार दूसरी मंजिल का कार्य भी प्रारंभ कर दिया गया और दूसरी मजिल की चारों ओर की दीवारे बनाकर तैयार कर दी गईं। इस कार्य में भी लगभग १२००० बारह हजार रुपये खर्च हुए। उसके बाद भी ऊपर के स्लॅप् तथा प्लास्टर के लिए ४०००० चालीस हजार रुपयो की और नितात आवश्यकता थी। अत मे बहुत प्रयत्न के बाद सन् १९६० तक यह भवन पूर्ण रूप से तैयार हो गया। इसके निर्माण में कुल १३५००० एक लाख पैंतीस हजार रुपये खर्च हुए।

आज सारे अहमदनगर जिले में "श्री तिलोक जैन विद्यालय" के इस भव्य विद्यामदिर का स्वतत्र अस्तित्व है। अहमदनगर से एस् टी. बस से आते समय गाँव के बाहर कुछ दूरी पर इस रमणीय भवन का दर्शन करते ही बरबस दर्शक का ध्यान इस ओर आकर्षित हो जाता है। संस्था को देखे बिना ही कम से कम

शिक्षित व्यक्ति के हृदय में तो ये ही विचार–तरंगें उठती है कि अवश्य यहाँ छात्रो को सुसस्कृत वनानेवाली कोई योग्य संस्था होनी चाहिए। जिसका कि निर्माण चारित्र-सपन्न, विद्याप्रेमी, किसी मुमुक्षु संत की अथक प्रेरणा से हुआ है। बाद मे सस्था का सदर्शन करने पर अपनी इस भावना को साकार रूप में देखकर अत्यत सतोष होता है। अनेक लोगो के कथनानुसार अहमदनगर जिले में चलनेवाले कुल ७२ हाईस्कूलो में इस हाईस्कूल का द्वितीय नवर है। कुछ लोग तो इसे प्रथम नवर भी देते हैं।

श्री तिलोक जैन विद्यालय में प्रचलित मुख्य प्रवृत्तियाँ

बाल–पुस्तकालय—विद्यालय में एक पुस्तकालय है। जिस में वर्तमान में भिन्न-भिन्न विपयो की १२०० वारह सौ से अधिक पुस्तके है। जिनसे छात्र अपने व्यावहारिक एव मानसिक विकास मे पर्याप्त लाभ उठाते है।

बाल–वाचनालय–छात्रो की साहित्यिक एव सामाजिक ज्ञानवृद्धि के लिए विद्यालय में विभिन्न स्थानो से निम्नलिखित पत्र मंगाये जाते है। नवभारत, किर्लोस्कर, चित्रमयजगत, उद्यम, अमृत, अध्यापक, वालसखा, राष्ट्रभाषा आदि मासिक और मॉडर्न रिव्यु, लोकमान्य, लोकसत्ता, सकाळ, फ्री प्रेस, टाइम्स्, गावकरी, साधना, धर्मयुग, आदि वर्तमान पत्र आते है।

वाद–विवाद मंडल—इसमें छात्रो की वक्तृत्व-कला के विकास की ओर पूर्ण ध्यान दिया जाता है। प्रति मगलवार को एक सभा होती है। जिस में प्रत्येक वर्ग के चुने हुए विद्यार्थियो को अनिवार्य रूप से बोलना पडता है।

हस्त लिखित पत्रिका—छात्रो की लेखन-कला के विकास एवं भविष्य मे वे सपादन की कला में प्रवीणता प्राप्त कर सके, इस हेतु से एक विकास नामक त्रैमासिक पत्रिका विद्यालय की ओर से प्रकाशित की जाती है। इस में छात्र कविता, कहानी, निवध, नाटक आदि लिखते है। अपनी इस पत्रिका को सुदर वनाने के लिए छात्र अनेक प्रकार के चित्रो द्वारा भी इसे सजाते है।

बाल–वस्तु भंडार–छात्रो को पुस्तक, स्टेशनरी आदि सब वस्तुएँ एक स्थान पर सस्ती एव यथा समय प्राप्त हो सके, इसके लिए उनके नियत्रण में एक वस्तु-भडार है। इस समय इस भंडार में लगभग छ सौ रुपयो की वस्तुएँ संग्रहीत है।

भ्रमण—छात्रो की ज्ञानवृद्धि के साथ उन्हे प्रकृति-देवी के अद्भुत दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हो, इस हेतु से छात्र एव अध्यापक प्रति माह पाँच दस मील की दूरी पर भ्रमणार्थ जाते है। इस आयोजना द्वारा छात्रो को अत्यधिक लाभ पहुँचा है।

श्रमदान-शिविर.––प्रतिवर्ष विद्यालय की ओर से चार-चार दिन के श्रमदान शिविर मनाये जाते हैं। इन शिविरो में सब अध्यापक तथा छात्र सम्मिलित होते है। शिविर की इस योजना द्वारा आस-पास के गाँवो को बहुत लाभ पहुँचा है। इसकी कल्पना पिछले तीन साल के शिविरो के विवरण से आ सकती है। प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष (१९५८) मे भी चार दिन का सातवां श्रमदान-शिविर विद्यालय के नूतन भवन मे मनाया गया। इसमें विद्यालय के सब छात्र तथा आध्यापको ने भाग लिया था। इन चार दिनो मे विद्यालय के नूतन भवन मे ही दो पक्के रास्ते बनाये एवं खेल के लिए एक सम चौरस मैदान तैयार करने की योजना आकी गई। पास ही के पहाडी मार्ग से पत्थर फोडकर लगभग १५० गाड़ी कंकड एवं पत्थर लाये गये। और दोनो योजनाएँ पूरी की गई।

श्रमदान शिविर के उद्‌घाटक अहमदनगर-निवासी सन्माननीय श्री कुंदनमलजी सा. फिरोदिया एव समारोपक श्री दे. म. दाभोळकर प्राध्यापक बबई कॉलेज मुबई थे। इन चार दिनो मे छात्र एव आध्यापको ने लगभग ५००–७०० रुपयो की लागत का श्रमदान किया। इसी प्रकार इसके आगे के दो वर्षों में भी प्रति वर्ष की भाँति चार-चार दिन के दो श्रमदान शिविर मनाये गये। पहला शिविर धामणगाव मे चलाया गया। जहाँ चार सौ पचास छात्र एवं बारह अध्यापको ने मिलकर दो मील के लगभग पाच सौ रुपयो की लागत की एक सडक तैयार की। इस वर्ष का शिविर बाबुलगाव में चलाया गया। इसमें भी पाँच सौ छात्र एव पंद्रह आध्यापको ने तालाव बाधने का काम किया। श्रमदान-शिविर यह विद्यालय के जीवन का एक मुख्य अंग-सा हो गया है।

उपरोक्त विभागो के अतिरिक्त विद्यालय में पिछले चार वर्षों से एक नवीन दृष्टिकोण दृष्टि में रखकर विद्यार्थियो के सर्वांगीण विकास हेतु कुछ विशेष उपक्रम प्रारभ किये गये। जिन का विवरण इस प्रकार है।

सास्कृतिक विभाग––इस विभाग के अतर्गत छात्रो की विभिन्न रुचि को ध्यान में लेकर रुचि-केद्र स्थापित किये गये है। वे है-वक्तृत्व, गायन, वाद्य, अभिनय, लेखन, श्रमदान एवं रुचि-केद्र आदि। इन केद्रो का सचालन आध्यापको द्वारा किया जाता है। शनिवार के अंतिम दो पीरियड जिस छात्र की जिस कार्य में रुचि होती है, वह छात्र उसी विभाग मे जाता है। पहले कुछ नियतकाल के लिये छात्र को अपनी इच्छानुसार किसी भी केद्र में प्रवेश किया जाता है, किंतु एक निश्चित

काल-मर्यादा के पश्चात् उसके लिये अपनी इच्छानुसार एक विभाग चुनना अनिवार्य होता है। सचालक उसका सूक्ष्मतापूर्वक निरीक्षण करता है और उस विषय पर अपने अनुभव का विवरण अकित करता रहता है। यह प्रयोग विद्यार्थियो की प्रगति के लिये अत्यत स्फूर्तिदायक एव अमोघ सिद्ध हुआ है।

शासन मंडल—विद्यालय में सन् १९५८ से प्रजातत्र प्रणाली के अनुसार प्रत्येक वर्ग की ओर से एक एक प्रतिनिधि चुनकर आठ छात्रो का एक मडल बनाया गया है। उनमें एक प्रधान-मंत्री और अवशिष्ट सात सहायक मत्री होते हैं। अनुशासन, प्रार्थना, खेल, स्वच्छता, उपस्थिति आदि कार्यभार एक एक मत्री के जिम्मे सौंपा जाता है। छात्र मंत्री ही छात्रो का मार्गदर्शन कर उन्हे कार्यक्षम बनाते है। इस प्रवृत्ति से बहुत कुछ अशो में विद्यार्थियो में स्वय प्रेरणा से अपनी सर्वांगीण उन्नति करने की जिज्ञासा दृष्टिगोचर हुई है।

अनुशासन योजना.—छात्र स्वय प्रेरणा से अनुशासन प्रिय होकर विद्यालय के नियमो का पालन करते रहे और प्रतिदिन घर से अपना अभ्यास व्यवस्थित रूप से करके लाते रहे, इस हेतु से प्रत्येक वर्ग में एक-एक नोट बही रखी जाती है। जिसमें प्रत्येक अध्यापक सूक्ष्म निरीक्षण कर अपना अभिप्राय व्यक्त करता है। इसके साथ प्रत्येक वर्ग में एक दर्शिका पेटी रखी जाती है। जिस में छात्र नवीन पुस्तको तथा मासिक, साप्ताहिक एव दैनिक पत्र-पत्रिकाओ के अध्ययन के परिणाम स्वरूप विभिन्न विषयो की जानकारी अकित कर रखते हैं। इस प्रकार महीने भर में की गई प्रगति के लिए प्रत्येक वर्ग को एक ध्वज देने की प्रथा प्रारंभ की गई है। सर्वप्रथम आनेवाले वर्ग को प्रतीक स्वरूप वह ध्वज दिया जाता है। जो कि प्रतिमाह प्रथम आनेवाले वर्गों में फिरता रहता है। इससे प्रत्येक वर्ग के विद्यार्थियो में अपना कार्य व्यवस्थित रूप से करने की रुचि उत्पन्न हुई है।

प्रश्न पेटी:—विद्यालय में एक प्रश्नपेटी रखी गई है। इसमें छात्र अपने उलझे हुए प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करने के लिये विवादास्पद प्रश्न तैयार करके डालते है। इन प्रश्नो का उत्तर उच्च कक्षा के छात्रो एवं अध्यापको द्वारा दिये जाते है। किसी जटिल प्रश्न का उत्तर देने की क्षमता स्थानीय छात्र एव अध्यापको मे नही होने पर उसका निराकरण करने के लिए बाहर के उच्च कोटि के विद्वानो द्वारा सहयोग लिया जाता है।

सूक्ति संग्रह योजना—विद्यालय के पुस्तकालय से जो छात्र लाभ उठाते है, उनमें जो अच्छी सूक्तियाँ पढते है, उन्हे अंकित कर एक जगह सकलन करते है। इससे छात्रालय में विद्यार्थियो द्वारा सगृहीत सूक्तियों का एक अच्छा संकलन तैयार होगया है।

काल-मर्यादा के पश्चात् उसके लिये अपनी इच्छानुसार एक विभाग चुनना अनिवार्य होता है। सचालक उसका सूक्ष्मतापूर्वक निरीक्षण करता है और उस विषय पर अपने अनुभव का विवरण अकित करता रहता है। यह प्रयोग विद्यार्थियो की प्रगति के लिये अत्यत स्फूर्तिदायक एव अमोघ सिद्ध हुआ है।

शासन मंडल.—विद्यालय में सन् १९५८ से प्रजातत्र प्रणाली के अनुसार प्रत्येक वर्ग की ओर से एक एक प्रतिनिधि चुनकर आठ छात्रो का एक मडल बनाया गया है। उनमें एक प्रधान-मंत्री और अवशिष्ट सात सहायक मत्री होते है। अनुशासन, प्रार्थना, खेल, स्वच्छता, उपस्थिति आदि कार्यभार एक एक मत्री के जिम्मे सौंपा जाता है। छात्र मंत्री ही छात्रो का मार्गदर्शन कर उन्हे कार्यक्षम बनाते है। इस प्रवृत्ति से बहुत कुछ अशो में विद्यार्थियो में स्वय प्रेरणा से अपनी सर्वांगीण उन्नति करने की जिज्ञासा दृष्टिगोचर हुई है।

अनुशासन योजना—छात्र स्वय प्रेरणा से अनुशासन प्रिय होकर विद्यालय के नियमो का पालन करते रहे और प्रतिदिन घर से अपना अभ्यास व्यवस्थित रूप से करके लाते रहे, इस हेतु से प्रत्येक वर्ग में एक-एक नोट वही रखी जाती है। जिसमें प्रत्येक अध्यापक सूक्ष्म निरीक्षण कर अपना अभिप्राय व्यक्त करता है। इसके साथ प्रत्येक वर्ग में एक दर्शिका पेटी रखी जाती है। जिस में छात्र नवीन पुस्तको तथा मासिक, साप्ताहिक एव दैनिक पत्र-पत्रिकाओ के अध्ययन के परिणाम स्वरूप विभिन्न विषयो की जानकारी अकित कर रखते हैं। इस प्रकार महीने भर में की गई प्रगति के लिए प्रत्येक वर्ग को एक ध्वज देने की प्रथा प्रारंभ की गई है। सर्वप्रथम आनेवाले वर्ग को प्रतीक स्वरूप वह ध्वज दिया जाता है। जो कि प्रतिमाह प्रथम आनेवाले वर्गों में फिरता रहता है। इससे प्रत्येक वर्ग के विद्यार्थियो में अपना कार्य व्यवस्थित रूप से करने की रुचि उत्पन्न हुई है।

प्रश्न पेटी:—विद्यालय में एक प्रश्नपेटी रखी गई है। इसमें छात्र अपने उलझे हुए प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करने के लिये विवादास्पद प्रश्न तैयार करके डालते है। इन प्रश्नो का उत्तर उच्च कक्षा के छात्रो एवं अध्यापको द्वारा दिये जाते है। किसी जटिल प्रश्न का उत्तर देने की क्षमता स्थानीय छात्र एव अध्यापको मे नहीं होने पर उसका निराकरण करने के लिए बाहर के उच्च कोटि के विद्वानो द्वारा सहयोग लिया जाता है।

सूक्ति संग्रह योजना—विद्यालय के पुस्तकालय से जो छात्र लाभ उठाते है, उनमे जो अच्छी सूक्तियाँ पढते है, उन्हे अंकित कर एक जगह सकलन करते है। इससे छात्रालय में विद्यार्थियो द्वारा सगृहीत सूक्तियो का एक अच्छा संकलन तैयार होगया है।

विद्यालय का पाठ्यक्रम

धार्मिक–श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की "प्रवेश, प्रथमा, विशारद, एव प्रभाकर" तक की परीक्षाओ की पढाई होती है।

हिंदी––राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की 'प्रारंभिक' परीक्षा से लेकर 'कोविद' तक का अभ्यास कराया जाता है।

अंग्रेजी:––पूना विश्व विद्यालय की S S C. Examination अर्थात् मैट्रिक ग्यारहवी कक्षा तक की पढाई होती है।

ड्राइंग:––बबई बोर्ड की 'एलिमेन्टरी एवं इन्टर मिजिएट' तक का शिक्षण दिया जता है।

शारीरिक शिक्षण:––सरकारी कोर्स के अनुसार डी पी एड् सी पी. एड् और ट्रेन्ड शिक्षको द्वारा ड्रील, आसन, लाठी, लेझीम, हायजप, देशी-विदेशी खेल, पेरिमिटर्स आदि की शिक्षा दी जाती है। ए सी सी. की (मिलिटरी) शिक्षा भी दी जाती है।

विद्यालय के अध्यापक एवं कर्मचारी

(१) श्री पी पी. मेहेन्दले एम् ए (हिंदी, अग्रेजी) बी टी एम् एड् राष्ट्रभाषा रत्न प्रधानाध्यापक

(२) श्रीमती एन् पी. मेहेदले बी. ए (आनर्स) राष्ट्रभाषा कोविद, टी. सी.

(३) श्री डी एस् देशमुख, मेट्रिक, एस् टी सी. रा ,, शार्ट टर्मर

(४) श्री डी के जैन, मेट्रिक, साहित्यरत्न, सिनियर, एच् एस्. एस्. एस्. टी सी

(५) श्री व्ही बी भोसे, इन्टर आर्टस, एस् टी सी सी पी. एड् रा. भा को सा वी

(६) श्री आर् एम् अग्रहाकर- मेट्रिक, जी डी. आर्ट

(७) श्री वी बी चत्तुर, बी ए. बी टी,

(८) श्री एस् एन् देशमुख इन्टर आर्टस

(९) श्री जी व्ही कुलट, मेट्रिक एस् टी सी.

(१०) श्री पी. आर. श्रोत्रिय, मेट्रिक, एस टी सी. काव्यतीर्थ.

(११) श्री वी. डी. गायकवाड, इन्टर सायन्स

(१२) श्री आर् आर् नागरगोजे, ,, ,,

(१३) श्री आर. ए फुदे. इंटर सायन्स

(१४) श्री ही. एम् कोठावले, वी ए.

(१५) श्री आर. एस. देशमुख, क्लर्क
(१६) श्री बी. एस लवाडे प्यून
(१७) श्री आर बी. शेटे माली

प्रस्तुत श्री तिलोक जैन विद्यालय का अभिन्न अग श्री तिलोक जैन छात्रालय है। इन दोनो का अन्यीन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनो में से किसी को पृथक् नही किया जा सकता। श्री तिलोक जैन विद्यालय का इतिवृत्त लिखते समय मैं प्रसगानुसार छात्रालय की विविध प्रवृत्तियो पर प्रकाश डालता रहा हूँ। उससे पाठक छात्रालय के संवध में मपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते है। फिर भी जो कुछ विवरण लिखना रह गया है, उसे संक्षेप में देने का प्रयास करता हूँ।

श्री तिलोक जैन छात्रालय

पहले छात्रालय का विवरण लिखते समय छात्रालय के उद्देश तथा प्रवेश पर प्रकाश डाला जा चुका है। इस समय छात्रालय मे निम्नलिखित कर्मचारी हैं।

नाम	पद	
श्री आर् एन् देशमुख	व्यवस्थापक	
,, व्ही. पी भोसे शिक्षक भूतपूर्व विद्यार्थी.	गृहपति	अवैतनिक
,, प देवेद्रकुमार जैन	धार्मिक शिक्षक	
,, शकर विश्वनाथ बोरडे	पानीवाला	
श्रीमती पतासाबाई चंदनमलजी बाफना	रसोइन	
,, प्यारीबाई मोहनलाल सोळकी	,,	
,, वसताबाई विट्ठलदासजी बाफना	,,	
,, निमाबाई बाबूराव दाणी	फरासीन	

भोजन व्यवस्था

भोजन की देख-रेख के लिए गृहपति के अतिरिक्त और एक व्यक्ति नियुक्त है, जो भोजनालय सबंधी सब बातो की देखरेख करते है। प्रातःकाल प्रत्येक छात्र को पाव भर दूध दिया जाता है। दोपहर को चावल, दाल, चपाती, चटनी एवं शाक दी जाती है। संध्या को रोटी, शाक एव चटनी दी जाती है। महीनें मे एक बार मिष्टान्न भोजन दिया जाता है।

धार्मिक–क्रिया

धर्माध्यापक एवं गृहपति की देखरेख में छात्र सामायिक–प्रतिक्रमणादि धार्मिक क्रियाएँ करते है। उपवासादि तपश्चर्याएँ भी छात्र यथा समय करते है। प्रतिवर्ष छात्रो द्वारा पर्यूषण-पर्व में शाति सप्ताह मनाया जाता है। इस पर्व के समय प्रौढ छात्र विविध स्थानो में जाकर छात्रालय एव विद्यालय के लिए सहा-

यता प्राप्त करने का अत्यधिक प्रयत्न करते हैं। प्रतिदिन प्रातकालीन सार्वजनिक प्रार्थना स्थानक मे होती हैं। इस सार्वजनिक प्रार्थना मे छात्राल, के विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं।

छात्रालय मे बालक बलवान्, धार्मिक, सदाचारी, स्वदेशाभिमानी, विद्वान्, कलादक्ष, स्वावलबी एव योग्य नागरिक बने, इस बात पर पूर्ण ध्यान दिया जाता है।

छात्रालय मे छात्रो को पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ सामान्य एव बाह्य-ज्ञान की भी पूर्ण जानकारी प्राप्त हो, इसके लिये वाचनालय एव पुस्तकालय का प्रबध किया गया है। छात्रगण साधारण रोगो की जानकारी स्वय प्राप्त कर उसका उपचार कर सके, इसके लिए छोटे देशी—विदेशी औषधयुक्त औषधालय की व्यवस्था की गई है।

इस छात्रालय की विशेष उल्लेखनीय एक बात यह है कि छात्रालय के छोटे बडे सब छात्रो मे प्रेम, एकता एव समानता बनी रहे, इस दृष्टि से छात्रो के सप्ताह के सात दिनो की दृष्टि से सात गुट बनाये गये हैं। प्रत्येक गुट का एक नायक होता है। इन गुटो के नाम भी ऐतिहासिक दृष्टि से रखे गये हैं। जैसे महावीर, बुद्ध, चद्रगुप्त, अशोक, प्रताप, शिवाजी एव सुभाष। प्रतिदिन छात्रालय की समस्त व्यवस्था क्रमानुसार एक-एक समूह के अधीन रहती है। प्रत्येक गुट की व्यवस्था पर अंक दिये जाते हैं। साल में जिस गुट का कार्य सब से अधिक सतोष जनक होता है, उसे पुरस्कार देकर विशेष प्रोत्साहित किया जाता है।

छात्रालय में व्यवहारिक शिक्षण के साथ-साथ धार्मिक शिक्षण की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। छात्रालय के सब छात्रो के लिए धार्मिक परीक्षा बोर्ड (पाथर्डी) की परीक्षाओ मे उत्तीर्ण होना अनिवार्य है।

छात्रालय की व्यवस्था बराबर बनी रहे, इसके लिये फुटकर सहायता के साथ नियमित रूप से सहायता प्राप्त करने के लिए एक वात्सल्य-मिति योजना चालू है। वह योजना इस प्रकार है।

स्थाई वात्सल्य मिति योजना

एक दिन का सादा भोजन	रु. २५	एक समय का सादा भोजन	रु १५
एक मिष्टान्न भोजन	रु. ५१	एक दिन का दूध	रु. १०

इस छात्रालय की प्रारभिक काल से सब से अधिक विशेषता यह है कि इस मे असमर्थ विद्यार्थियो को प्राथमिकता दी जाती है। प्रत्येक वर्ष सशुल्क तथा अर्द्ध शुल्क विद्यार्थियो की अपेक्षा नि शुल्क अर्थात् असमर्थ विद्यार्थियो की संख्या दूनी या अधिक रही है। सस्था इन विद्यार्थियो के लिये सब प्रकार का खर्च करती है।

उपर्युक्त विवरण से पाठक भली भांति समझ सकते है कि जिस "जैन पाठशाला" का प्रारंभ केवल नौ विद्यार्थियो से हुआ था, वह पाठशाला क्रमशः "श्री तिलोक जैन पाठशाला" और "श्री तिलोक जैन विद्यालय" के रूप में परिवर्तित होकर इतनी वडी हो गई है कि आज उस विद्यालय की आठवी कक्षा से लेकर ग्यारहवीं कक्षा में पाँच सौ के करीव छात्र-छात्राएँ अभ्यास करती है। प्रारंभ में जिस पाठशाला में केवल एक अध्यापक द्वारा विद्यालय का सब काम चलाया जाता था, आज उसमें १७ अध्यापक एवं कर्मचारी है। प्रारंभ में जिस "श्री जैन ज्ञानफंड" सस्था के पास केवल ४५०० चार हजार पाँच सौ रुपये थे, आज उस विद्यालय के ट्रस्ट मडल के पास विद्यालय एवं छात्रालय के लिए लाखो रुपये खर्च करने पर भी लगभग एक लाख ध्रुवफड है।

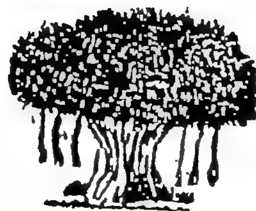
ऊपर मै इस वात का उल्लेख कर चुका हूँ कि श्री तिलोक जैन विद्यालय के आद्य मंत्री श्री मुथाजी के अवसान के पश्चात् श्री चदनमल जी गांधी की मत्री-पद पर नियुक्ति की गई। मुथाजी के अवसान के पूर्व ही चंदनमल जी सहायक मंत्री के रुप में कार्य कर रहे थे। संस्था का सूत्र-संचालन अपने हाथ में लेने के वाद इन्होने पूरे एक तप अर्थात् वारह वर्ष तक इस संस्था की जी-जान से सेवा की। इस वारह साल की अवधि में संस्था के विकास की दृष्टि से बहुत अधिक कार्य हुआ। श्री वावू सेठ वहुत समय से विद्यालय को हाईस्कूल के वृहद् रूप में देखना चाहते थे। जिस समय वे मृत्यु-शय्या पर पडे हुए थे, उस समय श्री चन्दनमल जी गाधी ने अपने प्रयत्न से हाईस्कूल का रूप दिलाकर उनकी अंतिम इच्छा की पूर्ति की। यह सुखद समाचार सुनकर वावू सेठ ने शातिपूर्वक अपने प्राण छोडे। भवन-निर्माण जैसा महत्वपूर्ण कार्य पिछले कई वर्षों से घपले में पडा हुआ था, उसे अपने कार्य-काल में इन्होने पूर्ण किया। श्री चन्दनमल जी के साथ उनके कनिष्ठ वन्धु श्री कुन्दनमल जी को भी विस्मृत नही किया जा सकता, जिन्होने किसी पद-पर नही रहते हुए भी अपने ज्येष्ठ वन्धु की गभीर बीमारी के समय खडे पाव रहकर उनके अभिलषित भवन-निर्माण के कार्य को पूर्ण कर संस्था की तन-मन से सेवा की है। इसी प्रकार श्री सुगनचन्द जी कुचेरिया भी इस यश के भागी है।

विद्यालय के भूतपूर्व मत्री की तरह ही श्री चन्दनमल जी गांधी ने संस्था की अवर्णनीय सेवा कर इसे बहुत आगे वढाया है। विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री महेन्दले का अनुशासन और श्री चन्दनमल जी गांधी के शासन को ही इस सवका यश प्राप्त है। श्री चन्दनमल जी गांधी राष्ट्रीय वृत्तिवाले उदार व्यक्ति

है। इन के इस व्यापक दृष्टि-कोण से विद्यालय के छात्र भी बहुत प्रभावित हुए हैं। फलस्वरूप संस्था में धार्मिक वृत्ति के साथ राष्ट्रीय वृत्तिका भी बहुत पोषण हुआ है। श्री चन्दनमल जी के मन्त्रित्व–काल मे श्री चुन्नीलाल जी गुगले तथा श्री सुवालाल जी छाजेड वकील ने सहायक मंत्री रूप से कार्य किया। प्रधानाध्यापक श्री महेन्दलेजी तथा महामत्री श्री चन्दनमल जी गाधी के नेतृत्व-काल में यह विद्यालय बहुमुखी प्रगति कर रहा था कि एकाएक अपनी अस्वस्थता के कारण श्री गाधीजी को विवश होकर सन् १९६० के अप्रेल मास में मत्रीपदसे मुक्त होना पडा। उनके बाद भूतपूर्व अध्यक्ष श्री मोतीलाल जी गुगले के सुपुत्र श्री नैनसुखजी गुगले वकील और स्थानीय डॉ चादमल जीगुगले विद्यालय का कार्य सभाल रहे हैं। ये भी अपने भूतपूर्व मंत्रियो की तरह बडी लगन से सस्था की सेवा कर रहे हैं। पाथर्डीनिवासी इन दोनो तरुण, उत्साही एवं शिक्षित मत्रियो से हमें बहुत आशा है। इनके कार्य–काल में भी संस्था की प्रगति अविकाधिक होती रहेगी।

इस सस्था के आद्य प्रेरक, परमोपकारी, शिक्षाप्रेमी, पूज्यपाद श्री रत्न–ऋषिजी महाराज थे। उनके स्वर्गवास के बाद उन्ही के पट्ट शिष्य, बालब्रह्म–चारी, विद्यारसिक, शातमूर्ति, पडितरत्न, उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज ने अपने उपदेशो द्वारा इस सस्था को महान् रूप प्रदान करने में स्फूर्ति प्रदान की है, अतएव यह विवरण संस्था के वर्तमान प्रेरक उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषि जी महाराज के चरणो में समर्पित करता हूँ।

महेन्द्रकुमार जैन



ॐ अर्हन् ।

श्री तिलोकरत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड

पाथर्डी, अहमनदगर

जहां तक मुझे ज्ञात है , जैन धर्म के तीनों सम्प्रदायों में दिगंबरी संप्रदाय के श्रावक वर्ग में चिरकाल से धार्मिक ग्रंथों का पठन-पाठन प्रचलित है। उस संप्रदाय में साधुओं की सख्या नगण्य होने से श्रावक वर्ग में शास्त्रज्ञ विद्वान् पंडितों की भी प्रचुरता है। इधर पिछली शताब्दी से परीक्षाओं की परिपाटी प्रारंभ होनेपर दिगंबर सम्प्रदाय में धार्मिक परीक्षाएँ भी प्रारंभ कर दी गई थीं। उसके अनुकरणस्वरूप बाद में श्वेतांबर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में भी श्रावक-वर्ग को शास्त्रीय ग्रंथों से परिचित कराने के लिये बंबई में जैन एज्युकेशन बोर्ड की स्थापना की गई। इस बोर्ड की विभिन्न परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में प्राय सब मुख्य ग्रंथ रखे गये थे। पर स्थानकवासी परंपरा में इस ओर सबके बाद ध्यान दिया गया। जहां तक मुझे ज्ञात है, इस बीसवी शताब्दी में तत्कालीन स्थानकवासी सम्प्रदायों में प्रसिद्ध आचार्य पूज्य श्री १००८ श्री जवाहरलालजी महाराज के हितेच्छु श्रावक मंडल ने रतलाम में धार्मिक परीक्षाओं का केंद्र स्थापित किया। इस बोर्ड के परीक्षा-मंत्री श्री मोतीलालजी श्रीश्रीमाल बी ए. थे। परीक्षाओं का आयोजन अच्छा था और उसमें प्राथमिक परीक्षा से लेकर जैन सिद्धांत शास्त्री तक की परीक्षाएँ ली जाती थी। इस बोर्ड की परीक्षाओं में सम्मिलित होकर अनेक वर्षोंतक समाज के विद्यार्थी धार्मिक ज्ञान प्राप्त करते रहे।

रतलाम परीक्षा बोर्ड की परीक्षाओं में उत्तीर्ण स्नातकों में आज अनेक स्नातक समाज की बहुत सी संस्थाओं में कुशल धर्माध्यापक के रूप में कार्य कर रहे हैं। उनमें से कुछ लोग तो अनेक जगहों पर सिद्धांतशालाएँ तक चलाते हैं।

इस प्रकार रतलाम धार्मिक परीक्षा बोर्ड की परीक्षाओं का कार्य तीव्रगति से चल रहा था। इसी बीच बोदवड (खानदेश) में पंडितरत्न मुनि श्री आनंद ऋषिजी महाराज के पास श्री प्रेम ऋषिजी म. ने संवत् १९९० माघ शुक्ल दशमी के रोज भागवती दीक्षा अंगीकार की नवदीक्षित श्री प्रेम ऋषिजी म० का जन्म कच्छ देश में हुआ था। वे मूलत मंदिरमार्गी आम्नाय के थे। उनका सारा परिवार भी श्वे० मूर्तिपूजक था। पर उनकी स्वर्गीय श्री रत्नऋषिजी म० के प्रति बहुत भक्ति एवं श्रद्धा थी। श्री रत्नऋषिजी म० का स्वर्गवास होने के पश्चात् भी वे प्रतिवर्ष पं० रत्न मुनि श्री

आनद ऋषिजी म० सा. के दर्शनार्थ आते रहे। यहां तक कि चातुर्मासकाल में वे महाराज श्री की सेवा में एक डेढ महीना अपना स्वतंत्र मकान लेकर रहते थे। निरंतर सहवास से इनकी धर्म की ओर रुचि बढती गई और धीरे-धीरे श्रावक के व्रतों की मर्यादा अगीकार करते हुए बारहव्रतधारी श्रावक हो गये।

संवत् १९९० के मदसौर चातुर्मास में आपने पहले रोज बारहव्रत अंगीकार किये। दूसरे रोज उन्होंने पं. रत्न मुनिश्री आनन्द ऋषिजी म से पूछा-इस समय मेरी ५७ साल की अवस्था है। क्या मेरे जैसा व्यक्ति दीक्षा अगीकार करे तो आप उसे अनुमति दे सकते हैं? इस पर महाराजश्री ने फरमाया-और के लिये तो नही कह सकता, पर आप यदि दीक्षा लेना चाहते हैं, तो दी जा सकती है। क्यो कि हम आप को अनेक वर्षों से पहचानते हैं। उन्हें एकाएक दीक्षा लेने के संवध में पूछने पर कहा—"मुझे स्व. श्रीरत्नऋषिजी म ने स्वप्न में दर्शन देकर आदेश दिया है कि तुम श्रीआनदऋषिजी के पास दीक्षा अंगीकार करो, वहां आवश्यकता है,,। तत्पश्चात् पं. रत्न महाराज श्री की अनुमति मिलने पर आपने वडी कठिनाई से अपने स्वजनों की आज्ञा प्राप्तकर दीक्षा अंगीकार की।

इस दीक्षा-महोत्सव के शुभ प्रसंगपर दूर दूर से अनेक व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। उस समय ब्यावर जैन गुरुकुल के अधिष्ठाता श्री धीरजभाई तुरखिया भी आए हुए थे। उन्होंने अपना प्रसगोचित भाषण करते हुए यह सुझाव रखा कि कितनेक वर्षों से रतलाम मे स्थानकवासी समाज का धार्मिक परीक्षा-बोर्ड चल रहा है, पर उस बोर्ड से दक्षिणनिवासी जैन जनता पर्याप्त-लाभ नही उठा रही है, अतएव दक्षिण के श्रावक समुदाय में जैनधर्म के शास्त्रीय ग्रथों के ज्ञान की वृद्धि करने के लिए एक धार्मिक परीक्षा बोर्ड चलाया जाय तो समाज का बहुत हित हो सकता है। पं रत्नश्री आनंद ऋषिजी म के हृदय में यह बात घर कर गई। आप पाथर्डी में ही एक धार्मिक परीक्षा केंद्र पहले से ही स्थापित करना चाहते थे, पर उसके लिए अभी काल परिपक्व नही हुआ था। अत में उसका समय विक्रम संवत् १९९३ में इस प्रकार प्राप्त हुआ।

घोडनदी जि (पूना) निवासी धर्मप्रेमी दानवीर श्रीमान् नानचंदजी दूगड तथा आपकी धर्मपत्नी धर्मपरायणा श्रीमती सुन्दरबाई ने पंडितरत्न मुनि श्री आनंदऋषिजी म. के अध्ययन में बहुत सहयोग दिया था। ये दोनों वृद्ध हो चुके थे। उनके हृदय में बहुत दिनों से यह लालसा थी कि पंडितरत्न मुनिश्री जी का चातुर्मास हमारी जिंदगी में यहाँ पर हो जाय तो हमारे मनोरथ सफल हो जायँ। अत सेठजी ने अवसर पाकर विक्रम संवत्१९९२ में होली के दूसरे दिन प्रात.काल ही श्रीसंघ घोडनदी के साथ पूना जाकर पंडितरत्नजी का चातुर्मास अपने स्थान के लिए निश्चित करा लिया।

उस चातुर्मास में एक बार प्रसगवश पं. रत्न जी ने सुश्रावक श्रीमान् सेठजी नानचन्दजी दूगड को उपदेश दिया। आपने मेरे शिक्षण-काल में उदारतापूर्ण सहयोग दिया है, उसे मैं भूल नही सकता। इस समय आप दोनों की भी वृद्धावस्था है, पूर्व पुण्योदय से घर में भी पर्याप्त संपत्ति है, पर उसे भोगनेवाली कोई सन्तति नही, इसलिये इस संपत्ति का अपने जीवन-काल में कुछ ऐसा सदुपयोग कीजिये, जिस से समाज के अनेक बालकों को धार्मिक शिक्षा-दान का पुण्य उपार्जन कर सकें।

यह बात सेठजी को जच गई। उन्होंने तत्काल महाराजश्री से अपने द्रव्य का सदुपयोग करने की दिशा का संकेत करने के लिए कहा। इसके उत्तर में आपश्री ने बोदवड में संकल्पित विचार व्यक्त किये। परीक्षा के लिये खर्च का संकेत किया जाने पर महाराजश्री ने २००, दो सौ रुपये वार्षिक बताये। दक्षिणप्रांतीय विद्यार्थियों के हित की दृष्टि से दो सौ रुपये वार्षिक देना, आप के लिये सहज था। तत्पश्चात् आपने अपनी धर्मपत्नी से मंत्रणा कर महाराजश्री के पास आकर कहा, फिल हाल में धार्मिक परीक्षा बोर्ड के लिये प्रतिवर्ष दो सौ रुपये देने का अभिवचन देता हूं। पर महाराजश्री द्वारा प्रतिवर्ष दो सौ रुपये व्याजरूप में नियमित मिलते रहें, ऐसा सुझाव प्रकट करने पर आपने उसी समय कहा,— आप का सुझाव मुझे शिरोधार्य है और धार्मिक परीक्षा बोर्ड के लिये पांच हजार रुपये निकालता हूँ तथा इस द्रव्य की रक्षा के लिये जीवनपर्यन्त स्वयं अर्थात्—

(१)	श्री	नानचन्दजी भगवानदासजी दूगड	घोडनदी (पूना)
(२)	,,	रतनचन्दजी भिखमदासजी बाठिया	पनवेल (कुलाबा)
(३)	,,	हीरालालजी पूनमचन्दजी नवलखा	पिसोरा (पूना)
(४)	,,	ताराचन्दजी नन्दरामजी भणसाली	कुंडेगव्हाण (अ. नगर)
(५)	,,	उत्तमचन्दजी नेमिदासजी मुथा	पाथर्डी (अ. नगर)

इस प्रकार पांच ट्रस्टी नियुक्त करता हूँ। ये ट्रस्टी लोग मेरे बाद भी मूल रकम की रक्षा करते हुए नियत समय पर व्याज की रकम धार्मिक परीक्षा बोर्ड के व्यवस्थापक के पास भेजते रहेंगे। इस तरह सेठजी ने मिति आश्विन शुक्ल पूर्णिमा स १९९३ वीर स. २४६३ ता. ३०-१०-३६ को अपने ट्रस्टी-मण्डल की मीटिंग घोडनदी में कर के ऊपर अंकित व्यवस्था का लेख अपने तथा ट्रस्टी-मण्डल के हस्ताक्षरसहित धार्मिक परीक्षा बोर्ड के व्यवस्थापक को सुपूर्द कर दिया।

दान देनेवाले दाता की यह इच्छा रहा करती है कि अपने दान का सदुपयोग अपने स्थान के विकास के लिए ही हो, वे अपने दान से अपने गांव में ही कोई नवीन संस्था स्थापित करना चाहते है, ऐसा अधिकांश में देखा जाता है, परन्तु श्रीमान् सेठ नानचन्दजी ने स्थान-विशेष का मोह रखे विना किसी भी स्थान पर धार्मिक परीक्षा बोर्ड स्थापित करने के लिए यह रकम दी। आप की यह भावना विश्ववन्धुत्व की सूचक थी।

उपरोक्त व्यवस्था-लेख प्राप्त होने के पश्चात् प. रत्न मुनि श्री आनद ऋषिजी म. की प्रेरणासे दि २५ दिसंबर सन १६३६ ई को पाथर्डी में श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना कीगई। क्यों कि पहलेसेही यहा स्वर्गीय परमोपकारी पूज्यपाद श्री रत्न ऋषिजी म. की प्रेरणा से स्थापित श्री तिलोक जैन विद्यालय अच्छी तरह चल रहा था। अब इस परीक्षा बोर्ड के सदुपदेशक श्री आनद ऋषिजी म थे, अतएव इस के साथ आपश्री ने अपने गुरु पितामह श्री तिलोक ऋषिजी म. तथा अपने गुरुदेव श्री रत्नऋषिजी म का नाम जोडकर दोनों का नाम अमर बना दिया।

इस धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना के पूर्वही सस्था के सस्थापक श्रीमान् सेठजी नानचदजी तथा उनके ट्रस्टमंडल के समक्ष बोर्ड के कुछ नियमोपनियम बनकर प्रकाशित हो चुके थे। उन नियमोपनियमों के अनुसार बोर्ड का कार्य प्रारंभ किया गया। पर वे जल्दी में किये जाने के कारण कुछ अधूरे थे। अतएव बादमें दो तीन और विद्वत्-परिषद् के पश्चात् उन्हें अतिम रूप दिया गया। इन नियमो को यहॉ देने से कही पुनरुक्ति न हो, इसलिए परीक्षा-सबधी वह विवरण उसी स्थानपर दे रहे है कि जहाँ उन्हें अतिम रूप दिया गया था। पाठक उस स्थान पर ही यह प्रकरण पढें।

इस श्री ति र स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड की स्थापना होनेपर प. रत्न मुनिश्री आनन्दऋषिजी म की सूचना के अनुसार खैराँटी (जि गोरखपूर) निवासी विद्यावारिधि पं राजधारी त्रिपाठी जी ने अवैतनिक रूप से धार्मिक परीक्षा बोर्ड का कार्य करना आरम्भ किया।

श्री तिलोक जैन विद्यालय की स्थापना होनेपर जिस प्रकार उसे विकास की उच्च अवस्था तक पहुचाने वाले त्यागी, सेवाभावी वराडे मास्टर प्राप्त हुए, उसी प्रकार स्व विद्यावारिधि पं श्री राजधारी त्रिपाठी जी धार्मिक परीक्षा बोर्ड के विकास में सहायक सिद्ध हुए। उन्होंने इस सस्था के प्रारंभिक काल से जीवन-पर्यन्त जो सेवा की, उसके लिए यह बोर्ड सदैव कृतज्ञ रहेगा। वे उस समय धार्मिक परीक्षा बोर्ड के रजिस्ट्रार के साथ साथ श्री रत्न जैन पुस्तकालय, श्री अमोल जैन सिद्धातशाला आदि अनेकविध कार्य सभालते थे।

उस समय महासतीजी श्री सुमतिकुवरजी म का अध्ययन चल रहा था, उन्हें तीन घण्टे पढाने के पारिश्रमिक स्वरूप तीस रु प्राप्त होते थे और अवशिष्ट तीन घण्टे श्री तिलोक जैन विद्यालय के छात्रों को धार्मिक अभ्यास कराने के पारिश्रमिक स्वरूप तीस रुपये प्राप्त करते रहे। उन्होंने इस सस्था के निर्माण में दिन-रात कुछ नही देखा। केवल थोडे से वेतन में इस प्रकार सस्था की सेवा करनेवाले विरले व्यक्ति ही होते है।

परीक्षा बोर्ड की स्थापना होने के पश्चात् पं.श्री राजधारी त्रिपाठीजी तत्काल उसे मूर्त रूप देने के लिये जुट गये। इस संबंध में आपने सर्व प्रथम दो चार इष्ट मित्रों से सम्मतियाँ मंगवाईं। उनकी राय यह थी कि आगामी वर्ष से परीक्षा प्रारंभ की जाय परंतु कार्य-कर्ताओं का यह निर्णय रहा कि "शुभस्य शीघ्रम्,, इस न्याय के अनुसार इस कार्य को अग्रिम वर्ष के लिये नहीं रखकर तत्काल प्रारंभ कर दिया जाय। अंत में २८ जनवरी सन् १९३७ के रोज भुसावल (खानदेश) में तपस्वीराज मुनि श्री देवजी ऋषिजी म० को आचार्य पद एवं पंडितरत्न मुनि श्री आनंदऋषिजी म० को युवाचार्य पद देने के महोत्सव प्रसंग पर वहां विराजित आत्मार्थी मुनि श्री मोहनऋषिजी म० व मुनि श्री विनय ऋषिजी म. श्री कल्याण ऋषिजी म० आदि मुनिराजों एवं शास्त्रज्ञ श्रावक श्री सागरमलजी ओसवाल द्वारा धार्मिक परीक्षा बोर्ड का पाठ्य क्रम तैयार किया गया। उस समय की नियमित कार्यावली के अनुसार प्रथम वर्ष की परीक्षा तारीख २४-२६ अप्रैल सन् १९३७ में ली गई।

यद्यपि बोर्ड के स्थापन-काल तथा परीक्षा-तिथि का बहुत ही निकट समय था फिर भी संत-सतियों के शुभ आशीर्वाद और बोर्ड के सद्भाग्य से दक्षिण मेवाड़, मारवाड़, आदि स्थानों से मिलकर पांच संस्थाएं इस बोर्ड में सम्मिलित हुईं। एक सौ उन्नीस छात्र परीक्षा में सम्मिलित हुए। जिन में ६१ उत्तीर्ण हुए। उन्हें ७४ रुपये पारितोषिक स्वरूप दिये गये।

परीक्षा का कार्य बहुत जल्दी प्रारंभ किया जाने के कारण बाद में अनेक अच्छे, अच्छे विद्वानों की सूचनाएं आने लगीं कि आपका अभ्यासक्रम और नियमोपनियम शीघ्रता के कारण अधूरे रह गये हैं। पुनः उनका संशोधन होना अत्यावश्यक है। उसके लिए कांदावाडी (बम्बई) में चातुर्मासार्थ विराजित युवाचार्य श्री आनंदऋषिजी म० की सेवा में प्रार्थना की गई। परन्तु बोर्ड की आर्थिक परिस्थिति अनुकूल न रहने के कारण उस समय मौन रह जाना पड़ा। फिर भी यह कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण था, अतएव बाहर के विद्वान लोग स्वयं युवाचार्य श्री से पत्र व्यवहार करने लगे। फलतः ३० जून सन् १९३८ को घाटकोपर उपाश्रय में विद्वत्-परिषद् बुलाई गई। इस वर्ष चातुर्मासस्थित पं० रत्न युवाचार्य श्री आनंदऋषिजी म० के तत्वावधान में इस परिषद् में मारवाड़,मेवाड़, गुजरात, मालवा इत्यादि दूर दूर के स्थानों से अनेक विद्वान लोग पधारे थे। इस सभा में बोर्ड की विद्वत्परिषद् नियुक्त करके नियमोपनियम के साथ अभ्यासक्रम निश्चित किया गया।

इस विद्वत्परिषद् ने जो नियमोपनियम बनाकर पाठ्यक्रम निश्चित किया, उसका बाद में दि० ८-१०-४७ के रोज श्रीरामपुर (अहमदनगर) में होनेवाली विद्वत्परिषद् में संशोधन एवं परिवर्द्धन किया गया। ४७ में होनेवाली उस परिषद् में अधिकतर इस समय के नियमोपनियमों आदि की पुनरावृत्ति हुई है, अतएव पाठक उस स्थान पर ही यह प्रकरण देखें।

इस प्रकार विद्वत्परिषद् का कार्य सपन्न हुआ। द्वितीय वर्ष में नौ संस्थाओं से २६१ छात्र परीक्षा में सम्मिलित हुए। उनमें १६८ छात्र उत्तीर्ण हुए। उन्हें ११० रु. पारितोषिक स्वरूप दिये गये। अभी तक स्व पं श्री राजधारी त्रिपाठीजी बोर्ड के मंत्री पद पर अवैतनिक रूपसे कार्य कर रहे थे। पर उनके वेतन की पूर्ति अन्य संस्थाओं से कर दी जाती थी। इधर बोर्ड की भी उनके ऊपर अधिक जिम्मेदारी के कारण रजिस्ट्रार के पद पर उन्हें नियुक्त कर के साथ ही उनके सुपुत्र पं० श्री चंद्रभूषण त्रिपाठीजी की मन्त्री-रूप से भी नियुक्ति की गई। उनका वार्षिक वेतन ३६० रुपया नियत किया गया, जो उस समय की बोर्ड परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल था।

इसके पश्चात् सन् १६३८-३६ में क्रमश पनवेल एव अहमहनगर में कार्यकारिणी समिति की बैठकें हुई। इन दोनों बैठकों में ग्यारह एव तेरह महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। पहले दो वर्षों की अपेक्षा इन दो वर्षों में और अधिक परीक्षार्थियों की वृद्धि हुई। तृतीय वर्ष में विभिन्न प्रांतों के १७ स्थानों से ३४४ परीक्षार्थी परीक्षाओं में आवेदित हुए। २५६ उत्तीर्ण हुए जिन्हें १४६॥ पारितोषिक स्वरूप दिये गये। चतुर्थ वर्ष में वीस स्थानों से ३८५ परीक्षार्थी आवेदित हुए, जिनमें से २३८ उत्तीर्ण हुए और उन्हें १६० रुपये और तीन रौप्य पदक पारितोषिक स्वरूप प्रदान किये गये।

पदक-योजना

ऊपर चतुर्थ वर्ष का परीक्षा-परिणाम प्रकाशित होने पर अधिक अक प्राप्त करने वाले छात्रो को पारितोषिक के साथ रौप्य पदक प्रदान करने का जो संकेत किया गया उस पदक-योजना के पीछे एक छोटी सी घटना अत्यधिक प्रेरक रही है। जब यह धार्मिक परीक्षा बोर्ड प्रारंभ ही हुआ था, उस समय समाज-भूषण, धर्म एवं विद्याप्रेमी उत्साही, सुश्रावक जयपुरनिवासी श्री दुर्लभजी भाई जौहरी का देहावसान हो जाने से इनके स्वजनोंने सद्गत आत्मा के स्मरणार्थ २५००० (पच्चीस हजार) रुपये सुकृत खाते में निकाले। उन पच्चीस हजार रूपयो में से केवल ५१ रुपये पाथर्डी स्थित श्री ति०र० स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के व्यवस्थापक को इस आशय का पत्र लिखते हुए भेजे—ये ५१ रुपये ऐसे ही कायम रखे जायँ। इनकी वार्षिक आय से जो प्राप्ति हो, उससे एक रौप्य पदक बनाकर परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण होनेवाले विद्यार्थी को "दुर्लभ-पदक के नामसे प्रतिवर्ष पारितोषिक स्वरूप दिया जाय।

स्वर्गीय श्री दुर्लभजी भाई के स्वजनों द्वारा प्रदत्त यह सहायता समाज के अन्य शिक्षा-प्रेमी व्यक्तियों के लिये अत्यंत प्रेरक सिद्ध हुई। उन्होंने इसे एक बृहद् योजना का रूप दे दिया। इस योजना से आकर्षित होकर सैंकडो व्यक्ति अपने स्वजनों के (जैसे माता, पिता, बधु, भगिनी, पत्नी आदि) स्मरणार्थ विद्यार्थिओं को उत्साहित करनेके लिए ५१-५१ रुपये पदक निर्माण खातेमे जमा कराने लगे। आज समाज के ऐसे शिक्षाप्रेमी व्यक्तियों द्वारा दिए हुए दानसे कुल छ सौ से अधिक

पदक प्रतिवर्ष दिये जाते हैं। इससे परीक्षार्थियों की संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। प्रतिवर्ष हजारों विद्यार्थी बोर्ड की परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने पर पदक पाकर गौरव का अनुभव करते हैं।

विद्यार्थियों की धार्मिक शिक्षण के प्रति विशेष अभिरुचि हो, इस दृष्टिकोण से परीक्षा में परमांक प्राप्त करनेवाले छात्रोंको पदक द्वारा सम्मानित करने के लिए ऊपर लिखित यह पदक-योजना बनाई गई है। शिक्षाप्रेमी धर्मबंधु इस योजना में ५१ रुपया एक वक्त प्रदान कर अपने अभीष्ट नाम का पदक स्थापित कर सकते हैं। दान की रकम स्थायी (ध्रुव) रखकर उसकी आय से प्रतिवर्ष एक छात्र को रौप्य पदक पुरस्कार में दिया जायगा और छात्र का क्रमांक, पदक-नाम और दाता-नाम, वार्षिक फल के साथ प्रकाशित करके दाता के पास एक प्रति भेज देने का नियम रखा गया है।

विशिष्ट-पदक

बोर्ड की परीक्षा में सर्वप्रथम आनेवाले प्रथम श्रेणी के छात्र और छात्राओं के लिए एक एक विशिष्ट पदक देने की योजना बनाई गई है। इस योजना के अनुसार जैनसिद्धांत प्रवेशिका परीक्षोत्तीर्ण छात्र के लिए सर्व प्रथम पदक देने हेतु ७५ रु की मूल रकम, प्रथमा परीक्षा के लिये १०१रु. विशारद के लिये १५१रु प्रभाकर के लिये २०१ रु और शास्त्री के लिए २५१ रु नियत किये गये है। जैनसिद्धांताचार्य परीक्षा में सर्व-प्रथम आनेवाले छात्र के लिये परीक्षा बोर्ड की ओर से एक स्वर्ण-पदक देने की योजना है। हर्ष है कि योजनानुसार सब विशिष्ट पदकों के लिए नियत राशि के कोष्ठक दाताओं ने उत्साह के साथ पूरे कर दिये है।

ऊपर जिन पदकों का नाम-निर्देश किया गया है,वे केवल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रों को ही दिये जाते थे। इससे द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होनेवाले पुरस्कार से वंचित रह जाते थे। इसलिए उन्हें प्रोत्साहित करने के लिये बोर्ड ने संस्था से संबंधित अन्य संस्थाओं से सहायता लेकर द्वितीय श्रेणी में परीक्षोत्तीर्ण छात्रों को पुस्तकें प्रदान करने का क्रम प्रारंभ किया। यह क्रम कुछ वर्षोंतक चलता रहा पर इससे ध्रौव्य-फन्ड मे कुछ कमी होने की सम्भावना बढी रहती थी।

द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रों को पुस्तकें पुरस्कार स्वरूप देने की यह योजना भी गुरुदेव की कृपा से अन्त में इस प्रकार सफल हुई। एक बार पंडित रत्न उपाध्याय मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म० आदि ठाणे ६ का चातुर्मास शुजालपुर में हुआ था। चातुर्मास का समय सानंद - संपन्न होनेके पश्चात् आपश्री के लघु गुरु-बंधु महात्माजी मुनि श्री उत्तम ऋषिजी म का संवत् २०१४ मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी के रोज स्वर्गवास हो गया। उस समय स्व मुनि श्री के स्मरणार्थ एक "उत्तम ज्ञान प्रोत्साहक पारितोषिक-विभाग" खोला गया। उस विभाग के लिए सर्वप्रथम जालनानिवासी दानवीर श्रीमान केशवजी भाई जवेरचन्द शाह ने उदार अंतःकरण से एक मुश्त

दस हजार रुपयों का स्पृहणीय दान दिया। उस विभाग में अनेक शिक्षा-प्रेमी बंधु-भगिनिओं ने आर्थिक सहायता पहुंचाई है। पदक विभाग के समान कम से कम ५१ रु देने वाला ही उस विभाग में सहायक हो सकता है। इस फन्ड की आय से प्रतिवर्ष द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रछात्राओं को पुरस्कार स्वरूप पुस्तकें दी जाती हैं।

पुस्तक--प्रकाशन--योजना

प्रत्येक परीक्षा बोर्ड के अभ्यास-क्रम में पाठ्यपुस्तकें अनिवार्य रूप से रखी जाती हैं। उनके विना यह बोर्ड अपने असली नाम को चरितार्थ नही कर सकता। फलतः इसके अभ्यास-क्रम में भी प्रारंभ से ही बहुत उच्च कोटिके ग्रन्थ रखे गये और पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों के लिए परीक्षार्थियों को यह सूचना दे दी गई कि ये पुस्तकें जहां कही उपलब्ध हों, परीक्षार्थी उस उस स्थानसे मंगा लें। पर जिस जिस स्थान से वे निर्धारित ग्रन्थ प्रकाशित हुए थे, उन स्थानों का पता लगाकर पुस्तकें मगाना परीक्षार्थिओं के लिए कठिन था। उनमें से अनेक पुस्तकें तो अप्राप्य थी। अत एव परीक्षा बोर्ड स्थापित होने के बाद थोडे ही समय में आवेदकों के पाठ्य पुस्तकों के सबध में पत्र पर पत्र आने लगे। पर उस समय बोर्ड पर इतर बहुत अधिक आर्थिक भार होने के कारण वह इस आवश्यक योजना को कार्यान्वित नही कर सकता था। अन्त में सवत् १९९९ में यह योजना भी इस प्रकार सफल हुई।

सवत् १९९९ के माघ कृष्ण ६ बुधवार को पाथर्डी (अहमदनगर) में चतुर्विध श्री संघ के समक्ष पंडितरत्न युवाचार्य श्री आनन्द ऋषिजी म. को ऋषिसम्प्रदाय की ओर से पूज्य (आचार्य) पदवी दी गई। उस प्रसग पर बोर्ड के रजिस्ट्रार स्व प श्री राजधारी त्रिपाठी शास्त्रीजी ने अपने वक्तव्य में यह संकेत किया कि जैसे राजा-महाराजाओं के राज्याभिषेक प्रसंग पर दानोपदान आदि शुभ कार्य किये जाते है। वैसे ही आज के इस महत्त्वपूर्ण धार्मिक अवसर पर दान-धर्म जैसा उत्कृष्ट मगलकार्य भी होना चाहिये। पडितजी के इस उद्गार से प्रेरित होकर पीपला (बीड) निवासी (वर्तमान में अहमदनगर) श्रीमान् शोभाचन्दजी बोरा ने "श्री चाँदमलजी बोरा,, इस नाम से श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के अन्दर पुस्तक प्रकाशन के लिये २१०० इक्कीससौ रुपयों का दान घोषित किया। आप के इस दान से सर्वप्रथम "नवतत्त्व" नामक पुस्तक बोर्ड से प्रकाशित हुई।

इस पुस्तक-प्रकाशन-योजना के अदर जिस महानुभाव या जिन महानुभावों के आर्थिक आश्रय से जिस पुस्तक का प्रकाशन होता है, उस पुस्तक में उस महानुभाव या उन महानुभावों के नाम और उनके द्वारा प्रदत्त दान का उल्लेख किया जाता है। पुस्तक प्रकाशित होने पर उनकी दो प्रतियां आश्रय-दाता के पास भेजी जाती हैं और

प्रथम संस्करण प्रकाशित होनेपर उसकी बिक्री से जो आय होती है उस आय से अग्रिम (द्वितीय, तृतीय आदि) संस्करण प्रकाशित होते रहते हैं। इस प्रकार पुस्तक प्रकाशन के लिए दाता द्वारा दिया हुआ मूल धन बराबर सुरक्षित बना रहता है।

यदि किसी एक ही व्यक्ति की उदारता से वह सारी पुस्तक प्रकाशित होती है तो उस व्यक्ति का संक्षिप्त परिचय भी तद्विभागीय समिति से सम्मत होकर प्रकाशित किया जाता है।

पंडितरत्न मुनि श्री आनंदऋषिजी म., सरलस्वभावी महात्माजी श्री उत्तम ऋषिजी म., व्यवहारदक्ष वयोवृद्ध मुनि श्री प्रेमऋषिजी म. आदि ठाणे ३ ने विक्रम संवत् १९९२ का चातुर्मास पूना में किया, उस समय पंडित राजधारी त्रिपाठी शास्त्रीजी की समुपस्थिति में अनेक ज्ञान-वृद्धिके इच्छुक महानुभावों द्वारा प्राप्त सहायता से आवश्यक सूत्रमूल, आवश्यक सूत्र सार्थ, सामायिक सूत्र सार्थ इन तीन पुस्तकों की ग्यारह हजार प्रतियां प्रकाशित कराकर श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी को भेंट स्वरूप समर्पित की गई। उनकी आय से आगे भी तीन चार संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। श्री रत्न जैन पुस्तकालय स्थित इन तीनों पुस्तकों से इसीतरह स्तोत्र-संग्रह अर्थात् जिसमें मांगलिक श्लोक श्री भक्तामरस्तोत्र श्री चिंतामणि स्तोत्र, श्री महावीराष्टक, श्री तिलोकाष्टक, श्री रत्नाष्टक आदि स्तोत्रोंका सार्थ संग्रह है, उससे घोरीबुद्रुक (पूना) निवासी श्रीमान् पूनमचंदजी चोरडिया तथा श्रीमान् हीराचंदजी मोतीलालजी चोरडिया और अहमदनगरनिवासी रीधकरणजी मुलतानमलजी सिंगी के आर्थिक आश्रय से प्रवेशपुस्तक प्रकाशित होनेसे बोर्ड को बहुत बल मिला है। क्योंकि धार्मिक परीक्षा बोर्ड के बाल्यकाल में उसके पास पुस्तकप्रकाशन की कोई योजना नहीं थी।

बोर्ड के प्रारंभिक कालसे पाठ्य पुस्तकों की नितांत आवश्यकता थी। केवल किसी के मार्गदर्शन की अपेक्षा थी। पाथर्डी में पं रत्नजी की पूज्य पदवी के अवसरपर श्री सोभाचंदजी बोरा द्वारा यह स्तुत्य उदाहरण उपस्थित करने पर अनेक लोगों ने इस योजना को अपना लिया। इसमें जालनानिवासी दानवीर श्रीमान् केशवजी भाई जवेरचंद शाह, श्रीमती राजीबाई ओस्तवाल राहुरी और अमरावतीनिवासी श्रीमान् हरिरामजी भाई हेडा का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इस में जालनानिवासी श्रीमान् केशवजी भाई जवेरचन्द शाह के नाम का पहले भी अनेक बार उल्लेख हो चुका है। उन्होंने प्रत्येक पारमार्थिक विभाग में दस ग्यारह या पंद्रह हजार रुपयों से कम दान नही दिया। श्री उत्तम ज्ञान प्रोत्साहक पारितोषिक विभाग, श्रीतिलोक जैन विद्यालय भवन विभाग, श्रीतिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड भवन विभाग और श्री अमोल-जैन-सिद्धांतशाला विभाग में भी उन्होंने

बडी २ रकमे दी, इसका पहले उल्लेख हो चुका है। आपने इस पुस्तक प्रकाशन विभाग मे अभी२ गुजराती पुस्तकों के प्रकाशन के लिए दस हजार रूपये दिए है। इस दान से बोर्ड मे निर्धारित पाठ्य पुस्तकों में जो पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित हो चुकी है, उनका गुजराती अनुवाद करके प्रकाशन किया जायगा। इसी प्रकार वयोवृद्ध अनुभवी श्रीमान् हरिरामजी हेडा ने माहेश्वरी कुल में उत्पन्न होनेपर भी पुस्तक-प्रकाशन विभाग में ज्ञान प्रचार की सद्भावना से प्रेरित होकर उदार अन्त करण से १००० एक हजार रुपये की प्रशंसनीय सहायता देकर सामाजिक समन्वय का एक सुदर उदाहरण उपस्थित किया है।

इस विभाग में जिन जिन दाताओंने आर्थिक आश्रय देकर बोर्ड से पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित कराई है। उनके नाम क्रमश इस प्रकार है।

नाम	रकम	पुस्तक नाम
१ श्री चाँदमलजी शोभाचंदजी बोरा पीपला (अहमदनगर)	२१००रु	नव-तत्त्व सार्थ (इसका द्वितीय सस्करण भी प्रयाशित हो चुका है)
२ श्रीमती राजीबाई ओस्तवाल, राहुरी	६५० रु	सो सतियाँ (प्रथम और द्वि. आवृत्ति)
३ विदुषी महासतीजी श्री चन्दनकुमारीजी की दीक्षा के उपलक्ष्य में उनके ससार पक्ष के काका तथा दो अन्य महाशयो के गुप्त दान से	२५२ रु	जैन तत्त्व दीपिका प्रथम और द्वितीय आवृत्ति
४ छब्बीस व्यक्तिओं द्वारा सहायता लगभग	१०००	जैन पाठावली भा. १ प्रति १०००० चार संस्करण
५ चाँदानिवासी श्री तिलोकचन्दजी खूबचन्दजी गुंदेचा की सहायता से		जैन पा.भा. २रा प्रति ३०००, तीन सस्करण
६ जालना निवासी श्रीमान् फूलचन्द जवेरचन्द शाह की सहायता से		जैन पा. भा ३रा प्रति २०००, दो संस्करण
७ श्रीमान् सी पी डोसी मगनलाल भाई बम्बई	५०१	जैन पा भा. ६ प्रति १०००
श्रीमान् गोकुलदासजी अजमेरा बम्बई अपने पुत्र के स्मरणार्थ	२५१	

गुजराती पुस्तक–प्रकाशन–विभाग

१) जालनानिवासी श्रीमान् फूलचन्द जवेरचन्द शाह	जैन पाठावली भाग २
तर्फे हस्ते श्रीमान् केशवजी भाई द्वारा	,, ,, ,, ३
प्रदत्त सहायता से	,, ,, ,, ४

इस श्री ति र स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड में कन्याओ एवं महिलाओं के लिए भी एक स्वतत्र विभाग है। उनके लिए अलग ही पाठ्यक्रम रखा गया है। जो बहिनें परीक्षा में निर्धारित उच्च अभ्यास-क्रम को नही कर सकती, वे महिलाओं के

लिए निर्धारित पाठ्यक्रम का अभ्यास कर जैन धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं। बोर्ड की ओर से इस विभाग की जो पुस्तकें प्रकाशित हुई है उनकी सहायिकाएँ प्रायः सब महिलाएँ ही है।

१) श्रीमती सूरजबाई भ्र ताराचन्दजी डोसी अ. नगर २०१ कन्या सुबोधिनी
१ श्रीमती सौ हांसीबाई भ्र माणकचन्दजी मुथा ,, १०१ भाग पहिला
३ ,, बसंताबाई भ्र. प्रेमराजजी मुथा ,, १०१ द्वितीय तृतीय
४ ,, रतनबाई ,, रूपचन्दजी गुन्देचा ,, १०१ संस्करण
५ ,, जडाबाई ,, हेमराजजी फिरोदिया ,, १०१ ८००० प्रतियाँ
६ ,, मोतीबाई ,, हरकचन्दजी कोठारी ,, ५१
७ ,, रतनबाई ,, उत्तमचन्दजी मुथा पाथर्डी १०१
१ रतनचन्दजी भटेवडा परिवार की महिलाएँ राहू १६५ कन्या सुबोधिनी भा. दूसरा
२ श्रीमती तुलसाबाई कोचर हिंगनघाट १०० ३००० प्रतियाँ
३ श्री नवलचन्दजी पूगलिया की माताजी नागपुर १००
४ श्रीमती सुगनीबाई भ्र. धनराजजी मुणोत अमरावती ३०१
५ श्रीमती मैनाबाई गेलडा भुसावल १०१
६ श्रीमती जतनबाई भ्र बिजराजजी सचेती मलकापुर १०१
७ अवशिष्ट नौ श्राविकाओं द्वारा सहायता १६५
१ श्रीमती श्रीकुंवरबाई भूरा सीवनी २०१ कन्या
२ ,, तुलसाबाई कोचर हिंगनघाट १०१ सुबोधिनी
३ ,, तानीबाई चोरडिया ,, १०१ भाग तीसरा
४ ,, सौ धोंडीबाई गुन्देचा चान्दा १११
५ ,, सरदारबाई चोरडिया हिंगनघाट १०१ द्वितीय आवृत्ति
६ ,, वैराग्यवती हुलासाबाई चान्दूर बाजार १०१ ३०००
७ ,, प्याराबाई गांधी लोनावला १०१
८ ,, सुन्दरबाई सकलेचा मजलेगाव ४०
९ ,, सौ रूपीबाई कटारिया चान्दा २१

बोर्ड की गुणग्राहकता

इस धार्मिक परीक्षा बोर्ड की अन्य स्थानों से एक महती विशेषता यह है कि जिस संस्था के विद्यार्थी बोर्ड की परीक्षाओं में सम्मिलित होकर तीन वर्ष तक बराबर अच्छी श्रेणि में उत्तीर्ण होते रहेंगे, उसके धर्माध्यापक को प्रमाण पत्र के साथ एक रौप्य पदक प्रदान किया जायगा। पर इस समय मर्यादा के पूर्व ही अपनी संस्था से विद्यार्थियों को परीक्षाओं में बैठाकर उनके यशस्वी परिणाम से स्वयं गौरवान्वित होने

वाले धर्माध्यापकों का परीक्षाप्रारंभ होने के वर्ष से ही रौप्य-पदक के साथ प्रमाण पत्र देकर सन्मान किया गया। पहले चार वर्षों के सम्मानित अध्यापकों के नाम क्रमशः इस प्रकार है :—

प. श्री उदयचन्दजी जैन, श्री विजय जैन पाठ शाला सनवाड मेवाड वी.सं.२४६४
पं. श्री फूलचन्दजी जैन सारंग, श्री जैन रत्न विद्यालय भोपालगढ „ २४६५
„ केशवलाल अम्बालाल शाह खम्भात „ २४६६
श्री रामराव देशमुख श्री तिलोक जैन पाठशाला, पथर्डी „ २४६७

यहां केवल प्रथम चार वर्षों के सम्मानित अध्यापकों का नाम-निर्देश किया गया है। यह क्रम सतत चला आ रहा है और अभी तक पिछले बीस वर्षों में बीसों अध्यापक सम्मानित किये गये है।

केवल थोडे-से उपकरणों के साथ यह बोर्ड, संस्था के सदुपदेशक पं. रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म. की प्रेरणा से संस्था के कर्मठ रजिस्ट्रार एवं मन्त्री पं. श्रीमान् राजधारी त्रिपाठी शास्त्री के अथक परिश्रम से सतत विकास पथ की ओर अग्रसर हो रहा था इतने ही में सारे विश्व को अपनी युद्ध-ज्वाला से झुलसाने वाले द्वितीय विश्व-युद्ध का प्रारभ हो जाने से इस देशपर भी उसका व्यापक प्रभाव पडा। हमारा यह बोर्ड भी उसकी चपेट से न बच पाया। फिर भी किसी प्रकार के प्रचार एवं शोहरत के बिना यह बोर्ड मौन-भाव से अपना विकास करता रहा। समय की गति के अनुसार इस की परीक्षाओं की वृद्धि होती रही। अनेक संस्थाएँ इस के साथ अपना संबंध जोड-कर गौरव का अनुभव करने लगी। अन्त में एक समय यह आया कि जिस बोर्ड का निर्माण केवल महाराष्ट्र प्रांत के लिए हुआ था, वह महाराष्ट्र प्रांत तक सीमित नही रहकर अखिल भारत-व्यापी हो गया। इस बोर्ड की परीक्षाओं में प्रतिवर्ष परीक्षार्थी की किस प्रकार वृद्धि होती गई, उसकी सूची अन्त में दी गई है।

दुःखद अवसान

इस प्रकार बोर्ड अपने प्रगतिपथपर अग्रसर हो रहा था, इसी बीच मिति आश्विन कृष्णा २ विक्रम संवत् २००० को पाथर्डी में मुनि श्री प्रेमऋषिजी म. का स्वर्गवास हो गया। वयोवृद्ध अनुभवी मुनिश्रीजी का वर्णन पहले संक्षेप में किया जा चुका है। आपने घोडवड में इस बोर्ड के प्रेरक प. रत्न मुनि श्री आनंदऋषिजी म. के पास दीक्षा ली थी। आपकी बुद्धिमत्ता एवं व्यवहार-दक्षता प्रशंसनीय थी। पं. रत्न मुनिजी के तो आप दाहिने हाथ थे। यहांतक कि स्वय गुरुदेव (पंडितरत्नजी) कोई नवीन कार्य प्रारंभ करनेके पहले तथा कोई जटिल प्रश्न उपस्थित होने पर आपसे विचार-विमर्श कर लेते थे। इस बोर्ड के उत्थान तथा विकास मे भी आपश्री द्वारा अवर्णनीय बौद्धिक सहायता प्राप्त हुई। इस स्वर्गीय आत्मा का पूर्ण प्रेम महाराज श्री का पूर्ण आलंबन था। उनकी

बुद्धिमत्ता इस संस्थारूपी लता का पूर्ण आधार थी। उनके दिवंगत होने से संस्था की बहुत बडी क्षति हुई। अतएव उनका स्मरण यह बोर्ड और उसके कार्यकर्ता-गण आजीवन करते रहेंगे।

बोर्ड को भारत-व्यापी बनाने के लिए नई योजना

वैसे तो बोर्ड अपने प्रारंभिक कालसे परीक्षा लेकर उत्तीर्ण छात्रों को पारितोषिक एवं प्रमाणपत्र देता आ रहा था। परन्तु धीरे धीरे अन्य संस्थाओं के संपर्क में आने के पश्चात् बोर्ड के भूतपूर्व रजिस्ट्रार प. राजधारी त्रिपाठी शास्त्रीजी ने यह अनुभव किया कि जबतक देशव्यापी संस्थाओं के निरीक्षण के लिये किसी निरीक्षक (इन्सपेक्टर) की नियुक्ति न हो, असमर्थ धार्मिक पाठशालाओं को प्रतिवर्ष ग्रांट स्वरूप सहायता न दी जाय, एवं उच्च शिक्षणाभिलाषी छात्रों को छात्रवृत्ति देकर उनका उत्साह न बढाया जाय तबतक बोर्ड सर्वांग-पूर्ण नहीं हो सकता। इसप्रकार पूज्य श्री आनंदऋषिजी म. श्री के चरणारविंदों में त्रिपाठी शास्त्रीजी अर्ज करते रहे। परन्तु बोर्ड के पास इतनी शक्ति नहीं होने से म. श्री इस आवश्यक बात को टालते रहे। अंत में इस योजना को कार्यरूपमें परिणत करने का योग आने पर अमरावती चातुर्मास के पश्चात् विक्रमाब्द २००२ में अमरावतीनिवासी श्रीमान् धर्मप्रेमी दानवीर सेठ बाबूलाल डाह्याभाई वदाणी ने ५००० पाच हजार रुपये इस नूतन योजना के लिये निकाले। इनके अतिरिक्त खामगॉव निवासी श्री हीरालालजी मोतीलालजी बोरा, श्री गणेशलालजी चपालालजी बोरा, श्री हरक चद हेमचदजी शाह और आकोलानिवासी श्री. लालचदजी माणकचंदजी कोटेचा ने आर्थिक सहायता का अभिवचन देकर इस कार्य की पुष्टि की। तत्पश्चात् और भी अनेक धर्मबंधु इस कार्य को सफलीभूत बनाने के लिये उद्यत हुए। अंतमें पूज्यश्रीजी के बोदवड चातुर्मास में दि. २९-८-४९ को " श्री वर्द्धमान जैनधर्म शिक्षण प्रचारक सभा की स्थापना बोर्ड के सहायक रूपमें हुई और इसका कार्यालय पाथर्डी में रखना ऐसा निश्चय हुआ। इस संस्था के मूल आधार स्तम्भ ५००१ रु. एक मुस्त देनेवाले ये महानुभाव है।

१	श्रीमान दानवीर सेठ बाबूलाल डाह्याभाई वदाणी	अमरावती
२	,, ,, गुलाबचन्द ओघडभाई गोसलिया	वडनेरा
३	,, ,, नथमलजी हजारीमलजी गांका	जामठी
४	,, ,, पुखराजजी नेमिचन्दजी देवडा	औरंगाबाद
५	,, ,, फूलचन्द जवेरचन्द गोसर	जामनगर (जालना)

इन के अतिरिक्त इसी तरह श्रीवर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा के अन्तर्गत धार्मिक परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों के लिए छात्रवृत्ति देनेवाले अनेक सद्गृहस्थ है। उनमें अनेक ऐसे सज्जन है, जिन्होंने कि २५००, २०००, ११०१, ५०१, ३०० २५१, और १०१ तक की सहायता दी है। यह नामावली बहुत बडी है। इसी

प्रकार पाथर्डी धार्मिक परीक्षा बोर्ड की परीक्षाओं के लिए छात्र तैयार करने वाली संस्थाओं के सहायतार्थ सभा के अन्तर्गत अनेक महानुभावोंद्वारा ग्रांट स्वरूप सहायता दी गई। यह नामावली भी बहुत बडी है। और इस विभाग में छात्रवृत्ति विभाग की तरह ही बडी बडी रकमें प्राप्त हुई हैं।

छात्रवृत्ति–सबधी नियम

१) इस वृत्ति का उम्मीदवार वही छात्र होगा जिसने कि श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की कम से कम प्रथम परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली होगी।

२) छात्रवृत्ति आगामी परीक्षा के लिए स्वीकृत की जाती है, अतः उस परीक्षा में सफलता प्राप्त कर लेने पर ही पूरी वृत्ति (बारह मास की) एक साथ दी जायगी।

३) एक बार स्वीकृत की हुई छात्रवृत्ति सफलता प्राप्त करते जाने पर बोर्ड की सिद्धांताचार्य परीक्षा तक रखी जायगी और अच्छे अंक प्राप्त करनेवाले छात्रों की वृत्ति में क्रमश. वृद्धि भी होती रहेगी।

४) छात्र को अपने मासिक अभ्यास का विवरण संस्था के अध्यक्ष या मंत्री और प्रधानाध्यापक से प्रमाणित करा कर सभा के कार्यालय में पाथर्डी भेजते रहना होगा और सभा के निरीक्षक [इन्स्पेक्टर] निरीक्षण के लिए आवें तो छात्र को उपस्थित रहकर अपने अभ्यास का परिचय देना होगा।

५ छात्रवृत्ति विद्यालयीय छात्रों को ही दी जायगी। स्वतत्र छात्र (प्रायव्हेट) छात्रवृत्ति के उम्मीदवार नही माने जायगे।

ग्रांट–सबधी नियम

(१) वह संस्था जो श्री ति० र० स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी की परीक्षाओं में कम से कम तीन साल से छात्रों को सम्मिलित करा रही हो, तथा जिस का निरीक्षण सभा के निरीक्षक द्वारा किया गया हो और बोर्ड के परीक्षाफल तथा निरीक्षक का रिपोर्ट के आधार पर जिस की सहायता के योग्य पात्रता सिद्ध हो चुकी हो, सभा-ग्रांट (सहायता) की उम्मेदवार मानी जायगी।

(२) जिस संस्था के लिए सहायता स्वीकृत की जायगी, उसको पाथर्डी परीक्षा बोर्ड की परीक्षाओं के लिए छात्र तैयार करना अनिवार्य होगा।

(३) सस्था का कार्य असमाधानकारक प्रतीत होने पर सहायता बंद कर दी जायगी और पुन तीन साल के कार्य को देखकर ही सहायता देने का विचार किया जा सकेगा।

(४) स्वीकृत सहायता दो किस्तों में (प्रथम किस्त मई माह में और दूसरी अक्टूबर में) भेजी जायगी।

(५) संस्था को अपनी धार्मिक शिक्षण-संबंधी गति-विधि से सभा के कार्यालय को प्रतिमास के अंत में परिचित कराना होगा छात्रवृत्ति और ग्रांट (सहायता) की रकम का निर्णय उस विभाग की निर्णायक समिति करेगी।

परीक्षा में उत्तीर्ण विशिष्ट छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करते समय और असमर्थ संस्थाओं को ग्रांट स्वरूप सहायता देते समय बोर्ड इस बात का बराबर ध्यान रखता है कि ध्रौव्य-फंड कायम रखते हुए उसके व्याज से यह कार्य सुचारु रूप से चलता रहे। इस दीर्घ दृष्टि से काम लेने पर आज इस "श्री वर्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा से छात्रवृत्ति प्राप्त कर देश के अनेक छात्र-छात्राएँ बोर्ड की प्रारंभिक परीक्षा से आचार्य परीक्षा तक का अभ्यास कर रही है। सभा द्वारा प्रत्येक परीक्षा के परीक्षार्थी को छात्र वृत्ति इस प्रकार दी जाती है।

जैन सिद्धांताचार्य परीक्षा,	प्रत्येक खंड	९६ रु.	वार्षिक
,, सिद्धांतशास्त्री परीक्षा	,, ,,	७२ रु.	,,
,, ,, प्रभाकर ,,	द्वितीय खंड	६० रु.	,,
,, ,, ,, ,,	प्रथम ,,	४८ रु.	,,
,, ,, विशारद ,,	द्वितीय ,,	३६ रु.	,,
,, ,, ,, ,,	प्रथम ,,	२४ रु.	,,

श्री ति. र स्था जैन धार्मिक रीक्षा बोर्ड कीवार्षिक सभाएँ

बोर्ड की वार्षिक सभा प्रतिवर्ष जिस स्थानपर बोर्ड के सदुपदेशक पं. रत्न मुनि श्री आनंदऋषिजी म का चातुर्मासार्थ विराजना होता है, वहीपर होती है। क्योंकि सभा के शुभावसर पर पधारनेवाले सज्जनों को सभा की कार्यवाही के साथ साथ "एक पथ दो काज, इस न्याय से सतों के पुनीत दर्शन एवं व्याख्यान वाणी का भी अलभ्य लाभ प्राप्त हो जाता है। बोर्ड के स्थापना-काल से ही इस नियम का बडी मुस्तैदी से पालन किया जा रहा है। वार्षिक सभा के समय बोर्ड की उन्नति के हेतु अनेक नई योजनाएँ बनाकर उन्हें कार्य रूपमें परिणत की जाती है। प्रत्येक वर्ष का विवरण लिखनेपर लेख का कलेवर बहुत अधिक बढ जाने की संभावना से मैं केवल एक दो माल की महत्वपूर्ण कार्यवाहीपर प्रकाश डालता हूँ।

सन् १९४९ में भूतपूर्व ऋषिसम्प्रदायाधीश वर्तमान में पूज्य उपाध्याय श्री आनंद ऋषिजी म का चातुर्मास बोदवड (खानदेश) मे था। यह बोर्ड की स्थापना का दसवां वर्ष था। इस अवसरपर बोर्ड के रजिस्ट्रार महोदय ने महाराज श्री की सेवा में विद्वत्परिषद बुलाने के लिये श्रीसघ के नाम से प्रार्थनापत्र भेजा। पत्र पढ़कर बोदवड श्रीसंघ ने अपने यहा विद्वत्परिषद् बुलाने और उसके लागत खर्च के दानकी उदारता बताई। तद नुसार बोदवड में दि. १८-९-४९ को विद्वत्परिषद करने की घोषणा प्रकाशित कर दी। समाज के प्रसिद्ध प्राय: सब विद्वानों को निमंत्रण पत्र भेज दिये गये। परन्तु उस समय

रजिस्ट्रार पद एवं उन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र पं. चंद्रभूषण त्रिपाठीजी को सेक्रेटरी पद का कार्यभार सर्वानुमति से दिया गया। ये भी अपने पिताश्री की तरह ही सस्था के प्रारंभिक काल से एकनिष्ठ होकर सेवा कर रहे है।

उपर्युक्त मुख्य मुख्य मुनिराजों, विद्वानों एवं केंद्राध्यक्षों की ओर से पाठ्य क्रम एवनियमोपनियम संबंधी सम्मतिया आजाने पर दि. १६-७-४७ के रोज उपसमिति की बैठक शुभस्थान बेलापुर रोड (श्रीरामपुर अहमदनगर) में बुलाई गई। उपसमिति के सब विद्वान् उपस्थित थे। सर्व सम्मति से पाठ्यक्रम का कच्चा ढांचा तैयार करके पुनः मुख्य मुख्य मुनिराजों, विद्वानों एवं केंद्राध्यक्षों के पास भेजकर उनकी सम्मतियां मंगाई गई। तदनतर दि. ८-१०-४७ के रोज शुभस्थान बेलापुर रोड श्री रामपुर (अहमदनगर में श्री पार्श्वनाथ जैन विद्याश्रम (हिंदू विश्व विद्यालय) काशी के तत्कालीन अधिष्ठाता) पं. शांतिलाल वनमाली शेठ "न्यायतीर्थ" की अध्यक्षता में विद्वत्परिषद् बुलाई गई इस परिषद में पंद्रह विद्वान् उपस्थित हुए। इन के अतिरिक्त जैन धर्म के और भी अनेक सद्गृहस्थ इस आयोजन में सम्मिलित हुये थे। बोर्ड के प्रारंभिक काल से अपनी प्रेरणा से समाज के उदार व्यक्तियों द्वारा सहायता दिलाकर उसे विकसित करने वाले प. रत्न पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के समक्ष बहुत ऊहापोह के पश्चात् दो दिन परिश्रम करके विद्वानों ने परीक्षा का पाठ्यक्रम एवं नियमोपनियम तैयार करके बोर्डकी कार्यकारिणी समिति को समर्पित किया और निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए-

प्रस्ताव पहला –बोर्ड की परीक्षासंबंधी नियमावली और उसके पाठ्यक्रम का उचित सशोधन कर के धार्मिक परीक्षा बोर्ड की कार्यकारिणी समिति को यह परिषद् सुपूर्द करती है। वह समिति उचित सशोधन करके अपने कार्यरूप में परिणत करे। प्रमुख स्थान से।

प्रस्ताव दूसरा - परीक्षा बोर्ड की यह विद्वत्परिषद् सर्वानुमति से निश्चय करती है कि धार्मिक परीक्षा बो. के धा पाठ्य क्रम का सुचारु रूप से योग्य अध्ययनाध्यापन एवं इसे लोकोपयोगी बनाने के लिए प्रतिवर्ष ग्रीष्मावकाश में जैन शिक्षण वर्ग का किसी केंद्रस्थान पर टर्म (ज्ञान सत्र) खोलने का आयोजन किया जाय और उसका समुचित प्रबंध करने के लिए "श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा ,, पाथर्डी से अनुरोध करती हैं।

प्रस्ताव तीसरा:–कन्याओं और महिलाओं के योग्य प्रथम तीन परीक्षाओं तक जैन पाठ्य क्रम निश्चित करने के लिए एक उपसमिति निम्न सज्जनों की संगठित की जाती है।

१) पं रतनलालजी संघवी "न्यायतीर्थ,, — छोटीसादडी
२) पं. धीरजलालजी के तुरखिया — ब्यावर
३) प शान्तिलालजी वनमाली शेठ — बनारस

भारत में सांप्रदायिक द्वेषाग्निकी भयंकर ज्वाला चारों ओर प्रज्ज्वलित हो रही थी। भय के कारण रेल्वे प्रवास किसी को इष्ट नहीं था। केवल तीन-चार विद्वान् उपस्थित हुए। जिनकी मुख्य उपस्थिति अपेक्षित थी उनमें से केवल धीरजलाल के. तुरखिया उपस्थित हुए। अतएव लाचार होकर उपस्थित विद्वानों ने अपनी परिषद् में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किये।

प्रस्ताव पहला

यह परिषद् पाथर्डी परीक्षा बोर्ड की नियमावली और पाठ्यक्रम का संशोधन करना उचित समझती है।

प्रस्ताव दूसरा

बोर्ड की वर्तमान नियमावली और पाठ्यक्रम सब केंद्रों तथा समाज के प्रसिद्ध विद्वानों के पास भेजकर उनसे परिवर्तन तथा परिवर्धन मगाया जाय।

प्रस्ताव तीसरा

आई हुई सूचनाएँ निम्नलिखित विद्वानों की उपसमिति के पास छहमाह के अंदर पेश की जायँ।

उपसमिति के विद्वान्

(१) श्री धी. के तुरखिया, ब्यावर.
(२) पं. श्री राजधारी त्रिपाठी रजिष्टार, पाथर्डी
(३) ,, ,, अमोलकचंदजी सुरपुरिया, एम् ए एल. एल. बी पूना.
(४) ,, ,, सागरमलजी ओरतवाल,भुसावल.
(५) ,, ,, बदरीनारायणजी शुक्ल, अहमदनगर

प्रस्ताव चौथा—बाहर से आई हुई सूचनाओं को लक्ष्य में रखकर उपसमिति एक कच्चा ढांचा तैयार करे, तथा अनुकूल समय पर विद्वानों को मार्गव्यय देकर विद्वत्परिषद बुलाई जाय।

प्रस्ताव पांचवा—जब तक नवीन पाठ्यक्रम तैयार न हो जाय, तब तक वर्तमान अभ्यासक्रम से काम लिया जाय।

अध्यक्ष, धी. के. तुरखिया.

उपसमिति के प्रस्तावानुसार नियमावली प्रत्येक केंद्रों में एवं मुख्य मुख्य मुनिवृन्द तथा विद्वानों की सेवा में भेजी गई थी। जिन में बारह मुनिराजों एवं विद्वानों ने अपनी बहुमूल्य सम्मतियाँ भेजकर हमें गौरन्वािवत किया।

इस बोदवड चातुर्मास में दि १८- सितंबर १९४६ को बोर्ड की जो दसवीं वार्षिक सभा हुई, उस में अन्य कारवाई के अतिरिक्त एक विशेष कार्य यह हुआ कि प राजधारी त्रिपाठीजी के जिम्मे प्रारंभ से जो रजिस्ट्रार एवं सेक्रेटरी इन दोनों पदों का उत्तरदायित्व था, इस लिये इन के भार को हलका करने के लिए पंडितजी को सिर्फ

रजिस्ट्रार पद एवं उन्ही के ज्येष्ठ पुत्र पं. चंद्रभूषण त्रिपाठीजी को सेक्रेटरी पद का कार्यभार सर्वानुमति से दिया गया। ये भी अपने पिताश्री की तरह ही संस्था के प्रारंभिक काल से एकनिष्ठ होकर सेवा कर रहे हैं।

उपर्युक्त मुख्य मुख्य मुनिराजों, विद्वानों एवं केंद्राध्यक्षों की ओर से पाठ्य क्रम एवं नियमोपनियम संबधी सम्मतियां आजाने पर दि. १६-७-४७ के रोज उपसमिति की बैठक शुभस्थान बेलापुर रोड (श्रीरामपुर अहमदनगर) में बुलाई गई। उपसमिति के सब विद्वान् उपस्थित थे। सर्व सम्मति से पाठ्यक्रम का कच्चा ढांचा तैयार करके पुनः मुख्य मुख्य मुनिराजों, विद्वानों एवं केंद्राध्यक्षों के पास भेजकर उनकी सम्मतियां मगाई गई। तदनंतर दि. ८-१०-४७ के रोज शुभस्थान बेलापुर रोड श्री रामपुर (अहमदनगर में श्री पार्श्वनाथ जैन विद्याश्रम (हिंदू विश्व विद्यालय) काशी के तत्कालीन अधिष्ठाता) पं. शांतिलाल वनमाली शेठ "न्यायतीर्थ" की अध्यक्षता में विद्वत्परिषद् बुलाई गई इस परिषद में पन्द्रह विद्वान् उपस्थित हुए। इन के अतिरिक्त जैन धर्म के और भी अनेक सद्गृहस्थ इस आयोजन में सम्मिलित हुये थे। बोर्ड के प्रारंभिक काल से अपनी प्रेरणा से समाज के उदार व्यक्तियों द्वारा सहायता दिलाकर उसे विकसित करने वाले पं. रत्न पूज्य श्री आनंद ऋषिजी महाराज के समक्ष बहुत ऊहापोह के पश्चात् दो दिन परिश्रम करके विद्वानों ने परीक्षा का पाठ्यक्रम एवं नियमोपनियम तैयार करके बोर्डकी कार्य-कारिणी समिति को समर्पित किया और निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए-

प्रस्ताव पहला .–बोर्ड की परीक्षासंबधी नियमावली और उसके पाठ्यक्रम का उचित संशोधन कर के धार्मिक परीक्षा बोर्ड की कार्यकारिणी समिति को यह परिषद् सुपुर्द करती है। वह समिति उचित संशोधन करके अपने कार्यरूप में परिणत करे। प्रमुख स्थान से।

प्रस्ताव दूसरा - परीक्षा बोर्ड की यह विद्वत्परिषद् सर्वानुमति से निश्चय करती है कि धार्मिक परीक्षा बो. के धा. पाठ्य क्रम का सुचारु रूप से योग्य अध्ययनाध्यापन एवं उसे लोकोपयोगी बनाने के लिए प्रतिवर्ष ग्रीष्मावकाश में जैन शिक्षण वर्ग का किसी केंद्रस्थान पर टर्म (ज्ञान सत्र) खोलने का आयोजन किया जाय और उसका समुचित प्रबंध करने के लिए "श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा ,, पाथर्डी से अनुरोध करती है।

प्रस्ताव तीसरा.–कन्याओं और महिलाओं के योग्य प्रथम तीन परीक्षाओं तक जैन पाठ्य क्रम निश्चित करने के लिए एक उपसमिति निम्न सज्जनों की संगठित की जाती है।

१) पं. रतनलालजी संघवी "न्यायतीर्थ,,	छोटीसादडी
२) प धीरजलालजी के तुरखिया	ब्यावर
३) पं शान्तिलालजी वनमाली शेठ	बनारस

४) पं. सूर्यमलजी चोरडिया — खाचरोद
५) रजिस्ट्रार श्री धार्मिक परीक्षा बोर्ड — पाथर्डी (संयोजक)

प्रस्ताव चौथा:–धर्मभूषण, सिद्धांतविशारद, सिद्धांत प्रभाकर, सिद्धांत शास्त्री सिद्धांताचार्य में उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को निम्न उपाधियाँ क्रमशः दी जायँ।

१ "श्री जैन धर्म भूषण,,   २ "श्री जैन सिद्धांत विशारद,,
३ "श्री जैन सिद्धांत प्रभाकर,,   ४ "श्री जैन सिद्धांत शास्त्री
५ "श्री जैन सिद्धांताचार्य

प्रस्ताव पाँचवाँ–परीक्षकों का उचित चुनाव करने के लिए और उचित पारिश्रमिक देने का निश्चय करने के लिए निम्न सदस्यों की एक "परीक्षकसमिति,, नियत की जाती है।

१ प. श्री धरिजलाल के. तुरखिया, — ब्यावर
२ पं. श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल, — ,,
३ ,, रजिस्ट्रार धार्मिक परीक्षा बोर्ड, — पाथर्डी

प्रस्ताव छट्ठा–परीक्षा बोर्ड द्वारा निर्धारित परीक्षाओं की माध्यम भाषा संस्कृत अथवा हिंदी रहेगी। प्रांतीय भाषा में भी लिखने की अनुमति दी जा सकेगी।

बेलापूर रोड - श्रीरामपुर (अहमदनगर) में बुलाई गई विद्वत्परिषद् द्वारा "श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड. पाथर्डी (अहमदनगर) के लिए संशोधित नियमोपनियम तथा निर्धारित पाठ्य क्रम-

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी (अ नगर)

—नियमोपनियम—

१ बोर्ड का नाम

"श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड" यही नाम इस बोर्ड का कायम रहेगा।

२–बोर्ड की स्थापना

स्थानकवासी जैन समाज के कविसम्राट् पूज्यपाद श्री १००८ श्रीतिलोक ऋषिजी महाराज के सुशिष्य, स्वर्गीय स्वनामधन्य गुरुवर्य, श्रीरत्नऋषिजी महाराज के शिष्य, वर्तमान श्रीऋषिसम्प्रदायाधीश श्रीमज्जैनाचार्य, बाल ब्रह्मचारी, श्री १००८ पूज्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज श्री के सदुपदेश से ता. २५।१२।३६ के रोज स्थापित।

३ स्थान

बोर्ड के आद्य सहायक, वयोवृद्ध, दानवीर सेठ श्री नानचन्द भगवानदासजी दूगड, मु. घोडनदी (पूना) ने वर्तमान पूज्यश्रीजी की सूचनानुसार मु. पाथर्डी में आकर

वोर्ड की स्थापना जाहिर की और इसी स्थान को प्रधानकार्यालय मु. पो. पाथर्डी (जिला अहमदनगर) रहेगा ।

४—बोर्ड का उद्देश्य

जिन जिन स्थानों में स्थानकवासी जैन समाज तथा जैनेतर जाति की तरफ से धार्मिक तथा व्यावहारिक पाठशालाएँ चल रही हों, उन पाठशालाओं में तथा सिद्धांत-शालाओं में स्थानकवासी जैन धर्म के अनुकुल धार्मिक अभ्यास को उत्तेजन देना तथा धार्मिक ज्ञान में वालकों की रुचि उत्पन्न करना, उस में उत्तेजना देने के लिए तथा स्थानकवासी जैनसिद्धांत की जानकारी के लिये परीक्षाएँ कायम करना, उन परीक्षाओं में जैन अजैन सभी छात्रों को वोर्ड की नियमावली के अनुसार प्रमानपत्र तथा पारितोषिक देना ये वोर्ड के उद्देश्य हैं ।

५ वोर्ड का वर्ष मिति (मास) कार्तिक शुद्ध १ से कार्तिक कृष्ण दिपमालिका तक माना जायगा ।

६ वोर्ड के सद्‌उपदेशक महाराज श्री संस्थापकजी अध्यक्षजी, व्यवस्थापकजी, रजिस्ट्रारजी. तथा मन्त्रीजी के नाम रिपोर्ट व नियमावली स मुखपृष्ठपर प्रकाशित होते रहेंगे ।

७ वोर्ड में निम्नश्रेणी के सभासद नियुक्त किये जायेंगे—

१ सरक्षण—एक मुश्त या किस्त से ५०१ रुपये या इस से अधिक देनेवाले ।

२ आजीवन सदस्य ,, ,, २०१ रुपया ,,
एव विशिष्ट परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों के लिए विशिष्ट पदकप्रदानार्थ क्रमश । २५१ २०१, १५१ रुपये देनेवाले ।

३ आश्रयदाता—१०१ रुपये स्थायी रकम में अथवा विशिष्ट पदक में देनेवाले ।

४ पदक दाता—५१ रुपये देनेवाले ।

५ साधारण सभासद—एकसाथ २५ रुपये देनेवाले ।

८ जो सज्जन वोर्ड के विकास के लिए बौद्धिक सहायता अर्थात् जिस कर्तव्य के द्वारा अलौकिक प्रभाव उत्पन्न हो ऐसी कारवाई करेंगे, उनको भी सरक्षक मेम्बरपद प्रदान किया जायगा और उनका फोटो प्राप्त होने पर ऑफिस में रखा जायगा ।

९ सरक्षक सभासदों का ब्लाक एव आजीवन सदस्य तथा आश्रयदाताओं के शुभ नाम वो के प्रत्येक बृहद रिपोर्ट में प्रकाशित रहेंगे, और सरक्षण मेम्बरों की तरफ से उनका बडा फोटो प्राप्त होनेपर ऑफिस में रखा जायगा

१० वोर्ड की सभायें इस वोर्ड को चलाने के लिये अधोलिखित योग्यता सम्पन्न सदस्यों की एक साधारण सभा होगी ।

११ सभासदों की योग्यता—ऊपर लिखे हुए ६ प्रकार के सभासदों में धर्मनिष्ठता धार्मिकता, उत्साह, बोर्ड के लिये अभिरुचिसम्पन्न होना आवश्यक है।

१२ साधारण सभा के अधिकार—कार्यकारिणी मन्डल का चुनाव करना, पदाधिकारियों का चुनाव करना, आडिटर तथा ट्रस्ट मन्डल का चुनाव करना, बोर्ड का नियमोपनियम तैयार करना या करवाना वादग्रस्त जटिल विषयों का निर्णय देना, आदि बोर्ड की सम्पूर्ण सत्ता इस सभा के अधिकार में रहेगी।

१३ साधारण सभा की बैठक—साधारण सभा की बैठक प्रति तीसरे वर्ष होना अनिवार्य है किसी विशेष प्रसंग में बीच में भी बुलाई जा सकती है और इस सभा की सूचना १५ दिन पहले सभी सदस्यों को दी जायगी।

१४ साधारण सभा का कोरम कम से कम २१ सदस्यों का होगा, मंत्री की उपस्थिति अनिवार्य है।

१५ सभा के नियत समय में कोरम की पूर्ति नहीं हुई तो सभा स्थगित समझी जायगी, स्थगित सभा १५ दिन के बाद फिर बुलाई जा सकेगी, उस समय उपस्थित सदस्य सभा का कार्य चलाऐंगे।

१६ सभा के नियत समय से १५ मिनट तक अध्यक्षजी सभास्थान में उपस्थित नहीं हुए तो उपस्थित सदस्योंमें से अध्यक्ष चुनकर सभा का कार्य चलाया जायगा, अध्यक्षजी के उपस्थित होने पर उनका स्थान दे दिया जायगा.

१७ इस सभा के अध्यक्ष यावज्जीव धर्मवीर दानवीर सेठ नानचंदजी भगवानदासजी दूगड़ रहेंगे. उनके पश्चात् संरक्षक मेम्बरोंमें से अध्यक्ष का चुनाव बहुमत से होगा।

१८ साधारण सभा के सभासदों की सम्मति आवश्यकीय विषयों पर पत्रद्वारा भी मगाई जा सकती है. इस तरह ११ मेम्बरों की सर्वसम्मतता होनेपर वह प्रस्ताव अमल में रहेगा। यह नियम सरक्युलर मीटिंग के लिये समझना चाहिए।

—कार्यकारिणी सभा—

१९ साधारण सभा से चुने हुए १५ सदस्यों की यह सभा कायम रहेगी।

कार्यकारिणी सभाके अधिकार

२० बोर्ड के खर्च के लिये बजट तैयार कर मंत्री को देना, साधारण सभा के प्रस्तावों को अमल में लाना, वैतनिक कर्मचारियों के कार्यों की देखरेख करना, वार्षिक रिपोर्ट तैयार कर प्रकाशित कराना, ट्रस्ट मंडल की कार्यवाही का निरीक्षण करना।

२१ कार्यकारिणी सभा का चुनाव प्रति तीसरे वर्ष हुआ करेगा।

२२ यह सभा अपने अध्यक्ष उपाध्यक्ष का चुनाव स्वयं करेगी।

२३ जनरल सभा तथा कार्यकारिणी सभा के मंत्री एकही रहेंगे जो बोर्ड मंत्री रहेंगे।

२४ कार्यकारिणी सभा मंत्रीजी से सूचित स्थान पर प्रतिवर्ष अथवा जरूरत पड़ने पर बीच में भी बुलाई जायगी। इस का कोरम कम से कम ५ सदस्यों का होगा जिस में मंत्री की उपस्थिति अनिवार्य होगी।

२५ नियत समय पर कोरम पूरा नहीं हुआ तो मीटिंग स्थगित समझी जायगी।

२६ स्थगित मीटिंग पुनः ७ रोज बाद बुलाई जायगी, उस समय भी यदि कोरम पूरा न हुआ तो जितने सदस्य उपस्थित रहेंगे, वे ही सभा का कार्य पूर्ण कर लेंगे।

२७ साधारण सभा और कार्यकारिणी सभा के प्रस्ताव बहुमत से पास होंगे, दोनों दलों के समान मत होनेपर अध्यक्ष को १ मत अधिक देने का अधिकार रहेगा, जटिल विवादग्रस्त अवसर प्राप्त होनेपर बोर्ड के जन्मदाता पूज्यश्रीजी की सूचना निर्णयरूपसे सब को मान्य होगी।

२८ किसी सभासद को विशेष प्रसंग पर कारणवशात् सभासदता से पृथक् करने का अधिकार कार्यकारिणी सभा के अध्यक्ष को रहेगा।

–बोर्ड के पदाधिकारी–

२९ अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, व्यवस्थापक, रजिस्ट्रार, मंत्री ये बोर्ड के पदाधिकारी रहेंगे।

३० अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, व्यवस्थापक, ये तीन अवैतनिक और रजिस्ट्रार, तथा मंत्री ये सवैतनिक कर्मचारी होंगे।

–कार्यकारिणी समिति के अध्यक्षोपाध्यक्ष के कर्तव्य व अधिकार–

३१ बोर्ड का कार्य सुचारु और शान्ति से चलाना, संस्था की सपूर्ण कार्यवाही पर ध्यान रखना, संस्था में किसी विषय पर मतभेद उपस्थित हो जाय तो अपना मत देकर दूर करना, आवश्यकतानुसार रजिस्ट्रार, सेक्रेटरी के अतिरिक्त संस्था में वैतनिक कर्मचारी की नियुक्ति करना, ये सभी बातें कार्यकारिणी सभा के अध्यक्ष के अधिकार में रहेंगी। अध्यक्षजी की अनुपस्थिति में उपाध्यक्षजी उन कामों की पूर्ति करेंगे।

नोट–रजिस्ट्रार' तथा मंत्री की नियुक्ति श्रीमद् पूज्यश्रीजी की सलाह से कार्यकारिणी समिति करेगी।

११ सभासदों की योग्यता–ऊपर लिखे हुए ६ प्रकार के सभासदों में धर्मनिष्ठता आस्तिक्य, उत्साह, बोर्ड के लिये अभिरुचिसम्पन्न होना आवश्यक है।

१२ साधारण सभा के अधिकार–कार्यकारिणी मन्डल का चुनाव करना, पदाधिकारियों का चुनाव करना, आडिटर तथा ट्रस्ट मन्डल का चुनाव करना, बोर्ड का नियमोपनियम तैयार करना या करवाना वादग्रस्त जटिल विषयों का निर्णय देना, आदि बोर्ड की सम्पूर्ण सत्ता इस सभा के अधिकार में रहेगी।

१३ साधारण सभा की बैठक–साधारण सभा की बैठक प्रति तीसरे वर्ष होना अनिवार्य है किसी विशेष प्रसग में बीच में भी बुलाई जा सकती है और इस सभा की सूचना १५ दिन पहले सभी सदस्यो को दी जायगी।

१४ साधारण सभा का कोरम कम से कम २१ सदस्यों का होगा, मंत्री की उपस्थिति अनिवार्य है।

१५ सभा के नियत समय में कोरम की पूर्ति नही हुई तो सभा स्थगित समझी जायगी, स्थगित सभा १५ दिन के बाद फिर बुलाई जा सकेगी, उस समय उपस्थित सदस्य सभा का कार्य चलाएँगे।

१६ सभा के नियत समय से १५ मिनट तक अध्यक्षजी सभास्थान में उपस्थित नही हुए तो उपस्थित सदस्योंमें से अध्यक्ष चुनकर सभा का कार्य चलाया जायगा, अध्यक्षजी के उपस्थित होने पर उनका स्थान दे दिया जायगा,

१७ इस सभा के अध्यक्ष यावज्जीव वयोवृद्ध दानवीर सेठ नानचंदजी भगवानदासजी दूगड़ रहेंगे, उनके पश्चात् संरक्षक मेम्बरोंमें से अध्यक्ष का चुनाव बहुमत से होगा।

१८ साधारण सभा के सभासदों की सम्मति आवश्यकीय विषयों पर पत्रद्वारा भी मंगाई जा सकती है, इस तरह ११ मेम्बरों की मतैक्यता होनेपर वह प्रस्ताव अमल में रहेगा। यह नियम सरक्युलर मीटिंग के लिये समझना चाहिए।

—कार्यकारिणी सभा—

१९ साधारण सभा से चुने हुए १५ सदस्यो की यह सभा कायम रहेगी।

कार्यकारिणी सभाके अधिकार

२० बोर्ड के खर्च के लिये बजट तैयार कर मत्री को देना, साधारण सभा के प्रस्तावों को अमल में लाना, वैतनिक कर्मचारियों के कार्यों की देखरेख करना, वार्षिक रिपोर्ट तैयार कर प्रकाशित कराना, ट्रस्ट मंडल की कार्यवाही का निरीक्षण करना।

२१ कार्यकारिणी सभा का चुनाव प्रति तीसरे वर्ष हुवा करेगा।

२२ यह सभा अपने अध्यक्ष उपाध्यक्ष का चुनाव स्वयं करेगी।

२३ जनरल सभा तथा कार्यकारिणी सभा के मंत्री एकही रहेंगे जो बोर्ड मंत्री रहेंगे।

२४ कार्यकारिणी सभा मंत्रीजी से सूचित स्थान पर प्रतिवर्ष अथवा जरूरत पड़ने पर बीच में भी बुलाई जायगी। इस का कोरम कम से कम ५ सदस्यों का होगा जिस में मंत्री की उपस्थिति अनिवार्य होगी।

२५ नियत समय पर कोरम पूरा नहीं हुआ तो मीटिंग स्थगित समझी जायगी।

२६ स्थगित मीटिंग पुनः ७ रोज बाद बुलाई जायगी, उस समय भी यदि कोरम पूरा न हुआ तो जितने सदस्य उपस्थित रहेंगे, वे ही सभा का कार्य पूर्ण कर लेंगे।

२७ साधारण सभा और कार्यकारिणी सभा के प्रस्ताव बहुमत से पास होंगे, दोनों दलों के समान मत होनेपर अध्यक्ष को १ मत अधिक देने का अधिकार रहेगा, जटिल विवादग्रस्त अवसर प्राप्त होनेपर बोर्ड के जन्मदाता पूज्यश्रीजी की सूचना निर्णयरूपसे सब को मान्य होगी।

२८ किसी सभासद को विशेष प्रसंग पर कारणवशात् सभासदता से पृथक् करने का अधिकार कार्यकारिणी सभा के अध्यक्ष को रहेगा।

–बोर्ड के पदाधिकारी–

२९ अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, व्यवस्थापक, रजिस्ट्रार, मंत्री ये बोर्ड के पदाधिकारी रहेंगे।

३० अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, व्यवस्थापक, ये तीन अवैतनिक और रजिस्ट्रार, तथा मंत्री ये सवैतनिक कर्मचारी होंगे।

–कार्यकारिणी समिति के अध्यक्षोपाध्यक्ष के कर्तव्य व अधिकार–

३१ बोर्ड का कार्य सुचारु और शान्ति से चलाना, संस्था की संपूर्ण कार्यवाही पर ध्यान रखना, संस्था में किसी विषय पर मतभेद उपस्थित हो जाय तो अपना मत देकर दूर करना, आवश्यकतानुसार रजिस्ट्रार, सेक्रेटरी के अतिरिक्त संस्था में वैतनिक कर्मचारी की नियुक्ति करना, ये सभी बातें कार्यकारिणी सभा के अध्यक्ष के अधिकार में रहेंगी। अध्यक्षजी की अनुपस्थिति में उपाध्यक्षजी उन कामों की पूर्ति करेंगे।

नोट–रजिस्ट्रार' तथा मंत्री की नियुक्ति श्रीमद् पूज्यश्रीजी की सलाह से कार्यकारिणी समिति करेगी।

व्यवस्थापक के कर्तव्य व अधिकार

३२ बोर्ड का पक्का हिसाव रखना, सेक्रटरी द्वारा प्राप्त संस्था की रक्कम को स्वीकार करना, सेक्रेटरी द्वारा किये हुए मासिक खर्च का बराबर जांच कर के उस के अनुसार बिल को चुकाना और बोर्ड के चालू खर्च के लिये रुपये२०० तक शिल्लक अपने पास रखना।

रजिस्ट्रार के कर्तव्य व अधिकार

३३ रजिस्ट्रारजी के आधीन परीक्षासम्बधी कारवाई अर्थात, केन्द्रों की स्वीकृति देना, परीक्षा-तिथि नियत करके वर्तमानपत्रों में प्रकाशनार्थ भेजना, तत्र केन्द्र व्यवस्थापकों को सूचित करना तथा परीक्षक कायम करके उनसे प्रश्नपत्र मंगाना, संशोधन करके प्रकाशित कराना, केन्द्रों से आई हुई प्रश्नोत्तर कापियों को तत्तत स्थानों में संशोधनार्थ भेजना, परीक्षाफल का कच्चा ढांचा सर्वांगीण तैयार करके मंत्री के आधीन करना, रजिस्ट्रार या मंत्री के नाम पर बाहरगांव से आए हुए सभी जटिल प्रश्नों का निराकरण करके समाज को संतुष्ट रखना, तथा उन सभी लेखों की यथावत् प्रतिलिपि अपने रजिस्टर में दर्ज करना, आवेदनपत्रादि केन्द्रों में भेजना, और मंत्रीजी के कागजातों का निरिक्षण करके अपनी योग्य सूचना देना, परिक्षाफल प्रकाशित करवा के तत्तत् स्थानों में अर्थात् हरप्रकार के सदस्यों को और केन्द्रों में भेजना, प्रमाणपत्र पदक तैयार करके उचित समय पर केन्द्रों में प्रेषित करना, ये सभी कार्य रजिस्ट्रार के आधीन रहेंगे।

मंत्रीजी के आधीन रजिस्ट्रार से अतिरिक्त सम्पूर्ण कार्यवाही जैसे संस्था में आई हुई रकमों की रसीद देना, दाताओं के पास भेजना व्यवस्थापजी के पास रकम देकर रजिस्टर पर सही लेना, आय, व्यय, का कच्चाविवरण अपने पास रखना, रजिस्ट्रारजी से प्राप्त रिजल्ट पक्के रजिस्टर पर दर्ज करना, तत्तत् केंद्रों में पाठ्यपुस्तकादि भेजना, अध्यक्ष तथा रजिस्ट्रार कीसम्मति से वार्षिक सभा की तिथि निर्णय कर के जाहिर करना तथा, निमंत्रणपत्र आदि सदस्यों के पास भेजना, आय-व्यय का मासिक बिल तैयार कर के व्यवस्थापकजी से लेना और पद्धतिअनुसार सभी कर्मचारियों को वितरण करना आदि बोर्ड सम्बधी सम्पूर्ण जिम्मेवारियां उनके ऊपर रहेंगी और दैनिक खर्च का निर्वाह करने के लिये १०० रुपये तक उन के पास शिल्लक रहेगा।

नोट-कारणवशात् रजिस्ट्रारजी की अनुपस्थिति में मंत्रीजी, एवं मंत्रीजी की अनुपस्थिति में रजिस्ट्रारजी का सम्पूर्ण काम चलायगें।

रजिस्ट्रार या मंत्री इन दोनों में से किसी एक को लम्बे अवकाश पर जाना हो और बोर्ड के कार्य में अडचण पडती हो तो तात्कालिक कार्य चलाने के लिये योग्य व्यक्ति को योग्य वेतन से नियुक्त कर लेने का रजिस्ट्रार को अधिकार रहेगा।

' दिन दूनी रात चौगुनी ' इस कहावत के अनुसार जिस तरह बोर्ड उन्नति तथा प्रचार हो उसको ध्येय बनाकर अपने २ अधिकार के कार्यभारों को सभालेंगे; और जरूरत पडने पर परस्पर में बौद्धिक सहायता का आदान प्रदान कर सकेंगे।

बोर्ड ऑफ ट्रस्ट्रीज (ट्रस्टमडल)

३५ यह बोर्ड स्थानकवासी समाज के ७ सदस्यों का होगा। रजिष्ट्रार, अध्यक्ष, व्यवस्थापक, ये ३ ट्रष्टी कायम रखकर बाकी ४ ट्रस्टियोंका चुनाव प्रति तीसरे वर्ष साधारण (जनरल) सभा करती रहेगी, सिर्फ वर्तमान रजिस्ट्रार के लिये स्थानकवासी समाज शब्द छूट है।

३६ अचानक कीसी ट्रस्टी का स्थान रिक्त हो जाय तो कार्यकारिणी समिति की सहायता से उस स्थान की पूर्ति ट्रस्ट मंडलकर सकेगा।

३७ विशिष्ट परिस्थिति में ट्रस्ट के सदस्यों में परिवर्तन करने का अधिकार कार्यकारिणी समिति को रहेगा।

ट्रस्टमंडल का अधिकार

३८ सस्था की स्थायी रकम का व्याज उत्पन्न करना तथा बेंक या साहूकारी पेढियों आदिमें जहां पर सस्था की रकम ठेव रखी जाय, वहां पर ट्रस्ट मंडल के अध्यक्ष या व्यवस्थापक के नाम से जमा करा कर उनके नाम से ठेव चिटी लेना, उचित समझे तो कोई स्थावर जायदाद सस्था के नाम से खरीदी करना व तारणापर देना, सस्था की रकम जहां रखी हो वहां से उठाना या दूसरी जगह रखना आदि,

३९ जिस स्थान पर संस्था की रकम व्याज से ठेव रूप में रखी है, वह कायदे के अनुसार मुदतबाहर न जाय इस तरफ ट्रस्ट मंडल अपना पूर्ण लक्ष रखे और कायदे के अनुसार रकम वसूली के लिये तजवीज करे।

४० ट्रस्ट मंडल को अपने अध्यक्ष तथा मत्री का चुनाव अपने मंडल में से करने का अधिकार रहेगा, कार्यकारिणी सभा के अवसर पर ट्रस्ट मडल अपनी कार्यवाही का रिपोर्ट पेश करेगा, और उस की सम्मति से कार्यकारिणी सभा बजट तय्यार करेगी।

४१ बोर्ड की स्थायी रकम में से ट्रस्ट मडल या कार्यकारिणी सभा को खर्च करने का अधिकार नही है। किसी वर्ष में सयोग ऐसा प्रसग आ भी जाय तो दूसरे वर्ष उस की पूर्ति कर देनी होगी।

४२ बोर्ड में एक पदक खाता है उसका व्याज पदक देने मे ही लगाया जा सकता है, दूसरे मद मे नही।

४३ बोर्ड में निर्धारित पाठ्यक्रम के प्रकाशनार्थ कितनेक दातारों ने सहायता दी है, वह रकम " धार्मिक पुस्तक-प्रकाशन " खाते बोर्ड मे जमा है। उसका विनियोग नीचे लिखे उपनियमों के अनुसार होगा।

(क) इस रकम के ब्याज से श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन तथा उन उन पुस्तकों के सम्पादकों को पुरस्कार देने, आदिकार्य होते रहेंगे।

(ख) इन खाते की मूल रकम को खर्च करने का अधिकार किसी को नही है किसी वर्ष में ऐसा प्रसंग आ जाय तो दूसरे वर्ष में उसकी पूर्ति कर देनी चाहिए।

(ग) ये पुस्तकें मूल्य से दी जायेंगी, इनकी बिक्री का पैसा उसी खाते में जमा होता रहेगा।

४४ इस संस्था में खर्च से अधिक रकम उत्पन्न हो जाने पर भी किसी दूसरी संस्था में खर्च करने का अधिकार ट्रस्ट मंडल या कार्यकारणी सभा को नहीं है, किन्तु इसी के क्षेत्र को और अधिक विशाल बनाने की योजना करें।

प्रसंगवशात् बचत रकम का उपयोग श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षणप्रचारक सभा के अन्दर कर सकते है।

४५ समाजहित के लिये अधिक परिश्रम करके इस बोर्ड के जन्मदाता श्रीमज्जैनाचार्य, पूज्यश्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी महाराज ने समाज को जागृत कर उस की सहायता से इस बोर्ड को स्थापित कराया है इसलिये साधारण सभा कार्यकारिणी सभा, ट्रस्ट मंडल, और कर्मचारी वर्ग को पूज्यश्रीजी की सूचना सदैव मान्य होगी।

४६ प्रसंगोपात्त पूज्यश्रीजीकी सूचना के अनुसार बोर्ड के रजिस्ट्रार या मंत्री जो कार्य कर लेगें, वह बोर्ड को सदैव मान्य होगा।

४७ बोर्ड की परीक्षासंबंधी सम्पूर्ण कारवाई करने का रजिस्ट्रार तथा मंत्री को स्वतंत्र अधिकार रहेगा।

४८ मंत्रीजी के प्रबन्ध से इस बोर्ड में एक विद्वत्परिषद् कायम रहेगी, जो समयानुसार महाराजश्री की सूचना को लक्ष्य में रखते हु परीक्षाओं के पाठ्यक्रम तथा नियमोपनियमों में न्यूनाधिक्य कर सकेगी।

४९ धार्मिक परिक्षाओं में जिन पाठशालाओं की उत्तरोत्तर उन्नति दीख पडेगी, उन पाठशालाओं के अध्यापकों को बोर्ड की तरफ से अध्यापकीय प्रमाणपत्र तथा पुरस्कार दिया जायगा।

५० उक्त नियमों में परिवर्तन, परिवर्द्धन, आवश्यकतानुसार, जनरल सभाद्वारा होता रहेगा।

५१ इस नियमावली का अमल दरामद वीर सं २४७४ मिति कार्तिक शुक्ल १ से माना जायगा।

उक्त नियमोपनियम हम लोगों की दृष्टि से योग्य है, संशोधन, परिवर्धन, करके प्रकाशित करने के लिए स्वीकृत दी जाती है।

हस्ताक्षर

१ श्री चन्द्रभान रूपचंद डाकलिया- बेलापुररोड

२ श्री माणकचंद किसनदास मुथा-अहमदनगर

३ श्री रतनचंद भिकमदास बांठिया-पनवेल

सदस्य

नियमावलि-संशोधन-समिति

श्रीतिलोकरत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड-पाथर्डी (अहमदनगर)

॥ ॐ अर्हन् ॥

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी, (अहमदनगर)

— परीक्षासम्बन्धी नियमोपनियम —

१— इस बोर्ड की परीक्षाएँ प्रतिवर्ष ७ प्रकार की होंगी'— [१] प्रवेश, [२] प्रथमा [३] धर्मभूषण, [४] स्था. जैन सिद्धान्तविशारद, [५] स्था. जैन सिद्धान्तप्रभाकर, [६] स्था. जैन सिद्धान्तशास्त्री, [७] स्था. जैन सिद्धान्ताचार्य। इन परीक्षाओं में से किसी भी प्रान्त के जैन-अजैन परीक्षार्थी प्रविष्ट हो सकते है।

२— प्रवेश और प्रथमा परीक्षा में दो दो पत्र होंगे, प्रत्येक पत्र १०० पूर्णांक का होगा। उत्तीर्ण होने के लिए छात्रों को प्रत्येक पत्र में कम से कम ३४ अंक प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

३— प्रवेश परीक्षा परीक्षार्थी स्वेच्छानुसार लेखी या मौखिक दे सकता है, जिसका उल्लेख आवेदन पत्र में स्पष्ट कर देना चाहिए

४— प्रवेश परीक्षा सम्पूर्ण ही होगी, अर्थात्, दोनों पत्र की परीक्षा एक ही वर्ष में समाप्त करनी होगी।

५— प्रथमा परीक्षा लेखी ही होगी। इस परीक्षा को परीक्षार्थी, अपने योग्यतानुसार सम्पूर्ण या पत्रश भी दे सकता है।

(क) उक्त दोनों परीक्षाओं में प्रथम पत्र मे अनुत्तीर्ण और द्वितीय पत्र में उत्तीर्ण छात्रों को पुन. सम्पूर्ण परीक्षा देनी होगी, परन्तु प्रथम पत्र में उत्तीर्ण एव द्वितीय पत्र में अनुत्तीर्ण परीक्षार्थिओं को अगले वर्षमें केवल द्वितीय पत्र की ही परीक्षा देनी होगी।

(ख) उक्त दोनो परीक्षाओं में से अपने योग्यतानुसार किसी भी परीक्षा में प्रविष्ट हो सकता है।

-- धर्मभूषण या स्था. जैन सिद्धान्तविशारद परीक्षा --

६— इन परीक्षाओं में २-२ खंड होंगे और हरएक खंड मे दो दो पत्र होंगे।

(क) ये परीक्षाएँ सम्पूर्ण या खण्डश ली जायेंगी, पत्रश नहीं।

ख)इन परीक्षाओं में सम्पूर्ण परीक्षा देनेवाला परीक्षार्थी प्रथम खंड में अनुत्तीर्ण होकर द्वितीय खण्ड में उत्तीर्ण है, तो उसको पुन: सम्पूर्ण परीक्षा देनी होगी, परन्तु यदि प्रथम खण्ड में उत्तीर्ण है तो उसको अगले वर्ष सिर्फ द्वितीय खण्ड की ही परीक्षा देनी होगी।

ग) प्रथमा परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाला छात्र इन दोनों परीक्षाओं में से किसी एक में प्रविष्ट हो सकेगा। परन्तु धर्मभूषण परीक्षोत्तीर्ण छात्र "सिद्धांतप्रभाकर" परीक्षा में प्रविष्ट नहीं हो सकेगा।

७-प्रवेश, प्रथमा, धर्मभूषण, सिद्धांतविशारद, इन चारों परीक्षाओं में उत्तीर्ण परीक्षार्थी निम्न श्रेणीयों में विभक्त किए जायेंगे।

क) प्रथम श्रेणी—६० प्रतिशत अथवा अधिक अंक प्राप्त करने पर

ख) द्वितीय ,,—४५ ,, ,, ,, ,, ,,

ग) तृतीय ,,—३४ ,, ,, ,, ,, ,,

८—उक्त परीक्षाओं के प्रश्न पत्र हिन्दी भाषामें रहेंगे, प्रश्नोत्तर अपनी मातृभाषा हिन्दी, मराठी, गुजराती, में लिखे जा सकते हैं। धर्मभूषण या विशारद में प्रत्येक पत्र के पूर्णांक १०० रहेंगे, उत्तीर्ण होने के लिए प्रत्येक पत्र में ३५ अंक प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

–९वा जैन सिद्धांतप्रभाकर परीक्षा–

१०—यह परीक्षा दो खण्डों में ली जायगी, नियम नं ६ (ख) इस परीक्षा के लिए भी लागू होगा।

११—इस परीक्षा मे तत्तत् पाठ्यग्रंथों के प्रश्नपत्र तत्तत् भाषा में में रहेंगे, अर्थात् संस्कृत पाठ्यग्रन्थ के संस्कृत मे, प्राकृत में एव हिंदी के हिन्दी में रहेंगे।

१२—इस बोर्ड की "सिद्धांतविशारद" परीक्षा या तत्समकक्ष परीक्षाओं मे उत्तीर्ण परीक्षार्थी ही इस परीक्षा में प्रविष्ट हो सकेंगे।

स्था जैन सिद्धातविशारद परीक्षा की समकक्ष परीक्षाएं

क) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, की, "प्रथमा परीक्षा" (जैन दर्शन लेकर)

ख) गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारस, की प्रथमा परीक्षा

ग) बंगाल संस्कृत एसोशियेशन, कलकत्ता, की न्यायप्रथमा

–स्था. जैन सिद्धातशास्त्री परीक्षा–

१३) यह परीक्षा तीन खण्डों मे होगी, हरएक खण्ड में तीन तीन पत्र रहेंगे। यह परीक्षा खण्डश: दी जायगी।

क) जो छात्र इस बोर्ड की प्रभाकर परीक्षा उत्तीर्ण होंगे, अथवा तत्समकक्ष परीक्षाओं में उत्तीर्ण होंगे, वे ही प्रविष्ट हो सकेंगे

ख) "स्था. जैन सिद्धांतप्रभाकर" की समकक्ष परीक्षाएँ-

१) धार्मिक परीक्षा बोर्ड, रतलाम, की, "विशारद परीक्षा"

२) गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस, की "मध्यमा"—

३) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की, मध्यमा"—(जैन दर्शन लेकर)

४) बंगाल संस्कृत एसोशिएशन कलकत्ता की"न्याय मध्यमा परीक्षा"

-स्था जैन सिद्धांताचार्य परीक्षा-

१४—यह परीक्षा तीन खण्डों में होगी, हरएक खण्ड में तीन तीन पत्र रहेंगे यह परीक्षा भी खण्डश ही होगी।

क) तीसरे खण्ड में मौखिक परीक्षा शास्त्रार्थ पद्धति पर होगी जो जैन दर्शन के विशिष्ट विद्वान् द्वारा अथवा एक अधिक प्रश्न पत्र द्वारा ली जायगी।

ख) इस बोर्ड की शास्त्री परीक्षा अथवा तत्समकक्ष परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्र प्रविष्ट हो सकेंगे।

—"स्था जैन सिद्धांतशास्त्री" की समकक्ष परीक्षाएँ—

१) श्री धार्मिक परीक्षा बोर्ड, रतलाम की "शास्त्री परीक्षा"

२) गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस, की ,,

३) बंगाल संस्कृत एसोशिएशन, कलकत्ता, की "न्यायतीर्थ परीक्षा"

४) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की "साहित्यरत्न,,परीक्षा (जैन दर्शन लेकर)

५)किसी भी युनिवर्सिटी की बी ए. परीक्षा (संस्कृत या अर्धमागधी लेकर)

१५)-सिद्धांतप्रभाकर, सिद्धांतशास्त्री, सिद्धाताचार्य इन तीनों परीक्षाओं में हरएक पत्र में पूर्णाङ्क १०० रहेगा, उत्तीर्ण होने के लिए प्रत्येक पत्र में कम से कम ४० अंक प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

—श्रेणी विभाग नियम ७ के अणुसार ही रहेगा—

१६—एकदम सिद्धातशास्त्री, अथवा सिद्धांताचार्य परीक्षा में प्रविष्ट होने के लिए किसी विशिष्ट परीक्षार्थी को स्वीकृति प्रदान करने का अधिकार रजिस्ट्रार महोदय को है।

१७—आवेदन पत्र भरने से पूर्व समकक्ष परीक्षाओं में उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को अपने आवश्यक उत्तीर्ण परीक्षा के प्रमाण पत्र को या उस की प्रमाणित प्रतिलिपि को भेजकर रजिस्ट्रार श्री तिलोक र० स्था० जैन धा० परीक्षा बोर्ड पाथर्डी अहमदनगर, की विशेष लिखित आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए।

—आवेदन पत्र सम्बन्धी नियम—

१८— परीक्षा में प्रविष्ट होने के लिए आवेदनपत्र प्रार्थ्यर्थ १५ अक्टूबर के पूर्व रजिस्ट्रार श्री तिलोकरत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी(अहमदनगर) के

ख) इन परीक्षाओं में सम्पूर्ण परीक्षा देनेवाला परीक्षार्थी प्रथम खंड में अनुत्तीर्ण होकर द्वितीय खण्ड में उत्तीर्ण है, तो उसको पुन सम्पूर्ण परीक्षा देनी होगी, परन्तु यदि प्रथम खण्ड में उत्तीर्ण है तो उसको अगले वर्ष सिर्फ द्वितीय खण्ड की ही परीक्षा देनी होगी।

ग) प्रथमा परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाला छात्र इन दोनों परीक्षाओं में से किसी एक में प्रविष्ट हो सकेगा। परन्तु धर्मभूषण परीक्षोत्तीर्ण छात्र "सिद्धांतप्रभाकर" परीक्षा में प्रविष्ट नही हो सकेगा।

७–प्रवेश, प्रथमा, धर्मभूषण, सिद्धांतविशारद, इन चारों परीक्षाओं में उत्तीर्ण परीक्षार्थी निम्न श्रेणीयों में विभक्त किए जायेंगे।

क) प्रथम श्रेणी—६० प्रतिशत अथवा अधिक अंक प्राप्त करने पर

ख) द्वितीय ,,—४५ ,, ,, ,, ,, ,,

ग) तृतीय ,,—३४ ,, ,, ,, ,, ,,

८—उक्त परीक्षाओं के प्रश्न पत्र हिन्दी भाषामें रहेंगे, प्रश्नोत्तर अपनी मातृभाषा हिन्दी, मराठी, गुजराती, में लिखे जा सकते है। धर्मभूषण या विशारद में प्रत्येक पत्र के पूर्णांक १०० रहेंगे, उत्तीर्ण होने के लिए प्रत्येक पत्र में ३५ अंक प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

–स्था जैन सिद्धातप्रभाकर परीक्षा–

१०—यह परीक्षा दो खण्डो में ली जायगी, नियम न. ६ (ख) इस परीक्षा के लिए भी लागू होगा।

११—इस परीक्षा मे तत्तत् पाठ्यग्रथो के प्रश्नपत्र तत्तत् भाषा में में रहेंगे, अर्थात् संस्कृत पाठ्यग्रन्थ के संस्कृत में, प्राकृत में एव हिंदी के हिन्दी में रहेंगे।

१२—इस बोर्ड की "सिद्धांतविशारद" परीक्षा या तत्समकक्ष परीक्षाओ मे उत्तीर्ण परीक्षार्थी ही इस परीक्षा में प्रविष्ट हो सकेंगे।

स्था जैन सिद्धातविशारद परीक्षा की समकक्ष परीक्षाएँ

क) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, की, "प्रथमा परीक्षा" (जैन दर्शन लेकर)

ख) गवर्नमेंट संस्कृत कालेज' बनारस, की प्रथमा परीक्षा

ग) बगाल संस्कृत एसोशियेशन, कलकत्ता, की न्यायप्रथमा

–स्था जैन सिद्धातशास्त्री परीक्षा–

१३) यह परीक्षा तीन खण्डो में होगी, हरएक खण्ड में तीन तीन पत्र रहेंगे। यह परीक्षा खण्डश दी जायगी।

क) जो छात्र इस बोर्ड की प्रभाकर परीक्षा उत्तीर्ण होगे, अथवा तत्समकक्ष परीक्षाओं में उत्तीर्ण होगे, वे ही प्रविष्ट हो सकेंगे

ख) "स्था. जैन सिद्धांतप्रभाकर" की समकक्ष परीक्षाएँ–

१) धार्मिक परीक्षा बोर्ड, रतलाम, की, "विशारद परीक्षा"

२) गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस, की "मध्यमा"—

३) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की, मध्यमा"—(जैन दर्शन लेकर)

४) बगाल संस्कृत एसोशिएशन कलकत्ता की"न्याय मध्यमा परीक्षा"

-स्था जैन सिद्धाताचार्य परीक्षा-

१४—यह परीक्षा तीन खण्डों में होगी, हरएक खण्ड में तीन तीन पत्र रहेंगे यह परीक्षा भी खण्डश ही होगी।

क) तीसरे खण्ड में मौखिक परीक्षा शास्त्रार्थ पद्धति पर होगी जो जैन दर्शन के विशिष्ट विद्वान् द्वारा अथवा एक अधिक प्रश्न पत्र द्वारा ली जायगी।

ख) इस बोर्ड की शास्त्री परीक्षा अथवा तत्समकक्ष परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्र [illegible] हो सकेंगे।

—"स्था जैन सिद्धांतशास्त्री" की समकक्ष परीक्षाएँ—

१) श्री धार्मिक परीक्षा बोर्ड, रतलाम की "शास्त्री परीक्षा"

२) गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस, की ,,

३) बंगाल संस्कृत एसोशिएशन, कलकत्ता, की "न्यायतीर्थ परीक्षा"

४) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की "साहित्यरत्न,,परीक्षा (जैन दर्शन लेकर)

५)किसी भी युनिवर्सिटी की बी ए. परीक्षा (संस्कृत या अर्धमागधी लेकर)

१५)-सिद्धांतप्रभाकर, सिद्धांतशास्त्री, सिद्धांताचार्य इन तीनों परीक्षाओं में हरएक पत्र में पूर्णांक १०० रहेगा, उत्तीर्ण होने के लिए प्रत्येक पत्र में कम से कम ४० अंक प्राप्त करना अनिवार्य होगा।

—श्रेणी विभाग नियम ७ के अणुसार ही रहेगा—

१६—एकदम सिद्धातशास्त्री, अथवा सिद्धाताचार्य परीक्षा में प्रविष्ट होने के लिए किसी विशिष्ट परीक्षार्थी को स्वीकृति प्रदान करने का अधिकार रजिस्ट्रार महोदय को है।

१७—आवेदन पत्र भरने से पूर्व समकक्ष परीक्षाओं में उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को अपने आवश्यक उत्तीर्ण परीक्षा के प्रमाण पत्र को या उस की प्रमाणित प्रतिलिपि को भेजकर रजिस्ट्रार श्री तिलोक र० स्था० जैन धा० परीक्षा बोर्ड पाथर्डी अहमदनगर, की विशेष लिखित आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए।

—आवेदन पत्र सम्बन्धी नियम—

१८— परीक्षा में प्रविष्ट होने के लिए आवेदनपत्र प्रार्थ्यर्थ १५ अक्टूबर के पूर्व रजिस्ट्रार श्री तिलोकरत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी (अहमदनगर) के

कार्यालय में प्रार्थना पत्र आ जाना चाहिए, एवं आवेदनपत्र प्राप्त हो जाने पर खाना-पूरी करके १५ दिसम्बर तक रजिस्ट्रार कार्यालय में आ जाना चाहिए, इसके पश्चात् आए हुवे आवेदनपत्रों को स्वीकृत करना या न करना बोर्ड की सुविधा पर निर्भर है।

१६--आवेदनपत्र सम्पूर्ण छात्रों का एक पाठशाला से एक ही बार आना चाहिए।

२०--छात्र स्वयं आवेदनपत्र के लिए प्रार्थना न करें, पाठशालीय छात्रों को केन्द्र व्यवस्थापक द्वारा प्रार्थनापत्र भेजना चाहिए।

प्राइवेट छात्र अपने समीपस्थ केन्द्र व्यवस्थापक महोदय के मार्फत आवेदनपत्र मंगा सकते है, और उन्ही के द्वारा भेज सकते है।

२१--आवेदन पत्र के पिछले पृष्ठ पर दातव्य परीक्षा से पूर्व की परीक्षाएँ किस में किस केन्द्र से उत्तीर्ण की है, इसका उल्लेख अवश्य करना चाहिए, अन्यथा आवेदनपत्र स्वीकृत न हो सकेगा।

--परीक्षा--शुल्क--

२२-- जब तक बोर्ड की तरफ से नई सूचना न निकले तब तक प्रवेश, प्रथमा, धर्मभूषण, विशारद, ये परीक्षाएँ नि.शुल्क हुआ करेंगी, शेष परीक्षाओं का शुल्क इस प्रकार है।

(१) सिद्धान्तप्रभाकर परीक्षा सम्पूर्ण	=	२	रु.
(२) ,, ,, प्रतिखंड	=	१	रु
(३) सिद्धान्तशास्त्री परीक्षा प्रतिखंड	=	३	रु.
(४) सिद्धान्ताचार्य परीक्षा प्रतिखंड	=	४	रु.

—बोर्ड की परीक्षाओं में सम्मिलित होनेवाले—
--पूज्य साधु-साध्वीवर्ग के लिये सुविधाएँ--

२३—साधु- साध्वीवर्ग जिस किसी स्थान से परीक्षाओं मे प्रविष्ट हो सकते है उनके लिए केन्द्र नियम का बंधन नही है।

(क) प्रवेश, प्रथमा, धर्मभूषण, विशारद चार परीक्षाएँ स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति के निरीक्षकत्व में हो सकेंगी। प्रश्नपत्रादि यथा समय बोर्ड आफिस से भेज दिया जायगा। स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्ति का पूर्ण नाम एवं पता परीक्षातिथि से १ मास पूर्व में ही रजिस्ट्रार श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, के कार्यालय में आ जाना चाहिए।

(ख) सिद्धान्तप्रभाकर, सिद्धांतशास्त्री, सिद्धान्ताचार्य, परीक्षाएँ बोर्ड की तरफ से नियुक्त निरीक्षक के समक्ष ली जायेंगी, जिनके आने-जाने का खर्च तत्तत् स्थानीय श्रीसंघ को देना होगा।

(ग) मुनिवृंद तथा साध्वीवर्ग प्रथम की ५ परीक्षाओं में अपने योग्यतानुसार किसी भी परीक्षामें प्रविष्ट हो सकेंगे, शेष परीक्षाएँ क्रमश देनी होंगी।

केंद्र सम्बधी नियम

२४– प्रवेश, प्रथमा, धर्मभूषण, विशारद, इन परीक्षाओं के लिए हरएक स्थानों में बोर्ड के नियमानुसार केंद्रस्वीकृति दी जा सकती है. जहा एक साथ ५ से अधिक परीक्षार्थी बैठ सकते हों।

(क) जहा से धर्मभूषण, विशारद, के परीक्षार्थी उत्तीर्ण हो चुके हैं, वहा की सम्पूर्ण स्थिति की जांच करके प्रभाकर परीक्षा के लिए केन्द्रस्वीकृति दी जा सकती है।

(ख) शास्त्री, सिद्धांताचार्य परीक्षाएँ नियमित केन्द्रों में होगी। जैसे—

१— बरार, सी. पी खानदेश, कर्नाटक, निजामस्टेट महाराष्ट्र आदि दक्षिण प्रान्तों के लिए–श्री तिलोक जैन पाठशाला-पाथर्डी (अहमदनगर)

२— मालवा, मेवाड, मारवाड, राजपुताना, पजाब, काठियावाड, गुजरात के लिए श्री जैन गुरुकुल–ब्यावर (राजपुताना)

३—बिहार, बंगाल, सयुक्त प्रान्त, के लिए श्री पार्श्वनाथ जैन विद्याश्रम, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय-बनारस (यू पी)

२५— संस्था के अध्यक्ष, सेक्रेटरी, अथवा किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को केन्द्र-व्यवस्थापक नियुक्त किया जायगा, केन्द्रसम्बधी सम्पूर्ण जिम्मेवारी उन्ही के ऊपर रहेगी।

२६— केन्द्रस्वीकृति एव केन्द्र–व्यवस्थापक की मजरी के लिये प्रार्थनापत्र अन्तिम जौलाई तक रजिस्ट्रार कार्यालय में आ जाना चाहिए।

२७— परीक्षा-तिथि से १५ दिवस पूर्व में प्रवेशपत्र, मौखिक परीक्षा के लिए रिजल्ट फार्म, सूचनापत्र, आदि परीक्षासम्बधी कागजात भेज दिये जायेंगे।

२८–परीक्षा-तिथि से दो रोज पूर्व प्रत्येक केन्द्र-व्यवस्थापक के पास मुहरबन्द प्रश्नपत्र पहुँच जायेंगे, उन मुहरबन्द लिफाफे को परीक्षा-समय पर ५ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के समक्ष खोलकर नियत समय पर परीक्षार्थियों को वितरण करें, एव बोर्ड ऑफिस से भेजी गई सूचनाओं का पालन करते हुवे, पूर्ण व्यवस्था रखें।

२९–रजिस्ट्रारको अधिकार है कि परीक्षाके दिनोंमें किसी केन्द्र का निरीक्षण स्वय करें या अन्य व्यक्ति द्वारा गुप्त अथवा प्रगटरूप से करावें। केन्द्र व्यवस्थापकों का कर्तव्य होगा कि मुहरबन्द प्रश्नपत्र, मुहरबन्द लिखित उत्तरपुस्तिकायें तथा अन्यान्य वस्तुयें बोर्ड द्वारा नियुक्त निरीक्षक को दिखला देवें, निरीक्षण समय में जिस केन्द्र की प्रामाणिकता में कुछ शका होगी वह केन्द्र तोड दिया जायगा।

३०–इस बोर्ड की परीक्षाओं में जो छात्र उत्तीर्ण होंगे उनका प्रमाणपत्र, पदक पारितोषिक यथासमय केन्द्र व्यवस्थापकों के पास भेज दिया जायगा, उन को संस्था के वार्षिकोत्सव अथवा विशिष्ट अवसर पर वितरण करें तथा उस का विवरण परीक्षा बोर्ड कार्यालय में भेजने का लक्ष्य रखें।

३१–बोर्ड की परीक्षाओ मे उत्तीर्ण छात्रों की नामावली (परीक्षाफल) योग्य समाचारपत्रों में प्रकाशित कर दी जायगी एव केन्द्र-व्यवस्थापक के पास भी भेज दी जायगी

३२–बोर्ड की सभी परीक्षाएँ प्राय.फरवरी मास मे हुआ करेंगी, जिसकी निश्चित सूचना यथा समय केन्द्रों में भेज दी जायगी, तथा वर्तमान पत्रो मे भी प्रकाशित करा दिया जायगा।

३३–बोर्ड की परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों को जो प्रमाणपत्र दिया जायगा, यदि वह खो गया तो, वर्ष, स्थान, रोलनम्बर, परीक्षास्थान. लिखकर केन्द्र-व्यवस्थापक के मार्फत प्रार्थनापत्र रजिस्ट्रार कार्यालय मे भेजने पर पुन' प्रमाणपत्र की नकल मिल सकेगी, परन्तु उसके लिये १ रु. शुल्क देना पडेगा।

३४–श्री. ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी. की परीक्षाओ में अच्छे नम्बर से उत्तीर्ण होनेवाले छात्रों को श्री वर्धमान जैन धर्मशिक्षण प्रचारक सभा, पाथर्डी, (अहमदनगर), की तरफसे नियमानुसार स्कॉलरशिप (छात्रवृत्ति) प्रदान करने की योजना की गई है. जिसकी सूचना तत्तत्. पाठशालाध्यक्षो को भेज दी जायगी एव वर्तमानपत्रो में भी प्रकाशित करा दिया जायगा।

३५–परिक्षासम्बन्धी पत्रव्यवहार रजिस्ट्रार, श्री तिलोकरत्न स्था. जैन धार्मिक बोर्ड, पाथर्डी (अहमदनगर), इस पते से करना चाहिए।

३६–उक्त नियमों में आवश्यकतानुसार संशोधन, एवं परिवर्धन. विद्वत्परिषद् की अनुमतिसे रजिस्ट्रार महोदय को करने का अधिकार है।

३७–इस नियमावली का अमल दरासद सन् १९५० की परीक्षा से जब तक नई सूचना न निकले तब तक हो सकेगा।

पारितोषिक व प्रमाणपत्र देने का नियम

३८–जिस परीक्षा में जितने पत्र या खण्ड है वे सभी पत्र या खण्ड पास कर लेने पर ही प्रमाणपत्र तथा पारितोषिक मिल सकेगा, पत्र या खण्डमें नही।

३९–यदि बोर्ड में काफी रकम है तो उत्तीर्ण सभी छात्रों को पदक या पारितोषिक दिया जायगा। अन्यथा बोर्ड के निर्णयानुसार परिमित छात्रो को दिया जायगा।

४०–पारितोषिक प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रों को ही नीचे लिखे अनुसार दिया जायगा—

	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी
प्रवेश परीक्षा—	।।।	।।
प्रथमा परीक्षा—	१।।	१।
धर्मभूषण परीक्षा या	३	२
सिद्धान्तविशारद	,,	.

सि प्रभाकर परीक्षा	५	४
सि. शास्त्री परीक्षा	१५	११
सि. आचार्य परीक्षा	३५	२५

नोट—१—सिध्दान्ताचार्य परीक्षा में सर्वप्रथम आनेवाले छात्र को पारितोषिक" के अलावा बोर्ड की तरफसे "स्वर्णपदक" दिया जायगा और उस छात्र को 'श्री अमोलक जैन स्थानकवासी सहायक-समिति, पूना" की तरफसे ५१ रु. का श्री "रंभाकुँवर पारितोषिक" भी विशेष रूप से प्राप्त होनेपर दिया जायगा।

२—उक्त सभी परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी उत्तीर्ण सर्वोच्च आनेवाले छात्र को निम्न रूप से विशिष्ट "रजतपदक" दिये जायगें।

शास्त्री परीक्षामें—आकोला (वरार) निवासी श्रीमान् अमरचन्द गोविन्दजी कडोर्ड द्वारा प्रदत्त अमरचन्दपदक"।

प्रभाकर परीक्षामें- श्रीमान् दानवीर सेठ नानचंदजी भगवानदासजी दूगड़ घोडनदी, द्वारा प्रदत्त पारखकुटुम्बपदक"।

धर्मभूषण परीक्षा में देडगांव (अहमदनगर) निवासी श्रीमान् सेठ नवलमलजी सन्तोकचन्दजी मुणोत द्वारा प्रदत्त "नवलमल मुणोतपदक"

सिद्धांतविशारद परीक्षा में श्रीमान् सेठ रूपचन्दजी जवाहरलालजी रामावत, हैद्राबाद (दक्कन) द्वारा प्रदत्त "रामातपदक"

प्रथम परीक्षा में श्रीमान् हेमराजजी हजारीमलजी मुणोत, इटारसी द्वारा प्रदत्त १ "रूपीबाई मुणोत पदक"

प्रवेश परीक्षा में श्रीमती राजाबाई श्र मांगीलालजी चोरडीया, बरोरा, द्वारा प्रदत्त "मदनलाल चोरडियापदक"

यदि हो सकेगर तो उपरोक्त नियम के अतिरिक्त प्रथम श्रेणी और द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण सभी छात्रों को पारितोषिक के स्थानपर रजतपदक ही वितरण किया जायगा अन्यथा लब्धांक के अनुसार परिमित छात्रों को दिया जायगा।

विद्यावारिधि पं. राजधारी त्रिपाठी शास्त्री,

रजिस्ट्रार,

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन

धार्मिक परीक्षा बोर्ड,

पाथर्डी [अहमदनगर]

३१–बोर्ड की परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों की नामावली (परीक्षाफल) योग्य समाचारपत्रों में प्रकाशित कर दी जायगी एव केन्द्र-व्यवस्थापक के पास भी भेज दी जायगी

३२–बोर्ड की सभी परीक्षाएँ प्राय.फरवरी मास मे हुआ करेंगी, जिसकी निश्चित सूचना यथा समय केन्द्रों मे भेज दी जायगी, तथा वर्तमान पत्रों में भी प्रकाशित करा दिया जायगा।

३३–बोर्ड की परीक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रो को जो प्रमाणपत्र दिया जायगा, यदि वह खो गया तो, वर्ष, स्थान, रोलनम्बर, परीक्षास्थान, लिखकर केन्द्र-व्यवस्थापक के मार्फत प्रार्थनापत्र रजिस्ट्रार कार्यालय में भेजने पर पुन प्रमाणपत्र की नकल मिल सकेगी, परन्तु उसके लिये १ रु शुल्क देना पड़ेगा।

३४–श्री ति. र. स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी, की परीक्षाओं में अच्छे नम्बर से उत्तीर्ण होनेवाले छात्रो को श्री वर्द्धमान जैन धर्मशिक्षण प्रचारक सभा, पाथर्डी, (अहमदनगर), की तरफसे नियमानुसार स्कॉलरशिप (छात्रवृत्ति) प्रदान करने की योजना की गई है, जिसकी सूचना तत्तत्, पाठशालाध्यक्षों को भेज दी जायगी एव वर्तमानपत्रों में भी प्रकाशित करा दिया जायगा।

३५–परिक्षासम्बन्धी पत्रव्यवहार रजिस्ट्रार, श्री तिलोकरत्न स्था. जैन धार्मिक बोर्ड, पाथर्डी (अहमदनगर), इस पते से करना चाहिए।

३६–उक्त नियमों में आवश्यकतानुसार संशोधन, एवं परिवर्धन, विद्वत्परिषद् की अनुमतिसे रजिस्ट्रार महोदय को करने का अधिकार है।

३७–इस नियमावली का अमल दरासद सन् १६५० की परीक्षा से जब तक नई सूचना न निकले तब तक हो सकेगा।

पारितोषिक व प्रमाणपत्र देने का नियम

३८–जिस परीक्षा में जितने पत्र या खण्ड है वे सभी पत्र या खण्ड पास कर लेने पर ही प्रमाणपत्र तथा पारितोषिक मिल सकेगा, पत्र या खण्डमें नहीं।

३९–यदि बोर्ड में काफी रकम है तो उत्तीर्ण सभी छात्रों को पदक या पारितोषिक दिया जायगा। अन्यथा बोर्ड के निर्णयानुसार परिमित छात्रों को दिया जायगा।

४०–पारितोषिक प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण छात्रों को ही नीचे लिखे अनुसार दिया जायगा—

	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी
प्रवेश परीक्षा—	।।।	।।
प्रथमा परीक्षा—	१।।	१।
धर्मभूषण परीक्षा या	३	२
सिध्दान्तविशारद	,,	,,

सि. प्रभाकर परीक्षा	५	४
सि. शास्त्री परीक्षा	१५	११
सि. आचार्य परीक्षा	३५	२५

नोट——१—सिध्दान्ताचार्य परीक्षा में सर्वप्रथम आनेवाले छात्र को पारितोषिक" के अलावा बोर्ड की तरफसे "स्वर्णपदक" दिया जायगा और उस छात्र को 'श्री अमोलक जैन स्थानकवासी सहायक—समिति, पूना" की तरफसे ५१ रु. का श्री "रंभाकुँवर पारितोषिक" भी विशेष रूप से प्राप्त होनेपर दिया जायगा।

२—इतर सभी परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी उत्तीर्ण सर्वोच्च आनेवाले छात्र को निम्न रूप से विशिष्ट "रजतपदक" दिये जायगें।

शास्त्री परीक्षामें—आकोला (वरार) निवासी श्रीमान् अमरचन्द गोविन्दजी कटोर्डे द्वारा प्रदत्त अमरचन्दपदक"।

प्रभाकर परीक्षामें- श्रीमान् दानवीर सेठ नानचंदजी भगवानदासजी दूगड़ घोडनदी, द्वारा प्रदत्त पारखकुटुम्बपदक"।

धर्मभूषण परीक्षा में देडगांव (अहमदनगर) निवासी श्रीमान् सेठ नवलमलजी सन्तोकचन्दजी मुणोत द्वारा प्रदत्त "नवलमल मुणोतपदक"

सिद्धांतविशारद परीक्षा में श्रीमान् सेठ रूपचन्दजी जवाहरलालजी रामावत, हैद्राबाद (दक्कन) द्वारा प्रदत्त "रामावतपदक"

प्रथम परीक्षा में श्रीमान् हेमराजजी हजारीमलजी मुणोत, इटारसी द्वारा प्रदत्त १ "रूपीबाई मुणोत पदक"

प्रवेश परीक्षा में श्रीमती राजाबाई ध्र मांगीलालजी चोरडीया, वरोरा, द्वारा प्रदत्त "मदनलाल चोरडियापदक"

यदि हो सकेगर तो उपरोक्त नियम के अतिरिक्त प्रथम श्रेणी और द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण सभी छात्रों को पारितोपिक के स्थानपर रजतपदक ही वितरण किया जायगा अन्यथा लब्धांक के अनुसार परिमित छात्रों को दिया जायगा।

विद्यावारिधि पं. राजधारी त्रिपाठी शास्त्री,

रजिस्ट्रार,
श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन
धार्मिक परीक्षा बोर्ड,
पाथर्डी [अहमदनगर]

श

॥ ॐ अर्हन् ॥

श्री तिलोक र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी, (अहमदनगर) का निर्धारित पाठ्यक्रम

प्रवेश परीक्षा

प्रथम पत्र—प्रवेश परीक्षा पाठ्य पुस्तक (पाथर्डी) पृष्ठ १ से २१ तक।

द्वितीय पत्र—प्रवेश परीक्षा पाठ्यपुस्तक पृष्ठ २२ से सम्पूर्ण।

प्रथमा परीक्षा

प्रथम पत्र—आवश्यक सूत्र १२ व्रत तक सार्थ, (पाथर्डी बोर्ड द्वारा सम्पादित) अथवा श्री अ. भा. स्वे.. स्था. जैन कान्फरन्स मुम्बई से प्रकाशित, सामायिक सूत्र सार्थ ३२ दोषसहित, रत्नाकर पच्चीसी मूल, मातृभाषा (हिन्दी, गुजराती या मराठी) महावीर सन्देश, समकित के ६७ बोल।

द्वितीय पत्र—आवश्यक सूत्र (अवशिष्ट) श्रमणसूत्रसहित पाथर्डी बोर्ड द्वारा सम्पादित अथवा श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फरन्स द्वारा प्रकाशित, पचीस बोल का थोकडा सार्थ (पुण्य, पाप की १२४ प्रकृतियों को छोडकर,) शालोपयोगी जैन—प्रश्नोत्तर प्रथम भाग [पाथर्डी] बालकों के लिये १० श्रावकों का चरित्र। कन्याओं के लिये १६ सतियों का चरित्र।

धर्मभूषण परीक्षा

(प्रथम खण्ड)

प्रथम पत्र—नवतत्त्व सार्थ पूर्ण (पाथर्डी) कर्मप्रकृति, ऐतिहासिक नोंध, अथवा स्थानकवासी जैन-इतिहास [भण्डारीजी]

द्वीतीय पत्र—जैनागमतत्त्वदीपिका, भक्तामर मूल पांच समिति तीन गुप्ति का थोकडा।

(द्वितीय खण्ड)

प्रथम पत्र—जैनदर्शन [सेठिया ग्रन्थमाला, बीकानेर,] "धर्म और धर्मनायक" गुणस्थान द्वार [सेठियाजी]

द्वितीय पत्र—कर्मग्रन्थ पथमभाग, लघुदंडक पूर्ण, साधारण निबन्ध हिन्दी में।

सिद्धान्तविशारद परीक्षा

(प्रथम खण्ड)

प्रथम पत्र—नवतत्त्व सार्थ कर्मप्रकृति, (पाथर्डी,) "स्था. जैन इतिहास-परिचय" (पाथर्डी बोर्ड) (ऐतिहासिक नोंध और 'लोंकाशाह मतसमर्थन' इन दो पुस्तकों के आधार से तैयार किया गया ग्रन्थ)

द्वितीय पत्र–स्था. जैनागमतत्त्वदीपिका, सस्कृतमार्गोपदेशिका (भाण्डारकर कृत) प्रथम भाग, पाँच समिति तीन गुप्तिका थोकडा, भक्तामर स्तोत्र (भावार्थ)

(द्वितीय खंड)

प्रथम पत्र—प्राकृत मार्गोपदेशिका या प्राकृतपाठमाला, कर्मग्रन्थ भाग १ ला।

द्वितीय पत्र—दशवैकालिक सूत्र, निर्ग्रन्थ प्रवचन, उपासकदशाङ्ग सूत्र, साधारण निबन्ध हिन्दी में-निबन्धादर्श की सहायता से।

स्था. जैन सिद्धान्तप्रभाकर परीक्षा

(प्रथम खण्ड)

प्रथम पत्र—जैनेन्द्र प्रक्रिया या लघुसिद्धान्त कौमुदी (सम्पूर्ण) अथवा सस्कृत मन्दिरान्त प्रवेशिका, लघुसिद्धान्त कौमुदी (अव्ययान्त)

द्वितीय पत्र—दशवैकालिक सूत्र (सस्कृतच्छायानुवाद) उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन १ से २० अनुवादस्वरूप।

(द्वितीय खण्ड)

प्रथमपत्र-प्रमाणनयतत्त्वालोक (सूत्रार्थ भाषामें) कर्मग्रन्थ भाग २ रा।

द्वितीय पत्र-जिनागमकथासंग्रह, ज्ञातासूत्र का शब्दार्थ, प्राकृत का संस्कृतच्छायानुवाद और प्राकृत भाषानुवाद।

–स्था. जैन सिद्धान्तशास्त्री परीक्षा–

(प्रथम खण्ड)

प्रथम पत्र- प्राकृत व्याकरण (हेमचन्द्राचार्य) अथवा पं. वेचरदासजीकृत।

द्वितीय पत्र-जैन तर्कभाषा अथवा न्यायसिद्धान्तमुक्तावली प्रत्यक्षखण्ड, तत्त्वार्थ सूत्र (सभाष्य)

तृतीय पत्र-प्रश्न व्याकरण (सटीक), राजप्रश्नीय सूत्र (उत्तरार्द्ध) सटीक

(द्वितीय खण्ड)

प्रथम पत्र-षड्दर्शनसमुच्चय, अनुयोगद्वार (सटीक)

द्वितीय पत्र-आचारांग सूत्र (सटीक) प्रथमश्रुत स्कंध, औपपातिक सूत्र (सटीक)

तृतीय पत्र-सुरसुन्दरीचरियम् परिच्छेद १–२, समराइच्च कहा भव ३

(तृतीय खण्ड–)

प्रथम पत्र-स्याद्वादमजरी

द्वितीय पत्र-स्थानांग सूत्र, नन्दीसूत्र (सटीक)

तृतीय पत्र-निबन्ध संस्कृत और प्राकृतमें। विशेष वाचनके लिये जैनतत्त्वप्रकाश (पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराजकृत)

—स्था. जैन सिद्धान्ताचार्य परीक्षा—

(प्रथम खण्ड)

प्रथम पत्र—प्रज्ञापना सूत्र (सटीक)

द्वितीय पत्र—प्रमाणमीमांसा, सप्तभङ्गितरंगिणी

तृतीय पत्र—कुमारपालचरित्रम्।

(द्वितीय खण्ड)

प्रथम पत्र—रत्नाकरावतारिका

द्वितीय पत्र—सूत्र कृताङ्ग सूत्र (प्रथमश्रुत स्कंध) सटीक, भगवती सूत्र (सटीक) शतक १५

तृतीय पत्र—अध्यात्मसार, धम्मपद

(तृतीय खण्ड)

प्रथम पत्र—सन्मति प्रकरण (मूल), षड्द्रव्यसमुच्चय

द्वितीय पत्र—विशेषावश्यक सूत्र (सभाष्य)

तृतीय पत्र—भारतीय दर्शन (पं. बलदेव प्रसादजी उपाध्याय, एम. ए. प्रोफेसर हिंदू विश्वविद्यालय, काशी) ईश्वर और सृष्टिकर्तृत्व

चतुर्थ पत्र—मौखिक परीक्षा शास्त्रार्थ पद्धति पर।

वि. वा. पं. राजधारी त्रिपाठी शास्त्री,

रजिस्ट्रार,

श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड,

पाथर्डी (अहमदनगर)



संस्था पर वज्राघात

इस प्रकार तत्कालीन ऋषिसंप्रदायाधीश पूज्य श्री आनदऋषिजी म. की प्रेरणा से बोर्ड का कार्य सुचारु रूपसे चल रहा था। इसी बीच पूज्य श्री के पास कान्फरन्स की ओर से संप्रदायों के एकीकरण की दृष्टिसे पत्र पर पत्र आने लगे। कॉन्फरन्स के आग्रह के कारण आप श्री ने विक्रम संवत् २००५ में घोडनदी में ऋषि-संप्रदायी सतियों का सम्मेलन कर मनमाड होकर रतलाम की ओर विहार किया। अनेक ग्रामों का स्पर्श करते हुए जब आप मनमाड पधारे, तब आप श्री के पास अहमदनगर से श्रीमान् कुन्दनमलजी फिरोदिया की ओर से इस आशयका एक पत्र आया। अब आप को उत्तर की ओर विहार करना चाहिये और इस बार का चातुर्मास ब्यावर करेंगे तो बहुत उपकार होगा। इस पर महाराज श्री ने देश काल का विचार करते हुए फिलहाल सुखे समाधे रतलाम पहुँचने पर चातुर्मास विषयक निश्चय करने की भावना व्यक्त की। क्यों कि उस समय रतलाम में ऋषि-संप्रदाय की वृद्धसतीजी श्री गंगाजी म० विराज-मान थी। उन्हें आपको दर्शन देना था।

मनमाड में ही आप श्री के पास सब के हृदय पर आघात पहुंचानेवाला एक दु:खद समाचार यह पहुँचा कि बोर्ड के अध्यक्ष दानवीर श्रीमान् नानचन्दजी दुगड ने अपना मानवीय आयुष्य पूर्ण किया है। उनका वियोग बोर्ड के लिए असह्य था। फिर भी अपने संतजनोचित स्वभावानुसार आप श्री अपने विहारानुक्रम से आगे बढते हुए धार नगर में पहुंचे।उस समय बोर्ड को विकास की ओर पहुँचाने वाले रजिस्ट्रार पंडित श्री राजधारी त्रिपाठी शास्त्रीजी महाराज साहब के दर्शनार्थ आये, बोर्ड की गति-विधि पर आप श्री से बहुत कुछ विचार-विमर्श कर वे पाथर्डी पहुंचे ही थे कि त्रिपाठीजी के धार छोडने के आठ दिन बाद महाराज श्री के पास एक शोक समाचार पहुँचा कि चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को महावीर जयन्ती के दिन सभा में भाषण करते करते पं. श्री राजधारी त्रिपाठीजी की हृदय-गति बंद हो जाने से स्वर्गवास हो गया।

दानवीर सेठ श्रीमान् नानचदजी दूगड, तथा पं.श्री राजधारीजी त्रिपाठी दोनों बोर्ड के आधारस्तंभ थे। श्री दूगडजी के श्लाघनीय दान से बहुत दिनों से विचार मूर्त रूप में परिणत हुआ। उसके बाद उनकी प्रेरणा से और भी अनेक सद्-गृहस्थोंने बोर्ड को उदार हृदय से सहायता दी। आप वृद्ध तो थे ही, फिर भी अपने शुद्ध धर्म परायण जीवन के साथ पूर्ण व्यावहारिक होने से आपसे प्रतिसमय बोर्ड को बहुत सहायता मिलती थी। बोर्ड के आप प्राण ही थे। उसी प्रकार रजिस्ट्रार पं. श्री राजधारीजी त्रिपाठी ने इसके विकास में कितना अथकश्रम उठाया, उसके सम्बन्ध में पहले बहुत कुछ लिख चुका हूँ। श्री तिलोक जैन विद्यालय के इतिहास में उनके इस आकस्मिक अवसान के बारे में प्रकाश डाल चुका हूँ। वे कितने सदाचारी एवं कर्तव्यनिष्ठ थे कि भगवान के नाम का उच्चारण करते करते अपने प्राण छोडे। बहुत कम व्यक्तियों

की ऐसी धन्य मृत्यु होती है। इस प्रकार बोर्ड के आद्य सभापति दानवीर सेठ श्रीमान् नानचंदजी दूगड तथा आद्य रजिस्ट्रार प श्री राजधारीजी त्रिपाठी के अवसान से कितनी अवर्णनीय क्षति हुई। जिसकी पूर्ति होना सब को अशक्य प्रतीत हो रहा था। इस दुःखद घटना को बारह साल हो जाने पर भी लोग आज भी इन दोनों का स्मरण करते है। बोर्ड के इतिहास के साथ इन का नाम सदैव जुटा रहेगा।

बोर्ड के नवीन अध्यक्ष तथा रजिस्ट्रार

स्व. श्री नानचंदजी दूगड अपनी जीवितावस्था में जब बोर्ड के अध्यक्ष रूप से काम करते थे, तब पनवेलनिवासी श्री रतनचंद बांठिया उपाध्यक्ष रूप से बोर्ड का कार्य संभालते थे। वे बोर्ड की प्रत्येक प्रवृत्ति से अच्छी तरह परिचित थे। अत एव श्रीमान् नानचन्द दूगड के बाद वे ही सर्वानुमति से अध्यक्ष रूप से नियुक्त किये गये। बांठियाजी ने भी भूतपूर्व अध्यक्ष की तरह बोर्ड के कार्य में बहुत सहायता पहुँचाई है। इनका बौद्धिक योग के साथ आर्थिक योग भी कम नही है।

फिर भी बोर्ड के रजिस्ट्रार की जगह तो अभीतक खाली ही थी। कोई ऐसा व्यक्ति नही दिखाई दे रहा था, जो इस स्थान की पूर्ति कर सकता था। पर स्व पंडित जी अपने समय में एक ऐसे व्यक्ति को तैयार कर गये थे, जो इस बोर्ड का सूत्र-सचालन अच्छी तरह कर सकता था। वह थे प बदरीनारायणजी शुक्ल। इनकी ही महाराजश्री की सम्मतिसे रजिस्ट्रार रूप में नियुक्ति की। ये स्व प त्रिपाठीजी की प्रेरणासे ही इधर आए थे। प्रथमत युवाचार्य श्री आनदऋषिजी म के शिष्य मुनि श्रीमोतीऋषिजी म के अध्यापनार्थ पनवेल चातुर्मास में शुक्लजी आए। मुनिश्री को पढाते हुए इन्होंने जैनधर्म का अभ्यास कर प्रस्तुत बोर्ड की परीक्षाएं देना प्रारभ किया और क्रमश आगे बढते बढते जैन सिद्धांताचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। बोर्ड के प्रथम आचार्य पंडित बदरीनारायणजी शुक्ल ही है। बोर्ड के लिए यह अत्यत सौभाग्य की बात थी कि पंडितजी के स्वर्गवास के बाद उनके ही शिष्य और सस्थाके योग्य स्नातक श्रीशुक्लजी जैसे व्यक्ति रजिस्ट्रार रूप से प्राप्त हुए। इसके पहले ये अहमदनगर सिद्धांतशाला में साधु-साध्वियोंको जैनधर्म सबधी शास्त्रीय सस्कृत प्राकृतका अभ्यास कराते थे।

इस बोर्ड के मत्री-पद पर तो बहुत पहलेसे ही पं श्रीचद्रभूषणजी त्रिपाठी काम कर रहे थे। अब इन दोनों युवकों के सहयोगसे बोर्ड का कार्य और भी प्रबल वेग से बढने लगा। इस में भी पं शुक्लजी का कार्य विशेष सराहनीय है।

परीक्षा बोर्ड के भवन की समस्या और निजी भवन

सन् १६३६ में ही इस बोर्ड की स्थापना हो गई थी, पर श्री तिलोक जैन विद्यालय की तरह इसका भी कोई निजी भवन नहीं था। बोर्ड की परीक्षाओं से आकर्षित

श्री तिलोक रत्न स्था. जैन-धार्मिक परीक्षा बोर्ड भवन, पाथर्डी



जहांसे अखिलभारतव्यापी स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षादि विविध,
प्रवृत्तियोका संचालन हो रहा है।

होकर प्रतिवर्ष परीक्षार्थिओं की संख्या बढने के साथ अन्य भी अनेक तदुपयोगी प्रवृत्तियाँ बढ चुकी थी। फिर भी यह सारा कार्य किरायेवाले एक छोटे-से मकान में चलाया जाता था। कई वार तो आद्य रजिस्ट्रार पं श्री राजधारी त्रिपाठीजी ने पूज्य श्री आनन्दऋषिजी म० का इस ओर ध्यान आकर्षित किया। वे कहते थे,, इस वोर्ड की प्रवृत्तियाँ दिन-दिन बढ रही है, सारे देश के विद्यार्थी इसकी परीक्षाओं में सम्मिलित होते है। ऐसे स्थानकवासी जैन समाज के द्वारा मान्य बोर्ड का निजी भवन होना आवश्यक है। भवन के अभाव में हम महत्त्वपूर्ण फाइलें आदि भी सुव्यवस्थित रूप से नही रख पाते,, पर प्रत्येक वार महाराजश्री बोर्ड की आर्थिक मर्यादा के कारण इस प्रश्न को टालते रहे। स्व० त्रिपाठी की यह इच्छा अपने जीवन-काल में पूर्ण नहीं हो पाई।

श्री त्रिपाठीजी के बाद जब श्री शुक्लजी बोर्ड के रजिस्ट्रार पद पर नियुक्त हुए, तब इनके मस्तिष्क में भी भवन-संबन्धी प्रश्न चक्कर काट रहा था। वोर्ड के अध्यक्ष उपाध्यक्ष आदि भी इसके लिए चिंतित थे। पहले सब की यह योजना थी कि श्री तिलोक जैन विद्यालय के नव निर्मित भवन के पास ही प्रशांत वातावरण में गाव से दूर बोर्ड का कार्यालय हो तो अच्छा। इस के लिए बहुत कुछ प्रयत्न भी किया गया, लेकिन कारणविशेष से वोर्ड के अध्यक्ष आदि इस कार्य में सफल नही हो सके। सन १९५२ में जब श्रमण सघ के प्रधान मत्री श्री आनन्द ऋषिजी म. का नाथद्वारा में चातुर्मास था, तब दि १५-१२-५२ के रोज वोर्ड की जनरल कमेटी हुई। उसमें भवन को दृष्टि में रख एक प्रस्ताव यह पास किया गया।

“ वोर्ड के कार्यालय की जगह किराए की है। मकान मालिक को स्वयं उसकी आवश्यकता है। अत कार्यालय के लिए दूसरी व्यवस्था यथाशक्य शीघ्र ही कर लेना नितात आवश्यक है। ऐसा निवेदन व्यवस्थापक श्री हीरालालजी गांधी ने सभा के सम्मुख पेश किया हैं। कार्यालयीय व्यवस्था के महत्त्व को लक्ष्य में रखते हुए सभा के सदस्य यह आवश्यक मानते है कि कार्यालय के लिए निजी भवन व्यवस्था करा लेना ही उपयुक्त होगा। इस कार्य को यथाशक्य शीघ्र ही सम्पादित करने के लिए श्री. रतनचन्दजी बांठिया, श्री माणकचन्दजी मुथा और श्री. हीरालालजी गाधी इन तीन सदस्यों की एक सब कमेटी नियुक्त की जाती है। कमेटी को अधिकार दिया जाता है कि वह स्थान आदि का निर्णय कर के कार्यालय के योग्य भवन की व्यवस्था करावे ”। यह प्रस्ताव करते समय यह निश्चय किया गया था कि छ महीने में भवन की समस्या हल हो जानी चाहिये। बहुत दौड-धूप करने पर भी इस अवधि में यह समस्या किसी तरह हल नही हुई। अन्त में श्री. माणकचन्दजी मुथा ने वोर्ड के रजिस्ट्रार प शुक्लजी को भवन के उपयुक्त मकान की तलाश करने के लिए कहा। श्री. शुक्लजी को भी यह प्रश्न बेचैन कर रहा था। बहुत तलाश एवं चिंतन करने के वाद उनकी दृष्टि श्री मोहनलालजी डागा के विशाल मकान पर पडी। ये सज्जन पाथर्डी-

निवासी ही थे। पाथर्डी में इनके अपने इस विशाल भवन के अतिरिक्त और भी बहुत सी स्थावर सम्पत्ति है। बाहर भी इनका कारोबार फैला हुआ था। इसलिये उन्होंने कुछ समय से अहमदनगर रहना प्रारम्भ कर दिया था। इस लक्षाधिपति माहेश्वरी बन्धु से श्री शुक्लजी ने मकान के सम्बन्ध में बातचीत की। कई दिनों तक वार्तालाप करनेपर भी कोई निर्णय नही हो पाता था। क्योंकि श्री डागाजी पच्चीस हजार से कम में किसी भी शर्तपर यह मकान देने के लिए तैयार नही थे। बोर्ड के पास ध्रौव्य फंड भी उस समय कुल तीस हजार था। अपने सारे ध्रौव्य फंड को इस प्रकार केवल मकान में लगा देना उचित भी नही था, परन्तु शुक्लजी भी अपने संकल्प से पीछे हटनेवाले नही थे। उन्होंने बडे परिश्रम से साडे इक्कीस हजार रुपयों में धार्मिक संस्था के निमित्त यह सौदा तय किया और मकान के सम्बन्ध में महाराज श्री की सेवा में समाचार लिखे कि "बडे परिश्रम से पाथर्डी निवासी श्री. मोहनलालजी डागा का मकान बोर्ड को मिल रहा है, वे केवल साडे इक्कीस हजार रुपयों में इतना विशाल भवन संस्था को देने के लिए तैयार हैं। यदि यह कार्य जल्दी कर लिया जाय तो हम भवन की दृष्टि से सदैव के लिए चिंतामुक्त हो सकेंगे। अन्त में पं शुक्लजी के प्रयत्न से सबकी यह इच्छा सफल हुई। मैंने पहले कभी इस स्थान को देखा नही था। अभी बोर्ड का यह विवरण उसके कार्यालय में बैठकर ही लिख रहा हूँ। वस्तुत श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड का यह कार्यालय बहुत विशाल है। दूर से ही यह तिमजला बहुत विशाल भवन सबका ध्यान आकर्शित कर लेता है। इसका घेरा १२०० वर्ग गज है। नीचे छोटे-बडे ११ कमरे हैं। इस भवन के ऊपर के हिस्से में एक कन्याविद्यालय भी चलता है। इस धार्मिक परीक्षा बोर्ड भवन के समीप ही जो भवन है। उसके पहिले मंजिल में "श्री अमोल जैन सिद्धांतशाला तथा दूसरे मंजिल में "श्री रत्न जैन पुस्तकालय" भी है। इस पुस्तकायल में दो हजार से अधिक हस्तलिखित ग्रथोंका संग्रह है और संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी, उर्दू, फारशी भाषा की अच्छी से अच्छी लगभग आठ हजार के ऊपर मुद्रित पुस्तकों का संकलन है। पाथर्डी के आसपास के स्थानों में ऐसा सर्वांगपूर्ण पुस्तकालय अपने समाज में अन्यत्र दृष्टिगोचर नही होता। इस प्रकार इस बोर्ड से केवल परीक्षाओंका संचालन ही नही होता है। इसी अंतर्गत व्यवस्थित रूपसे परीक्षार्थियों को सैद्धांतिक ग्रथों का अध्यापन कराया जाता है और सदुपयोगी एक विशाल पुस्तकालय भी हैं।

सब प्रकार की प्रवृत्तियों का संचालन करने के लिए उपयुक्त मकान की समस्या तो इस तरह हल हो गई। उसके क्रय के लिए एक साथ इक्कीस हजार रुपये दे देने से संस्था के पास ध्रौव्य फंड कम रह गया था। परंतु संस्था की प्रारंभ से सेवा करनेवाले दान वीरों ने इस विकट प्रश्न को जल्दी हलकर बोर्ड की प्रवृत्तिओं में बहुत गति

प्रदान की। अनेक लोगों ने कमरों की दृष्टि से दस हजार, तीन हजार, इक्कीस सौ, पंद्रह सौ, ग्यारह सौ आदि के हिसाब से तेईस हजार रुपये देकर बोर्ड के ध्रौव्य-फंड की पूर्ति कर दी। जिन सज्जनों ने एक-एक कमरे की दृष्टि से जितने रुपये दिये, उन सब के तैलचित्र के साथ एक तख्ती लगी हुई है, जिसमे दाता द्वारा प्रदत्त रुपयों का उल्लेख है। मकान के सहायक दाता की तथा उनके दान की सूची इस प्रकार है।

१००००	श्री	एक गुप्तदानी सद्गृहस्थ	
२१००	"	चौथमलजी पुखराजजी ओसवाल	वडनेरा
११०१	,,	तिलोकचन्दजी खूबचंदजी गुन्देचा	चादा (अहमदनगर)
२१००	,,	वसतीमलजी नवरतनमलजी मुथा	रायचुर
५००	,,	अक्कूबाई हीराचन्दजी	जोधपुर
१५००	,,	वेवरचन्दजी कपूरचन्दजी चोरडिया	हिंगणघाट
१५०१	"	मगनलालजी सुन्दरजी तथा रमणिकलालजी	अमरावती
५०००	"	एक सद्गृहस्थ ह केशवलालभाई	जालना
३०००	"	नवलमलजी सूरजमलजी धोका	यादगिरी
६७६	"	चौथमलजी सुराणा (आश्वासन १५०१ रु)	नाथद्वारा
५०१	"	जसराजजी कालाभाई लाठिया	मूर्तिजापुर
११०१	"	भटेवडा ब्रदर्स	राहू

ऊपर जिन श्री हीरालालजी गाधी का बोर्ड-भवन के संबंध में उल्लेख कर चुका हूँ, वे सज्जन बोर्ड के प्रारंभिक काल से व्यवस्थापक हैं। वे स्वभाव के उदार, धर्मशील, सदाचारी तथा कर्तव्यपरायण व्यक्ति है। उनकी गृहस्थिति सामान्य होने पर भी अध्यक्ष तथा मंत्री की तरह पाठशालीय जनरल कमेटी के समय आगंतुक मेहमानों की सब प्रकार की व्यवस्था करने में सदैव तत्पर रहे है। श्री तिलोक जैन विद्यालय के भी वे सम्मान्य सदस्य है। बोर्ड की स्थापना होने पर अर्थात् सन् १९३६ ई से ही आप निःस्वार्थ भाव से (अवैतनिक रूप से) परीक्षा बोर्ड, श्री अमोल जैन सिद्धांतशाला, श्री रत्न जैन पुस्तकालय, श्री वर्द्धमान जैन धर्म शिक्षण प्रचारक सभा, आदि पारमार्थिक संस्थाओं का हिसाब लिखते रहे है। सहज रूप से इस प्रकार निरपेक्ष सेवा करनेवाले बहुत कम व्यक्ति होते हैं। अपनी साधारण परिस्थिति होने पर भी इन्होंने तन-मन और धन से भी संस्थाओं की पर्याप्त सेवा की है।

परीक्षा-बोर्ड के परीक्षक

शुद्ध विद्यानिष्ठ व्यक्ति स्वयं कष्ट सहन करके भी दूसरों की सेवा करने में तत्पर रहते है। वे जहाँ कही ऐसी बात देखते हैं कि इस स्थान पर परोपकार वृत्ति से लोगों को संस्कारी एव धार्मिक बनाने के लिए कार्य हो रहा है, वहाँ वे बिना कुछ लिए

सेवा वृत्ति से काम करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। इस बोर्ड के सौभाग्य से प्रारंभ से ही ऐसे सेवाभावी परीक्षकों का सहयोग मिला, जो किसी प्रकार का पारिश्रमिक लिए विना एक वर्ष नही, दो वर्ष नही, पर सन् १९५२ तक नियमित रूप से समय पर बराबर प्रश्नपत्र निकालकर भेजते रहे है। इतना ही नही, उन्होंने उसी निरपेक्ष भाव से परीक्षार्थियों की सैकडों, सहस्रों कापियॉ जाची भी है। विद्वानों की यह त्याग-वृत्ति मैंने केवल जैन समाज में ही नही देखी है। हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द भा हिंदी प्रचार सभा, मद्रास राष्ट्र भाषा प्रचार समिति वर्धा ने भी अपने प्रारंभिक काल में ऐसे विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया है और धनिको की अपेक्षा भी उनकी त्याग-वृत्ति से ये संस्थाएँ आज इतनी विशाल है। इन तीनों संस्थाओं के साथ मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। पाथर्डी स्थित यह परीक्षा बोर्ड भी इन सब परीक्षकों के सहयोग से आज इतने व्यवस्थित रूप से चल रहा है। विगतवर्षो से अखड रूप से सेवा करनेवाले उन परीक्षकों की सूची इस प्रकार है।

बोर्ड के परीक्षक वर्ग

१ श्री डॉ मगलदेवजी शास्त्री एम् ए. डी फिल (ऑक्सन)
भू पू रजिष्ट्रार प्रिंसिपल गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, वाराणसी
२ ,, डॉ इन्द्रचन्द्रजी शास्त्री एम् ए पी. एच् डी,
अध्यक्ष संस्कृत विभाग विश्व विद्यालय, देहली
३ ,, डॉ बनारसीदासजी जैन एम् ए पी एच् डी.
प्रोफेसर-ओरियंटल कॉलेज लाहौर
४ ,, डॉ हीरालालजी जैन एम् ए पी. एच. डी संचालक-श्री वैशाली विद्यापीठ
५ ,, डॉ जगदीशचन्द्रजी शास्त्री एम् ए पी. एच्. डी
प्रोफेसर-श्री महावीरविद्यालय, मुम्बई
६ ,, प शोभाचन्द्रजी भारिल्ल न्यायतीर्थ — ब्यावर
७ ,, प्रो मोहनलालजी मेहता एम् ए. पी एच् डी. 'शास्त्राचार्य' — बीकानेर
८ ,, प. दलसुखभाई मालवणिया 'न्यायतीर्थ' — अहमदाबाद
९ ,, प. पूर्णचन्दजी दक 'न्यायतीर्थ' — कानोड़
१० ,, पं हरिनारायणजी शर्मा 'न्याय व्याकरणाचार्य'
प्र अ श्री सन्यासी संस्कृत महाविद्यालय — अहमदाबाद
११ ,, प शान्तिलाल व शेठ 'न्यायतीर्थ' — देहली
१२ ,, प रोशनलालजी चपलोत 'न्यायतीर्थ बी. ए. एल् एल् बी. — बीकानेर
१३ ,, पं घेवरचन्दजी बांठिया 'न्यायतीर्थ' — खींचन
१४ ,, पं. अम्बालालजी नागौरी ,एम. ए न्यायतीर्थ' — ,,
१५ ,, पं. बसन्तीलालजी नलवाया न्यायतीर्थ साहित्यरत्न — रतलाम

१६	,, पं चांदमलजी जैन 'न्यायतीर्थ'	रामपुरा
१७	,, पं देवेन्द्रकुमारजी जैन सिद्धांतशास्त्री 'साहित्यरत्न'	पाथर्डी
१८	,, प. रतनलालजी संघवी 'न्यायतीर्थ' 'साहित्यरत्न'	छोटीसादड़ी
१९	,, पं, बद्रीलालजी वकील- 'काव्यतीर्थ'	खाचरोद
२०	,, पं सूर्यमलजी चोरडिया 'विशारदत्रय'	,
२१	,, पं. धीरजलालजी तुरखिया	राणपुर
२२	,, पं लालचन्दजी मुणोत 'न्यायतीर्थ'	ब्यावर
२३	,, पं यशवंतराजजी खिंवसरा-सि शास्त्री	कुचेरा
२४	,, पं रत्नकुमारजी रत्नेश 'साहित्यरत्न'	मुम्बई
२५	,, पं महेशचन्दजी जैन 'न्यायतीर्थ' 'साहित्यरत्न'	कानोड
२६	,, पं उदयचन्दजी जैन 'धर्मशास्त्री'	कानोड
२७	,, पं रोशनलालजी जैन सि शास्त्री	बडिया
२८	,, प गुलजारीलालजी चौधरी 'न्यायतीर्थ'	उदयपुर
२९	,, पं चांदमलजी कर्नावट एम् ए 'साहित्यरत्न'	वरकाना
३०	,, पं. कन्हैयालालजी दक 'न्यायतीर्थ'	उदयपुर
३१	,, पं वसन्तकुमारजी जैन 'न्यायतीर्थ' धर्मशास्त्री	राजकोट
३२	,, पं. पारसमलजी प्रसून एम् ए 'साहित्यरत्न'	भोपालगढ
३३	,, प. मुनीन्द्रकुमारजी जैन	राजनांदगांव
३४	,, प पार्श्वकुमारजी जैन 'साहित्यरत्न'	रायपुर
३५	,, प अमोलकचन्दजी सुपुरिया एम् ए एल एल बी	पूना
३६	,, सौ मदनकुंवरबाई पारख	चांदा C P
३७	,, देवकी बहनजी प्रिंसपल श्री जैन गर्ल्स हाईस्कूल	लुधियाना
३८	,, सुमतिकुमारी ओस्तवाल	भुसावल

पर समाज के उदार व्यक्तियों के सहयोग से बोर्ड की जब कुछ सुदृढ स्थिति हो गई, तब परीक्षा बोर्ड के वर्तमान रजिस्ट्रार श्री प शुक्लजी ने जनरल कमेटी के सामने प्रस्ताव रखकर परीक्षकों को पारिश्रमिक रूप से कुछ दिलाने का निश्चय किया। वह पारिश्रमिक अन्य सेवाभावी संस्थाओं को दृष्टि मे रखकर उनके अनुकूल दिया जाता है।

श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड को
अखिल भारतीय श्वे स्था जैन कॉन्फरन्स द्वारा मान्यता।

सन् १९४९ के दिसम्बर मास को बात है। जब मद्रासनिवासी श्रीमान् ताराचन्दजी गेलडा के दीर्घ प्रयत्न से त्यागनगर-स्थित जैन बोर्डींग हाउस में श्रीमान् कुंदनमलजी फिरोदिया की अध्यक्षता में कॉन्फरन्स का बृहद् सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में

दूर-दूर से अनेक व्यक्ति आये थे। इसमें एक प्रस्ताव था कि कॉन्फरन्स की ओर से भारतव्यापी परीक्षाएँ चलाई जायें। इसके पहले कॉन्फरन्स ने राष्ट्रीय वृत्तिवाले, सेवा परायण श्री सतबालजी के संचालकत्व में जैन पाठावली के सात भाग अनेक भाषा में तैयार कराये थे। यह संकलन इस प्रकार तैयार कराया गया कि जिससे विद्यार्थी क्रमश आगे बढते-बढते मैट्रिक तक इन सातों भागों को पूरा कर लें। कुछ समय बाद ही रतलाम के परीक्षा बोर्ड ने कॉन्फरन्स में अपना विलीनीकरण कर दिया। पर पाथर्डी बोर्ड का कार्य सुव्यवस्थित रूपसे चलता रहा। बाद में सादडी साधु-सम्मेलन, सोजत रोड, कुचेरा, जोधपुर, दिल्ली आदि अनेक स्थानों पर परीक्षा बोर्ड के विलीनीकरण के सम्बन्ध में चर्चा चलती थी। लेकिन इसकी गति-विधि, आर्थिक स्थिति तथा सुव्यवस्था से प्रभावित होकर डॉ इद्रचन्द्रजी शास्त्री, प. उदय जैन, श्री चंपालालजी कर्णावट वकील आदि विद्वान् पाथर्डी बोर्ड का जोरदार समर्थन करते रहे। इन सब का यह सुझाव था कि कॉन्फरन्स ने परीक्षा की दृष्टि से अभी केवल सात भाग ही तैयार कराये है, उसके पास ऐसा उच्च पाठ्यक्रम भी नही है, अत यह बोर्ड जिस ढंग से चल रहा है, उसी ढंग से चलता रहे तो समाज में धार्मिक ग्रन्थो का अधिक पठन-पाठन हो सकता है। बोर्ड के रजिस्ट्रार प शुक्लजी भी पाथर्डी बोर्ड का स्वतन्त्र रूप से अस्तित्व रखने के लिये पूर्णरूपेण प्रयत्नशील थे। अत में उनके अथक परिश्रम से कॉन्फरन्स ने धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी को अपनी ओर से मान्यता प्रदान की, कि श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी को अ भा श्वे. स्था. कॉन्फरन्स की ओर से मान्यता प्रदान की जाती है, यह अपनी परीक्षाएँ चला सकता है। इतना ही नहीं कॅन्फरन्स ने श्री संतबालजी द्वारा सपादित पुस्तकों को प्रकाशित कर उन्हें परीक्षाओं में रखने का अधिकार बोर्ड को दे दिया। मान्यता के विषय में इन दोनोंसंस्थाओं में परस्पर जो करारनामा हुआ वह इस प्रकार है.—

श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड और श्री अ भा श्वे स्था जैन कॉन्फरन्स-दिल्ली दोनों ने रूबरू विचारणाकर निम्न प्रकार ठहराया है कि-

१) श्री अ भा श्वे स्था. जैन कॉन्फरन्स दिल्ली श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी को मान्य रखता है।

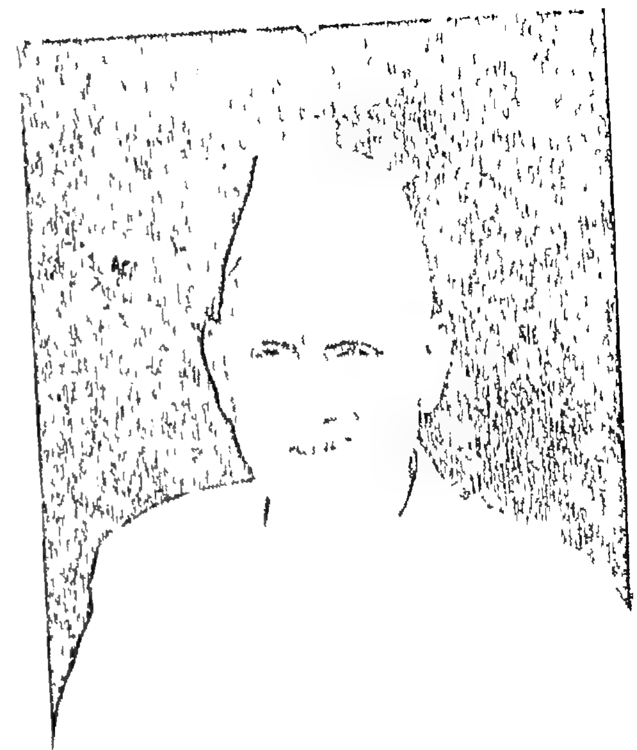
२) श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी अबसे अपने पत्र व्यवहार में पुस्तकों में और अन्य स्थानोंपर अपना नाम इस प्रकार रखेगा।

'श्री अ भा श्वे स्था जैन कॉन्फरन्स द्वारा मान्य' श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी। इस प्रकार श्री ति र स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी ने स्वीकार किया है और कॉन्फरन्स ने भी इस प्रकार स्वीकृति दी हैं।

२५-६-५४ डी के तुरखिया, ऑनरेरी सेक्रेटरी
अखिल भारतवर्षीय श्वे स्था जैन कॉन्फरन्स देहली

परीक्षा बोर्ड की प्रेस बिल्डिंग (श्री सुधर्मा मुद्रणालय)

परीक्षा बोर्ड की विविध प्रवृत्तियों के पर्यवेक्षक



श्रीमान् तिलोकचन्दजी गुन्देचा
चाँदा (अहमदनगर)

सुधर्मा पत्रिका एवं सुधर्मा मुद्रणालय

बोर्ड की सतत बढती हुई प्रगति को देखकर बहुत समय से यह अनुभव किया जा रहा था कि यहां से किसी ऐसी मुखपत्रिका का प्रकाशित होना अनिवार्य है। जिसमें प्रतिमास परीक्षा संबन्धी विवरण के साथ विविध विषयों से गुंफित लेख प्रकाशित होते रहें। बोर्ड के वर्तमान रजिस्ट्रार श्री शुक्लजी ने कई वार इस ओर बोर्ड के सदुपदेशक पं. रत्न मुनि श्री आनन्दऋषिजी म. का ध्यान आकर्षित किया। महाराजश्री की भी बहुत दिनों से यही इच्छा थी, पर अभीतक का विवरण लिखने के फलस्वरूप मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि जबतक भूमिका दृढ न हो, तब तक सामनेवाले व्यक्ति के लाख कहने पर भी वे कोई कार्य शुरू नहीं करते। वे प्रत्येक कार्य को स्थायित्व करना चाहते है। इसलिए पत्रिका प्रारंभ करने से पूर्व इसके संस्थापक, आधार स्तंभ संरक्षक, आजीवन सदस्य, सदस्य आदि बनाये। बोर्ड के प्रारम्भिक काल से उदार, हृदय से सहायता पहुँचानेवाले जालना निवासी श्रीमान् केशवभाई जवेरचंद शाह सर्व-प्रथम ५००१ रु. देकर इस पत्रिका के संस्थापक बने, इसी प्रकार १००१ देकर आधार-स्तंभ बननेवाले चार सदस्य है १ श्री चंद्रभानजी रूपचन्दजी डाकलिया, श्रीरामपुर २ श्री केशरचन्दजी कचरदासजी बोरा, आश्वी ३ श्री सूरजमलजी कस्तूरचंदजी गांधी, अहमदनगर ४ श्री माणकचंदजी किसनदासजी मुथा, अहमदनगर। ५०१ रु, देकर संरक्षक बननेवाले दस सदस्य २५१ रु. देकर सहायक सदस्य बननेवाले ४१ सदस्य और १०१ रु देकर आजीवन सदस्य बननेवाले १२६ सदस्य है। महाराजसाहब के मार्गदर्शन से समय समय पर और भी इसके सदस्य बनते रहते है। इस प्रकार समाज के अनेक दाताओं का सहयोग प्राप्त होने से इस पत्रिका की नीव सुदृढ हो रही है।

बोर्ड के पास पत्रिकोपयोगी पर्याप्त द्रव्य एकत्रित होने के पश्चात् सुधर्मा नामक पत्रिका गतवर्ष के अगस्त मास से प्रकाशित की गई। भगवान् महावीर के प्रथम पट्टधर श्री सुधर्मा स्वामी ही थे। सब जैन सम्प्रदायों में उन्हीं की पट्टपरंपरा चल रही है। इस पत्रिका का भी सुधर्मा स्वामी की तरह व्यापक दृष्टिकोण है। इसमें समाज को परीक्षा बोर्ड की गति-विधि से परिचित कराने के साथ धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक लेख प्रकाशित किये जाते है। पत्रिका मे एक स्तंभ ऐसा भी है, जिसमें परीक्षार्थी छात्र या अध्यापकों द्वारा लिखित परीक्षोपयोगी लेख दिये जाते हैं। पत्रिका में जीवन को विकास की ओर ले जानेवाली सात्विक सामग्री प्रकाशित की जाती है।

परीक्षा बोर्ड के क्रमिक विकास की तालिका

सन्	आवेदित छात्र	प्रविष्ट छात्र	उत्तीर्ण छात्र
१९३७	११९	१०८	९१
१९३८	४८१	४१४	३१०
१९३९	६४४	५७९	५५९
१९४०	६०५	५९०	५६०
१९४१	२९०	४९३	४१४

सन्	आवेदित छात्र	प्रविष्ट छात्र	उत्तीर्ण छात्र
१३४२	५४०	३५१	३३१
१३४३	५३६	३८१	३५२
१३४४	७८०	५०१	४३५
१३४५	७४०	५५२	५११
१३४६	७८२	६०१	४३५
१३४७	९७७	६३४	५४८
१३४८	८१२	५२६	४६५
१३४९	९४८	७२६	६००
१३५०	१०४८	८१०	७३०
१३५१	१२२२	९७६	७७७
१३५२	९३४	७६३	५८५
१३५३	१७५९	१४३१	१२३८
१३५४	२६६१	२३२०	१३५५

१९५५	३०८७	२६७१	२२५६
१९५६	३७१७	३१२४	२५५२
१९५७	३७८१	३१८९	२५००
१९५८	५१७८	३७०६	२९८३
१९५९	५४४४	४३६४	३५५०

इस बोर्ड को विकास की उच्च स्थिति पर पहुँचाने के लिए आद्य रजिस्ट्रार प. त्रिपाठीजी की तरह संस्था के वर्तमान रजिस्ट्रार पं. शुक्लजी का बहुत बडा हाथ है। पं शुक्लजी के नेतृत्व में पिछले बारह साल में ही संस्था ने सर्वाधिक प्रगति की है। उसका सकेत ऊपर कर चुका हूँ।

पंडित रत्न उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज के सौजन्यपूर्ण व्यवहार से ही अनेक पारिवारिक सकटों के बावजूद भी मैं इस कार्यको करने में समर्थ हो सका हूँ। धर्मगुरु होनेपर भी इस बीच उनकी सदैव मुझपर पितृवत् वात्सल्यपूर्ण दृष्टि रही है तथा यह विवरण भी जानकारी प्राप्त करके ही पूर्ण कर सका हूँ। अतएव आपके द्वारा प्राप्त की हुई आपकी यह वस्तु आपश्री के श्री चरणों में ही समर्पित करता हूँ।

महेंद्रकुमार जैन



प्रशस्ति

सम्पूर्ण ग्रन्थ पूज्य उपाध्याय श्री. आनन्दऋषिजी म. की कल्पना और (प्रेरणा) के फलस्वरूप उनके पट्टशिष्य प. मुनि श्री मोतीऋषिजी म और गुरुभक्त पढ़दर्य श्री महेन्द्रकुमारजी के अथक परिश्रम एव समाज के अग्रगण्य विद्वान् (गुणवा)जी तथा श्रद्धाशील लेखको के प्रखर पाडित्य का प्रतीक है। ग्रन्थ का आरभ पूज्यपाद महाराजश्री के वंश परिचय मे किया गया है और समाप्ति श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के परिचय मे की गई है। वैसे इस ग्रन्थ को हम तीन भागो में विभक्त कर सकते है। पहले भाग में पूज्यपाद महाराजश्री का परपरागत परिचय, स्वर्गीय आत्मा के लिए श्रमण सघ के पूज्य आचार्यश्री, पूज्य उपाचार्यश्री प्रमुख अनेक विद्वान् मुनिवरो एव विदुषी सतीवृन्द तथा सद्गृहस्थो की ओर मे अर्पित की हुई श्रद्धाजलियो का प्रकरण और अन्त में पूज्यपाद महाराजश्री की अलौकिक कृतियो का विवेचन है।

दूसरे भाग में समाज के विशिष्ट विद्वानो के विविधवस्तुविषयक निबन्ध है और तीसरा भाग दिवगत पूज्यपाद महाराजश्री के ज्वलन्त स्मारक रूप में पाथर्डी में स्थापित श्री तिलोक जैन विद्यालय और श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड इन दोनो सस्थाओ का परिचयरूप है।

वस्तुत किसी भी महामहिम महापुरुष की महनीय कीर्ति का यथार्थ कीर्तन शक्य कोटिसे परे ही होता है, तथापि कुशल लेखकने प्रकाश्य विषयोपर शक्य प्रकाश डालने में अपनी प्रतिभा व प्रयासका योग्य उपयोगकर अध्यात्मरसिक पाठको के समक्ष मननीय सामग्री प्रस्तुत की है।

पाठक गण इस ग्रन्थरत्न के पठन–मननसे रत्नत्रय की प्र... वृद्धिगत करे, यही शुभ-कामना है।

बदरीनारायण शुक्ल

परीक्षा मन्त्री

श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी

१९५५	३०८७	२६७१	२२५६
१९५६	३७१७	३१२४	२५५२
१९५७	३७८१	३१८९	२५००
१९५८	५१७८	३७०६	२९८३
१९५९	५४४४	४३६४	३५५०

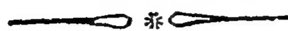
इस बोर्ड को विकास की उच्च स्थिति पर पहुँचाने के लिए आद्य रजिस्ट्रार प त्रिपाठीजी की तरह सस्था के वर्तमान रजिस्ट्रार पं. शुक्लजी का बहुत बडा हाथ है। पं शुक्लजी के नेतृत्व में पिछले बारह साल में ही संस्था ने सर्वाधिक प्रगति की है। उसका सकेत ऊपर कर चुका हूँ।

पंडित रत्न उपाध्याय मुनि श्री आनन्दऋषिजी महाराज के सौजन्यपूर्ण व्यवहार से ही अनेक पारिवारिक संकटों के बावजूद भी मैं इस कार्यको करने में समर्थ हो सका हूँ। धर्मगुरु होनेपर भी इस बीच उनकी सदैव मुझपर पितृवत् वात्सल्यपूर्ण दृष्टि रही है तथा यह विवरण भी जानकारी प्राप्त करके ही पूर्ण कर सका हूँ। अतएव आपके द्वारा प्राप्त की हुई आपकी यह वस्तु आपश्री के श्री चरणों में ही समर्पित करता हूँ।

महेंद्रकुमार जैन



प्रशस्ति



सम्पूर्ण ग्रन्थ पूज्य उपाध्याय श्री. आनन्दऋषिजी म. की कल्पना और ·र·ना। के फलस्वरूप उनके पट्टशिष्य प. मुनि श्री मोतीऋषिजी म और सुलेखक ·ध्य· श्री महेन्द्रकुमारजी के अथक परिश्रम एव समाज के अग्रगण्य विद्वान् ुनिराजो तथा श्रद्धाशील लेखको के प्रखर पाडित्य का प्रतीक है। ग्रन्थ का आरभ पूज्यपाद महाराजश्री के वंश परिचय से किया गया है और समाप्ति श्री तिलोक रत्न स्था जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी के परिचय से की गई है। वैसे इस ग्रन्थ को हम तीन भागो में विभक्त कर सकते है। पहले भाग में पूज्यपाद महाराजश्री का परपरागत परिचय, स्वर्गीय आत्मा के लिए श्रमण सघ के पूज्य आचार्यश्री, पूज्य उपाचार्यश्री प्रमुख अनेक विद्वान् मुनिवरो एव विदुपी सतीवृन्द तथा सद्गृहस्थो की ओर से अर्पित की हुई श्रद्धाजलियो का प्रकरण और अन्त में पूज्यपाद महाराजश्री की अलौकिक कृतियो का विवेचन है।

दूसरे भाग में समाज के विशिष्ट विद्वानो के विविधवस्तुविषयक निवन्ध है और तीसरा भाग दिवगत पूज्यपाद महाराजश्री के ज्वलन्त स्मारक रूप में पाथर्डी में स्थापित श्री तिलोक जैन विद्यालय और श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा वोर्ड इन दोनो सस्थाओ का परिचयरूप है।

वस्तुत· किसी भी महामहिम महापुरुष की महनीय कीर्ति का यथार्थ कीर्तन शक्य कोटिसे परे ही होता है, तथापि कुशल लेखकने प्रकाश्य विषयोपर शक्य प्रकाश डालने में अपनी प्रतिभा व प्रयासका योग्य उपयोगकर अध्यात्मरसिक पाठको के समक्ष मननीय सामग्री प्रस्तुत की है।

पाठक गण इस ग्रन्थरत्न के पठन–मननसे रत्नत्रय की प्रभावना को वृद्धिगत करे, यही शुभ-कामना है।

बदरीनारायण शुक्ल

परीक्षा मन्त्री

श्री ति. र. स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी


सम्पूर्ण